नयी कहानी के विविध प्रयोग

नयी कहानी के विविध प्रयोग

(बिहार विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

डॉ० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'
हिन्दी विभाग
आर० डी० एण्ड डी० जे० कालेज, मुंगेर,
भागलपुर विश्वविद्यालय

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

NAYEE KAHANI KE VIVIDH PRAYOG

(THESIS)

BY

DR. PANDEYA SHASHI BHUSHAN 'SHITANSHU'

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद—१ द्वारा प्रकाशित
●
कॉपीराइट
डॉ० पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'
●
प्रथम संस्करण
१९७४
●
लोकभारती प्रेस
१८, महात्मा गांधी मार्ग,
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य :: २५.००

डॉ० इन्द्रनाथ मदान
के
नाम सादर

प्रवन्ध-पूर्वा

नवलेखन पर शोधकार्य का औचित्य—

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'नयी कहानी के विविध प्रयोग' (१९५० ई० से १९६९ ई० तक) हिन्दी में 'प्रयोग' के निकप पर आधारित 'नयी कहानी' की नितान्त मौलिक और पहली प्रामाणिक मीमांसा है। यह प्रबन्ध नवलेखन और समकालीन साहित्य पर शोध-कार्य नहीं हो सकने की प्राचीन एवं भ्रान्तिपूर्ण मान्यता का जोरदार खंडन करता है। आज के यांत्रिक परिवेश में जहाँ कृति-प्रकाशन के साथ ही उस पर विमर्श के लिए गोष्ठियाँ आयोजित होती हैं और पत्र-पत्रिकाओं में परिचर्चाएँ-समीक्षाएँ तक प्रकाशित होती हैं, वहाँ समकालीन मूल्यांकन की दिशा में होने वाला शोध-कार्य ऐतिहासिक और युगीन—दोनो ही दृष्टियों से व्यक्तित्व और कर्तृत्व पक्षों का अधिक-से-अधिक तथ्यपूर्ण दस्तावेज पेश करता, रूढ़िवश व्याप्त मौन को भंग करता है। सचमुच अपनी अस्मिता की सहज ही पहचान कराने वाले, समसामयिक साहित्य पर शोध-कार्य किसी भी रूप में उपेक्षणीय नहीं रह जाता। इस सम्बन्ध में आचार्य वाजपेयी का अभिमत द्रष्टव्य है—"प्रतीत होता है कि अध्यापकों का यह समूह शोध के लिए किसी प्राचीन और अज्ञात कवि की खोज को ही पर्याप्त समझता है। परन्तु यह शोध की बहुत ही मोटी और रूढ़ धारणा है। शोध के लिए किसी विषय का प्राचीन या नवीन होना महत्वपूर्ण नहीं है। शोध का महत्त्व विषय को उपस्थापित करते हुए उसमें नवीन ज्ञान का प्रवेश और स्थापना करना है।" (आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : 'शोध की समस्या', 'हिन्दी अनुशीलन', अक्तू०-दिस० १९६१, पृष्ठ १६)

शोध-विषय की सटीकता और मौलिकता—

'नयी कहानी' सामयिक मनुष्य की जीवन्तता के अनुरूप ही प्राणोष्मा की लहर से भरी है। यह उसकी शक्ति-अशक्ति का कथ्यात्मक साक्षात्कार है। यह न तो मनोरंजन का साधन है और न बैठ-लेटकर की जाने वाली यात्रा में समय बिताने का जरिया, यह न तो गुलदस्ता का प्रतिरूप है और न विचार की अल्प-से-अल्प आमन्त्रिति वाला साहित्य-रूप, इसका महत्त्व न तो आधा घंटा के विस्तार के निश्चित मापन में है और न विभिन्न निर्णीत तत्त्वों पर

आधारित प्रधानता के निरूपण में। यह तो अनुभव की वास्तविकता (ऐक्चुअलिटी ऑव एक्सपीरिएंस) को प्रतिष्ठापित करने वाली, अपनी प्रकृति को सवेदनात्मक (इन्वोकेटिव) करार देने वाली तथा अपने को कथ्य-शिल्प की अस्पष्ट और आरोपित लपेट से निकाल कर व्यक्त करने वाली अन्वेषण-धर्मा कहानी है, जो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद सहसा हिन्दी-साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गयी।

'नयी कहानी' का सबसे बड़ा गुण-धर्म इसकी प्रयोग-दृष्टि है—(१) "नयी कहानी' ने जो प्रयोग दिये उससे बन्द पानी बह निकला है।"—रमेश बक्षी ('नयी कहानी : दशा, दिशा, सभावना', पृष्ठ–३०६)। (२) "एक व्यापक माध्यम के रूप में कहानी की सभावनाओ को हिन्दी के कहानीकारो ने ही नही देखा, विश्व की कई भाषाओं में इस माध्यम को एक नयी प्रयोगात्मक दृष्टि से ग्रहण किया गया है।"–डॉ० देवीशकर अवस्थी। 'नयी कहानी : दशा, दिशा, सभावना', पृष्ठ–२४३।) इसलिए 'नयी कहानी' विषय पर प्रबन्ध-लेखन का प्रारूप और शीर्षक निर्धारित करने के सदर्भ मे मैंने 'नयी कहानी' की इस विशेष ग्रहणशीलता का ही सवहन किया है। स्पष्ट है कि नयी कहानी के विविध प्रयोग' विचार, विषय, शिल्प और भाषा के मुद्दो पर नवीन सवेदन-भावन, अभिनव चिंतन-परिसर और नूतन युग-सन्दर्भों से सबद्ध हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय-चयन की दूसरी वाजिब और सार्थक सगति प्रबन्ध-लेखन के नजरिये से इस विषय पर अब तक कहीं भी शोधकार्य न होने और सामान्य, विशेष दोनो ही प्रकार के लेखन की दृष्टि से इसके प्रयोगपरक विवेचन के अब तक नितान्त अछूते रहने से बैठती है। 'नयी कहानी' पर पत्र-पत्रिकाओ में अधिकाधिक लिखा गया है। इस पर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं–१–'कहानी : नयी : पुरानी' (डॉ० नामवर सिंह), २–'नयी कहानी : प्रगति और प्रयोग' (डॉ० इन्द्रनाथ मदान), ३–'नयी कहानी की भूमिका' (कमलेश्वर), ४–नयी कहानी की मूल सवेदना' (डॉ० सुरेश सिन्हा), ५–'आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व' (डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), ६—'नयी कहानी : सदर्भ और प्रकृति' (डॉ० देवीशकर अवस्थी), ७—'नयी कहानी : दशा, दिशा, सभावना' (स० सुरेन्द्र), ८—'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ' (स० सुरेन्द्र), ९–'नयी कहानी : कथा विचार की नयी भूमिका' (स० सुरेन्द्र), १०–'हिन्दी कहानियाँ और फ़ैशन' (उपेन्द्रनाथ अश्क), ११–'समकालीन कहानी का रचना-विधान' (डॉ० गगाप्रसाद विमल) 'समकालीन हिन्दी कहानी : दिशा और दृष्टि' (डॉ० धनजय)। कुछ पुस्तकें हिन्दी कहानी पर लिखी गयी हैं, जिनमें

'नयी कहानी' पर यथासंभव विवेचन है। यथा—१—'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया' (डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव), २—'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास' (डॉ०. सुरेश सिन्हा), ३—'कहानी : अनुभव और शिल्प' (जैनेन्द्र), ४—'कहानी : स्वरूप और संवेदना' (राजेन्द्र यादव), ५—'हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय' (उपेन्द्रनाथ अश्क) आदि।

ऊपर की कृतियों में 'नयी कहानी' की जितनी भी व्याख्याएँ हुई हैं उनमें से अधिकांश प्रायः उलझी हुई परस्पर विरोधिनी और पूर्वग्रस्त हैं। ऐसे विमर्श से किसी प्रकार का स्पष्ट और सुनियोजित अर्थ नहीं निकल सका है। स्पष्ट विचार करने से प्रायः फतवे और मसले की संभावना के निःशेष हो जाने का खतरा होता है। 'नयी कहानी' को सुविचारित रूप से अभिहित, स्वरूपित और विश्लेषित करने के लिए पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मनन-चिन्तन की आवश्यकता थी। इसीलिए प्रायः विवेचक इससे बचते रहे। दूसरे, आलोचकों का ध्यान शैलीगत चमत्कार और विच्छित्ति पर ज्यादा रहा। सचमुच यह बहुत गम्भीर रूप में विचारणीय है कि "भारतीय विद्वान् जितना समय चिन्तन की गहराई और विन्यास में लगाते हैं उससे ज्यादा नहीं, तो कम-से-कम उतना ही उच्चारण, मुहावरे और लच्छेदारी में लगा देते हैं "स्कूल विद्यार्थी से लेकर विद्वान् तक के ज्ञान को अभिशाप लग गया है। भारतीय चिन्तन का अभिप्रेत विषय—ज्ञान नहीं, बल्कि मुहावरेदारी और लच्छेदारी बन गया है।" —(डॉ० राममनोहर लोहिया के भाषण का अंश, 'दिनमान,' १२ अक्तूबर १९६६ के पृष्ठ ४० पर उद्धृत।)

यहाँ 'नयी कहानी'-विषयक विमर्श के अस्पष्ट और उलझाव-भरे होने के प्रसंग में केवल चार विचारकों के अभिमत काफी होंगे—

१—साहित्य की कई पुरानी पीढ़ियाँ जब 'नयी कहानी' को अपनी पुरानी निगाह से देखती हुई उसकी नयी व्याख्या (?) करने का प्रयास करती हैं तो ये चर्चाएँ दृष्टि देने के बजाय दृष्टि धुँधली करने लगती हैं। नतीजा यह है कि आज कहानी के क्षेत्र में जितना 'कन्फ्यूज़न' है उतना और किसी क्षेत्र में नहीं... परस्पर विरोधी वक्तव्यों और नारों का ऐसा जुलूस शायद कहीं और देखने को मिले।"—(विजय मोहन सिंह : 'नयी कहानी का सर्वेक्षण', 'आलोचना', अप्रैल-जून १९६७, पृष्ठ १२५)

२—नामवर ने 'नयी कहानी' पर इतने लेख लिखे हैं, पर वे आज तक सफाई के साथ यह नहीं बता सके (बताएँ भी कैसे जब वे स्वयं उलझाव के शिकार हैं) कि 'नयी कहानी' क्या है और उसकी विशेषताएँ क्या हैं। (उपेन्द्रनाथ

आधारित प्रधानता के निरूपण में। यह तो अनुभव की वास्तविकता (ऐक्चुअलिटी ऑव एक्सपीरिएंस) को प्रतिष्ठापित करने वाली, अपनी प्रकृति को संवेदनात्मक (इन्वोकेटिव) करार देने वाली तथा अपने को कथ्य-शिल्प की अस्पष्ट और आरोपित लपेट से निकाल कर व्यक्त करने वाली अन्वेषण-धर्मा कहानी है, जो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सहसा हिन्दी-साहित्य की केन्द्रीय विधा बन गयी।

'नयी कहानी' का सबसे बड़ा गुण-धर्म इसकी प्रयोग-दृष्टि है—(१) "नयी कहानी' ने जो प्रयोग दिये उससे बन्द पानी बह निकला है।"—रमेश बक्षी ('नयी कहानी : दशा, दिशा, संभावना', पृष्ठ–३०६)। (२) "एक व्यापक माध्यम के रूप मे कहानी की संभावनाओ को हिन्दी के कहानीकारों ने ही नही देखा, विश्व की कई भाषाओं में इस माध्यम को एक नयी प्रयोगात्मक दृष्टि से ग्रहण किया गया है।"—डॉ॰ देवीशंकर अवस्थी। 'नयी कहानी : दशा, दिशा, संभावना', पृष्ठ–२४३।) इसलिए 'नयी कहानी' विषय पर प्रबन्ध-लेखन का प्रारूप और शीर्षक निर्धारित करने के संदर्भ मे मैंने 'नयी कहानी' की इस विशेष ग्रहणशीलता का ही सवहन किया है। स्पष्ट है कि नयी कहानी के विविध प्रयोग' विचार, विषय, शिल्प और भाषा के मुद्दों पर नवीन संवेदन-भावन, अभिनव चिंतन-परिसर और नूतन युग-सन्दर्भों से संबद्ध हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विषय-चयन की दूसरी वाजिब और सार्थक संगति प्रबन्ध-लेखन के नजरिये से इस विषय पर अब तक कहीं भी शोधकार्य न होने और सामान्य, विशेष दोनों ही प्रकार के लेखन की दृष्टि से इसके प्रयोगपरक विवेचन के अब तक नितान्त अछूते रहने से बैठती है। 'नयी कहानी' पर पत्र-पत्रिकाओं में अधिकाधिक लिखा गया है। इस पर अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं–१–'कहानी : नयी : पुरानी' (डॉ॰ नामवर सिंह), २–'नयी कहानी : प्रगति और प्रयोग' (डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान), ३–'नयी कहानी की भूमिका' (कमलेश्वर), ४–नयी कहानी की मूल संवेदना' (डॉ॰ सुरेश सिन्हा), ५–'आधुनिक हिन्दी कहानी का परिपार्श्व' (डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय), ६—'नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति' (डॉ॰ देवीशंकर अवस्थी), ७—'नयी कहानी : दशा, दिशा, संभावना' (सं॰ सुरेन्द्र), ८—'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ' (सं॰ सुरेन्द्र), ९–'नयी कहानी : कथा विचार की नयी भूमिका' (सं॰ सुरेन्द्र), १०–'हिन्दी कहानियाँ और फ़ैशन' (उपेन्द्रनाथ अश्क), ११–'समकालीन कहानी का रचना-विधान' (डॉ॰ गंगाप्रसाद विमल) 'समकालीन हिन्दी कहानी : दिशा और दृष्टि' (डॉ॰ धनंजय)। कुछ पुस्तकें हिन्दी कहानी पर लिखी गयी हैं, जिनमें

'नयी कहानी' पर यथासंभव विवेचन है। यथा–१—'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया' (डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव), २–'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास' (डॉ० सुरेश सिन्हा), ३—'कहानी : अनुभव और शिल्प' (जैनेन्द्र), ४—'कहानी : स्वरूप और संवेदना' (राजेन्द्र यादव), ५—'हिन्दी कहानी : एक अंतरंग परिचय' (उपेन्द्रनाथ अश्क) आदि।

ऊपर की कृतियों में 'नयी कहानी' की जितनी भी व्याख्याएँ हुई हैं उनमें से अधिकांश प्रायः उलझी हुई परस्पर विरोधिनी और पूर्वग्रस्त हैं। ऐसे विमर्श से किसी प्रकार का स्पष्ट और सुनियोजित अर्थ नहीं निकल सका है। स्पष्ट विचार करने से प्रायः फतवे और घपले की संभावना के निर्दोष हो जाने का खतरा होता है। 'नयी कहानी' को सुविचारित रूप में अभिहित, स्वरूपित और विश्लेपित करने के लिए पहले की अपेक्षा कहीं अधिक मनन-चिन्तन की आवश्यकता थी। इसीलिए प्रायः विवेचक इससे बचते रहे। दूसरे, आलोचकों का ध्यान शैलीगत चमत्कार और विच्छित्ति पर ज्यादा रहा। सचमुच यह बहुत गम्भीर रूप में विचारणीय है कि "भारतीय विद्वान् जितना समय चिन्तन की गहराई और विन्यास में लगाते हैं उससे ज्यादा नहीं, तो कम-से-कम उतना ही उच्चारण, मुहावरे और लच्छेदारी में लगा देते हैं ‥स्कूल विद्यार्थी से लेकर विद्वान् तक के ज्ञान को अभिशाप लग गया है। भारतीय चिन्तन का अभिप्रेत विषय — ज्ञान नहीं, बल्कि मुहावरेदारी और लच्छेदारी बन गया है।" —(डॉ० राम-मनोहर लोहिया के भाषण का अंश, 'दिनमान,' १२ अक्तूबर १९६९ के पृष्ठ ४० पर उद्धृत।)

यहाँ 'नयी कहानी'-विषयक विमर्श के अस्पष्ट और उलझाव-भरे होने के प्रसंग में केवल चार विचारकों के अभिमत काफ़ी होंगे—

१—साहित्य की कई पुरानी पीढ़ियाँ जब 'नयी कहानी' को अपनी पुरानी निगाह से देखती हुई उसकी नयी व्याख्या (?) करने का प्रयास करती हैं तो ये चर्चाएँ दृष्टि देने के बजाय दृष्टि धुंधली करने लगती हैं। नतीजा यह है कि आज कहानी के क्षेत्र में जितना 'कन्फ्यूज़न' है उतना और किसी क्षेत्र में नहीं... परस्पर विरोधी वक्तव्यों और नारों का ऐसा जुलूस शायद कहीं और देखने को मिले।"—(विजय मोहन सिंह : 'नयी कहानी का सर्वेक्षण', 'आलोचना', अप्रैल-जून १९६७, पृष्ठ १२५)

२—नामवर ने 'नयी कहानी' पर इतने लेख लिखे हैं, पर वे आज तक सफाई के साथ यह नहीं बता सके (बताएँ भी कैसे जब वे स्वयं उलझाव के शिकार हैं) कि 'नयी कहानी' क्या है और उसकी विशेषताएँ क्या हैं। (उपेन्द्रनाथ

अस्क : 'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय' के पृष्ठ १२४ पर संकेतित।)

३—हिन्दी कहानी पर आज जितनी चर्चा होती है उसमें से कोई सुनियोजित और सुस्पष्ट अर्थ निकालना हमारे लिए प्रायः संभव नहीं होता और जहाँ तक सभव हो, हम ऐसी आलोचना या मीमासा से कतराते हैं। (श्रीपत राय : 'कहानी की बात', 'कहानी', जून १९६८, पृष्ठ ७)

४—उन सैकड़ों हजारों पन्नो के बावजूद, जो 'नयी कहानी' के बारे मे लिखे गये है, कोई बात सफाई से उभर कर सामने नही आती'''। (अमृत राय के विचार, सुरेन्द्र : 'नयी कहानी : दशा, दिशा, संभावना,' पृष्ठ २८२)

अब तक 'नयी कहानी'-विषयक सामान्य आलोचना की यही स्थिति है। प्रयोगपरक विवेचन के रूप में २६ दिसम्बर '६५ को कलकत्ते में हुई कथा-गोष्ठी—'कथा-शिल्प : प्रयोग की प्रक्रिया' में राजेन्द्र यादव का वक्तव्य—'नयी कहानी : प्रयोग की प्रक्रिया' प्रयोग का सूत्रात्मक विवेचन है। वह भी अपने-आप मे पूर्ण और गभीर नही है। 'नयी कहानी' पर ठोस और ठस लेख—डॉ० मदान के 'हिन्दी कहानी : प्रगति और प्रयोग' में प्रगति तो मूल्यांकित हुई है, पर प्रयोग शीर्षक भर से जुड कर रह गया है। 'कल्पना' के नव-लेखन विशेषांक-१ में डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव का लेख 'नयी कहानी : प्रयोग की सार्थकता' अत्यन्त ढीला-ढाला और विवेच्य विन्दु-हीन है। यह प्रारूपात्मक (स्केची) भी नही है। कुल मिलाकर 'नयी कहानी' के प्रयोग पर हिन्दी आलोचना मे मूल-विन्दु उभारने और चिन्तन की सही दिशा निर्धारित करने योग्य सामग्री भी नहीं है। ऐसे मे प्रस्तुत विषय की सार्थकता और उसके प्रतिपादन की मौलिकता स्पष्ट है।

विषय-प्रतिपादन

'नयी कहानी : विविध प्रयोग' सात अध्यायों में विभाजित है— १—प्रयोग : शास्त्रीय विवेचन, २—नयी कहानी . प्रकृति-परिचय, ३—नयी कहानी के विचारगत प्रयोग, ४—नयी कहानी के विषयगत प्रयोग, ५ नयी कहानी के शिल्पगत प्रयोग, ६—नयी कहानी के भाषागत प्रयोग और ७—समापिका।

'प्रयोग : शास्त्रीय विवेचन' अध्याय मे 'प्रयोग' शब्द के विविध अर्थ, प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ मे 'प्रयोग' का अभीष्ट साहित्यिक अर्थ, साहित्यिक प्रयोग के प्रकार, प्रयोग की प्रकृति, प्रयोग और परम्परा : विभेद और

सामंजस्य तथा प्रयोग : एक अनिवार्य आवश्यकता का विधिवत्, सांगोपांग, शास्त्रीय परिचय दिया गया है। साथ ही 'नयी कहानी' के सन्दर्भ में 'प्रयोग' को महत्त्वपूर्ण ढंग से अवरेखित किया गया है। 'प्रयोग' पर न तो कहीं इतनी सामग्री एकत्र उपलब्ध है और न इस प्रकार का प्रामाणिक शास्त्रीय स्थापन ही कहीं प्राप्त है।

'नयी कहानी : प्रकृति-परिचय' अध्याय 'नयी कहानी' के स्वरूप और वैशिष्ट्य का परिचय देता है। इसमें 'नयी कहानी' के काल-निर्धारण, नामकरण—जैसे विवादास्पद पहलुओं पर विचार किया गया है, पुरानी कहानी और 'नयी कहानी' का अन्तर स्पष्ट किया गया है, 'नयी कहानी' के आविर्भाव के कारण और उसकी उत्पत्ति की तात्कालिक परिस्थितियों की मीमांसा की गयी है और अन्ततः कहानी के बदले हुए मिजाज के सन्दर्भ में उसकी नयी प्रकृति की जानकारी करायी गयी है। इस अध्याय में सोच-समझ कर 'नयी कहानी' के कथाकारों का अलग से नामोल्लेख नहीं किया गया है, जिससे शोध-प्रबन्ध के प्रणयन मे कोई पूर्वग्रस्तता न रहे। वैसे 'नयी कहानी' के प्रमुख कथाकारों के लिए सम्पूर्ण प्रबन्ध में 'धर्मयुग' (साप्ताहिक) के 'एक कथा-दशक' के ऐतिहासिक महत्त्व को प्राथमिक रूप से ध्यान में रखा गया है।

तीसरे अध्याय में 'नयी कहानी के विचारगत प्रयोग' का विवेचन है। यहाँ अस्तित्ववादी पृष्ठभूमि में क्षमता-बोध का प्रयोग, पुरा-मूल्यों के अस्वीकार का प्रयोग, संत्रास का प्रयोग और मृत्यु-बोध का प्रयोग जैसे चार प्रयोग विवेचित-विश्लेपित हैं। इस अध्याय में पहली बार 'नयी कहानी' का संबन्ध प्रामाणिक रूप में अस्तित्ववादी विचारधारा से जोड़ा गया है।

चतुर्थ अध्याय में 'नयी कहानी के विषयगत प्रयोग' पर विचार हुआ है। यहाँ प्रामाणिक रूप में भोगे गये आन्तर यथार्थ के चित्रण को व्यापक विषयगत प्रयोग के रूप में उपस्थापित किया गया है। इसके अन्तर्गत मोहभंग और नर-नारी के सम्बन्ध-निरूपण का प्रयोग, विभिन्न संबन्धों में अजनबीपन के चित्रण का प्रयोग, पात्रों के असंगत होने का प्रयोग, प्रामाणिक अनुभव के आलोक में प्रेम के यथार्थ चित्रण का प्रयोग, पीढ़ियों के संघर्ष-चित्रण का प्रयोग, पात्रों में विशिष्ट विचार (आइडिया) के प्रतिबिम्बन (रिफ्लेक्शन) का प्रयोग, रूढ़ियों पर आक्रमण का प्रयोग, व्यंग्य और आक्रोश के चित्रण का नवप्रयोग, उपेक्षित जन-समूह के चित्रण का प्रयोग और विभक्त संसार के चित्रण का प्रयोग—जैसे दस प्रयोगों का विवेचन-विश्लेपण हुआ है। ये सारे प्रयोग अपनी प्रामाणिक स्थापना में पहले-पहल प्रस्तुत किये गये हैं।

पंचम अध्याय का प्रतिपाद्य 'नयी कहानी का शिल्पगत-प्रयोग' है। इस अध्याय में नाटकीय शिल्प, विवरण-भरी अथवा सूक्ष्म सांकेतिक शिल्प, प्रतीकात्मक शिल्प, दुहरा कथा-शिल्प, यथार्थ से आरम्भ का शिल्प, कथानक-ह्रास और कथासूत्र की विशृंखलता का शिल्प, परिवेश पर जोर-दूर की व्यंजना का शिल्प, विचारोत्तेजक प्रभाव का शिल्प, गैर कथात्मक शिल्प, अतीत के दो रूपों से अनुकीकरण का शिल्प, एक कथा के अन्तर्गत कई कथाओं के नियोजन का शिल्प, आवर्तक शिल्प, नाट्य-शिल्प, समीकरण-शिल्प और तार्किक शिल्प के प्रयोगों पर विचार किया गया है। हिन्दी कहानी की आलोचना में न केवल 'नयी कहानी' के शिल्प पर अपितु कहानी पर ही दोनों से हट कर इस ठोस दृष्टि से पहले-पहल विचार हुआ है।

षष्ठ अध्याय 'नयी कहानी का भाषागत प्रयोग' है। इस अध्याय में भाषागत प्रयोग व्यापक फलक पर विवेचित है। 'नयी कहानी' की विवेचना में भाषा पर इस दृष्टि से यहाँ सर्वप्रथम विचार हुआ है। ध्वनिगत प्रयोग, शब्दगत प्रयोग, पदगत प्रयोग, वाक्यगत प्रयोग, शैलीगत प्रयोग और अर्थगत प्रयोग जैसे उपशीर्षकों से इस अध्याय में 'नयी कहानी' की भाषा का भाषा-वैज्ञानिक, व्याकरणिक और साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त पारदर्शी और सूक्ष्म विवेचन किया गया है। सबद्ध प्रयोग की प्रत्येक दिशा को स्पष्ट करने के लिए अधिक-से-अधिक उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। 'नयी कहानी' की भाषा पर हिन्दी-आलोचना मे जहाँ एक भी अच्छे निबन्ध के नहीं लिखे जाने की शिकायत की जाती रही है ("कविता की भाषा पर पिछले दस वर्षों में एक दर्जन से अधिक अच्छे निबन्ध लिखे गये हैं, पर कहानी की भाषा पर कोई एक भी अच्छा निबन्ध मेरे देखने में नहीं आया।"—डॉ० शिवप्रसाद सिंह, 'कल्पना'—१७८, अप्रैल '६६, पृष्ठ ७२), वहाँ प्रबन्ध का यह अंश निस्सन्देह अपना मानक महत्त्व स्थापित करने वाला है।

सप्तम अध्याय 'समापिका' है, जिसमें निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए 'नयी कहानी' के विविध प्रयोगों की सार्थकता और सीमा पर विचार हुआ है।

मेरी भाषा-संबन्धी मान्यताएँ

इस कृति मे भाषा-प्रयोग के विषय में मेरी कुछ विशेष मान्यताएँ हैं। प्रथमतः 'दोनो', 'तीनो', 'चारो', 'पाँचो', 'छहो' जैसे शब्द-प्रयोग में मैंने 'ओ' को बिना अनुस्वार के लिखना शुद्ध और उचित समझा है। ये सारे शब्द सख्यावाचक समष्टिबोधक हैं, जो अनिश्चित आधिक्य-बोधक शब्दों से

सर्वथा भिन्न हैं। 'वीसों', अनेकों' में 'ओं' तद्धित-प्रत्यय है, जिससे अधिकता जाहिर होती है। यहाँ अनुस्वार इसीलिए है, पर जो समष्टि-बोधक शब्द हैं उनमें अनुस्वार का प्रयोग नहीं होना चाहिए। (द्रष्टव्य : किशोरीदास वाजपेयी : 'हिन्दी शब्दानुशासन,' प्रथमावृत्ति, पृष्ठ २०९-२१०)। द्वितीयतः 'माध्यम' के प्रयोग में किसी विभक्ति के उसके पहले लग जाने पर 'माध्यम' के बाद 'से' का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके मूल में भाषा के 'अधिकपदत्व-दोष' से बचने की सोद्देश्यता है। तृतीयतः 'विश्वास' से 'विश्वसनीय' या 'विश्वस्त' विशेषण न बनाकर 'वैश्वासिक' बनाया गया है, क्योंकि संज्ञारूप के साथ कृदन्त-प्रत्यय न लगाकर तद्धित-प्रत्यय लगाये जाने चाहिए। चतुर्थतः प्रचलित 'पुनर्रचना' जैसे शब्द के लिए 'पुनारचना' का प्रयोग किया गया है (द्रष्टव्य : ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः', सिद्धान्त-कौमुदी स्वादिसन्धिप्रकरणम् ६।३।१११)। पंचमतः 'स्वीकार करना' जैसे क्रिया-प्रयोगों की जगह कहीं-कहीं आवृत्ति से बचने और क्रियाक्षेत्र का विस्तार करने के उद्देश्य से 'स्वीकारना' जैसे प्रयोग भी किये गये हैं।

कृतज्ञता-ज्ञापन

सर्वप्रथम मैं अपने आदरणीय गुरुवर (डॉ०) रामस्वार्थ चौधरी 'अभिनव', एम० ए०, डी०लिट्० का चिर कृतज्ञ हूँ, जिनकी पुत्रवत् स्नेह-छाया में प्रेरणा-पूर्ण निर्देशन प्राप्त कर मैं यह प्रबन्ध-लेखन सम्पन्न कर सका। मैं अपने अग्रजतुल्य श्रद्धेय डॉ० शिवप्रसाद सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिनका स्नेहमय परामर्श और प्रोत्साहन मुझे सदैव दिशादान करता रहा। शब्द इस आभार का संवहन नहीं कर सकते। मैं अपने सम्मान्य प्राचार्य कपिलजी का भी अनुगृहीत हूँ, जो मुझे इस दिशा में सदैव प्रोत्साहित करते रहे। शोध-कार्य के संदर्भ में मेरे आत्मीय डॉ० रामकिशोर शर्मा, मातुल श्री गणेशप्रसाद वर्मा, सुहृद प्रो० विनोद शंकर दुबे तथा अनुज प्रो० पाण्डेय रविभूषण प्रसाद ने भी मुझे समय-समय पर लाभान्वित किया है। मैं इनका आभार स्वीकारता हूँ। मेरे छात्रों में सर्वप्रिय प्रो० शिवशंकर सिंह, श्री प्रभाप प्रसाद वर्मा (शोध-छात्र) तथा श्री अलख नारायण 'पुष्कर' ने मेरी विभिन्न सेवाएँ की हैं। मैं उन सबके लिए उनकी उत्तरोत्तर सफलता और प्रगति-प्रोन्नति की कामना करता हूँ। मैं अपने प्रतिभाशाली एवं प्रिय छात्र श्री महेश्वर अरिन्दम (षष्ठ वर्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) के स्वर्णिम भविष्य की हार्दिक शुभाशंसा करता हूँ, जिन्होंने बड़ी निष्ठा से प्रबन्ध-लेखन के सिलसिले

में मेरी सेवा-सहायता की है। मैं डॉ० युगेश्वर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, प्रो० युधिष्ठिर पाण्डेय, श्री प्रमोद शंकर श्रीवास्तव तथा श्री बैजनाथ प्रसाद सिंह को भी अलग-अलग रूप में सहायता करने के लिए धन्यवाद देता हूँ। अन्त में याद आती हैं सहधर्मिणी एवं 'सचिव-सखी' श्रीमती इन्दु 'शीतांशु', जिन्होने अपनी एम०ए० परीक्षा स्थगित कर घर के सारे दायित्व सँभाले तथा मेरे प्रबन्ध-लेखन के लिए प्रत्येक संभव सुविधा जुटायी। जो उनका है उसका भला ज्ञापन क्या हो? अलमिति!

१३ मई, १९७०.

—पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

पुनश्च :—

- इस प्रबन्ध की टंकित प्रति से आवर्त्तक और गाथा शिल्प-प्रयोगों जैसे मेरे द्वारा उद्घाटित नितान्त मौलिक कथा-प्रयोगों को कुछ विद्वानों ने अपनी शोध-कृतियों में बिना आभार जताये ही आत्मसात् कर लिया है। मैं ऐसे सिद्धहस्त व्यक्तियों को भी उनकी शोध-संबन्धी विवेकी कला के लिए साधुवाद देता हूँ।
- 'लोकभारती प्रकाशन' के भाई श्री रमेशचन्द्र जी, श्री दिनेशचन्द्र जी, एवं श्री राधेलाल चोपड़ा जी ने इस प्रबन्ध के प्रकाशन के संबन्ध में जो सुरुचि और तत्परता दिखलायी है उसके लिए मैं उनका आभार स्वीकारता हूँ।

२ अक्टूबर, १९७३

'शीतांशु'

क्रमदर्शिका

अध्याय १

'प्रयोग' : शास्त्रीय विवेचन

'प्रयोग' शब्द के विविध अर्थ

'प्रयोग' शब्द 'प्र' उपसर्ग-पूर्वक 'युज्' धातु और 'घञ्' प्रत्यय से निष्पन्न है।[1] यह एक श्लिष्ट या अनेकार्थक शब्द है। संस्कृत के 'शब्दकल्पद्रुम'[2] में इसके पाँच अर्थ, 'वाचस्पत्यम्'[3] में छह अर्थ, 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी'[4] में इक्कीस अर्थ, 'द प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी'[5] में तेईस अर्थ, हिन्दी के प्रथम प्रामाणिक कोश 'हिन्दी शब्द-सागर'[6] में बारह अर्थ तथा नवीनतम प्रामाणिक 'मानक हिन्दी-कोश'[7] में तेईस अर्थ प्राप्त होते हैं।

---

१. प्र+युज्+भावकर्म्मादौ यथायथं घञ्—स्यार राजा राधाकान्त देव बहादुर विरचित 'शब्दकल्पद्रुमः' (१९६१), तृतीय भाग, पृष्ठ २८९।

२. स्यार राजा राधाकान्त देव बहादुर : 'शब्दकल्पद्रुमः' (१९६१), तृतीय भाग, पृष्ठ २८९।

३. श्री तारानाथ झा तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य : 'वाचस्पत्यम् बृहत् संस्कृताभिधानम्', षष्ठो भाग : (१९६२ ई०), पृष्ठ ४४८५।

४. सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी', प्रथम संस्करण (१८९९ ई०), पृष्ठ ६८८।

५. पी० के० गोडे और सी० जी० कारवे : प्रिंसिपल वामन शिवराम आप्टेज 'द प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी' (परिवर्द्धित संस्करण, १९५७ ई०) खण्ड २ (ख से म), पृष्ठ ११०५।

६. बाबू श्यामसुन्दर दास (प्रधान सम्पादक) : 'हिन्दी शब्द-सागर अर्थात् हिन्दी-भाषा का एक बृहत् कोश' (१९२२ ई०); चौथा खण्ड (नंदक से कलाम्लपंचक तक) पृष्ठ २२४५।

७. रामचन्द्र वर्मा; 'मानक हिन्दी-कोश' (प्रथम संस्करण, भाग–३), पृष्ठ ६३२।

'प्रयोग' शब्द के ये विभिन्न अर्थ विश्लेषणात्मक दृष्टि से चौबीस विविध कोटियों और छायाओं के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं।

'प्रयोग' भाववाचक संज्ञा है, किन्तु आर्थर एंथोनी मैक्डोनल ने इसके व्यक्तिवाचक संज्ञा होने का भी उल्लेख किया है। इस रूप मे 'प्रयोग' एक ऋषि की अभिख्या है—'नेम ऑफ एन एनशिएंट ऋषि'[1]।

'प्रयोग' का व्युत्पत्त्यर्थ परस्पर जोड़ना, सम्बन्ध या लगाव स्थापित करना है। 'प्र' उपसर्ग का अर्थ 'प्रकृष्टता-पूर्वक' और 'योग' का अर्थ 'जोड़ना' है। संस्कृत मे वराहमिहिर ने इस अर्थ मे 'प्रयोग' का व्यवहार किया है। परस्पर जोड़ने के अतिरिक्त 'प्रयोग' का अर्थ शब्दों के सन्दर्भ में अतिरिक्त योग अथवा परिवर्द्धन भी है।[2] यह अर्थच्छाया अँगरेजी के 'ऐडिंग' के सन्निकट है।

'प्रयोग' का लोक-प्रचलित सामान्य अर्थ इस्तेमाल या व्यवहार है। यहाँ 'प्रयोग' किसी स्थूल या मूर्त और सूक्ष्म या अमूर्त वस्तु को आवश्यकता और अभ्यासवश काम मे लाने का बोधक है। जैसे—

(क) अब परिवार-नियोजन की सामग्री का बहुत प्रयोग होने लगा है।

(ख) सीमा-प्रदेश पर हुए आक्रमणों के बाद भारत भी बल का प्रयोग करने लगा है।

'प्रयोग' की यह लोक-प्रचलित अर्थवत्ता अँगरेजी 'यूसेज' के सामान्य अर्थ—'मैनर ऑव यूजिंग ऑर बीइंग यूज्ड'[3] के समकक्ष है।

'प्रयोग' अपने वैज्ञानिक अर्थ मे सिद्धान्त का प्रतिकूलार्थ, प्रतिलोम है—'तदत्रभवानिम मा च शास्त्रे प्रयोगे च विमृशतु'।[4] इसके क्रियापरक अर्थ चार विभिन्न छायाओं वाले हैं। प्रथमत. 'प्रयोग' का अर्थ व्यवस्थित, क्रमिक और ठीक ढंग से काम करने की विधि या क्रिया है।[5] यथा—वह नीले लिटमस को

---

१ आर्थर एंथोनी मैक्डोनल : 'ए प्रैक्टिकल संस्कृत डिक्शनरी' (ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, १९६५ ई०), पृष्ठ १८०।

२. सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी', पृष्ठ ६८८।

३ 'द ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी' (क्लारेन्डान प्रेस), वाल्यूम-११ (टी से यू), पृष्ठ ४६६-४६७।

४. कालिदास, 'मालविकाग्निमित्र', १।

५. 'द प्रॉसेस ऑव प्रैक्टिस ऑव कण्डक्टिंग सच ऑपरेशन्स, एक्सपेरिमेन्टेशन'—

लाल करने का प्रयोग कर रहा है। द्वितीयतः 'प्रयोग' का अर्थ कोई नयी बात ढूंढ़ निकालने के लिए की जाने वाली परीक्षणात्मक क्रिया है।[1] यथा—प्राध्यापक दिन-रात अपनी प्रयोगशाला में प्रयोग करता रहता है। तृतीयतः 'प्रयोग' का अर्थ किसी तथ्य या काम को सिद्ध-प्रमाणित करने की क्रिया है।[2] यथा—छात्र पुस्तकीय सिद्धान्तों पर प्रयोग करते हैं। चतुर्थतः 'प्रयोग' का अर्थ किसी काम या बात की सफलता-विफलता को जानने के लिए संशय-भाव से की जाने वाली क्रिया है।[3] यथा—मंगल-ग्रह में पहुँचने के लिए वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे हैं।

'प्रयोग' का राजनीति-परक अर्थ साम, दाम, दंड और भेद नीतियों का व्यवहार है। प्राचीन भारतीय राजनीति में इस अर्थ में भी 'प्रयोग' का चलन रहा है। माघ ने 'शिशुपालवध' में रस-भावादि से गम्भीर काव्य-जैसे दुष्प्रवेश्य राज्य में सामादि उपाय की कल्पना करते हुए कविवत् पुरुषार्थ-विचार करने वाले राजाओं का वर्णन किया है। वहाँ साम आदि के लिए 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार द्रष्टव्य है।[4]

'प्रयोग' का पाँचवाँ अर्थ-बोध तांत्रिक है। इस अर्थ में 'प्रयोग' तांत्रिक उपचार के बारह साधनों के व्यवहार को कहते हैं। ये साधन क्रमशः मारण, मोहन, उच्चाटन, कीलन, विद्वेषण, काम-नाशन, स्तम्भन, वशीकरण, आकर्षण, बंदि-मोचन, काम-पूरण और वाक्-प्रसारण हैं।[5]

'प्रयोग' का आयुर्वेदिक अर्थ भी है, जो रोगी के उपचार से सम्बद्ध है।

द ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी, वाल्यूम–३ (डी से ई), ई वर्ण का पृष्ठ ४३१।

१. 'ऐन ऐक्शन ऑर ऑपरेशन अण्डरटेकन इन ऑर्डर टु डिस्कवर समथिंग अननोन'—वही।

२. 'द ऐक्शन ग्रॅव ट्राइंग एनी थिंग ऑर पुटिंग इट टु प्रूफ..' —वही।

३. 'अ टेनटेटिव प्रोसिड्युर, अ मेथॅड, सिस्टम ग्रॅव थिंग्स ऑर कोर्स ग्रॅव ऐक्शन, एडाप्टेड इन अनसर्टेन्टी ह्वेदर इट विल आन्सर द परपस्—वही।

४. 'क्षपणशयित विबुद्धाः कल्पयन्तः प्रयोगा-
नुदधिमहति राज्ये काव्यवद्दुर्विगाहे ॥'—माघ : 'शिशुपालवध', ११।६।

५. बाबू श्यामसुन्दरदास : (प्र० सं०) 'हिन्दी शब्द-सागर अर्थात् हिन्दी भाषा का एक बृहत् कोश' (१९२२ ई०); चौथा खण्ड, पृष्ठ २२४५।

यहाँ 'प्रयोग' ऐसे उपचार को कहते हैं, जो रोगी की शारीरिक स्थिति और देश-काल को देखते हुए किया जाय।[१]

'प्रयोग' की सांस्कृतिक अर्थवत्ता वैदिक युग में यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान का बोध कराने वाली है।[२] ऋग्वेद में यह शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है। वहाँ 'प्रयोग' को हेरमन ग्रासमंन ने विशेषतः (प्रयः+ग) 'त्सुम माले कामेट' (भोजनार्थ जाना) अर्थ में व्यवहृत माना है।[३] पर फ्रेडरिक गेल्डनर ने 'डेर ऋग्वेद' में जर्मन विद्वान रोथ और ग्रासमंन के इस अर्थ को महत्त्व नहीं देते हुए 'सायण भाष्य' के संज्ञामूलक अर्थ को ही स्वीकार किया है।[४] 'ऋग्वेद संहिता' में इसे 'अग्नि···स्निग्धमिव प्रयोगं प्रयोक्तव्य'[५]···कहा गया है।

'प्रयोग' की व्यावसायिक अर्थवत्ता प्राचीन भारतीय लोक-व्यवहार-परक है। इस सन्दर्भ में 'प्रयोग' का अर्थ आय-वृद्धि के लिए लोगों को ब्याज पर ऋण देने का व्यवसाय है—'प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तारः·· कोशक्षयः' तथा 'कोश-द्रव्याणा वृद्धिप्रयोग '[६] 'प्रयोग' का इस अर्थ मे व्यवहार 'मनुस्मृति' में भी हुआ है।[७]

'प्रयोग' का तर्कशास्त्रीय अर्थ परार्थानुमान-विषयक है।[८] परार्थानुमान के अवयव न्यायानुसार पाँच है, जो क्रमशः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन हैं—'प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवाः'।[९] इनमे चौथे अवयव

---

१ द्रष्टव्य : 'इंडियन विजडम' (सर मोनियर मोनियर विलियम्स), ४०२। १।

२. ऋग्वेद : १०।७।५

३. हेरमन ग्रासमंन : 'वेरतेर बुख त्सुम ऋग्वेद' (ओटोहारा सोवित्स, विस बाडन), पृष्ठ ८८०।

४ द्रष्टव्य : फ्रेडरिक गेल्डनर : 'डेर ऋग्वेद' (जर्मन अनुवाद)।

५. 'ऋग्वेद संहिता' (सं० एन० एल० सोनटक्क तथा जी० जी० काशिकर, १९४६), पृष्ठ २८९।

६. 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' : २।७।२६

७. सप्तवित्तागमाधर्म्यादायोलाभः क्रयोजयः।
प्रयोगः कर्म्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥'—'मनुस्मृतिः' १०।११५

८. द्रष्टव्य : 'न्यायदर्शन', १, १, ३२।

९. 'न्यायसूत्र' : १, १, ३२ तथा 'भारतीय दर्शन' (डॉ० राधाकृष्णन), भाग २, पृष्ठ ७४ पर उद्धृत।

'उपनय' को 'प्रयोग' कहते हैं।

'प्रयोग' के शैल्पिक अर्थ आकार, प्रकल्पना, नक्शा और ढाँचा हैं। 'मालविकाग्निमित्र' और 'राजतरंगिणी' में इस अर्थ में 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार हुआ है।[1]

'प्रयोग' का यांत्रिक अर्थ वह उपकरण-विशेष है, जिससे कोई काम होता है। भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' में 'प्रयोग' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त है।[2]

'प्रयोग' के धर्मपरक अर्थ धार्मिक ग्रन्थ, शास्त्र, पवित्र ग्रन्थ तथा पाठ सम्बन्धी सूत्र-विशेष हैं।[3] इस अर्थ में 'प्रयोग' का व्यवहार 'शिक्षा' में हुआ है।[4] 'मनुस्मृति' की पंक्ति—'चोदको हि प्रयोग वचनाद् बलवत्तरः' में भी 'प्रयोग' की यही अर्थवत्ता है।[5]

'प्रयोग' के भाषिक अर्थ उच्चारण, पाठ, भाषण, वाचन और अभिव्यक्तीकरण हैं। महर्षि पतंजलि ने 'प्रयोग' का भाषिक अर्थ में व्यवहार किया है—'लोकतोऽर्थ प्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः'।[6] 'महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः'।[7]···'शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन'।[8] 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' में भी 'प्रयोग'—भाषिक अर्थ में व्यवहृत है—(क) '···इत्यत्र गौण प्रयोगाद् अविरोधस्तद्वत्'।[9] (ख) '···विवक्षितार्थत्वाद् अर्थ प्रत्यायनार्थं प्रयोगकाले मन्त्रोच्चारणम्।'[10] (ग) '···मातरः इति बहुवचनान्तत्वेन वा प्रयोगः शब्दवृद्धिः'।[11]

---

१. द्रष्टव्य : 'कालिदास ग्रन्थावली' तथा कल्हण कृत 'राजतरंगिणी (सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी', पृष्ठ ६८८ के आधार पर)।

२. 'नयप्रयोगाविव गां जिगीषोः।'—भारवि : किरातार्जुनीयम्' : १७।३८।

३. आर्थर एंथोनी मैकडोनल : 'ए प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी' (१९५८ में पुनः प्रकाशित), पृष्ठ १८०।

४. द्रष्टव्य : पाणिनीय शिक्षा।

५. 'मनुस्मृति' पर सायणभाष्यः ५।१।८।

६. 'पातंजल महाभाष्य' : पस्पशाह्निके, तृ० खण्ड–१।

७. वही, ४ बाधकोपपत्ति वार्तिकम् ३।

८. वही, ६ ध्वनिः शब्दपक्षे सिद्धान्त वार्तिकम् ४।

९. सायणाचार्य विरचित 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' : जै० १।२।४७।

१०. वही, जै० १।२।५१।

११. वही, जै० १।२।५२।

यहाँ 'प्रयोग' ऐसे उपचार को कहते हैं, जो रोगी की शारीरिक स्थिति और देश-काल को देखते हुए किया जाय।[1]

'प्रयोग' की सांस्कृतिक अर्थवत्ता वैदिक युग में यज्ञादि कर्मों के अनुष्ठान का बोध कराने वाली है।[२] ऋग्वेद में यह शब्द एक बार प्रयुक्त हुआ है। वहाँ 'प्रयोग' को हेरमन ग्रासमैन ने विशेषत. (प्रयः+ग) 'त्सुम माले कामेंट' (भोजनार्थ जाना) अर्थ में व्यवहृत माना है।[३] पर फ्रेडरिक गेल्डनर ने 'डेर ऋग्वेद' में जर्मन विद्वान रोथ और ग्रासमैन के इस अर्थ को महत्त्व नहीं देते हुए 'सायण भाष्य' के संज्ञामूलक अर्थ को ही स्वीकार किया है।[४] 'ऋग्वेद संहिता' में इसे 'अग्नि'' स्निग्धमिव प्रयोग प्रयोक्तव्यं'[५]'' कहा गया है।

'प्रयोग' की व्यावसायिक अर्थवत्ता प्राचीन भारतीय लोक-व्यवहार-परक है। इस सन्दर्भ में 'प्रयोग' का अर्थ आय-वृद्धि के लिए लोगों को ब्याज पर ऋण देने का व्यवसाय है—'प्रतिबन्धः प्रयोगो व्यवहारोऽवस्तार '''कोशक्षय.' तथा 'कोश-द्रव्याणा वृद्धिप्रयोगः'[६] 'प्रयोग' का इस अर्थ में व्यवहार 'मनुस्मृति' में भी हुआ है।[७]

'प्रयोग' का तर्कशास्त्रीय अर्थ परार्थानुमान-विषयक है।[८] परार्थानुमान के अवयव न्यायानुसार पाँच हैं, जो क्रमश प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन है—'प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयनिगमनान्यवयवा''।[९] इनमें चौथे अवयव

---

१ द्रष्टव्य : 'इंडियन विज़डम' (सर मोनियर मोनियर विलियम्स), ४०२। १।

२. ऋग्वेद : १०।७।५

३ हेरमन ग्रासमैन : 'वेरतेर बुख त्सुम ऋग्वेद' (ओटोहारा सोवित्स, विस बाडन), पृष्ठ ८८०।

४ द्रष्टव्य : फ्रेडरिक गेल्डनर : 'डेर ऋग्वेद' (जर्मन अनुवाद)।

५ 'ऋग्वेद संहिता' (सं० एन० एल० सोनटक्क तथा जी० जी० काशिकर, १९४६), पृष्ठ २८९।

६ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' : २।७।२६

७. सप्तवित्तागमायम्र्यादायोलाभः क्रयोजयः।
प्रयोगः कर्म्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥'–'मनुस्मृतिः' १०।११५

८. द्रष्टव्य : 'न्यायदर्शन', १, १, ३२।

९. 'न्यायसूत्र' : १, १, ३२ तथा 'भारतीय दर्शन' (डॉ० राधाकृष्णन), भाग २, पृष्ठ ७४ पर उद्धृत।

'उपनय' को 'प्रयोग' कहते हैं।

'प्रयोग' के वैकल्पिक अर्थ आकार, प्रकल्पना, नक्शा और ढांचा हैं। 'मालविकाग्निमित्र' और 'राजतरंगिणी' में इस अर्थ में 'प्रयोग' शब्द का व्यवहार हुआ है।[1]

'प्रयोग' का यांत्रिक अर्थ वह उपकरण-विशेष है, जिससे कोई काम होता है। भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' में 'प्रयोग' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त है।[2]

'प्रयोग' के धर्मपरक अर्थ धार्मिक ग्रन्थ, शास्त्र, पवित्र ग्रन्थ तथा पाठ सम्बन्धी सूत्र-विशेष हैं।[3] इस अर्थ में 'प्रयोग' का व्यवहार 'शिक्षा' में हुआ है।[4] 'मनुस्मृति' की पंक्ति—'चोदको हि प्रयोग वचनाद् बलवत्तरः' में भी 'प्रयोग' की यही अर्थवत्ता है।[5]

'प्रयोग' के भाषिक अर्थ उच्चारण, पाठ, भाषण, वाचन और अभिव्यक्तीकरण हैं। महर्षि पतंजलि ने 'प्रयोग' का भाषिक अर्थ में व्यवहार किया है—'लोकतोऽर्थ प्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः'।[6] 'महान् शब्दस्य प्रयोगविषयः'।[7]...'शास्त्रपूर्वके प्रयोगेऽभ्युदयस्तत्तुल्यं वेदशब्देन'।[8] 'ऋग्वेद भाष्य भूमिका' में भी 'प्रयोग'—भाषिक अर्थ में व्यवहृत है—(क) '...इत्यत्र गौण प्रयोगाद् अविरोधस्तद्वत्'।[9] (ख) '...विवक्षितार्थत्वाद् अर्थ प्रत्यायनार्थं प्रयोगकाले मन्त्रोच्चारणम्।'[10] (ग) '...मातरः इति बहुवचनान्तत्वेन वा प्रयोगः शब्दवृद्धि.'।[11]

---

१. द्रष्टव्य : 'कालिदास ग्रन्थावली' तथा कल्हण कृत 'राजतरंगिणी (सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी', पृष्ठ ६८८ के आधार पर)।

२. 'नयप्रयोगाविव गां जिगीषोः।'—भारवि : किरातार्जुनीयम्' : १७।३८।

३. आर्थर एंथोनी मैकडोनल : 'ए प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी' (१९५८ में पुनः प्रकाशित), पृष्ठ १८०।

४. द्रष्टव्य : पाणिनीय शिक्षा।

५. 'मनुस्मृति' पर सायणभाष्यः ५।१।८।

६. 'पातंजल महाभाष्य' : पस्पशाह्निके, तृ० खण्ड–१।

७. वही, ४ व्यापकोपपत्ति वार्तिकम् ३।

८. वही, ६ ध्वनिः शब्दपक्षे सिद्धान्त वार्तिकम् ४।

९. सायणाचार्य विरचित 'ऋग्वेदभाष्यभूमिका' : जं० १।२।४७।

१०. वही, जं० १।२।५१।

११. वही, जं० १।२।५२।

'प्रयोग' की सामरिक अर्थवत्ता आयुध-प्रक्षेप की है। महर्षि व्यास के आर्ष ग्रन्थ 'महाभारत' से कालिदास के लौकिक काव्य 'रघुवंशम्' तक में अस्त्र फेंकने के अर्थ मे इसका उल्लेख है। 'रघुवंशम्' की 'प्रयोगसहार विभक्तमंत्रम्' पंक्ति स्मरणीय है।'[१]

'प्रयोग' का रंगमंचीय अर्थ रूपकादि का अभिनय, नृत्य, बाजीगरी, जादू, इन्द्रजाल आदि का प्रदर्शन है। 'मालविकाग्निमित्र' की 'देवप्रयोग प्रधान हि नाट्यशास्त्रम्'[२] 'रत्नावली' की 'नाटिका न प्रयोगतो दृष्टा'[३] तथा 'शाकुन्तलम्' की—'आपरितोषाद्विदुषा न साधुमन्ये प्रयोग विज्ञानम्' पंक्तियों से अभिनयपरक अर्थ स्पष्ट होते हैं। 'रघुवंश' मे भी—'सा प्रयोगनिपुणः प्रयोक्तृभिः'।

'सञ्जघर्ष सः मित्रसन्निधौ'' का उल्लेख हुआ है। 'प्रयोग' का एतदर्थमूलक व्यवहार अन्यान्य नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थो मे भी द्रष्टव्य है।

'प्रयोग' का व्याकरणिक अर्थ सिद्ध हो चुका रूप है, जो सूत्र के नियम का उदाहरण होता है। यहाँ सिद्ध-रूप को 'प्रयोग' और साध्य-रूप को 'प्रक्रिया' कहते हैं।[६] 'प्रयोग' की दूसरी व्याकरणिक अर्थवत्ता कर्तरि-प्रयोग, कर्मणि-प्रयोग और भावे-प्रयोग की है।[७]

'प्रयोग' का मांगलिक अर्थ अर्पित वस्तु, भेंट और उपहार है। 'हरिवंश पुराण' में 'प्रयोग' का व्यवहार इस अर्थ में हुआ है।[८]

---

१. कालिदास: 'रघुवंशम्' ५।५७ २. कालिदास : 'मालविकाग्निमित्रं' १।
३. श्री हर्ष : 'रत्नावली' १।
४. कालिदास : 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' १।२।
५. कालिदास : 'रघुवंशम् १६।३६।
६. 'ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे (परिनिष्ठित सिद्धरूपे) संवृतं। प्रक्रियादशायां (साधिकावस्थायां) तु विवृतमेव'।—'सिद्धान्तकौमुदी' (भट्टोजिदीक्षित) सूत्र १।१।६ की व्याख्या।—डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग' (प्र० सं०) : पृष्ठ ६ पर भी उद्धृत।
७. 'इंडियन ग्रामेरियन्स हैव एनुमेरेटेड थ्री पर्सनल कांसट्रक्शन्स ऑर प्रयोगाज, नेमली सबजेक्टिव (कर्तरि-प्रयोग), ऑब्जेक्टिव (कर्मणि-प्रयोग) एँड इम्पर्सनल (भावे-प्रयोग)' डॉ० हरदेव बाहरी : 'हिन्दी सेमेन्टिक्स' पृष्ठ ३६५।
८. द्रष्टव्य : 'हरिवंश पुराण' (सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी', पृष्ठ ६८८ के आधार पर)।

'प्रयोग' का काल-परक अर्थ आरम्भण या शुरुआत है—'प्रत्युत्क्रमः प्रयोगार्थः प्रत्रमः स्यादुपत्रमः'।[1]

'प्रयोग' के निदान-परक अर्थ तरकीब, युक्ति और उपाय हैं। विल्सन ने इसका इस अर्थ में व्यवहार किया।[2]

'प्रयोग' का पद्धति-परक अर्थ सामान्य रीति, एक लागू करने योग्य रीति है। बोपदेव ने 'प्रयोग' का व्यवहार पद्धति-परक अर्थ में किया है।[3]

'प्रयोग' का व्याप्ति-परक अर्थ 'उदाहरण' है। 'पचदशी'° में 'प्रयोग' उदाहरण के अर्थ में व्यवहृत है। डॉ० शंकरदेव अवतरे ने भी 'प्रयोग' के इस अर्थ का उल्लेख किया है।[4]

'प्रयोग' के कोशगत अर्थ 'परिणाम' और 'घोटक' हैं।[6] कोशों के अतिरिक्त इन अर्थों में 'प्रयोग' के व्यवहार के प्रायः प्रमाण नहीं मिलते।

'प्रयोग' के साहित्यिक अर्थ 'सम्प्रयोग' (एक्सपेरिमेन्ट) और 'प्रचलन' (यूसेज) हैं। यद्यपि अँगरेजी में 'सम्प्रयोग' और 'प्रचलन' की अर्थवत्ता साहित्यिक सीमा के बाहर तक प्रसरित-विस्तृत है, तथापि 'प्रयोग' की तेईसवी अर्थच्छाया के अन्तर्गत 'सम्प्रयोग' और 'प्रचलन' के साहित्यिक अर्थ ही

---

१. अमर सिंह : 'अमरकोश' (पं० श्री हरगोविन्द शास्त्री, सं० १६६४) पृष्ठ ४१७।

२. द्रष्टव्य : सर मोनियर मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ६८८।

३. वही, पृष्ठ ६८८ के आधार पर।

४. "स्वयमात्मेति पर्याप्तेन लोके तयोः सः।
प्रयोगो नास्त्यतः स्वत्वमात्मत्व चान्यवारकम् ॥"—'पंचदशी', ६।४३

५. 'प्रयोग' शब्द अपनी अर्थ-व्याप्ति में 'उदाहरण' शब्द का पर्याय है। संस्कृत वाङ्मय में इसका प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है।
—डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ ६।

६. (क) सर मोनियर मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी', पृष्ठ ६८८।
(ख) उमाशंकर जोशी : 'हलायुध कोशः' (शकाब्द १८६६ में प्रकाशित), पृष्ठ ४६३।
(ग) 'मानक हिन्दी-कोश' (भाग–३), पृष्ठ ६३२।

अभीष्ट हैं। 'सम्प्रयोग' का अर्थ व्यक्ति विशेष या व्यक्ति समूह द्वारा परम्परा से प्राय. परे नये भाव, नये विषय, नये चरित्र, नये मूल्य, नये शिल्प, नयी भाषा आदि का किया जाने वाला अभ्यास या व्यवहार है।[1] 'सम्प्रयोग' का क्षेत्र विचार, विषय और कला—तीनो ही है। स्थूलतः इसे वस्तु और शिल्प मे विभक्त किया जा सकता है।[2] यथा—

१—'नयी कहानी' और 'नयी कविता'—दोनो ही मे नये मूल्यो के प्रयोग हुए है।

२—'नयी कहानी' मे शिवप्रसाद सिंह ने चरित्रो के प्रयोग किये हैं।

३—'नयी कहानी' मे विषय के प्रयोग कम नही हुए है।

४—कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया' शिल्प का अनूठा प्रयोग है।

५—निर्मल वर्मा के भाषा-प्रयोग अभिनव, आकर्षक और संगीतात्मक हैं।

जागतिक दृष्टि से 'सम्प्रयोग' शब्द की अर्थवत्ता को व्यापक और सकीर्ण—दो कोटियो मे विभक्त किया जा सकता है।[3] व्यापक अर्थ मे वैसे सभी प्रयत्न, जो भाव, विचार, अनुभूति आदि को नवीनता, व्यापकता, गहनता और ताजगी से परिपूर्ण करते हैं या रूप-शिल्प को नवीन पद्धति से परिष्कृत, मार्जित करते है, 'प्रयोग' है। परन्तु संकीर्ण अर्थ मे विपरीतत. वे सारे प्रयत्न —जो रूप-शिल्प में उद्देश्यहीन, अनावश्यक अभिनवता उत्पन्न किया करते हैं

---

१. (क) 'प्रयोग' शब्द से प्रायः नये अभ्यास, नवीन प्रयास या नयी निर्माण-चेष्टा का अर्थ लिया जाता है। —नन्ददुलारे वाजपेयी : 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ६६।

(ख) जब कभी गतिरोध की स्थिति उपस्थित हो जाती है, तो इस बात की आवश्यकता होती है कि साहित्य-सरिता की दिशा में परिवर्तन किया जाय। इसके लिए गतिरोध उत्पन्न करने वाली रूढ़ियों का परित्याग कर नये प्रयोग करने की आवश्यकता होती है।

—डॉ० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खण्ड) पृष्ठ ११६।

२. वस्तु और शिल्प—दोनों के क्षेत्र में प्रयोग फलप्रद होता है। यह इतनी सरल और सीधी बात है कि इससे इन्कार करना कोरा दुराग्रह है। —सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' : 'हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य', पृष्ठ १६६।

३. डॉ० शम्भुनाथ सिंह : 'प्रयोगवाद और नयी कविता', पृष्ठ १४।

'प्रयोग' हैं।[1] 'प्रयोग' का यह अर्थ हिन्दी की प्रयोगवादी कविता के 'प्रयोग' के कारण रूढ़-सा हो गया है। पर 'प्रचलन' का क्षेत्र साहित्य का केवल अभिव्यंजना-पक्ष है। 'प्रचलन' या 'चलन' का अर्थ अभिव्यंजना की वह पद्धति है, जो साधारणतः जन-समूह अथवा निष्णात वक्ता या लेखक द्वारा प्रचलित तथा जन-स्वीकृत होने के कारण कोश, व्याकरण आदि से असम्मत होकर भी प्रतिष्ठित हो जाती है।[2] यथा—'रेणु' की भाषा में प्रयोग (प्रचलन) का भरपूर आग्रह है।

'प्रयोग' के उपरिचर्चित चौबीस अर्थों को प्रचलित और अप्रचलित दो भिन्न कोटियों में विभक्त किया जा सकता है। इनमें व्युत्पत्त्यर्थ, लोक-प्रचलित

---

१. (क) प्रयोगशीलता वस्तु की नहीं होती, उसके अभिव्यंजन की होती है।
—रमेश चन्द्र मेहरा : 'निराला का परवर्ती काव्य', पृष्ठ १४३।
(ख) प्रयोगशीलता वास्तव में शिल्प और अभिव्यंजन की वस्तु है।
—वही, पृष्ठ १४५।

२. (क) 'प्रयोग' अभिव्यंजना की वह पद्धति या रूढ़ि है, जो सामान्यतः स्वीकृत होने के कारण प्रतिष्ठित हो गयी हो, ...।
—डॉ० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खण्ड), पृष्ठ २६२।
(ख) 'यूसेज' इम्प्लाइज अ मैनर ऑव यूजिंग इस्पेशली ऑव हेबिच्युअल ऑर कस्टमरी प्रैक्टिस क्रिएटिंग अ राइट ऑर रूट इड।
—'फाउलर्स माडर्न इंगलिश यूसेज' (सेकिण्ड एडीशन) रिवाइज्ड बाइ सर अर्नेस्ट गोवर्स), पृष्ठ ६७०।
(ग) अ प्रैक्टिस, ऑर मोड ऑव एक्सप्रेशन, इस्टैब्लिश्ड बाइ जेनरल एडॉप्शन...।—जोसफ टी० शिप्ले : 'डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर' (द फिलासाफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क, १९४३), पृष्ठ ६०३।
(घ) इस्टैब्लिश्ड ऑर कस्टमरी यूज ऑर इम्प्लायमेन्ट ऑव लंग्वेज, वर्ड्स, एक्सप्रेशन्स एटसेट्रा।—'द ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' (क्लेरेण्डन प्रेस), वाल्यूम-११, टी–यू, लेटर यू, पृष्ठ ४६७।
(ङ) द वर्ड 'यूसेज' रिलेट्स टु द कस्टमरी, इम्प्लॉयमेन्ट ऑव अ वर्ड ऑर फ्रेज ऐज इस्टैब्लिश्ड बाइ मास्टर स्पीकर्स ऐण्ड राइटर्स ऐण्ड ऐज रिकॉग्नाइज्ड बाइ द नेशन। बट इट इज नॉट एसेन्शियल दैट अ यूसेज मस्ट कन्फर्म टु द प्रिंसिपल्स ऑव ग्रामर ऐण्ड लॉजिक।
—डॉ० हरदेव बाहरी : 'हिन्दी सेमेन्टिक्स', पृष्ठ २५७।

अर्थ, वैज्ञानिक अर्थ और साहित्यिक अर्थ—ये चार प्रचलित अर्थ हैं। शेष बीस अर्थ अप्रचलित हैं, जिनका उल्लेख प्राचीन संस्कृत-साहित्य अथवा शब्द-कोशों में हुआ है। नित्य-प्रति के व्यवहार में 'प्रयोग' के अर्थ की उक्त चार दराजें ही खुलती हैं। शेष दराजों की चाबियों का तो जल्द पता तक नहीं चलता। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के सन्दर्भ में 'प्रयोग' के साहित्यिक अर्थ ही अभीष्ट हैं—विचार, विषय और कला के पूर्व पक्ष-शिल्प के प्रयोगों में 'सम्प्रयोग' का अर्थ तथा भाषिक प्रयोगों में 'सम्प्रयोग' और 'प्रचलन' दोनों ही के अर्थ।

साहित्यिक 'प्रयोग' और 'प्रयोग' के प्रकार

'प्रयोग' अभिव्यक्ति का पृथक् सार्थक उद्रेक है।[1] यह मौलिक प्रतिभाशील काव्यादर्श है।[2] 'प्रयोग' पूर्वग्रहों से अधिक अनुभूति और रचनात्मक अनुभवों में विश्वास करता है। यह साहित्यिक अभिरुचि और विकास का मुख्य अंग है तथा नवीन क्रियाशीलता की सजग अभिव्यक्ति। यह परीक्षण एवं विभिन्न तथ्यों को अन्वेषित करने की विधि है।[3] विभिन्न देश-काल की सीमाओं में जिन प्रवृत्तियों की प्रेरणा से साहित्य में जाने-अनजाने रचनात्मक और आलोचनात्मक मोड़ आते हैं, वे प्रयोग' हैं और उन प्रयोगों का उसी दृष्टि से यथार्थ मूल्यांकन भी 'प्रयोग' है।[4] 'प्रयोग' साहित्य में पुनर्जागरण का संकेतक होता है।[5]

'प्रयोग' तीन दृष्टियों से दो प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है। एक दृष्टि से 'प्रयोग' की पहली कोटि सोद्देश्य 'प्रयोग' की होती है और दूसरी कोटि प्रयोग-मात्र के लिए 'प्रयोग' अथवा शौकिया 'प्रयोग' की। अर्थात् प्रथम-

---

१. डॉ० सत्येन्द्र : 'परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन' शीर्षक लेख : डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत कृत 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग', पृष्ठ १।

२. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ १८५।

३. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'प्रयोग' : 'हिन्दी साहित्य-कोश' (प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), भाग—१, पृष्ठ ४८४।

४. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग', पृष्ठ ११।

५. जे० आइजक : 'ऐन असेसमेन्ट ऑव ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी लिटरेचर', पृष्ठ १३७।

कोटिक 'प्रयोग' साधन-रूप होता है और द्वितीय-कोटिक 'प्रयोग' साध्य-रूप। शौकिया 'प्रयोग' रचनाकार की शक्ति का दुरुपयोग है। ऐसा 'प्रयोग' उत्तरदायित्वहीन होता है। इन निरुद्देश्य प्रयोगों के मूल मे अनावश्यक नवीनता उत्पन्न करने के प्रयत्न होते हैं। ऐसे ही प्रयोगो की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध प्रयोगधर्मा उपन्यासकार फिलिप टायनबी का कहना है कि "यूरोप के कुछ स्थानों मे ऐसी पुस्तकें, जिनमें वाक्य सीधे नही वल्कि ऊपर से नीचे की ओर छपे हो या जिनकी विभिन्न रंगों मे छपाई हुई हो, आज भी साहसपूर्ण तथा मनोरंजक प्रयोग के रूप में स्वीकार की जाती है।"[1] ऐसे प्रयोग प्रथमतः साहित्य के बाह्य रूप से ही सम्बन्ध रखते हैं, उसकी आत्मा से नही। द्वितीयतः, ये विद्रोह की ध्वंसात्मक प्रवृत्ति से परिचालित होते हैं, निर्माणात्मक से नही। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने इन प्रयोगो को ध्यान मे रखते हुए कभी लिखा था ......"अपने प्रति (अपनी अनुभूतियों के प्रति), काव्य के प्रति और समय और समाज के प्रति उत्तरदायित्व को भूलकर प्रयोग नही किये जा सकते। उन प्रयोगो का अर्थ होगा शून्य पर दीवाल खड़ी करना।"[2] हिन्दी कविता मे 'नकेनवाद' ने 'प्रयोग' को साध्य मानकर यही भूल की थी। २८ फरवरी, १९६६ को 'परम्परा और प्रयोग' पर इलाहाबाद के एनी बेसेंट हॉल में आयोजित गोष्ठी में डॉ० जगदीश गुप्त ने इसकी ओर बहुत स्पष्ट संकेत किया था। उन्होने कहा था कि "'नकेन' के प्रयोग को मैंने कभी महत्त्व नही दिया, क्योकि वह प्रयोग को साध्य मानता है।"[3] इसी को 'अज्ञेय' ने भी कहा है कि "प्रयोग अपने-आप में इष्ट नही है। वह साधन है और दोहरा साधन है।"[4] डॉ० नगेन्द्र भी 'प्रयोग' को स्वतन्त्र महत्त्व देने अथवा उनको साध्य मान लेने को हलकी साहसिकता-मात्र कहते हैं।[5]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जो 'प्रयोग' साधन-रूप मे किये जाते हैं, वे ही श्रेष्ठ हैं। इन दोनो प्रकारो को व्यापक प्रयोग और संकीर्ण प्रयोग भी कहते

---

१. द्रष्टव्य : फिलिप टायनबी : 'एक्सपेरिमेन्ट ऐण्ड द फ्यूचर ऑव द नॉवेल्स' शीर्षक आर्टिकिल : लंदन मैगज़िन' (मई १९५६)।

२. नंददुलारे वाजपेयी : 'प्रयोगवादी रचनाएँ', 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ ६४।

३. 'ज्ञानोदय', मई १९६६, पृष्ठ १४०।

४. सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' : 'हिन्दी-साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य', पृष्ठ १६६।

५. शिवदान सिंह चौहान : 'काव्य-धारा', 'पुस्तक-पत्रिका'–१, पृष्ठ ५३।

हैं। व्यापक प्रयोग के पीछे काम करने वाला उद्देश्य महान् होता है। वह उत्तरदायित्व-निर्वाह की भावना और प्रक्रिया से प्रेरित होता है। 'प्रयोग' और फ़ैशन के लिए होने वाला 'प्रयोग' सकीर्ण तो होता ही है, वह 'वाद' का रूप भी ग्रहण कर लेता है।[1]

दूसरी दृष्टि से 'प्रयोग' को स्वाभाविक प्रकार और विद्रोहात्मक प्रकार जैसे रूपों में देखा जा सकता है। स्वाभाविक प्रकारगत 'प्रयोग' पूर्व-उद्घाटित को ही नवीन रूपों में प्रस्तुत करता है। यहाँ वस्तु या शिल्प उद्घाटित ही होता है, किन्तु कभी उसके कोण मे और कभी उसके स्वरूप में नवीनता उत्पन्न कर दी जाती है, जिससे पहले की अपेक्षा थोड़ी भिन्नता प्रस्तुत कर उसका उपयोग कर लिया जाता है। यहाँ परिवर्त्तन भी होता है और नवीनता भी आती है। परन्तु यह (प्रयोग) पूर्णत विरोधात्मक न होकर किंचित् विकासात्मक होता है। इस प्रकार के 'प्रयोग' मे निहित मनुष्य की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति अवरेख्य है। वस्तुत हम पुराने को चाहते हैं कि वह किसी-न-किसी रूप में नया प्रतीत हो। 'प्रयोग' की इस प्रक्रिया मे कभी हम पूर्व-उद्घाटित वस्तु, शिल्प का सकोचन करते हैं और कभी प्रसारण। कभी उसकी केंचुल उतार लेते हैं और कभी उसपर ओप चढ़ा देते है। 'प्रयोग' का विद्रोहात्मक प्रकार पूर्ववर्तिता के सर्वथा विरुद्ध होता है। प्रतिनियात्मक होने के कारण यह नख-शिख अभिनव होता है। अधिकाश 'प्रयोग' ऐसे ही होते हैं। 'प्रयोग' का पूर्ण स्वरूप इसी प्रकार मे पुष्ट होता है। यहाँ पूर्ववर्ती परम्परा पर 'प्रयोग' को विजय मिलती है और 'प्रयोग' अपनी अस्मिता सिद्ध करने में सफल हो पाता है।[2] अतः इस मान्यता से सहमत नहीं हुआ जा सकता कि प्रयोग में नया आविष्कार करने का प्रश्न नहीं उठता। परिचित वस्तुओ मे सन्निहित सम्भावनाओ का उद्घाटन करना ही प्रयोग का उद्देश्य है।[3] जब हम परम्परा के निर्जीव अंशों को तोड़ने की बात करते हैं और प्रयोग द्वारा नयी सर्जनात्मकता का उपस्थापन करते हैं, तब इसमें यह बात तो बड़ी स्पष्ट हो जाती

---

१. द्रष्टव्य : डॉ० शम्भुनाथ सिंह : 'प्रयोगवाद और नयी कविता', पृष्ठ ३५-३६।

२. जॉन लिविंग्स्टन लोवेस : 'कन्वेन्शन ऐण्ड रिवोल्ट इन पोयट्री' (लंदन, १९३८), पृष्ठ ९३।

३. डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग' : पृष्ठ ४६६।

है कि एक निश्चित स्थल पर निश्चित सन्दर्भ में प्रयोग परम्परा का विरोध करता है और निश्चिततः नयी सर्जना करता है।

तीसरी दृष्टि भाषा की दृष्टि है। यहाँ भी प्रयोग की दो कोटियाँ स्पष्ट हैं। भाषामूलक प्रयोग व्यष्टिमूलक और समष्टिमूलक होते हैं। अभिव्यंजना की विशेष पद्धति, शब्द, पद, वाक्यांश, वाक्य आदि का अभिनव विच्छित्ति के साथ प्रयोग कभी-कभी लेखक-विशेष द्वारा किया जाता है। भाषा का यही वैयक्तिक प्रयोग है। ऐसे प्रयोग भाषा की सर्जनात्मकता की दिशा में किये जाने पर भाषा को श्री-सम्पन्न और उत्कृष्ट बनाते हैं। अभिव्यंजना की यही विशिष्ट पद्धति या शब्द, वाक्यांश और वाक्य जब भिन्न-भिन्न अंचल और क्षेत्र में भिन्न-रूपता, अभिनवता से प्रयुक्त होने के कारण लेखकों द्वारा व्यवहृत होते हैं, तब भाषिक दृष्टि से समष्टिमूलक प्रयोग कहलाते हैं। सच्चे अर्थ में ये प्रयोग ही सम्प्रयोग (चलन) होते हैं। ध्यातव्य है कि प्रयोग का यह विभाजन केवल भाषिक सन्दर्भ में होता है, वस्तु और शिल्प के सन्दर्भों में प्रयोग सदा व्यष्टिमूलक होता है।

प्रयोग की प्रकृति

प्रयोग की प्रकृति स्वच्छन्दतावादी होती है। किसी प्रकार का बन्धन प्रयोग को मान्य नहीं होता। स्वच्छन्दतावादी प्रकृति के कारण ही प्रयोग की दिशाएँ उन्मुक्त रहती हैं और अनन्त सम्भावनाओं का द्वार खुला रहता है। दूसरे, प्रयोग अपनी प्रकृति से ही विरोधी होता है। उसका यह विरोध परम्परा से होता है। प्रयोग की मानसिक भूमिका ही विरोध की है। पुनरावृत्ति की अपेक्षा विद्रोह करना इसका गुण-धर्म है। तीसरे, प्रयोग की प्रकृति निरंतर नवीन होते रहने की है। प्रयोग का आधार दृष्टि की नवीनता है।[1] पर प्रयोग की अपेक्षा नवीनता की सीमा के संकुचित होने के कारण केवल नवीनता को प्रयोग की प्रकृति नहीं माना जा सकता, हाँ, नवीनता भी प्रयोग की स्वीकार्य प्रकृति है। इसी नवीनता से आश्चर्य-भाव जुड़ा है, जो प्रयोग की प्रतिष्ठा का सहगामी है। चौथे, प्रयोग की प्रकृति को प्रगति में सम्प्राप्त किया जाता है। प्रयोग प्रगतिशील स्थिति का स्थापक होता है। इसीलिए प्रयोग मानव की प्रगति का द्योतक है[2] और प्रगति प्रयोग की सहज गति है।[3] प्रयोग की यह

१. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'नयी कविता के प्रतिमान,' पृष्ठ १८७।
२. डॉ० सत्येन्द्र : 'परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन' शीर्षक प्राक्कथन, डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग, पृष्ठ ४।
३. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ १८६।

प्रगतिशील प्रकृति क्षण-प्रतिक्षण की अनुभूति का महत्त्व रखती है। पाँचवें, प्रयोग की प्रकृति प्रतिभा, संकल्प और हठ से आवरित होती है। प्रयोग स्वाभाविक प्रतिभा के उन्मेष से यदि नवरस-रंजित हो उठता है तो संकल्प और हठ से प्रेरित-पुष्ट भी होता है। प्रतिभा ही प्रयोग को आत्म-बोध के नवीन स्तरों की विकासशीलता में देखने की सामर्थ्य भी देती है। छठे, प्रयोग आस्थावादी होता है, निष्ठा उसकी प्रकृति है। उसमें मतवाद नहीं होता, आनुभूतिक आस्था ही होती है। सातवें, प्रयोग की प्रकृति सर्जना तथा संचेतना की होती है। यही प्रयोग सतरा पैदा कर उसको भिन्नता और अपनी जीवन्तता से नवीन मार्ग का निर्माण करता है। आठवें, प्रयोग की प्रकृति यथार्थधर्मा है।[1] यथार्थ की यह अनिवार्यता प्रयोग को देश-कालिक वातावरण से उत्पन्न करती है। इसीलिए प्रयोग में बाजीगरी का चमत्कार (मिरैकल) न होकर, ठोसपन का घनत्व होता है। नौवें, प्रयोग की प्रकृति सम-सामयिक होती है।[2] यद्यपि यह निरंतर घटित है, तथापि इसका सुरक्षित नीड़ सम-सामयिकता ही है। इससे निकल कर प्रयोग इतिहास के आकाश में उड़ान भरने और परम्परा बनने लग जाता है। दसवें, प्रयोग की प्रकृति प्रक्रियाई होती है। यह मूलतः प्रयत्न से बँधा होता है। प्रक्रियाई होने के कारण ही यह सत्य की प्राप्ति को कभी अन्तिम नहीं मानता। प्रक्रिया की कुछ मूलभूत विशेषताएँ हैं। प्रक्रिया परिकल्पित न होकर आयामित, अवरोधात्मक न होकर विकासात्मक, विघटनात्मक न होकर संघटनात्मक, अंशात्मक न होकर समग्रात्मक, एकांगी न होकर सर्वांगीण और कुण्ठात्मक न होकर रचनात्मक होती है। प्रक्रिया आरम्भ में अचेतना की ओर, और बाद में प्रगतिचेतना की ओर उन्मुख होती है। प्रक्रियात्मक उन्मेष वैज्ञानिक पूर्वकल्पना से तुलनीय है। यही प्रयोग और शोध-फलों का बीज-मंत्र है, जिसे स्वयं आविष्कृत करना पड़ता है।[3] इस प्रक्रिया को 'अभ्यास' भी

---

१. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'प्रयोग', 'हिन्दी साहित्य-कोश' (प्रधान सम्पादक डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), भाग—१, पृष्ठ ४८४।

२. प्रयोग का सम्बन्ध शिल्प और काव्य में भावनाओं के नवयुगीन सन्दर्भ की खोज से है।

—शमशेर बहादुर सिंह : 'आलोचना' (जुलाई-सितम्बर, '५६) पृष्ठ १३६।

३. राजेन्द्र प्रसाद सिंह : 'संजीवन कहाँ ?' पृष्ठ १४।

कहते हैं। भर्तृहरि के अनुसार प्रयोग अभ्यास के द्वारा ही सम्पुष्ट होता और प्रसिद्धि पाता है।[1]

परम्परा और प्रयोग

'परम्परा' को 'शब्दकल्पद्रुम' में परिपाटी,[2] 'वाचस्पत्यम्' मे अविच्छिन्न धारा,[3] 'हिन्दी शब्द-सागर' में चला आता हुआ सिलसिला,[4] 'मानक हिन्दी-कोश' में पूर्वजो या पुरानी पीढ़ी वालों की देखा-देखी किया जाने वाला रीति-रिवाज[5] और 'इन्साइक्लोपीडिया अव द सोशल साइन्सेज' में परिपाटी से चले आने वाले आचार-व्यवहार, संस्था, भाषा, वस्त्र, विधि, गीत, लोक-वार्ता[6] इत्यादि कहा गया है। परम्परा के अद्यतन आचार्य-व्याख्याता टी० एस० इलियट के अनुसार वे सारे स्वाभाविक कार्य, सामाजिक प्रथाएँ, धार्मिक विधियाँ, अभिवादन की प्रणालियाँ, जिनसे एक ही देश के लोगों की जातीयता का भाव प्रकट होता है तथा पारस्परिक समानता और आत्मीयता स्थापित होती है—सब परम्परा के अन्तर्गत हैं। इनमें सामाजिक विधि-निषेध का भी अन्तर्भाव है। इस प्रकार परम्परा, मान्यता, विश्वास, रीति,-प्रथा, रूढ़ि, आचार—सब एक ही वस्तु के रूपान्तर हैं।[7] गिल्बर्ट मरे ने आदर्श परम्परा की बात उठायी है, जिससे स्पष्ट होता है कि परम्परा सामान्य भी होती है (हमें अनादर्श नही कहना चाहिए)।[8] जन-साधारण में भी 'परम्परा'

---

१. भर्तृहरि : वाक्यपदीय १।३६।
२. स्यार राजा राधाकान्त देव बहादुर कृत 'शब्दकल्पद्रुम' (१९६१), तृतीय भाग, पृष्ठ ५२-५३।
३. श्री तारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य : 'वाचस्पत्यम् वृहत् संस्कृताभिधानम्' (१९६२), पृष्ठ ४२३८।
४. बाबू श्यामसुन्दरदास (प्रधान सम्पादक) : 'हिन्दी शब्द-सागर' (१९२२) चौथा खंड, पृष्ठ १९८२ से १९८३ तक।
५. रामचन्द्र वर्मा : 'मानक हिन्दी-कोश' (प्रथम संस्करण), भाग ३, पृष्ठ ३९५।
६. 'इनसायक्लोपीडिया ग्रॅव द सोशल साइंसेज़' (वाल्यूम–१५), पृष्ठ ६३।
७. टी० एस० इलियट : 'पोइंट्स ग्रॅव विउ' (फेबर ऍंड फ़ेबर, लंडन, तृतीय संस्करण), पृष्ठ २१।
८. गिल्बर्ट मरे : 'द क्लैसिकल ट्रेडीशन इन पोयट्री', पृष्ठ ५।

प्रकट करने से रूढ़ि [आधार घटाव (—) विचार] और आदर्श अनुकरणीय परिपाटी [आधार जोड़ (+) विचार] का एक साथ बोध होता है। सामान्यतः 'परम्परा' कहने से हम अपनी प्राचीनता और अनुकरणशीलता का मौखिक व्यवहार में बोध लिया करते हैं।

वस्तुतः परम्परा की दो अर्थ-दिशाएँ हैं—गतिशील और जड़। विशेषतः चिन्तनशील परम्परा ही विचारकों द्वारा परम्परा-रूप में स्वीकृत है। जड़ परम्परा तो रूढ़ि है।[1] यह परम्परा का ह्रासोन्मुख पक्ष है। परम्परा में यह अन्तर्विरोध द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त के कारण है।[2] पर ये दोनों समानान्तर रेखाएँ न होकर परस्पर मिश्रित हैं, क्योंकि कभी जो चिन्तनशील परम्परा थी, उसका भी बहुभाग आज रूढ़ हो जा सकता है। जहाँ जो संशोधन सम्भव है यह संशोधन तात्कालिकता के कारण तब तक परम्परा नहीं बन सकता जब तक वह कुछ काल तक आवृत्त नहीं हो जाए। सामान्यतः लगता है कि निस्सीम समय को एक तारतम्य से देखने की दृष्टि परम्परा नहीं, अपितु अनन्त गतिशील कालचक्र है। परम्परा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अतीत से जुड़ा है, पर काल-चक्र का सम्बन्ध त्रिकाल से। क्या परम्परा और कालचक्र को एक माना जा सकता है? टी० एस० इलियट इसके पक्ष में हैं, किन्तु चिन्तन के नये आयाम ने यह स्पष्ट कर दिया है कि "परम्परा का प्रवाह या विकास-क्रम जैसी धारणा महज एक भ्रान्ति से अधिक कुछ नहीं होती।"[3] यह "एक निराधार प्रतीति है—या एक ऐसी स्वीकृति है, जिसका जन्म उस सामन्ती सभ्यता में हुआ जिसने ययाति को निर्द्वन्द्व होकर बेटे का यौवन भोगने दिया।"[4]

परम्परा और प्रयोग किसी भी सर्जनात्मक आचरण की प्रक्रिया हैं,[5] परन्तु इन दोनों में निश्चित अन्तर है। परम्परा की दृष्टि अतीत की ओर होती है, पर प्रयोग की भविष्य की ओर।[6] परम्परा लीक पीटने का आश्रय लेकर

---

१. अमृत राय : 'परम्परा और प्रयोग' : 'आलोचना', 'स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक' (भाग–१), पृष्ठ २१-३०।
२. डॉ० शम्भुनाथ सिंह : 'प्रयोगवाद और नयी कविता', पृष्ठ १४।
३. डॉ० श्याम परमार : अकविता और कला-सन्दर्भ (प्रथम सं०, '६८), पृष्ठ ४४।
४. वही, पृष्ठ ४४-४५।
५. 'ज्ञानोदय' (मई १९६६)', पृष्ठ १३१-१३४।
६. डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग', वक्तव्य, पृष्ठ क।

रचनात्मक निर्माण की ओर प्रवृत्त करती है, पर प्रयोग चेतना के नवीन स्तरों का अनुसन्धान कर अभिव्यक्ति के लिए नये-नये मार्गों का उद्घाटन करता है।[1] परम्परा आवृत्ति में निवासती है, पर प्रयोग अनावृत्ति में बमता है। प्रयोग और परम्परा में वही अन्तर है, जो विन्दु और रेखा में। विन्दु एक प्रकार से प्रयोग है, परम्परा रेखा है।[2] परम्परा अनुशासन है, पर प्रयोग मुक्ति।[3] परम्परा एकरस होती है, पर प्रयोग भिन्नरस। परम्परा का सम्बन्ध संस्कृति से है, पर प्रयोग का सभ्यता से। परम्परा वर्तमान में पुनर्निर्मित होती है, पर प्रयोग प्रथम निर्मित होता है। परम्परा की यात्रा अतीत से वर्तमान के बीच होती है, पर प्रयोग की यात्रा वर्तमान से भविष्य के बीच। परम्परा गतानुगतिकता है, पर प्रयोग मौलिकता। परम्परा भावुकता की अपेक्षा रखती है, प्रयोग मूल संवेदना की अपेक्षा करता है। परम्परा पुरातन है, प्रयोग अभिनव। परम्परा में सहज स्वीकार्यता है, पर प्रयोग में साहसपूर्ण स्वीकार्यता; यह 'तूर-द-फ़ोर्स' (शक्ति) का चमत्कार है। परम्परा के प्रति मोह-धर्म होता है, प्रयोग के प्रति संभाव्य-धर्म। परम्परा से प्रयोग प्रायः प्रतिक्रियात्मक रूप में उत्पन्न होता है, किन्तु प्रयोग से सहजतः परम्परा बनती है। परम्परा अपनी ह्रासोन्मुखता के कारण जड़-निस्पन्द है, प्रयोग स्पन्दन-विकसनशील। परम्परा एकमुखी होती है, प्रयोग बहुमुख। परम्परा नदी की तरह निम्नगामिनी है, प्रयोग ज्वालामुखी की तरह ऊर्ध्वगामी। परम्परा का स्वभाव-धर्म शान्ति है, प्रयोग का स्वभाव-धर्म क्रान्ति। परम्परा धीरे-धीरे काई की तरह सड़ जाती है, उस पर जंग लग जाती है, वह मृत हो जाती है।[4] प्रयोग धीरे-धीरे परम्परा बन जाता है। परम्परा अलग-अलग युग के सामयिक यथार्थ को नहीं देखती, प्रयोग इस युगीन यथार्थ को देखता है। परम्परा त्याज्य सामयिक विवशता है, पर प्रयोग ग्राह्य ऐतिहासिक विवशता। परम्परा दाढ़ी की तरह बार-बार उग आती है, प्रयोग उसका सफ़ाया कर देता है। परम्परा जीवन की

---

१. डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग', वक्तव्य, पृष्ठ—क।

२. डॉ० सत्येन्द्र : 'परम्परा तथा प्रयोग का दर्शन' शीर्षक परिचयात्मक लेख, 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग', पृष्ठ १।

३. डॉ० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खंड), पृष्ठ ११६।

४. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक) 'हिन्दी साहित्य-कोश', भाग-१, (परम्परावाद : प्रभाकर माचवे), पृष्ठ ४७६।

चलित पद्धतियों और संकीर्णताओं को प्रतीकित करती है, प्रयोग जीवन की उच्चारम्भी, उन्नयी भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है।[1] गर्वोन्नत परम्परा चश्मे से देखती है, अन्वेषणात्मक प्रयोग अपनी गृद्धदृष्टि रखता है। परम्परा मे इतर के लिए स्वागत का भाव नही होता, वह तानाशाह होती है। प्रयोग समदृष्टि के आधार पर इतर के लिए प्रवेश-सह होता है। दूसरे शब्दों में यह प्रजातन्त्रात्मक है। परम्परा योग्य पिता का अयोग्य-अकर्मण्य पुत्र है,[2] प्रयोग लीक छोड कर चलने वाला अपने पाँवो पर खड़ा सपूत। परम्परा पूर्वग्रही अन्धानुकरण है, प्रयोग पूर्वग्रह-मुक्त सर्जनात्मकता। परम्परा घोंघे की तरह आकुचित-सकुचित है, प्रयोग केंचुए की तरह प्रसरणशील। परम्परा का 'इदमित्थ' होता है, प्रयोग का 'इदमित्थ' नही होता। इसीलिए परम्परा निष्प्रयत्न होती है, पर प्रयोग प्रयत्न-सह होता है। परम्परा इगलैण्ड है, प्रयोग अमेरिका।

परम्परा और प्रयोग का सम्बन्ध कारण-कार्य-सम्बन्ध है।[3] यह एक प्रकार का अनिवार्य सम्पर्क है, जो कर्तव्य-अधिकार की भाँति परस्पर जुड़ा है। इन दोनो के सामंजस्य को परस्पर पूरक माना जा सकता है। प्रयोग की प्रतिक्रियात्मक प्रेरणा परम्परा मे ही रहा करती है। इस नाते भी प्रयोग परम्परा से सयुक्त है। परम्परा और प्रयोग क्रिया-प्रतिक्रिया के रूप मे चक्रवत् घूमते है।[4] प्रयोग बीज है, परम्परा वृक्ष। परम्परा ढेर-सारी कडियो का सम्मिलित रूप—जंजीर है और प्रयोग उसकी अलग-अलग कडी। विकसनशील परम्परा अपने अद्यतन समग्र मे रूपायित होती है, प्रयोग कालाकित (डेटेड) होता है। पर ऐसी परम्परा की सारी कडियाँ भी एक जैसी नही हो पाती। इनके रग और आकार-प्रकार मे अन्तर अपेक्षित हो जाता है।

परम्परा के विभिन्न कोण है। इसे राजनीतिक, सामाजिक, सास्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, साहित्यिक जैसे विभिन्न पार्श्वों मे भी देखा-परखा जा सकता है। परम्परा के गर्व का सम्मिलित उद्घोष प्राय. जातीय परम्परा के

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा (प्रधान सम्पादक), 'हिन्दी साहित्य-कोश,' भाग–१ ('प्रयोग' : लक्ष्मीकान्त वर्मा), पृष्ठ ४८४।
२. लक्ष्मीकान्त वर्मा : 'नयी कविता के प्रतिमान', पृष्ठ १८२।
३. वही, पृष्ठ १६२।
४. डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा तथा प्रयोग', वक्तव्य, पृष्ठ–क।

पाचजन्य से होता है। इस स्वर मे सारी विभिन्नताएँ एकमेक हो जाती हैं। पर अलग-अलग क्षेत्र में ऐसा संभव है कि जिस परम्परा को अवरुद्ध कर प्रयोग हो रहे हैं उस परम्परा का तो प्रत्यक्ष विरोध हो रहा हो, परन्तु किसी अन्य क्षेत्रीय परम्परा से उसका सम्बन्ध पूर्णतः विच्छिन्न नही हो पाया हो। यह भी सही है कि परम्परा प्रायः असंगृहीत रहती है। इस कारण हम जिसे प्रयोग कहते हैं उसमे बहुत पहले की परम्परा का अंश भी कभी-कभी विद्यमान रहता है। ऐसे में प्रयोग अपनी निकटवर्ती पूर्वकालिक परम्परा मे विद्रोह करता है।

परम्परा प्रयोग के साथ तब सामंजस्य बिठा पाती है जब वह उदारमना होती है तथा प्रयोग पद्धति-बद्ध होने लगता है। प्रयोग तभी तक जीवन्त प्रयोग है जब तक उसकी कोई पद्धति-बद्धता (मैनेरिज्म) नही है और उसकी एकवत् आवृत्ति आरम्भ नही हुई है। परम्परा प्रयोग को निजता मे ढाल कर आवृत्त करने लग जाती है। वह उसकी अस्मिता निःशेष कर उसे आत्मसात् कर लेती है। परम्परा 'भृंग-कीट-न्याय' से प्रयोग को अपनाती है। जीवन्त प्रयोग यहाँ आत्म-समर्पण नही करते, पर पद्धति-बद्ध होते ही प्रयोग आत्मार्पित हो उठते हैं। जीवन्त प्रयोग निरन्तर नये होने की प्रक्रियात्मक चेष्टा है।

परम्परा प्रायः तीन प्रक्रियाओं से गुज़र कर पुष्ट होती है। इनमें पहली प्रक्रिया प्रयोग की है, दूसरी प्रवृत्ति की और तीसरी परम्परा की। प्रयोग पहली अवस्था है तो परम्परा तीसरी। परम्परा को श्रेण्य युग प्रतिपादित—समर्थित करते हैं तो प्रयोग को स्वच्छन्दतावादी युग।[1] परम्परा और प्रयोग की भिन्नता-अभिन्नता, प्रकृति-प्रवृत्ति आदि विषयक अपनी निश्चित सीमाएँ है। इसीलिए प्रयोग और परम्परा में व्यावहारिक दृष्टि से सम्पर्क, सामंजस्य और संतुलन का अभाव है।[2]

'प्रयोग' : एक अनिवार्य आवश्यकता

'प्रयोग' निश्चित रूप मे किसी भी युग की एक अनिवार्य आवश्यकता

---

१. डॉ० रामअवध द्विवेदी : 'साहित्य-रूप', पृष्ठ १२।

२. विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से परम्परा और प्रयोग का संतुलित मिश्रण ही सबसे उचित मालूम पड़ता है, किन्तु व्यवहार में इस प्रकार की संतुलित अवस्था कभी स्थापित नहीं हो सकती'। —वही, पृष्ठ १२।

है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह नितांत अनिवार्य है।[1] प्रयोग ही से परम्परा भी प्रारंभ हुई होगी। अव्यक्त की यह सृष्टि-रचना भी एक प्रयोग है। जैसे बूंद-बूंद जल-कणिकाओं से ही सागर बन जाता है और कठोर, लघु-लघु शिला-खंड पर्वत खड़ा कर देते हैं, वैसे ही विभिन्न युगीन प्रयोगों के आवृत्त होते रहने से परम्परा निर्मित हो जाती है। *अतः प्रयोग न केवल युगधर्मिता की* दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, प्रत्युत युगातीत चिरंतनता के दृष्टि-कोण से भी एक अनिवार्य अपेक्षा है। युगीन यथार्थ और प्रगतिशीलता के लिहाज से प्रयोग का आस्तित्व तो है ही, इलियट की प्रवाही परम्परा की गत्यात्मक दृष्टि से भी इसकी भवितव्यता महत्त्वपूर्ण है। जब युग युग-सन्धि के बीच से गुज़रता होता है और जीवन-मूल्यों में परिवर्तन तीव्रगामी हो जाता है तब प्रयोगी गत्वरता की अपेक्षा होती है।[2] वह युगीन अनिवार्यता बन जाती है। प्रयोग द्वारा ही साहित्य में पुनर्जीवन आता है और प्रयोग ही साहित्य को निष्ठित संस्कार देता है। जे० आइजक ने प्रयोग की इस अनि-वार्यता की स्थापना करते हुए लिखा है कि "यदि साहित्य में पुनर्जागरण (रिनेसाँ) लाना है और इस बात के संकेत मिल रहे हैं कि वह आकर रहेगा तो प्रयोग होते रहने चाहिए। बिना प्रयोग के साहित्य निर्जीव हो जाता है। बिना प्रयोग के युग मृत हो जाता है।"[3] अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रयोग की शास्त्रीय स्थापना का इससे बढ़कर प्रमाण और क्या हो सकता है कि विश्व में अद्यावधि जितने मोड़ आये हैं और भविष्य में भी जो आने वाले हैं, वे सब-के-सब प्रयोग हैं और प्रयोग ही कहलाएँगे।[4] प्रयोग कला की प्रगति एवं विकास का एकमात्र उपाय है। साहित्य को बासी होने से बचाने की यही एकमात्रता है। स्पष्ट है, प्रयोग से जो असहमत हैं, उनकी दृष्टि में किसी भी नये अनुभव के प्रति भय की भावना है। साथ ही उन्हें न्यस्त स्वार्थों की रक्षा अभीष्ट है।[5] बड़ी बात यह है कि प्रयोग वैयक्तिक प्रतिभा के उन्मेष के

---

१. डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत : 'आधुनिक हिन्दी-काव्य में परम्परा और प्रयोग', पृष्ठ ६।
२. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग', पृष्ठ ११।
३. जे० आइजक : 'ऐन असेसमेंट ऑव ट्वेंटिएथ सेन्चुरी लिटरेचर', पृष्ठ १३७।
४. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ ११।
५. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना', 'विकल्प' (कथा-साहित्य विशेषांक, '६८) पृष्ठ ४२।

लिए भी अनिवार्य है; क्योंकि वर्तमान-कालिकता में कला का जो भी नवीन स्वरूप अभिव्यक्त होता है, उसमें व्यक्ति का निजी तत्त्व प्रयोग ही उभार पाता है, परम्परा नहीं। प्रयोग रचनाकार के अन्तःकरण की मौलिक आवश्यकता है और कथाकार की मौलिकता परम्परा-प्रथित नहीं होती। यहाँ तो 'यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्त्तते' का नित्य नवीन और मौलिक सर्जन होता है।

'नयी कहानी' और 'प्रयोग'

"और इसी प्रयत्न या प्रयत्न की प्रक्रिया में लेखक कहानी या उसके रूप के साथ प्रयोग करता जाता है। भाषा, मुहावरा, अर्थ और शब्द-शक्तियाँ बदलता या उन्हें अपने युग के अनुरूप ढालता जाता है। प्रयोगशीलता ही उसके जीवन्त होने का सबसे बड़ा प्रमाण या परिणाम है।"[1] राजेन्द्र यादव के इस कथ्य के अनुरूप ही 'नयी कहानी' प्रयोग के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी है। 'नयी कहानी' की प्रकृति प्रयोग की है, प्रवृत्ति (यदि कोई हो सकती है तो) प्रयोग की है, माध्यम प्रयोग का है, साधन प्रयोग का है। यह प्रयोग ही 'नयी कहानी' के स्वरूप को ठीक-ठीक उद्घाटित करता और इसे पूर्ववर्ती कहानी से विलग करता है। हिन्दी-कहानी में प्रयोग की गति अधिक है, उसकी सीमा भी बड़ी है।[2]

'नयी कहानी' में कहानी का विन्यास ही बदल गया है। इसीलिए वह पुरानी कहानी की तरह केवल समस्या, घटना या चरित्र पर आधारित नहीं रह गयी है, प्रत्युत संवेदनात्मक प्रयोग बन गयी है।[3] हिन्दी के ही नये कहानीकार नहीं, बल्कि विश्व के कहानीकार आज की बदली स्थिति में प्रयोगधर्मा हो गये हैं।[4] प्रयोग नहीं करने के कारण ही ब्रिटेन जैसा उपन्यास-साहित्य में अग्रणी देश कहानी-साहित्य में पिछड़ गया। वहाँ कहानियाँ अनुशासन में बँध-सी गयी थीं, जिससे प्रयोग की संभावना ही निःशेष हो गयी।[5] 'नयी कहानी'

---

१. राजेन्द्र यादव : 'नयी कहानी : प्रयोग की प्रक्रिया', 'धर्मयुग' (१३ मार्च, १९६६) पृष्ठ १९।

२. राजेन्द्र अवस्थी द्वारा लिया गया कृशनचन्दर का इंटरव्यू, 'नयी कहानियाँ' (दिसम्बर, १९६४), पृष्ठ १६।

३. ममता कालिया : 'नई धारा' (फरवरी-मार्च '६६), पृष्ठ २४६।

४. इलाचन्द्र जोशी : 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १४३।

५. ममता कालिया : 'ज्ञानोदय', नवम्बर १९६४, पृष्ठ १८१।

के प्रयोग के मूल में कथाकार का आन्तर संघर्ष है, जिसको भोगता यह अभिव्यक्ति के मार्ग से गुजरता है, कथ्य और शैली की बँधी लीक को तोड़ता है और सक्रिय आत्मबोध की परितृप्ति प्राप्त करता है।[१] इन विविध रूपात्मक प्रयोगों का असली सूत्र कथ्य का ही सूत्र है। अतः मूल प्रयोग कथ्य का प्रयोग ही है, जो अन्यान्य रूपों को भी प्रयोग-सम्पन्न कर देता है।[२] वस्तुतः 'नयी कहानी' प्रयोगों की प्रक्रिया से गुजर रही है। ये सारे प्रयोग व्यापक जीवन-मूल्यों की तलाश के लिए हैं।[३]

'नयी कहानी' के विचारकों और कथाकार-विचारकों ने 'नयी कहानी' के विविध प्रयोग के विषय में दो प्रकार के विचार प्रकट किये हैं। कुछ विचारकों ने इसे परम्परा से परिवर्तित-परिवर्द्धित रूप में स्वीकारा है तो कुछ विचारकों ने परम्परा से सर्वथा विमुख अभिनव प्रयोग के रूप में देखा है। एक ओर पुरानी तकनीक में सिद्धहस्तों को ही तकनीक के नये प्रयोग करने का अधिकारी माना गया है।[४] और इनके प्रयोगधर्मी होने पर भी परम्परा से सन्दर्भ-मुक्ति नहीं ले पाने का उल्लेख किया गया है।[५] तो दूसरी ओर पिछली दोहरायी हुई, एकरस और रूढ़िधर्मा प्रवृत्ति[६] को अवरेखित किया गया है, क्योंकि इनमें पहले वालों ने कहानी के प्रयोग को या तो हवाई धरातल पर रखा था या शैली-मात्र तक सीमित कर दिया था। उन लोगों ने प्राय. पत्र, डायरी, आत्मकथा, संस्मरणों या विवरणों को ही परिवर्तित कर 'प्रयोग' नाम दे दिया था, जबकि 'नयी कहानी' ने अपने कथ्य के दबाव से कहानी के सम्पूर्ण गठन (स्ट्रक्चर) को ही बदलने का सामूहिक और क्रमबद्ध प्रयत्न प्रारम्भ किया।[७] यहाँ कहानी के परम्परा-विमुख स्वरूप को स्पष्ट करते हुए साहित्य के झूठे वेदान्तियों की 'कूटस्थमचल ध्रुवम्' चाहना पर भी व्यंग्य

---

१. श्याम परमार : 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १९०।
२. कमलेश्वर : सम्पादकीय, 'नई धारा' (फरवरी-मार्च '६६), पृष्ठ १३।
३. कमलेश्वर : 'नई धारा' (फरवरी-मार्च '६६), पृष्ठ ९६।
४. करतार सिंह दुग्गल : 'ज्ञानोदय', नवम्बर १९६४, पृष्ठ २२।
५. मधुकर गंगाधर : 'ज्ञानोदय', नवम्बर १९६४, पृष्ठ १९६।
६. अवध नारायण मुद्गल : 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १६७।
७. राजेन्द्र यादव : 'नयी कहानी : प्रयोग की प्रक्रिया', 'धर्मयुग' (१३ मार्च १९६६), पृष्ठ १९।

किया गया है।[1] आखिर वानरी अपने मृत शिशु को कब तक पेट से चिपकाये चलेगी ? 'नयी कहानी' तो अन्वेषणधर्मा कहानी है। इसने प्रयोग द्वारा ही नये रास्ते खोजे हैं। 'नयी कहानी' का कथाकार ईंटों की तरह पके हुए कथानक मे ऊबा हुआ है, 'मोज़ेक' की तरह खूबसूरत चरित से ऊबा हुआ है, 'शट्ल काक' की तरह लपकते वार्तालाप से ऊबा हुआ है। वह 'पेस्ट्री' की तरह चित्रायित शैली मे एकरस हो उठा है और 'टीकोज़ी' से ढँके वातावरण से विरक्त ! इसीलिए 'नयी कहानी' ने अभिव्यक्ति की छटपटाहट में व्यापक फलक पर तोड़-फोड़ की है और अपने नये मार्गों के अभिनव प्रयोग किये हैं।[2]

उपर्युक्त दोनों प्रकार के विचारों को देखते हुए 'नयी कहानी' के क्षेत्र में प्रयोग की अपरिहार्यता स्वयं सिद्ध हो जाती है। 'नयी कहानी' मे ऐसे प्रयोग कुछ ही हैं, जिनमे किसी-न-किसी रूप में ईषत् परम्परा जुड़ी रह गयी है, अन्यथा प्रयोग का बहुलांश परम्परा के प्रतिकूल है। यह परम्परा से ऐतिहासिक नैरन्तर्य के धरातल पर संयुक्त है, पर पहुँच (एप्रोच), निर्वाह और दृष्टि के धरातल पर सर्वथा पृथक् एक स्वतंत्र विकास है।[3] यह कहानी-साहित्य की एक अभिनव सर्जना का प्रयोग है। अतः मराठी नयी कहानी के विषय में जो विचार सुचिन्तित रूप मे व्यक्त किये गये हैं वे ही विचार हिन्दी नयी कहानी के सन्दर्भ मे भी स्वीकार किये जाने चाहिए। वस्तुतः हिन्दी के नये कहानीकार भी फॉकनर के पंजे की तरह ही कहानी पर टूटे और उन सबने उसके चौखटे को ध्वस्त कर डाला,[4] क्योंकि पुराने कहानीकारों की परम्परा के प्रति 'नयी कहानी' कभी विशेष ऋणी नही रही है। उसको तो उस परम्परा से सहयोग कम, बाधाएँ ही अधिक प्राप्त हुई हैं।

'नयी कहानी' में प्रयोग की प्रक्रिया भी विचार्य है। प्रायः आन्तर अभिव्यक्ति की विकलता को मूल्यों का संक्रमण विवृत होने के क्रम में अस्त-व्यस्त और अविन्यस्त करने लगता है। फलस्वरूप जो कहानी पहले-पहल बनकर तैयार होती है, वह आत्म-स्वीकृत या मुखर-चिन्तन-सी होने लगती है। इसमें

---

१. प्रभाकर माचवे : 'बातचीत के टुकड़े', 'ज्ञानोदय', नवम्बर १९६४, पृष्ठ १५९।

२. कथामंच : 'ज्ञानोदय', फरवरी १९६६, पृष्ठ १५।

३. 'ज्ञानोदय', फरवरी १९६६, पृष्ठ १०८।

४. चन्द्रकान्त देवताले : 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १२१।

कहानीपन विरल हो जाता है और कथाकार यह सोचकर मनःतोष करता है कि शिल्पी की आन्तर मनःस्थिति का साक्ष्य तो यह रचना है ही। कम-से-कम कथाकार की उसकी मानसिकता को स्पष्ट करने वाला एक प्रयोग तो है। इस प्रकार प्रयोग की प्राथमिक प्रक्रिया कहानीकार के मानसिक उलझाव की अभिव्यंजना-प्रक्रिया है।[1] पर, कहानीकार केवल कथाकार न होकर अपने भीतर भी रच-रचना का रूप-रंग निर्धारित करने वाला द्रष्टा, पाठक, सह-भोक्ता आदि भी होता है। इस अनुभव-बोध के क्रम में वह अपनी रचना को देखता और सँवारता है, उसकी नोक टीक कर उसे सही दिशा देना और सुविन्यस्त करने का प्रयासी होता है। इसी पुनर्रचना में कहानीकार का प्रयोग सार्थकता ग्रहण करता संप्रेष्य हो उठता है। यह प्रयोग की दूसरी स्थिति है। तीसरी स्थिति में कथाकार अपने प्रयोग को प्रयत्न के अनेकानेक स्तरों पर शाणित करता है, जिससे कथ्य को प्रभावशाली और प्रभाव को गहन बनाया जा सके। दूसरी प्रक्रिया में जो सुस्पष्टता नहीं आ सकी होती है, वह बिन्दु-नीकृत होकर यहाँ उपस्थित होने लगती है और कहानीकार अपने को परम्परा से विलग देखने लगता है। यहीं वह अन्य लोगों से हटकर अपनी बात अलग ढंग से कहने वालों की परम्परा में आ जाता है। कुल मिलाकर वह विधा के विकास की अपनी अलग परम्परा स्थापित करता है।[2]

'नयी कहानी' में प्रयोग की प्रक्रिया का एक अन्य पहलू भी है, जो प्रयोग को परिपाटी बनने या पद्धति-बद्ध (मैनेरिज्म) होने से बचाता है। ऐसा नहीं करने से कहानीकार की विकसन-शक्ति (ग्रोथ) विघटित होने लगती है। 'नयी कहानी' के प्रयोक्ता कहानीकारों में से अधिकाधिक कहानीकार प्रक्रिया की इस दृष्टि के प्रति भी सचेष्ट रहे हैं। इसीलिए जब तक एक कहानीकार अपनी कहानी में कथ्य के नवीन प्रयोग करता है और जब तक उस ओर लोगों का ध्यान जाता है तब तक दूसरे कहानीकार की दूसरी कहानी नये प्रयोग की भरपूर ताजगी लिये चली आती है।[3]

---

१. "यह कहानी की प्रारम्भिक स्थिति है कलाकार और कृति के आमने-सामने के सन्दर्भ की सीधी स्थिति ।"
—राजेन्द्र यादव : 'नयी कहानी : प्रयोगकी प्रक्रिया', धर्मयुग (१३ मार्च, १९६६), पृष्ठ १८।

२. वही, पृष्ठ १८।

३. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ५१।

'नयी कहानी' की आविर्भूति के दो कारण हैं। कभी नये कथाकारों ने किसी 'नयी कहानी' के विशेष रूप और विशेष प्रयोग से प्रभावित होकर अचेतनतः नये प्रयोग किये हैं, तो कभी अपने कथ्य के व्यक्तीकरण की विवशता से प्रयोग के रेशे उजागर किये हैं। किन्तु ऐसी दोनों ही स्थितियों में वैविध्य के रहने पर भी आनुभूतिक प्रामाणिकता और वह निस्संगता अवश्य रही है, जिसे विभेद में एकत्व (यूनिटी इन डाइवर्सिटीज़) कहा जा सकता है।

'नयी कहानी' का प्रयोग नयी कविता के प्रयोग से भी भिन्न है। नयी कविता का प्रयोग तो इस कथ्य को विवृत कर भी अस्तित्ववान् हो जाता है कि जो कहा गया है, वह बासी है, सारे उपमान मैले हो गये हैं, जैसे बासन अधिक घिसने से उसकी चमक मिट जाती है और जो कुछ नहीं कहा जा सका है वही अधिक समृद्ध तथा वास्तविक है।[1] पर 'नयी कहानी' का प्रयोग इस कथ्य में आकृत (शेप्ड) हो ही नहीं सकता, क्योंकि उसे मार्ग और गन्तव्य दोनों ही देखने पड़ते हैं। यहाँ कहानीकार अपनी अनुभूति को अधिक प्रभावशाली तरीके से कलमबन्द करने की द्वन्द्वमयी प्रक्रिया से गुज़रता है। प्रयोग इसी प्रभाव-दिशा के निर्धारण के लिए सही कोण की तलाश है। 'नयी कहानी' में प्रयोग प्रमुखतः नयी वास्तविकता के दबाव की अनुभूति से उत्पन्न है। इसी के साँचे की टटोल में नये प्रतीक, नये शिल्प, नयी फैंटेसी, नयी सांकेतिकता, नवीन बिम्ब आदि प्रायोगिक अस्तित्व में आते चलते हैं।

'नयी कहानी' के प्रयोग आशय और अभिव्यक्ति, दोनों ही दिशाओं में हुए हैं। कुल मिलाकर विचार, विषय, शिल्प और भाषा के चतुर्विध प्रयोग! शिल्प और भाषा के प्रयोग मूलतः कला-प्रयोग के विषय हैं। इस अन्वेषण के क्रम में कहानी की वैचारिक पृष्ठभूमि से कथ्य और शैली की दिशा तक एक-पर-एक खुलती गयी है। इन प्रयोगों ने जटिल वास्तविकता की संवेदना को रूप-रंग देकर कहानी को सद्यः टटकी, विशेषतः उपयोगी और समर्थतः

---

१. "अगर मैं तुमको, ललाती साँझ के नभ की····· ये उपमान मैले हो गये हैं, देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।"
—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' : 'पूर्वा' (१९६५), पृष्ठ २४४।

समृद्ध बनाया है। इसीलिए निस्संग-हृदय विचारते हुए पुरानी पीढ़ी के कथाकार भी 'नयी कहानी' के प्रयोगों के प्रति अपनी आस्था और प्रशंसात्मकता व्यक्त करते हैं।[1]

---

१. (क) "मुझे विश्वास है कि नये प्रयोगों से कहानी क्रमशः अधिक समृद्ध बनेगी और उसकी ताजगी भी कायम रहेगी।"

—चन्द्रगुप्त विद्यालंकार : 'ज्ञानोदय' (नवम्बर, '६४), पृष्ठ १४।

(ख) "जहाँ तक इन प्रयोगों और प्रयासों का सम्बन्ध है, वे अवश्य ही अभिनन्दनीय हैं और उनकी जितनी भी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।"

—मन्मथनाथ गुप्त : 'कहानी से अकहानी फिर कहानी', 'माध्यम' (जुलाई, ६५), पृष्ठ १३।

अध्याय २

'नयी कहानी' : प्रकृति-परिचय

'नयी कहानी' की आरम्भिक समय-सीमा

साहित्येतिहास विभाजक-रेखा (डिमार्केशन लाइन) के स्वतः नहीं खिंच पाने की स्थिति में भी अध्ययन-अनुशीलन और अवबोध की सुविधा के लिए काल का वर्गीकरण और निर्धारण करता है। पर हिन्दी कहानी-साहित्य के इतिहास में एक ऐसा समय आता है जब निस्तब्ध मूकता वाली स्थिति के बाद यह विभाजक-रेखा (डिमार्केशन लाइन) खुद-ब-खुद खिंचने-उभरने लगती है। कहते हैं, साहित्य या तो क्रान्ति की ज्वाला निगल कर अथवा शान्ति की सुधा पी कर प्रकट होता है। द्वितीय महायुद्ध और भारत की परतन्त्रता-समाप्ति के पश्चात् सन् १९४५ से १९४९ तक का समय कहानी-लेखन की दृष्टि से हिन्दी में घोर अनुर्वर है। यह वह समय है जब जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल और अश्क जैसी प्रतिभाएँ कुंठित होती दीख पड़ती हैं और कहानी का आकाश आपाततः नक्षत्रों से खाली हो जाता है, सूना, सपाट और उचाट! पर महायुद्धोत्तर और दास्योत्तर युग में परिस्थितियों, मूल्यों और जीवन-दृष्टियों के आकस्मिक परिवर्त्तनवश प्रायः १९५१ में हिन्दी कहानी-क्षेत्र में नये हस्ताक्षर उभरने लगते हैं और कहानी-साहित्य शक्त नवलेखन से उजागर होने लगता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सूत्रानुरूप यह समझते हुए कि साहित्य में कोई प्रवृत्ति किसी निश्चित तिथि से शुरू नहीं हुआ करती। लगभग १९५१ से प्रमुखतः उभरती प्रवृत्तियों के आधार पर हिन्दी-कहानी की एक नयी शुरुआत मानना समीचीन प्रतीत होता है। निश्चयतः हिन्दी में उत्तर शती का पहला दशक कहानी के नवोत्थान के लिए अवरेख्य और स्मर्त्तव्य है,[1] क्योंकि हिन्दी में कहानीकारों की नयी समस्या बीसवीं शती के ठीक मध्य से आरम्भ

---

१. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ २१३।

होती है।[1]

एक ओर हिन्दी-कहानी के एक उद्‌भट आलोचक ने 'नयी कहानी' के आरम्भण-विषयक प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया है कि बदली हुई स्थितियाँ और सच्चाइयाँ तो निरन्तर हिन्दी-कहानी के पाठकों के सामने आती रही हैं। अतः १६५० के बाद ही सहसा ऐसा हो गया हो, यह नहीं माना जा सकता।[2] पर यह कहना या तो अपने व्यक्तित्व का उपयोग करते हुए पनवे देना है अथवा उन तथ्यों से आँखें चुराना है, जो राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सन्दर्भों में अपने पूरे वेग के साथ '५० के बाद सहसा छा-व्याप जाते और सदियों की रूढ़िबद्धता को ध्वस्त कर बैठते हैं। दूसरी ओर शिवप्रसाद सिंह, कमलेश्वर, बच्चन सिंह, परमानन्द श्रीवास्तव जैसे कथाकारों, आलोचकों ने १६५० की ही समय-सीमा निर्धारित की है। शिवप्रसाद सिंह के अनुसार सन् १६५०-५१ के आस-पास ही ग्राम-कथा के आधुनिक रूप का आरम्भ हुआ।[3] यह ग्रामकथा 'नयी कहानी' की पहली स्थूल पर पुष्ट विशेषता थी। अतः उक्त काल-सन्दर्भ भी 'नयी कहानी' का है। कमलेश्वर के अनुसार ऐतिहासिक परिस्थितियों की बाध्यता,[4] आविर्भाव की प्रखरता,[5] कहानी के नये प्रयाण का उद्‌घोष,[6] एक नूतन उन्मेष[7] और कहानीपन के सर्वथा भोलेपन के निर्मोक से मुक्त होने के कारण[8] १६५० ही 'नयी कहानी' की आरम्भिक समय-सीमा है। यदि बच्चन सिंह

---

१. राजेन्द्र यादव : 'एक दुनिया समानान्तर', भूमिका, पृष्ठ १६।
२. उपेन्द्रनाथ अश्क : 'हिन्दी कहानियाँ और फ़ैशन' 'एकदा नैमिषारण्ये' (सुरेश और अश्क की वार्ता), पृष्ठ ७१।
३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आज की हिन्दी कहानी : प्रगति और परिमिति', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १४५।
४. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ८३।
५. वहीं, पृष्ठ १६५।
६. "इसका सीधा सम्बन्ध भी नयी कहानी के उस प्रयाण से था, जिसका उद्‌घोष सन् '५० के आस-पास हुआ था।" —वहीं, पृष्ठ ५२।
७. "स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कहानी के क्षेत्र में एक उन्मेष दिखाई पड़ा था, खास तौर से सन् '५० के आस-पास।" —वहीं, पृष्ठ ८१।
८. "यही कारण था कि सन् '५० तक कहानी एक भोली-भाली, सीधी-सादी और भली चीज बनी रही।" —वहीं, पृष्ठ ६१।

१९५१ के 'प्रतीक' में प्रकाशित 'दादी माँ' (शिवप्रसाद सिंह) को इस सन्दर्भ मे व्यातव्य बताते हुए स्थूलतः कहानियों की अभिनवता के लिए १९५० के आस-पास का समय निर्धारित करते हैं[1] तो परमानन्द श्रीवास्तव भी 'नयी कहानी' की प्रकृत आस्था के लिए अवसरवादी चेतना की समाप्ति के पश्चात् १९५० को ही उन्मेष-काल मानते है ।[2] वस्तुतः परिवर्तित देश-कालगत परिस्थितियो, इनसे सहसा प्रभावित आनुभूतिक सवेदनाओ और कथा-क्षेत्र में व्याप्त अवरोधात्मक जडता को तोड कर उभरती नयी प्रकृतियो पर विचार करते हुए १९५१ से 'नयी कहानी' की आरम्भिक समय-सीमा स्वीकारना पूर्ण युक्ति-युक्त, उचित और संगत है ।

'नयी कहानी' : नामकरण

इन्द्रनाथ मदान के अनुसार "चयन सम्पादक का, मूल्याकन नामवर सिंह का, रचनाएँ मोहन राकेश, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी आदि अनेक कहानीकारो की, धन श्रीपत राय का—सबने मिल-जुल-कर 'नयी कहानी' को जन्म दिया, इसका पालन-पोषण किया और अन्त में इसे आलोचकों से भिड़ने के लिए अकेला छोड़ दिया ।"[3] पर 'नयी कहानी' नाम की ऐसी कोई सुचिन्तित शुरुआत नही थी । फलतः 'नयी कहानी' इस स्थिति-नियति की सीमा-मात्र मे सिमट कर नही रही ।

काल की दृष्टि से सन् '५१ से आरम्भ होने वाली कहानी को ही नवीन जीवन-दृष्टि के आधार पर 'नयी कहानी' कहा जाता है । कहानी के इस नये मोड़ को 'नयी कहानी,' 'स्वातन्त्र्योत्तर कहानी,' 'आज की कहानी,' 'सचेतन कहानी,' 'समकालीन कहानी,' 'अकहानी,' 'सहज कहानी'-जैसे अनेक नामों से पुकारा गया है ।

---

१. डॉ० बच्चन सिंह : 'परम्परा का नया मोड़ : रोमांटिक यथार्थ', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ २१९ ।

२. "स्वतंत्रता-प्राप्ति के ठीक बाद प्रशिक्षित मध्यम वर्ग में अवसरवादी चेतना ही दिखाई पड़ती है, पर १९५० तक आते-आते हम अनेक कठिनाइयों और समस्याओं के होते हुए भी एक स्वाभाविक आस्था का उन्मेष देखते हैं ।" —डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव : 'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ २५९ ।

३. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ ५४ ।

इस नये मोड़ की कहानी के लिए 'नयी कहानी' का प्रयोग 'नयी कविता' नाम के वज़न पर हुआ है, जिसकी अभिहिति का श्रेय दुष्यन्त कुमार को है। उन्होंने ही 'कल्पना' में प्रकाशित अपने एक लेख में सबसे पहले 'नयी कहानी' का उल्लेख किया था।[१] 'नया साहित्य' और 'नयी कविता' की तरह ही इस कहानी के साथ 'नया' विशेषण क्यों नहीं जुड़ा, इसकी सर्वप्रथम सर्वातिशायी चिन्ता नामवर सिंह को हुई थी। नाम-विषयक उनकी यह आकुलता उनको कभी 'नयी कहानी' के नाम के अस्तित्व की प्रश्नवाचकता में दील पड़ी तो कभी आन्दोलन के अस्तित्व की, कभी नवीनता के अस्तित्व की प्रश्नवाचकता में प्रत्यक्ष हुई, तो कभी नवीनता की अस्पष्टता की, कभी कविता की अपेक्षा इसकी आनुपातिक नवीनता में अभिव्यक्त हुई तो कभी नवीनता को पुराविच्छिन्न करने की प्रयासहीनता में और कभी नवीनता की ज्वलन्त आवश्यकता को रेखांकित करने में दृष्टिगत हुई।[२]

'नयी कहानी' नाम ने 'पुरानी कहानी' जैसे नाम को कथा-चर्चा में उछाला तथा अपने अभिधान को तत्कालीन ऐतिहासिक सन्दर्भ और जीवन-दृष्टि से योजित किया। 'नयी कहानी' की यह 'अभिनवता' है क्या? नित्यानन्द तिवारी के अनुसार नवीनता आज की दृष्टि और सन्दर्भ की है[३] तो श्रीराम तिवारी के अनुसार परिवेश (सिचुएशन्स) और निरूपण (ट्रीटमेंट) की,[४] कमलेश्वर और रमेश बक्षी के अनुसार नयापन दृष्टि-सापेक्षता में है[५] तो ममता कालिया के अनुसार बात को नये ढंग से रखने की क्षमता में,[६] जैनेन्द्र

---

१. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका' (शुरू की बात), पृष्ठ ६।

२. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ १९।

३. नित्यानन्द तिवारी : 'हिन्दी कहानी की दिशा' शीर्षक लेख, 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ ११४।

४. श्रीराम तिवारी : 'वास्तविक नयी कहानियों के पाठ से शुरुआत', वही, पृष्ठ १५४।

५. (क) कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ५९।
   (ख) रमेश बक्षी : 'कथाकार की अपनी बात : आज की कहानी के सन्दर्भ में', शीर्षक लेख, 'नयी कहानी सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १०८।

६. ममता कालिया : 'कहानी नयी और आज की', 'नई धारा', फरवरी-मार्च, १९६६, पृष्ठ २४५।

के अनुसार नवता शोभाधारिता (फ़ैशन) और वर्त्तमान-कालिकता में है[1] तो विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार बाह्य आवश्यकता और कहानी की आन्तर प्रेरणा की सर्जनात्मकता में,[2] मार्कण्डेय के अनुसार यह अछूते जीवन-पहलू की वर्णनात्मकता में है[3] तो सुरेश सिन्हा के अनुसार मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक स्तरीयता में।[4] सचमुच 'नयी कहानी' में आत्मा और कलेवर दोनों ही नये हो उठे हैं।

'नयी कहानी' नाम कहानी-चर्चा में सहज रूप मे चल पड़ा, जिसका प्रयोग सुविधानुसार कहानीकारों और आलोचकों दोनों ही ने किया।[5] इस नाम के औचित्य का प्रश्न सर्वप्रथम सन् १९५६ मे अपने पूरे प्रकर्ष पर उभरा, परन्तु दिसम्बर, १९५७ के इलाहाबादी साहित्यकार-सम्मेलन तक पहुँचते-पहुँचते इस विवाद को मिटा-कर 'नयी कहानी' को अभिधान रूप में स्वीकृति दे दी गई। अब 'नयी' विशेषण नही रह कर संज्ञारूप हो गया। उक्त साहित्यकार-सम्मेलन में शिवप्रसाद सिंह, हरिशंकर परसाई और मोहन राकेश ने अपने-अपने निबन्ध-पाठ के पहले ही वाक्य मे 'नयी कहानी' नाम का प्रयोग किया था। पर 'नयी कहानी' नाम के सन्दर्भ मे विभिन्न विचारकों के अलग-अलग मन्तव्य भी द्रष्टव्य हैं। एक ओर राजकमल चौधरी इसे परम्परा का विकास मानने के कारण 'नयी कहानी' संज्ञा देना संगत नही समझते हैं,[6] इन्द्रनाथ मदान भी 'काश ! इसे यह नाम न दिया गया होता'[7] कहकर अपने दिल का मलाल निकालते हैं तो दूसरी ओर श्रीकान्त वर्मा इसके 'नयी' होने की नहीं, अपितु इसके 'नयी' नही होने की शिकायत करते हुए इस नाम का निषेध करते हैं,[8] एक ओर उपेन्द्रनाथ 'अश्क' कहानी को 'पुरानी,' 'नयी' नही कह कर कहानी के उल्लेखनीय (अच्छी-बुरी) होने की बात बताते हुए 'नयी

१. जैनेन्द्र कुमार : 'कहानी : अनुभव और शिल्प', पृष्ठ ११२।
२. डॉ० विजयेन्द्र स्नातक : 'चिन्तन के क्षण', पृष्ठ ६१।
३. मार्कण्डेय : 'हंसा जाइ अकेला', भूमिका।
४. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास', पृष्ठ ५५५।
५. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ५४।
६. 'लहर' (नयी कहानी विशेषांक), पृष्ठ २१६।
७. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ ३६।
८. श्रीकान्त वर्मा : 'नवीनता और नवीनता के प्रति आसक्ति' शीर्षक लेख, 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १५२।

कहानी' नाम का परोक्षतः अस्वीकार करते हैं[१] तो दूसरी ओर लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय 'नयी' शब्द को जीवत शक्ति, जिजीविषा, प्रगति, परिवर्तनशीलता आदि का प्रतीक मानते हुए भी 'नयी कहानी' का प्रयोग साम्प्रदायिकता और दल-बद्धता से बचने के लिए नही करना चाहते हैं,[२] एक ओर राजेन्द्र यादव जैसे कहानीकार १९५० के बाद की कहानी को 'नयी कहानी' कहना खतरे पैदा करना और भविष्य के लिए भ्रान्तियो को जन्म देना मानते हैं[३] तो दूसरी ओर सुरेश सिन्हा जैसे कथाकार 'नयी' शब्द के प्रति विरोधाग्रह नही रखते हुए भी उसके विभिन्न आयामी परिवर्तन को देखते हुए अध्ययन की स्पष्टता हेतु 'नयी कहानी' नामकरण को आपत्तिहीन कहते हैं।[४]

कहते हैं, सर्जन की प्राथमिक अनिवार्य मान्यता है नवीनता[५] और 'नयी कहानी' अपनी समग्रता मे ईमानदार सर्जनात्मक लेखन है। इसका 'नयी' शब्द मूलतः स्वतत्रता-प्राप्ति के बाद साहित्य के बदले नये तेवर, नवीन भाव-रिंगण का देने वाला है। यह नवीन मूल्यो की चेतना से सम्पन्न वाणी का द्योतक, आधुनिकता के उन्मेष से अलग अत्याधुनिकता का अर्थ-संवाहक, वहाँ भी 'अत्याधुनिकता' से व्यंजित परम्परा के बचे हुए अधिकाश का अस्वीकारक तथा नवीन दृष्टि, नवीन परिवेश और नवीन निरूपण का प्रखर स्वर-समाहारक है।[६]

'स्वातन्त्र्योत्तर कहानी' नाम से आलोचको का पहला अभिप्राय एक विभाजक रेखा खीचते हुए कहानी-क्षेत्र के नये आरम्भ को स्पष्ट करना और स्वत-

---

१ उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : 'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय', पृष्ठ ६४।

२. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व', पृष्ठ ८४।

३ राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', भूमिका, पृष्ठ ६।

४ डॉ० सुरेश सिन्हा : 'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास', पृष्ठ ५५५।

५ कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ६६।

६ "क्योंकि स्वातन्त्र्योत्तर साहित्य की वाणी ही बदल गयी है, अतः उसे नाम की भी जरूरत पड़ी और उसने आधुनिक कहे जाने वाले उस उन्मेष से अपने को अलग पाया, इसलिए 'नया' शब्द प्रचलित हुआ, जो कि आधुनिक के सन्दर्भ में अत्याधुनिक की ध्वनि देता है। पर अत्याधुनिक में परम्परा के अधिकांश के होने का आभास भी था, अतः इस शब्द को छोड़कर 'नया' शब्द ही अपनाया गया, क्योंकि उसमें दृष्टि-भेद का स्वर भी था।"—वही, पृष्ठ १५५।

त्रता-प्राप्ति की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना के आधार पर नामांकन करना है। इसका दूसरा अभिप्राय 'नयी' शब्द के कारण उठ खड़े हुए सारे खतरे, आरोप-प्रत्यारोप और 'नयी' के अस्तित्वपरक प्रश्न की सभी उलझनों से मुक्ति दिलाना है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश की राजनीतिक, आर्थिक, पारिवारिक-सामाजिक, सांस्कृतिक-धार्मिक, राष्ट्रीय-अन्तर-राष्ट्रीय आदि विभिन्न परिस्थितियों में जो आपाततः परिवर्तन हुआ उसके आधार पर हिन्दी-साहित्य की विविध विधाओं को स्वातंत्र्योत्तर कविता, स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास, स्वातंत्र्योत्तर नाटक आदि-आदि स्वातंत्र्य-पूर्वक नामों(?) से पुकारने में स्पष्टता, सुविधा और गौरव का अनुभव किया गया। इन्हीं सब कारणों से लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी' नाम को सार्थक, उचित और अपेक्षया अधिक महत्त्वपूर्ण समझा है।[1] पर यह नाम मूलतः भ्रमों की सृष्टि करता है। व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द का अर्थ स्वतन्त्रता-विगत काल है, पर हम जिस युग में हैं, वह 'स्वातंत्र्योत्तर'—'विगत स्वातंत्र्य' न होकर 'पारतन्त्र्योत्तर'—'विगत पारतंत्र्य' है। यद्यपि 'स्वातंत्र्योत्तर' को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद का अर्थ देने के लिए रूढ़ कर दिया गया है तथापि यह नामकरण युक्तियुक्त, औचित्यपूर्ण और सार्थक नहीं लगता। सच्चिदानन्द वात्स्यायन के शब्दों में "जब तक महायुद्ध चालू था, हम महायुद्धोत्तर की बात नहीं करते थे। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद ही महायुद्धोत्तर कहना उचित हुआ। आज हम स्वातंत्र्योत्तर नहीं, दास्योत्तर युग में जी रहे हैं—इसे हम पहचानें, इस पर गर्व करें, दास्य-मुक्ति का पूरा उत्तरदायित्व ओढ़ें, तभी हमारा स्वातंत्र्य-युग में वास्तविक प्रवेश होगा।"[2] इस दृष्टि से विचारने पर 'स्वातंत्र्योत्तर' शब्द भ्रामक तो है ही; साथ ही यह किसी प्रवृत्ति या विशेष भावधारा का भी उद्घाटन नहीं करता, जो दूसरा भ्रम है। 'स्वातंत्र्योत्तर कहानी' में वैचारिक धरातल पर अलग-अलग जीवन जीने वाली पुरानी पीढ़ी और नयी पीढ़ी एक साथ सिमट जाती है। इससे विशेष वैचारिक मान्यता तथा भाव और कला के विशेष प्रतिपादन-निरूपण के साथ लिखी जाने वाली 'नयी कहानी' का सम्यक् स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। स्पष्ट है कि केवल काल-सापेक्ष्य होने के कारण 'स्वातंत्र्योत्तर कहानी' का अर्थ-आयाम न तो 'नयी कहानी'

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व', पृष्ठ ५ और ८८।

२. 'दिनमान' साप्ताहिक, १२ अगस्त १९६९ का सम्पादकीय, पृष्ठ ११।

जैसा दृष्टिसापेक्ष्य तथा सटीक है और न पूर्ण यौक्तिक तथा संगत ही।

'नयी कहानी' के लिए 'आज की कहानी' नामकरण की उपयुक्तता प्रमाणित करने वाले विचारकों की दृष्टि है कि प्रत्येक युग की कहानी विगत युग की कहानी की अपेक्षा नयी होती है। अत: नयी की कोई विशेषता, स्थायिता और निश्चिति नहीं है। 'पचासोत्तरी-कहानी' के लिए इससे अधिक उपयुक्त नाम 'आज की कहानी' ही है। राजेन्द्र यादव[1] और हृषीकेश[2] ने इसी नाम का व्यवहार किया है। परमानन्द श्रीवास्तव की स्थिति दो नावों पर एक साथ पाँव रखने जैसी है। वे 'नयी कहानी' कहते भी हैं तो उसके पूर्व 'आज की' का प्रयोग अवश्य कर देते हैं। अथवा 'आज की कहानी' कहते हुए कोष्ठ में 'नयी कहानी' का संकेत कर देते हैं।[3] इस नाम के उद्देश्य का विरोधाभास यह है कि जहाँ 'नयी कहानी' की सम्भावित भ्रमोत्पादकता से सचेत करते हुए 'आज की कहानी' नाम दिया जाता है वहीं अमुक दशक की कहानी जैसा अवरकोटिक वर्गीकरण कर दूसरी भ्रान्ति पैदा कर दी जाती है।[4] दूसरे, यह 'आज की कहानी' भी प्रत्येक युग की कहानी के विगतापेक्षया 'नयी' होने की तरह ही भविष्य के प्रत्येक युग में अपनी तात्कालिकता में 'आज की कहानी' ही रहेगी। अतः यह नाम भी प्रयोज्य नहीं है।

'सचेतन कहानी' नाम के प्रवर्त्तक महीप सिंह हैं। इनके द्वारा प्रकाशित घोषणा-पत्र में इसके स्वरूप, उद्देश्यादि का निरूपण मिलता है। महीप सिंह 'सचेतन कहानी-संघ' का उद्देश्य पुराने और नये के भेदाधिकार का निषेध मानते हैं। सचेतन कहानी सक्रिय भावबोध, जीवन-स्वीकृति और निष्क्रियता-विरोध की कहानी है। यह निष्क्रियता आस्था की जड़ता के मूल में है। सचेतना जीवन जीने और जानने की दृष्टि है। यह गतिशील आधुनिकता की

---

१. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', भूमिका, पृष्ठ ६।

२. हृषीकेश : 'आज की हिन्दी कहानी, नयी प्रवृत्तियाँ', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ ७४।

३. "...हमें आज की कहानी (जिसमें नवीनता पर इतना बल है कि नयी कविता की भाँति 'नयी कहानी' की संज्ञा भी प्रचलित हो चली है) पर रुककर पृथक् रूप से विचार करने की आवश्यकता प्रतीत होती है।" —डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव : 'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ २५८।

४. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ ३३।

भी दृष्टि है। इसने सामूहिक संचेतना के फलस्वरूप कहानी के गतिरोध को तोड़ा है।[1] राजीव सक्सेना के अनुसार यह नये परिप्रेक्ष्य के रूप में तथा वीरेन्द्र कुमार गुप्त के अनुसार 'नयी कहानी' के आगे की राहों की अन्वेषिका कहानी के रूप मे मूल्यित की गयी है।[2] उपेन्द्र नाथ 'अश्क' 'सचेतन कहानी' को संवेदना, दृष्टि, शिल्प और भाषा की विभाजन-रेखाओं के आधार पर 'नयी कहानी' से पृथक् करते और प्रेमचन्दीय परम्परा मे 'नयी कहानी' के स्थान पर 'सचेतन कहानी' को ही जुड़ी देखते हैं।[3] उनके शब्दों में "ऐसी स्पष्ट विभाजन-रेखा पुरानों में और उनमें नही है, जो सातवें दशक के कथाकारों और बीच के कथाकारों के दरम्यान है।[4] पर वे सवेदना के आधार पर उन्ही सारी बातों को विस्तार देते हैं, जो प्रायः 'नयी कहानी' की परिवर्तित सवेदना के विषय मे कही जाती हैं। 'नयी कहानी' से 'सचेतन कहानी' की सवेदना का मूल अन्तर इन्होंने जिजीविषा के प्रति वितृष्णा का भाव माना है। शिल्प में उन्हे सरलता, सक्षिप्तता, आकार-लघुता, वाक्य-लघुता तथा अता-पता से परे पात्रता दृष्टिगत होती है तो भाषा का परिवर्तन भी उन्हे सचेतन कहानीकारों में ही सहसा सम्प्राप्त होता है, 'नयी कहानी' के कथाकारो मे उसका अकुर तक नही दीख पड़ता। 'सचेतन कहानी' की भाषा खड़ी, उबड़-खावड़, रोमान से परे, उर्दू शब्दों के अभिनव संयोजन से पूर्ण तथा आचलिक और अँगरेज़ी शब्दो से प्रभूततः सम्पन्न है। दृष्टि के आधार पर यह शिव और सुन्दर पर नहीं, अपितु सत्य पर टिकी है। इस सत्य की प्रकृति कटु, क्रूर, और निर्मम है।[5]

'अश्क' द्वारा परिगणित इन विशेषताओ में दृष्टि और संवेदना की विशेषताएँ 'नयी कहानी' की धारा का ही विकास हैं। शिल्प-भाषा विषयक तथ्य भी किसी अंश मे विभेदक सिद्ध नहीं हो पाते हैं। आकार-लघुता तो प्रेमचन्द की 'जुरमाना' कहानी मे भी है और वाक्यो की लघुता कहानीकारो के मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व, कथोपकथन-कौशल तथा कथ्य के सुलझाव से सबद्ध है।

---

१. 'आधार' (सचेतन कहानी विशेषांक) नवम्बर ,६४, द्रष्टव्य : *आधार भूमि*।

२. वही, पृष्ठ ५७-५६।

३. उपेन्द्रनाथ अश्क : 'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय', पृष्ठ २८२।

४. वही, पृष्ठ २८२।

५. वही, पृष्ठ २६२।

साथ ही अन्य पुरुष पात्र 'नयी कहानी' से विलग कोई गूलर का फूल बनकर नही आये हैं। भाषिक सन्दर्भ में स्मरणीय है, कि अश्क-निर्दिष्ट गद्य के अनगढ़पन को बहुत पहले लक्ष्मीनारायण लाल ने 'नयी कहानी' के गद्य का भी वैशिष्ट्य माना है।[1] इसीलिए राजेन्द्र अवस्थी 'सचेतन कहानी' को 'नयी कहानी' से विच्छिन्न नही मानते हैं[2] और इन्द्रनाथ मदान भी इसे 'नयी कहानी' से विलगाना और नामेतर अभिहिति देना सगत नही समझते हैं।[3] यही औचित्य-पूर्ण भी है।

'सचेतन कहानी' की तरह 'समकालीन कहानी,' 'समसामयिक कहानी' और 'अकहानी' जैसे नाम भी कथा-चर्चा में उछाले गये हैं। 'समकालीन कहानी' को एक ओर 'सचेतन' के अनुरूप ही 'नयी कहानी' से विच्छिन्न रूप में देखने और स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है तो दूसरी ओर उसकी वस्तुस्थिति को अनावृत्त करते हुए उसे 'नयी कहानी' से सर्वथा एकमेक सिद्ध किया गया है। देवीशंकर अवस्थी यथार्थान्वेषण के नये मुद्दे की बात कर 'समकालीन कहानी' को 'नयी कहानी' से विलगाते हैं[4] तो नामवर सिंह इसके सर्वथा अभिनव आरम्भ की उद्घोषणा करते हुए न्याय के लिए इस पर स्वतन्त्र विचार अपेक्षित मानते हैं[5] और गगा प्रसाद 'विमल' इसे 'नयी कहानी' से विच्छिन्न करते हुए 'अकहानी' नाम दे बैठते हैं। वे इसे सचेतन की प्रक्रिया न मान अचेतन की प्रक्रिया स्वीकारते हैं। उनके अनुसार 'सचेतन कहानी' की सक्रिय आस्था से परे और 'नयी कहानी' की सकेत-प्रतीक-पद्धति के प्रति आग्रहहीन 'अकहानी' मे परम्परा और मूल्य को तोडने वाली सभी

---

१ 'स्वतंत्रता के बाद की हिन्दी कहानी : उपलब्धियाँ और खामियाँ, 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ २१८।

२. "मैं नहीं समझता कि सन् साठ में आकर कहानी कहीं बदल गयी है।... सन् '६० के बाद का विकास 'नयी कहानी' का विकास है।" —'संज्ञा', छोटी-पत्रिका। —'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय' के पृष्ठ २८२-२८३ पर उद्धृत।

३. डा० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जवानी', पृष्ठ ५२।

४ डॉ० देवीशंकर अवस्थी : 'नयी कहानी पर कुछ नोट्स', 'धर्मयुग', ३० जनवरी '६६, पृष्ठ ३१।

५. डॉ० नामवर सिंह : 'नयी कहानी और एक शुरुआत', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', २४८।

प्रकार की कहानियाँ परिगणित की जा सकती हैं और अभिशप्त, दंडित, तटस्थ, अस्वीकृत तथा मौन सब प्रकार के व्यक्ति भी अलग-अलग अकहानियों में आ-छा सकते हैं।[1] वे इसका आरम्भ सन् १९६० से मानते हैं। सुधा अरोड़ा भी 'अकहानी' को 'नयी कहानी' से पूर्णतः विलग सिद्ध करती उसे अनायास बताती हुई निर्मम सम्बन्धों की निर्मम अभिव्यक्ति कहती हैं। वे 'समकालीन कहानी' नाम की अपेक्षा 'अकहानी' को ही महत्त्व देती हैं, पर वे 'अकहानी' को संज्ञा-रूप नहीं मानती।[2] दूसरी ओर कमलेश्वर 'समकालीन कहानी' या अकहानी को अपनी मूल प्रकृति में 'नयी कहानी' से सम्पृक्त कहते हैं। उनके अनुसार इसमें अतीव संयम, संक्षिप्तता और समकालीनता की माँग है।[3] दूधनाथ सिंह भी 'नयी कहानी' को आत्मना विकसित स्वीकार करते हुए सन् १९६० के पश्चात् के महत्त्वपूर्ण लेखकों की कहानियों को भी 'नयी' की कोटि में ही ग्रहण करते हैं।[4] बच्चन सिंह 'अकहानी' की विकृतियों की आलोचना करते तथा कथा-सन्दर्भ में नामों को महत्त्व न देकर कहानियों को महत्त्व देते हैं।[5] अन्ततः इन्द्रनाथ मदान कहानी के बदलते मिजाज को तो कबूल करते हैं, पर इसके प्रकृति-परिवर्तन को इतना भिन्न और विच्छिन्न नहीं समझ पाते, जिससे 'नयी कहानी' के लिए दूसरे नाम की आवश्यकता-अपेक्षा हो। उनके अनुसार 'नयी कहानी' में 'समकालीन कहानी' की प्रकृति पूर्णतः सुरक्षित है।[6] इस प्रकार 'समकालीन कहानी' या 'अकहानी' नाम न तो 'नयी कहानी' के अतिरिक्त-रूप में सार्थक है और न इसके पर्याय-रूप में ही।

'नयी कहानी' नामकरण से भिन्न 'सहज कहानी' नामकरण करते हुए इलाहाबाद से प्रकाशित 'नयी कहानियाँ' के नये सम्पादक अमृत राय की

---

१. डॉ० गंगाप्रसाद विमल : समकालीन कहानी का रचना-विधान', पृष्ठ १०३।
२. वही, पृष्ठ ६१।
३. 'अणिमा' ('सातवें दशक का कहानी-विशेषांक' ६६) पृष्ठ २६५-२६६।
४. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ३९।
५. 'नयी कहानी की भूमिका' के पचासवें पृष्ठ पर उद्धृत।
६. कहानी का मिजाज बदला है और इतना नहीं बदला है कि इसे नये नाम की आवश्यकता हो।'' समकालीन कहानी का मिजाज भी 'नयी कहानी' में मिल जाता है (द्रष्टव्य : 'पाँचवेंवाले का फ्लैट', मोहन राकेश)।
—डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ ५२।

मसीहाई उद्घोषणा कि 'नयी कहानी' के आन्दोलन की उपलब्धियों का लेखा-जोखा इतिहास अपने समय से निश्चित करेगा, लेकिन इतना तो साफ़ है कि 'नयी कहानी' की खोज में 'सहज कहानी' खो गयी''[१] सहसा ही धोखा देने वाली है। उनके अनुसार 'सहज कहानी' को नहीं पकड़ पाने के कारण ही 'नयी कहानी' की नियति कभी 'सचेतन कहानी' तो कभी 'साठोत्तरी कहानी' और कभी 'अकहानी' में भटकने की है। यह 'सहज कहानी' न तो हितोपदेश, जातक, अलिफलैला और एंडरसन की कहानियाँ हैं, और न चेखव, मोपासा, ओ० हेनरी की ही कहानियाँ। ये शरच्चन्द्र और रवीन्द्र की कहानियाँ भी नहीं है। अमृत राय 'सहज कहानी' में कथाकार की कथा-दृष्टि में मूल कथा-रस खोजते है। (जैसे डॉ० नगेन्द्र ने गुलेरी जी की 'उसने कहा था' में खोजा और प्राप्त किया !) वे 'सहज योग' की तरह ही 'सहज स्थिति' निरूपित करते और लेखक के 'विशेष' को साहित्य का 'सहज' मानते हैं। रचना की प्रेरणा के लिए भी वे सहज स्थिति को आवश्यक बताते हैं, जहाँ स्वानुभूति और परानुभूति में कोई विरोध नहीं होता—पिंड में ब्रह्म को देखना भी यही चीज़ है। यही सहज स्थिति है, पर इस सहज को पाना सरल नहीं है।''[२] (सहजै सहजै सब कहै, सहज न चीन्है कोय) अमृत राय 'सहज कहानी' के लिए परम्परा-संबद्ध सहजभूमि—सहज संवेदना की भूमि—आवश्यक मानते हैं। 'सहज कहानी' के तीसरे स्तम्भ में वे सहज के लिए सरसता को ही एकमात्र गुण न मान उसके लिए 'अच्छी,' 'प्राणवान्,' और 'सशक्त' होना भी आवश्यक समझते है। उनकी 'सहज कहानी' वह है, जो हमे ''हँसा सके, रुला सके''।[३] यह सहज कसौटी हृदयग्राहिता की है। 'सहज कहानी' अननुकरणमूलक नयेपन की समर्थिका है। 'सहज' की परिभाषा कठिन मानते हुए भी इसके प्रस्थापक आचार्य मोटे रूप में इतना ही कह सकते है कि ''सहज वह है, जिसमे आडम्बर नहीं है, बनावट नहीं है, ओढ़ी हुई पद्धति (मैनेरिज्म) या मुद्रा-दोष नहीं है, आईने के सामने खड़े होकर आत्मरति के भाव से अपने ही अंग-प्रत्यग को अलग-अलग कोणों से निहारते रहने का प्रबल मोह नहीं है, किसी का अन्धानुकरण नहीं है''।[४] यह 'सहज कहानी' किसी भी साँचे का निषेध करती, तथा लेख-

१. अमृत राय : 'सम्पादकीय', 'नयी कहानियाँ', मार्च '६८, पृष्ठ ५।
२. वही, अप्रैल '६८, पृष्ठ ६
३. वही, मई '६८, पृष्ठ ५।
४. वही, जून '६८, पृष्ठ ४।

कीय कहानी-रचना को पाठकीय चेतना से जोड़ती है। इसके प्रतिकूल नयी हवा को अपने फेफड़े मे बलात् भर लेना, नये भाव-बोध को पूरी तरह अपना लेना, सार्त्र, कामू, काफ्का, कीर्केगार्द को पढ़ नये शिल्प को करायत्त कर लेने की चिन्ता-प्रेरणा ही असहज लेखन की प्रेरणा है।[1]

इस प्रकार 'सहज कहानी' के लिखे जाने की अपेक्षा उसे बताने के क्रम में ही 'नयी कहानी' से सर्वथा अपर-अभिनव नाम की स्थापना की गयी है। इसकी समर्थिका सुधा अरोडा भी हैं, जो पहले 'अकहानी' की वकालत कर चुकी हैं। प्रस्तुत विवेचन से दो *तथ्य स्पष्ट हैं। प्रथमतः यह कि किसी भी* अच्छी कहानी के गुण ही 'सहज कहानी' के गुण हैं। द्वितीयतः इसमें अधिकांश चर्चित विशेषताएँ 'नयी कहानी' की हैं। 'नयी कहानी' कृत्रिमता, अधानुकरण की कहानी नही है। कीर्केगार्द और सार्त्र का अनुभूत अब भारत मे भी अनुभवित हो रहा है। युग-बोध की स्तरीय चेतना ही नये भाव-बोध की वायु वहा रही है। यहाँ बहुत-कुछ श्रेष्ठ और मानक है। ऐसे में 'नयी कहानी' से गुणतः भिन्न और नामतः वैशिष्ट्यपूर्ण नही होने के कारण अन्यान्य नामो की भाँति ही 'सहज कहानी' नाम भी अनुपयुक्त और अनपेक्षित है।

इन नामो के अतिरिक्त डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने 'नयी कहानी' को विभिन्न मानों के आधार पर ग्राम-कथा-नगर-कथा, पुरानी-नयी, अभिधेयात्मक-सकेतात्मक, बिम्ब-प्रधान, प्रतीक-प्रधान, मानवतावादी, भाव-प्रधान, बुद्धि-प्रधान, कल्पना-प्रधान, अनुभूति-प्रधान, बैठक की, सड़क की, फुटपाथ की, होटल की, पहाड़ की, कस्बे की, देहात की, अचल-विशेष की और अ-कहानी जैसे विभिन्न नामों से अभिहित होने का उल्लेख किया है।[2] साथ ही उन्होने भिन्न दृष्टियों के आधार पर कहानी को दी गयी इन विविध सज्ञाओ का निषेध किया है। ध्यान देने योग्य है कि जिन्हे मदान ने नाम कहा है, वे नामकरण न होकर भिन्न दृष्टियों के आधार पर पचासोत्तरी कहानी के किये गये वर्गीकरण हैं। अतः 'नयी कहानी' के अन्यान्य नामकरण के रूप में इन्हें स्वीकारना भ्रान्तिमूलक है।

विवेच्य प्रसंग में उल्लिखित विविध नामों को देखते हुए 'नयी कहानी' नाम स्वीकारना ही अधिक समीचीन है। इस नाम को सिद्ध प्रमाणित करने

---

१. अमृत राय : सम्पादकीय, 'नयी कहानियाँ', जुलाई '६८, पृष्ठ ७।
२. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी' के पृष्ठ ६६ पर 'आलोचना और साहित्य' से उद्‌धृत।

के लिए कथाकार और आलोचक द्वारा सामाजिक-वैयक्तिक संगति के अतिरिक्त व्यंग्य-विद्रूप तथा विरोधात्मकता के अतिरिक्त निषेधात्मक आरोप तक व्यक्त किये गये हैं।[1] पर 'नयी कहानी' नाम तो सार्थकता, युक्तियुक्तता, सर्वांगता, विषम-प्रविष्टता जैसे सभी कोणों से उपयुक्त है, क्योंकि इसकी नवीनता वैचारिक-सांस्कृतिक धरातल, अवबोध-दृष्टि, कथा-रचाव, चरित्र अभिव्यक्ति, अन्तर्हित सांकेतिकता, गूढ़ अर्थवत्ता और वैज्ञानिक गठन प्रभाव भी है, जिसमें नये यथार्थ को पहचानने की छटपटाहट, व्यर्थ को छाँटने की सक्रिय कसमसाहट

---

१. (क) नयी कहानी : पुरानी कहानी।

'नया' शब्द समय-सापेक्ष है, अतः इसका कोई सवाल नहीं होना चाहिए। हर चीज अपने समय में नयी होती है, फिर कहानी ही नयी क्यों ? 'नयी कहानी' ही नाम क्यों ?

गाँधी टोपी ? व्यक्ति-सापेक्ष है। अतः इसका कोई सवाल नहीं होना चाहिए। टोपी हर समय टोपी ही होती है, फिर टोपी 'गाँधी टोपी' ही क्यों ? टोपी कहिए।

प्रेमचंद-साहित्य, जैनेन्द्र-साहित्य : साहित्य हर समय साहित्य ही होता है, फिर साहित्य पर ही नाम क्यों ? चीनी कहिए।

गेलार्ड, मोल्गा, वेंगर्स, अशोका—ये सब होटल और रेस्तरां खाना ही देते हैं ''फिर यह नाम क्यों ? ढाबा ही कहिए।

मशाल, दीया, मोमबत्ती, लालटेन, गैस लैम्प और बिजली—सब रोशनी ही देते हैं। फिर यह नाम क्यों ? ज्योति ही कहिए।

पानी से पनचक्कियाँ चलती थीं, अब भी पानी से मशीनें चलती हैं, तो फिर बिजलीघर ही नाम क्यों ? पनचक्की कहिए।

—कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका' : पृष्ठ ६७।

(ख)'' कुछ लोगों की घ्राण-शक्ति बड़ी तेज़ होती है और वे दूर से ही शब्दों को सूंघ लेते हैं। सो, लोगों को 'नयी कहानी' की 'नयी' में कुछ और ही गंध मिल गयी है। उन्हें आशंका है कि 'नयी कहानी' कहने से आज के नवोदित, स्वस्थ, जीवंत कहानीकार 'नयी' के अस्वस्थ आग्रह से सृजन के महत्तर पथ से अलग हट कर बौद्धिक तृप्ति के लिए केवल अन्वेषण, प्रयोग, प्रतीक आदि के आलोचनात्मक जाल में पड़ जाएंगे। उन्हें शायद नहीं मालूम है कि 'नयी' की घबराहट में अनजाने ही वे सृजन के जिस 'महत्तर पथ' पर चलना चाहते हैं, वह 'सृजन' भी उसी डराऊ 'नयी' का ही भाई-बन्द है ?

और परिवर्तित मूल्यों के स्थापन की गरमाहट है। इसलिए 'नयी कहानी' नामकरण पर प्रसिद्ध चीनी लोककथा को घटाते हुए इसका उपहास करने का प्रयत्न[1] सर्वथा शक्तिहीन और निष्फल है। साहित्येतिहासिक दृष्टि से इसके साथ एक और बात जुड़ी है कि यह नाम 'छायावाद' या 'प्रयोगवाद' की तरह उपेक्षाभाव का शिकार नहीं है, अपितु अपने महत्त्व और प्रमुखत्व से परिचित रहने के कारण उच्चाशय भावों का द्योतक है, जिसके सामने पिछले खेमे के सारे जीवित कहानीकारों को अपने सारे अस्त्र डालकर नतग्रीव होना पड़ा है।

'नयी कहानी' और पुरानी कहानी का अन्तर

ये कथ्य और शिल्प की सीमा-रेखाएँ हैं, जहाँ स्वतन्त्रता के बाद की 'नयी कहानी' पुरानी कहानी से अपने को पूरी तरह विलग कर लेती है। पुरानी कहानी 'रचित वस्तु' (क्रिस्टलाइज्ड थिंग), 'पुरा-प्रयात्मक दुनिया' (ओल्ड-फ़ैशन वर्ल्ड), 'संचित विषय' (स्टॉक मेटेरियल), 'जीर्ण विचार' (स्टेल आइडियाज़), 'जड़ चिन्तन' (फासिलाइज्ड थिंकिंग), 'सूत्रबद्ध पात्र' (फार्मूलेटेड कैरेक्टर्स), 'घिसे हुए मूल्य एवं विषय-वस्तु' (रिपीटेड वैल्यूज ऐंड थिंग्स), 'सस्ती, फीकी (फ़ीज़िड) और नाटकीय संवेदनशीलता,' 'हाय दैया—छाप भावुकता' आदि की कहानी थी।[2] यह आनुभूतिक जड़ता और व्यर्थ व्यामोह की कहानी थी; जबकि 'नयी कहानी' में सहसा भावरिंगणात्मक स्थितियाँ (मूड सिचुएशन्स) तथा

---

१. एक राजा था। उसके पास एक बिल्ली थी। राजा ने उसका नाम रखा सिंह। रानी ने कहा—'महाराज। सिंह से श्रेष्ठ मेघ है। वह स्वर्ग तक जाता है।' राजा ने बिल्ली का नाम सिंह बदल कर मेघ रख दिया। राजा के पुत्र ने कहा—'पिताजी, मेघ से श्रेष्ठ तो वायु होती है। वह मेघ को कोसों दूर भगा देती है।' राजा को बात जँची। उसने नाम फिर बदला—वायु। तब प्रधान मंत्री ने अपनी राय रखी—'वायु को तो दीवार रोक लेती है।' राजा बोले—'ठीक बात है। इसे हम दीवार ही कहेंगे।' मंत्री ने कहा—'मगर दीवार में चूहा छेद करता है।' तो फिर इसे हम चूहा कहेंगे।'—राजा ने कहा। 'पर सरकार, चूहे को तो बिल्ली खा जाती है।' राजा उदास हो गये। बोले—'तो फिर हम इसे बिल्ली ही कहेंगे।'
—'राष्ट्र धर्म', जुलाई-अगस्त, १९६७, पृष्ठ २०।

२. अवधनारायण मुद्गल : 'कहानी के सन्दर्भ में नये नाम की आवश्यकता', 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १६३ से १६६ तक द्रष्टव्य।

के लिए कथाकार और आलोचक द्वारा सामाजिक-वैयक्तिक संगति के अतिरिक्त व्यंग्य-चित्र तथा विचारात्मकता के अतिरिक्त निषेधात्मक आक्रोश तक व्यक्त किये गये हैं।[1] पर 'नयी कहानी' नाम तो सार्थकता, युगानुरूपता, अर्थवत्ता, विषय-प्रविष्टता जैसे सभी कोणों से उपयुक्त है, क्योंकि इसकी नवीनता वैचारिक-सांस्कृतिक धरातल, आत्मबोध-दृष्टि, कथा-रचना, शिल्प अभिव्यक्ति, अन्तर्हित सांकेतिकता, गूढ़ अर्थवत्ता और केन्द्रित गहन प्रभाव की है, जिसमें नये यथार्थ को समझने की छटपटाहट, व्यर्थ को छोड़ने की सक्रिय कसमसाहट

---

१. (क) नयी कहानी : पुरानी कहानी।

'नया' शब्द समय-सापेक्ष है, अतः इसका कोई सवाल नहीं होना चाहिए। हर चीज़ अपने समय में नयी होती है, फिर कहानी ही नयी क्यों? 'नयी कहानी' ही नाम क्यों?

गांधी टोपी? व्यक्ति-सापेक्ष है। अतः इसका कोई सवाल नहीं होना चाहिए। टोपी हर समय टोपी ही होती है, फिर टोपी 'गांधी टोपी' ही क्यों? टोपा कहिए।

प्रेमचंद-साहित्य, जैनेन्द्र-साहित्य : साहित्य हर समय साहित्य ही होता है, फिर साहित्य पर ही नाम क्यों? पोथी कहिए।

गेलार्ड, मोल्गा, वेंगर्स, अशोका—ये सब होटल और रेस्तराँ खाना ही देते हैं फिर यह नाम क्यों? ढाबा ही कहिए।

मशाल, दीया, मोमबत्ती, लालटेन, गैस लैम्प और बिजली—सब रोशनी ही देते हैं। फिर यह नाम क्यों? ज्योति ही कहिए।

पानी से पनचक्कियाँ चलती थीं, अब भी पानी से मशीनें चलती हैं, तो फिर बिजलीघर ही नाम क्यों? पनचक्की कहिए।

—कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका' : पृष्ठ ६७।

(ख) "कुछ लोगों की घ्राण-शक्ति बड़ी तेज़ होती है और वे दूर से ही शब्दों को सूंघ लेते हैं। सो, लोगों को 'नयी कहानी' की 'नयी' में कुछ और ही गंध मिल गयी है। उन्हें आशंका है कि 'नयी कहानी' कहने से आज के नवोदित, स्वस्थ, जीवंत कहानीकार 'नयी' के अस्वस्थ आग्रह से सृजन के महत्तर पथ से अलग हट कर बौद्धिक तृप्ति के लिए केवल अन्वेषण, प्रयोग, प्रतीक आदि के आलोचनात्मक जाल में पड़ जाएँगे। उन्हें शायद नहीं मालूम है कि 'नयी' की घबराहट में अनजाने ही वे सृजन के जिस 'महत्तर पथ' पर चलना चाहते हैं, वह 'सृजन' भी उसी डराकू 'नयी' का ही भाई-बन्द है?

—डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ५४।

और परिवर्त्तित मूल्यों के स्थापन की गरमाहट है। इसलिए 'नयी कहानी' नामकरण पर प्रसिद्ध चीनी लोककथा को घटाते हुए इसका उपहास करने का प्रयत्न[1] सर्वथा शक्तिहीन और निष्फल है। साहित्येतिहासिक दृष्टि से इसके साथ एक और बात जुड़ी है कि यह नाम 'छायावाद' या 'प्रयोगवाद' की तरह उपेक्षाभाव का शिकार नहीं है, अपितु अपने महत्त्व और प्रभुत्व से परिचित रहने के कारण उच्चाशय भावों का द्योतक है, जिसके सामने पिछले खेमे के सारे जीवित कहानीकारों को अपने सारे अस्त्र डालकर नतग्रीव होना पड़ा है।

'नयी कहानी' और पुरानी कहानी का अन्तर

ये कथ्य और शिल्प की सीमा-रेखाएँ हैं, जहाँ स्वतन्त्रता के बाद की 'नयी कहानी' पुरानी कहानी से अपने को पूरी तरह विलग कर लेती है। पुरानी कहानी 'रचित वस्तु' (क्रिस्टलाइज्ड थिंग), 'पुरा-प्रयात्मक दुनिया' (ओल्ड-फ़ैशन वर्ल्ड), 'संचित विषय' (स्टॉक मेटेरियल), 'जीर्ण विचार' (स्टेल आइडियाज़), 'जड़ चिन्तन' (फ़ामिलाइज्ड थिंकिंग), 'सूत्रबद्ध पात्र' (फ़ार्मूलेटेड कैरैक्टर्स), 'घिसे हुए मूल्य एवं विषय-वस्तु' (रिपीटेड वैल्यूज़ ऐंड थिंग्स), 'सस्ती, फीकी (फ्रोज़िड) और नाटकीय संवेदनशीलता,' 'हाय दैया—छाप भावुकता' आदि की कहानी थी।[2] यह आनुभूतिक जड़ता और व्यर्थ व्यामोह की कहानी थी; जबकि 'नयी कहानी' में सहसा भावोद्दीपनात्मक स्थितियाँ (मूड सिचुएशन्स) तथा

---

१. एक राजा था। उसके पास एक बिल्ली थी। राजा ने उसका नाम रखा सिंह। रानी ने कहा—'महाराज। सिंह से श्रेष्ठ मेघ है। वह स्वर्ग तक जाता है।' राजा ने बिल्ली का नाम सिंह बदल कर मेघ रख दिया। राजा के पुत्र ने कहा—'पिताजी, मेघ से श्रेष्ठ तो वायु होती है। वह मेघ को कोसों दूर भगा देती है।' राजा को बात जँची। उसने नाम फिर बदला—वायु। तब प्रधान मंत्री ने अपनी राय रखी—'वायु को तो दीवार रोक लेती है।' राजा बोले—'ठीक बात है। इसे हम दीवार ही कहेंगे।' मंत्री ने कहा—'मगर दीवार में चूहा छेद करता है।' तो फिर इसे हम चूहा कहेंगे।'—राजा ने कहा। 'पर सरकार, चूहे को तो बिल्ली खा जाती है।' राजा उदास हो गये। बोले—'तो फिर हम इसे बिल्ली ही कहेंगे।'
—'राष्ट्र धर्म', जुलाई-अगस्त, १९६७, पृष्ठ २०।

२. अवधनारायण मुद्‌गल : 'कहानी के सन्दर्भ में नये नाम की आवश्यकता', 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १९३ से १९९ तक द्रष्टव्य।

विधाएँ (ऐब्सर्ड) उभरीं—अमूर्त, अतिभावात्मक तथा नवयथार्थवादी (ऐब्स-ट्रैक्ट तथा पैथेटिक और नियोरियलिस्टिक)। 'नयी कहानी' में नवीन विधाएँ उदित प्रत्यक्ष हुईं—साकार, बाह्य तथा मानव-सापेक्ष। इनमें यथार्थ दृष्टि (फर्स्ट व्यू), संगति (सेटिंग), ध्वनि-भंगिमा (टोन), जगत्-चेतना (वर्ल्ड व्यू), परिवेशगत अनुषंग (एक्सटेंशन और ऐसोसिएशन) और समग्र वर्ण-चेतना (इन्टीग्रेशन विद कम्पोजिट कलर्स) जैसे तत्त्व भी आये, जो पुरानी कहानी में नहीं थे। पुरानी कहानी विस्तार से सघनता की ओर गतिशील थी; 'नयी कहानी' एक से अनेक की ओर, बिन्दु से विराट की ओर और सघनता से प्रसार की ओर गतिशील है। पुरानी कहानी वर्तमान में जीकर अतीत को देखती थी, 'नयी कहानी' वर्तमान में जीकर वर्तमान को देखती है। पुरानी कहानी की प्रकृति रूढ़िधर्मा थी, 'नयी कहानी' की प्रकृति प्रयोगधर्मा है। पुरानी कहानी में भाषा की गलदश्रु-भावुकता थी, 'नयी कहानी' भावुकता-विहीन भाषिक प्रयोग की कहानी है। पुरानी कहानी मनुष्य, जीवन, समाज, इतिहास और व्यक्तित्व की व्याख्या प्रस्तुत करने वाली कहानी थी, जो एक निर्वचन (इंटरप्रेटेशन) देती थी, पर 'नयी कहानी' मनुष्य, उसके जीवन, समाज और ऐतिहासिक सन्दर्भ को भोगती-अनुभूतती है। पुरानी कहानी बनायी जाती थी और 'नयी कहानी' कथाकार के हाथों घटित होती है। पुरानी कहानी जोड़-बटोर कर लिखी जाती थी, 'नयी कहानी' ताजा अनुभूति (फर्स्ट हैंड एक्सपीरियंस) लेकर चलती है। "पहले का कहानीकार कहता था—यह आदमी सुखी लग रहा है। इसे सुखी दिखाया जा सकता है।...यह आदमी बीमार लग रहा है। इसे बीमार बनाया जा सकता है। आज का कहानीकार कहता है—यह आदमी सुखी है; यह आदमी बीमार है।"[1] पुरानी कहानी और 'नयी कहानी' में भाषा के माध्यम परिवेश की ऐतिहासिकता की सचाई या, परिवेश की ऐतिहासिकता के माध्यम-वर्ण्य सत्य की प्रामाणिकता की ग्रहणशीलता के आग्रह का और इस आग्रह के माध्यम कथा-संयोजन की वस्तु-निष्ठा का अन्तर है।[2] पुरानी कहानी शाश्वत मूल्य की जड़ता की कहानी थी, 'नयी कहानी' इस जड़ता का उच्छेद करने वाली तथा परिवर्तित मूल्यों के प्रति जागरूक है। इसीलिए वह जीवन की सारी संगति-विसंगति, जटिलता और दबाव की अनु-

---

१. दूधनाथ सिंह : 'नयी कहानी : कुछ विचार-सूत्र', 'नयी कहानियाँ', सितम्बर १९६४, पृष्ठ ८२।

२. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ १५६।

भूति की कहानी है। पुरानी कहानी साहित्य से जीवन की यात्रा करती थी, 'नयी कहानी' जीवन से साहित्य की यात्रा करती है। पुरानी कहानी निष्कर्ष-वादी अन्त की साधिका, लेखकीय मन्तव्य की वाहिका और आरोपित विचारों की विन्यास-कारिका थी, पर 'नयी कहानी' अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहने के साहस की कहानी है। पुरानी कहानी इकहरी अनुभूति के सपाट सीधेपन की कहानी थी, 'नयी कहानी' संश्लिष्टानुभूति के समग्र मे रूपायन की कहानी है। पुरानी कहानी उपजीवी, क्षणजीवी पात्रों की कहानी थी, 'नयी कहानी' केन्द्रीय पात्रों की कहानी है। यह सन्दर्भ-जुड़ी पूर्ण मूर्त्ति की स्थापिका है। पुरानी कहानी में वातावरण वास्तविक था, पर कहानी का कथ्य झूठा, 'नयी कहानी' मे वातावरण भले ही झूठा हो, पर कथ्य सच्चा है। 'नयी कहानी' कला-मूल्य को जीवन-मूल्य में बदलती है। पुरानी कहानी का कहानीकार न्यायाधीश था। वहाँ मापिक स्तर पर भयंकर अन्तर्विरोध था। 'नयी कहानी' में इन सबका अभाव है।[1] स्पष्ट है कि पुरानी कहानी से 'नयी कहानी' के वैभिन्न्य विविधस्तरीय हैं, जो इन दोनो को सर्वथा विच्छेदित करते तथा 'नयी कहानी' को नये तौर पर अस्तित्व-सम्पन्न करते हैं। सचमुच " 'नयी कहानी' समकालीन यथार्थ-बोध, प्रामाणिकता की खोज, मर्जनात्मक प्रयास, आत्मगत अनुभूति, ईमानदारी, सच्चाई, विच्छिन्न भाव-बोध के स्थान पर एक समजस सवेदना, सामाजिक चेतना के आधिक्य आदि के कारण एक नयेपन की शुरुआत है,"[2] जिसका पुरानी कहानी में नितान्त अभाव है।

'नयी कहानी' : आविर्भाव के कारण

'नयी कहानी' के आविर्भाव के तीन कारण हैं—१. कहानी-लेखकों की संस्कारजन्य रचना-प्रवृत्ति की उद्विकासवादी चेतना, २. पाश्चात्य जगत् का सहगमन और ३. पूर्ववर्त्ती पीढ़ी के कहानीकारो की विरोधात्मक प्रतिक्रिया।[3]

यद्यपि पहला कारण किसी भी युग के लेखन में दीख पड़ सकता है, तथापि भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् यह चेतना अधिकाधिक क्रिया-

१. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ २१ से ४६ तक द्रष्टव्य।
२. डॉ० स्वर्णकिरण : 'नयी कहानी' : अत्याधुनिक हिन्दी-साहित्य' (सं० डॉ० कुमार विमल), पृष्ठ २०२।
३. वही, पृष्ठ १८१।

शील हो उठी। इस चेतना के ही कारण काल्पनिक संसार छूटा तथा यथार्थ कथ्य-संसार आया। इसने भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता को प्रतिष्ठित किया तथा स्पष्टता की जगह सांकेतिकता और मनोरंजन की जगह जीवनगत उलझनों पर विचार किया।`

ब्रेटहार्ट, जार्ज वाशिंगटन, हॉथार्न, एफ० स्कॉट फिट्जेराल्ड जैसे अमरीकी कहानीकारों का हिन्दी पर प्रभाव भी 'नयी कहानी' की आविर्भूति का एक कारण है, जिससे कहानी स्थानीय रंगत से सहसा जीवन्त हो उठी। ओ० हेनरी की प्रादेशिक और नागर रंगत, ऑल्ड्रिक की नाट्कीयता, हेमिंग्वे की सांकेतिकता और फॉकनर की सहज स्वाभाविकता ने कहानी की परम्परित कला में अभूतपूर्व परिवर्तन कर दिया। हिन्दी कहानी पर फ्रैंज काफ्का, मोराविया, आल्बेयर कामू आदि का भी प्रभाव पड़ा। अतः कहानीकारों द्वारा इन सबका सहगमन भी 'नयी कहानी' के आविर्भाव का सार्थ कारण है।

'नयी कहानी' के आविर्भाव का तीसरा कारण पूर्ववर्ती कहानीकारों की नवकथालेखन के प्रति विरोधात्मक प्रतिक्रिया है। वस्तुतः 'नयी कहानी' पुरानी कहानी के विरोध की प्रक्रिया में ही पनपी। यदि पुराने सहवर्ती कथाकारों द्वारा किया गया विरोध इसकी विकसनशीलता का उर्वरक बन गया तो आपसी काट-छाँट और खीमेबाजी धूप और हवा बन गयी।

'नयी कहानी' : विविध समसामयिक परिस्थितियाँ

हिन्दी-कहानी में 'नयी कहानी' का पदार्पण राजमार्ग से नहीं होकर सामान्य पथ से होता है। यह रूढ़ि और जड़ता, आवृत्ति और प्राचीनता की पृष्ठभूमि में एक अनिवार्यतावश प्रकट होती है। यह जनजीवन से कट कर 'नयी कविता' की तरह प्रयोग और चमत्कार की वृत्ति से आरम्भ नहीं होती। फलतः इसके मूल में प्रदर्शन-हेतुक शिल्प-प्रयोग प्राय नहीं मिलते हैं। इसने प्रत्येक परिस्थिति के परिवर्तित कथ्य को नयी और मौलिक संवेदना से अनुस्यूत कर वाणी दी है।

'नयी कहानी' परिवर्तित परिवेश की प्रबुद्ध, व्यावहारिक, कुशाग्रमति आत्मजा है। परिवेश वातावरण का पर्याय नहीं है। वातावरण की चेतना व्यष्टि-आक्रान्तता दे सकती है, पर परिवेशगत चेतना सामाजिक दृष्टि देती है। वातावरण से आक्रान्त व्यक्ति परिवेश के प्रति सचेत होने के लिए संघर्ष कर सकता है, पर परिवेश के प्रति चेतन व्यक्ति वातावरण से आक्रान्त

होता है।[1] इस ऐतिहासिक परिवर्त्तन को परिवेश और वातावरण दोनों ही के आधार पर समझा जा सकता है। स्वतन्त्रता मिलते-न-मिलते सारी परिवेशात्मक परिस्थितियाँ झटके से परिवर्तित हो जाती हैं और इतिहास का नया दौर आ जाता है। इन कथाकारों ने उस समग्र परिस्थिति-संसार को झेला है, जिससे उन्हें आन्तरिक और आत्यंतिक घृणा है। इन्हीं वाह्य परिस्थितियों की दुनिया से उनका आन्तरिक संसार निर्मित होता है। ये विविध समसामयिक परिस्थितियाँ क्रमशः राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक हैं।

१५ अगस्त, १९४७ को एक ओर भारतवर्ष स्वतन्त्र हुआ, दूसरी ओर भारत और पाकिस्तान का विभाजन, यद्यपि पाकिस्तान अपना स्वतन्त्रता दिवस १४ अगस्त को ही मानता है। स्वतन्त्रता देते समय भारतीय स्वतन्त्रता-अधिनियम के अन्तर्गत ब्रितानी साम्राज्यवादियों द्वारा शासन और देशी राज्यों के बीच सारी सन्धियाँ समाप्त कर दी गयीं। उन्हें भारत या पाकिस्तान किसी में इच्छानुरूप विलयन की छूट दे दी गयी। इस अधिनियम ने प्रथमतः हिन्दू और मुसलमान के बीच वैमनस्य और साम्प्रदायिकता का अकुरित बीज-वपन किया। द्वितीयतः देशी राज्यों के विमक्त रहने और विविध इकाइयों में बने होने का कुचक्र रचा गया, जिस कारण उस समय की अनेक रियासतों ने भारत अथवा पाकिस्तान किसी में भी अपने विलयन की अपेक्षा स्वतन्त्र ही रहना चाहा। केवल जूनागढ और हैदराबाद रियासतें पाकिस्तान में सम्मिलित होने को उत्सुक थीं। तृतीयतः पाकिस्तानी शासक ने कश्मीर को हड़पने के लिए अपने सैनिकों को आक्रमण-हेतु अनुमत कर दिया। इन सारी स्थितियों को सरदार पटेल की सूझ-बूझ और महाराजा हरिसिंह के योगदान से ठीक किया जा सका। फिर जम्मू और कश्मीर का भारत मे विलय हुआ। भारतीय सेनाएँ थिमैया के सेनापतित्व मे कश्मीर गयीं। वहाँ पाकिस्तानी सेना का सामना करती जब वे रावलपिंडी की ओर बढ़ने लगी तब प्रधान मंत्री नेहरू ने सुरक्षा-परिषद् का युद्ध-विराम-प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। भारत को किसी प्रकार का लाभ न हो सका ; क्योंकि वे बिना किसी निर्णायक स्थिति के ही कश्मीर की समस्या 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' में ले गये थे। पश्चिमी देशों को उत्तमोत्तम अवसर मिला। उन्होंने आक्रमणकारी पाकिस्तान

१. हृषीकेश : 'नयी कहानी : परिवेश की ऐतिहासिकता की भाषा', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ १६८।

और आक्रान्त भारतवर्ष को समान स्तर पर रखते हुए पाकिस्तानी आक्रमण को जनमत की माँग का रूप दिया। हैदराबाद की समस्या भी ऐसे ही जटिल बनायी गयी। भारत सरकार के नानाविध प्रयत्नों के बाद भी वह भारत में सम्मिलित नहीं हुआ। वस्तुतः हैदराबाद निजाम द्वारा नहीं, वहाँ की 'रजाकार' नामक साम्प्रदायिक संस्था द्वारा शासित था। इनका नेता कासिम रिज़वी हैदराबाद का नियन्ता था। उसकी साम्प्रदायिकता से हत्या, अग्निकांड और बलात्कार शुरू हुए। तब भारत सरकार ने नागरिकों के रक्षार्थ १३ सितम्बर, १६४८ को चार दिशाओं से हैदराबाद में सैनिक भेजे। १६ सितम्बर तक लड़ाई होती रही। १७ सितम्बर को हैदराबाद ने आत्म-समर्पण किया और जनरल चौधरी के अधीन वहाँ तात्कालिक सैनिक-शासन स्थापित कर दिया गया।

२६ नवम्बर, १६४६ को संविधान-सभा ने संविधान का निर्माण-कार्य पूरा किया तथा उसे अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित किया। २६ जनवरी, १६५० को भारत सर्वप्रभुता-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बना। भारत की ब्रितानी संसद द्वारा परिचालित परराष्ट्रनीति समाप्त हो गयी और भारत ने स्वतः मित्रता, सद्भाव, शान्ति और सह-अस्तित्व के आधार पर अपनी विदेश नीति स्थिर की। विदेशों ने पहले तो इस तटस्थ नीति को शंका, निन्दा और भर्त्सना की दृष्टि से देखा। ब्रिटेन की दृष्टि में यह पाखंड-भरी नीति थी तो रूस और अमरीका को भारत अपने-अपने विरोधी का अनुयायी लग रहा था और फ्रांस इस तटस्थता-नीति के मूल में निष्क्रियता का अवबोध कर रहा था। पर डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में "यह तो भारत की परम्परागत सच्ची, अहिंसक और निर्भीक नीति थी, जिसके आदर्शों का शिलान्यास गाँधी जी के सिद्धान्तों पर हुआ था"।[1] धीरे-धीरे भारत की इस नीति से लोग प्रभावित होने लगे और इसके प्रति उनका विश्वास स्थिर होने लगा। भारत ने कोरिया में युद्ध बन्द करवाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। उसे कोरिया में बन्दी प्रत्यावर्तन के लिए अध्यक्षता-हेतु बुलाया गया। उसने इंडोचीन में भी लड़ाई बन्द करवायी और लाओस के अन्तर्राष्ट्रीय आयोग का भी वह अध्यक्ष बना। इतना ही नहीं, जब सूडान में पक्षपात-रहित चुनाव कराने के लिए भारत से निर्वाचनायुक्त माँगा गया तब वहाँ भी उसने अपना धर्म निभाया।

---

१. डॉ० ईश्वरी प्रसाद : (डॉ० सुरेश सिन्हा लिखित 'हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास' के पृष्ठ ५४७ पर उद्धृत)।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद छोटे-छोटे देशी राज्यों के भारत-संघ में विलयन से सामन्ती बोझ से पिसती जनता को शीघ्र ही उबरने का विश्वास होने लगा। सरकार ने सारे पुराने ढाँचों को तोड़कर प्रजातंत्रात्मक ढग से गरीबी और अमीरी की खाईं पाटने और सार्वक्षेत्रीय समता फैलाने की घोषणा की। केन्द्रीय स्तर पर राष्ट्रशक्ति का वितरण तीन वर्गों में हुआ—१. जनता के नाम पर उभरे राजनयिक नेता-वर्ग। २. नौकरशाही के अवशेष, सरकारी मशीनरी और केन्द्रीय स्रोतों के अधिकारी प्रशासक-वर्ग। ३. सरकार-प्रदत्त उच्च पदों के खरीददार बड़े किसान, ठीकेदार, व्यापारी आदि। ग्राम्य स्तर पर यह विभाजन चार वर्गों में किया गया—१. चौकीदार, पटवारी, लम्बरदार, तहसीलदार, अंचलाधिकारी आदि। २. सिपाही, जमादार, थानेदार, आरक्षी-अधीक्षक आदि। ३. पंच, सरपच, न्यायपच, न्यायाधिकारी आदि। ४. ग्राम-सेवक, प्रखण्ड विकास-पदाधिकारी, अभियन्ता, जिलाधीश आदि। कुल मिला कर स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् धरती, धन, प्रभुता आदि का वितरण इन्हीं सात स्रोतों में हुआ। पर इन सब का खोखलापन बहुत शीघ्र स्पष्ट होने लगा और प्रभुत्व-सम्पन्न व्यक्तित्वों की खोट-भरी नीयत भी बेनकाब होने लगी।

दूसरी ओर भारत-पाकिस्तान के विभाजनवश दगे, अगलगी, भीषण हत्या-काड, निर्वासन, निष्कासन आदि हुए। फलतः नैराश्य का कुहासा भारतीय तरुणों के दृष्टिपथ में छा उठा। और 'कलाकारों की करवटों में काँटे भर उठे'।[1] आँखों के सामने ही यह सारा भयावह ताडव हुआ। बच्चों को सगीनों की नोकों पर उछाल दिया गया। युवती नारियों का शीलभंग किया गया और उनके अग-प्रत्यग का अत्यन्त अश्लील और गन्दे ढंग से उपहास किया गया। "तब नोआखली जल रहा था, कलकत्ता ही नहीं, सारा बंगाल आग की लपटों में राख हो रहा था।···पंजाब मे गले कट रहे थे, स्त्री-पुरुषों एवं मासूम अबोध बच्चियों के रक्त गन्दी नालियों में बह रहे थे··· यह था स्वतंत्रता का उपहार, जो नयी पीढ़ी को मिला था और जिसका एक वर्ग सर्जनात्मक प्रतिभा से विभूषित था'।[2]

यही स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की राजनीतिक स्थिति थी। एक ओर राष्ट्रीय स्वाधीनता मिलने के कारण उदार चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था, दूसरी ओर विभीषिकाओं का घुटन-भरा धुआँ छाया था और तीसरी ओर

---

१. डा० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ २०८।
२. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'हिन्दी-कहानी : उद्भव और विकास', पृष्ठ ५४६।

स्वाधीनता-संग्राम के सन्दर्भ मे एकजुट हुई पूंजीवादी और जनवादी दोनो भिन्न शक्तियाँ पूर्णतः विच्छिन्न हो गयी थीं।

इस प्रकार राजनीतिक स्थिति ने हिन्दी-कहानीकारो को नये मूल्यो के अन्वेषण की दिशा मे उन्मुख किया। इसकी जातीय उदार चेतना की आविर्भूति ने अछूते ग्राम-वर्ग, उसकी बिखरी शक्ति आदि के चित्रण के लिए नये कहानीकारों को कस्बाई, गँवई और आचलिक कथाभूमि की ओर अभिप्रेरित किया। इसके नृशंस हत्याकाड और दगे ने नग्न यथार्थ-चित्रण, आनुभूतिक प्रामाणिकता, केन्द्रित चिन्तनशीलता आदि को उभारने और प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। साथ ही पूंजीवादी-जनवादी शक्ति की विच्छिन्न सहस्थिति ने परम्परा, पुरातनता आदि के प्रति पूर्ण विरोध और अभिनव प्रयोग को शक्ति-समर्थ स्वर देने शुरू किये। इसी परिवर्तित राजनीतिक परिस्थिति के कारण 'नयी कहानी' जन-जीवन से अविच्छिन्न रूप में जुड़ कर प्रकट हुई। इसके आधार पर ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सास्कृतिक परिस्थितियों में भी परिवर्त्तन हुए।

'नयी कहानी' के आविर्भाव में तत्कालीन सामाजिक स्थिति का भी योगदान महत्वपूर्ण है। जीवन-व्यवस्था में परिवर्त्तन आ गया था। पिता-पुत्र, पति-पत्नी, नातेदारो आदि के सम्बन्धो में दरार आने लगी थी। अब ऐसी उभरती दरारों को भर सकने वाली पुरानी मान्यता की सीमेंटी शक्ति समाप्त हो रही थी। पुत्र परलोक के लिए नही, इहलोक के लिए आवश्यक हो गया था और उसके लिए पुरानी आचरण-सहिता अनुपयोगी हो रही थी। परिवार के वृद्ध को वह दया-सवेदना से भर कर ही स्वीकार रहा था। पति-पत्नी-सम्बन्ध बदलने लगा था। नारी संविधान से सुरक्षित हो गयी थी। समाज मे उसकी स्वतन्त्र सत्ता बन रही थी। विवाह की परम्परागत सस्था के सामने अनवरत प्रश्न-चिन्ह लग रहे थे। एक सन्तुलन की माँग हो रही थी। पुरुष यौन-जीवन मे स्वतन्त्रता चाहने लगा था। नारी विवाह-सस्था को स्वीकार कर भी उसे निजी मान्यतानुरूप चलाना चाहती थी। उसके मस्तिष्क मे जन्म-जन्मान्तर-सम्बन्ध की कल्पना अब नही थी। दूसरी ओर पुरुष-मन नारी को परिपूर्ण व्यक्तित्व देने को तैयार नही हो रहा था। पुरुष चौबीसो घटे निर्भर स्त्री के प्रति अपने दृष्टिकोण में हिकारत पाने लगा था। पत्नी को वह घर-गृहस्थी मे रमे मनुष्य की तरह नहीं ग्रहण कर बोझ की तरह ढोने लगा था। इसमे पारस्परिक इकाई खंडित होने लगी थी और दो अर्द्ध इकाइयाँ बनने लगी थी, जो अपने परिवेश मे जीवन के मगत मूल्य और पद्धति का चुनाव कर स्वतंत्र

और परिपूर्ण इकाई बन सकने की दिशा में अग्रसर होने लगी थीं। गाँव-गाँव में पंचायत व्यवस्था संशोधित हो रही थी। एक नयी सामाजिक जीवन-व्यवस्था की नींव पड़ने लगी थी, जिसमें सबको समान अवसर और व्यक्ति-स्वातंत्र्य प्राप्त हो रहा था। सामन्तकालीन सामाजिक अवशेष समाप्त हो रहे थे और नयी सामाजिक व्यवस्था आरम्भ हो रही थी। पर इन सबका विकास धीरे-धीरे निराशामूलक स्थितियों में हो रहा था। व्यापक गरीबी, भयंकर बेरोज़गारी और चारों ओर पड़ी अनियोजित शक्ति सामाजिक स्थिति रच रही थी। इस प्रकार सामाजिक परिस्थिति ने 'नयी कहानी' के लिए नवीन परिवर्तनगामी मूल्यों से गुज़रने की प्रक्रिया में समुचित पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी थी।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश का एक बहुत बड़ा वर्ग बेरोज़गार हो उठा, जो आर्थिक स्रोत के अभाव में सूखने लगा, प्रत्येक राज्य में काम मांगने वालों की सूची करोड़ों की संख्या में पहुँचने लगी। किन्तु किसी भी राज्य-सरकार द्वारा इन्हें उत्पादक इकाइयों में बदलने का कोई कार्यक्रम आरम्भ नहीं किया जा सका। "करघे हैं तो सूत नहीं हैं। खाद है तो बीज नहीं है। कच्चा माल है तो ईंधन नहीं है। तकनीशियन हैं तो उद्योग नहीं है। उद्योग है तो तकनीशियन नहीं हैं। इंजन हैं तो डिब्बे नहीं हैं। डिब्बे हैं तो रेलवे लाइनें मजबूत नहीं हैं। अणुशक्ति है तो उसके उपयोग का कार्यक्रम नहीं है। मतलब यह कि जिस आर्थिक क्रान्ति की पूरी सम्भावना थी वह नहीं हुई।"[1] इस आर्थिक परिस्थिति ने व्यापक दरिद्रता और बेरोज़गारी दी, खाद्य-उपयोग की वस्तुओं से लेकर दैनिक उपयोग की वस्तुओं तक कमरतोड़ मूल्य-वृद्धि दी, सरकारी नियंत्रण (कंट्रोल) कर बाजार में सामान का अभाव किया और चोर-बाजारी का मार्ग प्रशस्त किया। इस प्रकार अर्थतः दारुण परिस्थिति पैदा हुई और आर्थिक सम्पन्नता की उचित मांग स्वप्न हो गयी। अर्थतंत्र की यह कुलबुलाती पीड़ा हिन्दी-कहानी को सर्वथा परिवर्तित कथ्य, दृष्टिकोण, स्वर, शिल्प और भाषा देने के लिए काफी थी, जिससे 'नयी कहानी' का आविर्भाव हुआ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद धर्म गत्यात्मक शक्ति नहीं रह सका। धर्म का विरोधी वातावरण तैयार होने लगा। समग्र पुरा-धार्मिक वैश्वासिक मान्यताएँ खंडित होने लगीं, पारलौकिक भय मिटने लगा। जीवन-पद्धति के मूल्य अब धर्म द्वारा निर्धारित नहीं होने लगे। साथ ही धर्म युगीन प्रश्नों को उत्तरित

---

१. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ १६५।

करने में चूकने लगा, क्योंकि अब भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र बन गया था। पुनर्जन्म की अनुभूति विलक्षणता और विस्मिति पैदा करने वाली हो गयी, फलतः उसके प्रति आस्था मरने लगी। भारतीय राष्ट्र ईश्वर की मृत्यु-शय्या को घेर कर खड़ा हो उठा। धर्मप्राण भारत सच्चाई न रहकर तथ्य-मात्र हो गया। तथ्य भी विशेष कारणवश; क्योंकि हमारे यहाँ के सामाजिक जीवन का यह एकमात्र मंच था—सामुदायिक सम्मिलन का मंच, क्योंकि हमें इसी से अनेकानेक से जुड़े रहने का विश्वास भी मिलता रहा है। 'नयी कहानी' के आविर्भाव और विकास में धर्म के इन बदलते मान-मूल्यों ने भी भरपूर अभिप्रेरण और योगदान किया।

सांस्कृतिक सन्दर्भ भी स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद परिवर्तित हुआ। वर्ण-व्यवस्था आमूल निरस्त हो गयी। अब न वह समाज की नियामिका रही और न मनुष्य की कर्मप्रेरिका। मानवीय दायित्व और अधिकारों के प्रति उसका बोध-ज्ञापन भी मिट गया, पर समाज का सन्तुलन बना रहा। टूटती-मिटती वर्ण-व्यवस्था उसे प्रभावित नहीं कर सकी। पिछड़ी, जंगली और अनुसूचित जातियों को सरकार की ओर से विशेष सुविधाएँ मिलीं। अध्ययन, आवास की सुविधा से सेवा-वृत्ति की सुविधा तक इनको विशेष छूट दी गयी। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था का सांस्कृतिक महत्त्व समाप्त हो गया। सांस्कृतिक दृष्टि से आध्यात्मिक जीवन के जीवन-मरण के प्रश्न भी दर्शन के विषय न रह कर मानव-केन्द्रित हो गये। इनका सन्दर्भ बदल गया और दार्शनिकता अव्यावहारिक हो उठी। स्वर्ग और नरक की कल्पना का स्थान अत्यल्प होकर शून्य होने लगा। मनुष्य अप्राकृतिक मृत्यु की चिन्ता में निमग्न हो उठा। संस्कृति के स्वर्ण-पृष्ठ भी अतीत की वस्तु बनने लगे और उनका मूल्यांकन अनिवार्य नवीनता के परिप्रेक्ष्य में किया जाने लगा।

'नयी कहानी' : प्रकृति-परिचय

एक त्रिक् है, सहज सामाजिकता, अनुभूति और परिवेश-बोध की विकसित चेतना का। यह 'नयी कहानी' की पूर्व-रेखांकित प्रकृति है।[1] पर जब हम 'नयी कहानी' का सम्यक् अध्ययन-अनुशीलन करते हैं तब इसकी कुछ और विस्तृत दश-सूत्री प्रकृति-व्याख्या स्पष्ट होती है—

१—नयापन के व्यक्तीकरण के सहज साहस की प्रवृत्ति।

---

१. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : 'आधुनिक हिन्दी-कहानी', पृष्ठ ६६।

२—परम्परा से विद्रोह की प्रकृति ।
३—बहुविध प्रयोगशीलता की नैसर्गिक प्रकृति ।
४—निरन्तर परिवर्तित होते रहने की गतिशील प्रकृति ।
५—विविध-क्षेत्रीयता की प्रकृति ।
६—आधुनिकता को नवीन सामाजिक सन्दर्भ में अन्वेषित करने और जीवन के प्रति आस्था की मांग करने की प्रकृति ।
७—यथार्थपरक, समाजधर्मा, प्रगतिशील मूल्यों के प्रति समर्पण की प्रकृति ।
८—जातीय-राष्ट्रीय सन्दर्भों तथा जनजीवन से जुड़ने की प्रकृति ।
९—बौद्धिकता की प्रकृति ।
१०—संक्षिप्त न हो सकने की प्रकृति ।

'नयी कहानी' की पहली प्रकृति नयापन की अभिव्यक्ति के सहज साहस की है । 'अब तक कुछ भी नही हुआ है' की सहज मान्यता के सम्पुट से ही 'नयी कहानी' साहस का मोती पैदा करती है, जिसके कारण आलोचक चौंकते, निस्तेज होते और स्वीकृति-अस्वीकृति की उधेड़बुन मे पड़ते हैं । यह प्राथमिक प्रकृति प्रायः सभी नयी कहानियो में प्राप्त होती है । कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया',[1] भीष्म साहनी की 'चीफ़ की दावत,'[2] तथा उषा प्रियवदा की 'वापसी',[3] से दूधनाथ सिंह की 'प्रतिनिधि'[4] और महेश्वर अरिन्दम की 'कथान्वेषण . सुबह तक'[5] की कहानियों में यह विद्यमान है, जहां अभिव्यक्ति अपनी भरपूर साहसिक बलवत्ता से जीवन्त हो उठी है । 'नयी कहानी' की इस अन्त-चेतना से परिचित नही रह सकने के कारण ही आलोचक 'नयी कहानी' के प्रति यह आरोप करता है कि "वर्त्तमान हिन्दी-कहानी ने अपने पूर्ववर्त्तियों से सब-कुछ लिया है, पर उनका साहस और उनकी कर्मठता को त्याग दिया है,"[6] जो पूर्णतः निरर्थ-निस्सार है । 'नयी कहानी' की प्रखर अन्तश्चेतना

---

१. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ २१ ।
२. 'एक दुनिया समानान्तर' (सं० राजेन्द्र यादव), पृष्ठ २२३ ।
३. 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १४३ ।
४. 'कहानी', मार्च १९६६, पृष्ठ १२ ।
५. 'ज्ञानोदय', मई १९६६, पृष्ठ ९८ ।
६ हृषीकेश : 'आज की हिन्दी कहानियाँ : नयी प्रवृत्तियाँ', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ ७६ ।

ने न तो अपने पूर्ववर्तियों का जड़ीभूत सर्वस्व ही ग्रहण किया है, और न वह तथाकथित साहस, जिससे कहीं अधिक कमंठ साहस इसने स्वयं आचरित-प्रदर्शित किया है।

उक्त साहस के आधार पर ही 'नयी कहानी' की दूसरी प्रकृति स्पष्ट होती है—परम्परा का घोर तिरस्कार। ध्यातव्य है कि परम्परा-प्रथित कहानी का अधिकांश घिसा हुआ और रूढ़ था, ईषदंश गत्यात्मक। इस पर भी यह प्रवहन इतना क्षीण था, जिससे किसी सेतु की रचना असम्भाव्य रही। फलतः 'नयी कहानी' ने कथित ईषदंश के विकास में भी निजी सेतु का ही निर्माण किया। इसने जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी आदि कहानीकारों की सम्पूर्ण परम्परा से विद्रोह किया, यशपाल की पूरी कथा-सृष्टि का तिरस्कार किया और जहाँ-कहीं प्रेमचन्द से ग्रहण भी किया वहाँ पुनर्मूल्यांकन के सहारे विद्रोही पुट देते हुए अपना सुविचारित प्रयाण किया। इस प्रकार परम्परा का तिरस्कार 'नयी कहानी' का व्यवहार-धर्म बन गया। इस तथ्य को ठीक-ठीक नहीं ग्रहण कर सकने के कारण जहाँ मोहन राकेश, नेमिचन्द्र जैन और हरिशंकर परसाई तक ने इसे परम्परा से अविच्छिन्न मानने की भूल की है'[1] वहीं इस प्रकृति का सही-सही दिशा-बोध राजेन्द्र यादव, रमेश बक्षी, देवीशंकर अवस्थी और नामवर सिंह जैसे विचारकों[2] ने किया है। निश्चयतः इस प्रकृति की सिद्ध वैचारिक पृष्ठभूमि है (द्रष्टव्य विचारगत प्रयोग), जिसे किसी भी मूल्य पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

'नयी कहानी' की तीसरी प्रकृति बहुविध प्रयोगशीलता की नैसर्गिक प्रकृति है। इसने अपनी बदली हुई संवेदना के आधार पर विषय, वस्तु, मूल्य, चरित्र, कथानक, रूपबंध, भाषा आदि सभी क्षेत्रों में अपनी प्रायोगिक प्रकृति का परिचय दिया है। रमेश बक्षी ने 'नयी कहानी' की इस प्रकृति को उजागर करते हुए लिखा है कि "कथा-चरित्र, वातावरण, पुरुष, देशकाल और उद्देश्य तक में प्रयोग की हमेशा दो दिशाएँ रहा करती थीं—एक दिशा वह, जो उसे प्राचीन से अलग करती है और दूसरी दिशा वह, जो उसे नयी जमीन तोड़ने को कहती है।"[3] नयी जमीन तोड़ने की दिशा एक कथाकार की प्रयोगात्मक

---

१. 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ ६४, १४४ और ५६।
२. 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ ६८, १०७ और १५।
३. 'कथाकार की अपनी बात : आज की कहानी के सन्दर्भ में', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १०७।

कहानी से दूसरे कहानीकार की प्रयोगात्मक कहानी तक पहुँचते-पहुँचते नितान्त अभिनव हो उठती है। यह प्रयोगशीलता विविध क्षेत्रीय होने के साथ-साथ ऊर्ध्वमुख, विकसनशील और जैनेन्द्र के सहज विकासात्मक प्रयोग[1] से भिन्न है। किसी भी 'नयी कहानी' में इसका फूटता उजास देखा जा सकता है।

प्रयोग अपने-आप मे स्थिर नहीं होता है। गति ही उसकी नियति है। 'नयी कहानी' की चौथी प्रकृति उसके निरन्तर परिवर्त्तित होते रहने की गत्यात्मकता है। यह चूडान्ततः महत्त्वपूर्ण प्रकृति है, जो नयेपन को व्याख्यायित करती है। आधुनिकता जिस तरह प्रक्रिया है, 'नयी कहानी' भी उसी तरह परिवर्तित होते रहने की प्रक्रिया है। इसीलिए सामयिकता का एक यथार्थ-बोध होते हुए भी भिन्न-भिन्न कथाकार उसे भिन्न आयामों में भिन्न दृष्टियों से सर्जित करते है। फलतः प्रत्येक उभरता कहानीकार अपने पूर्ववर्ती से कथा-यात्रा मे कुछ आगे निकल जाता है। यह प्रवाहमयी प्रकृति एक ही कथाकार की पूर्ववर्ती कहानियों से उसकी परवर्ती कहानियों तक पहुँचने में व्यर्थ को छाँट कर मार्जित कर देती है। सचमुच "यह प्रक्रिया ही 'नयी कहानी' की मौलिक और आधारभूत शक्ति और यह विविधता ही उसका वास्तविक स्वरूप है। जिस दिन 'नयी कहानी' किसी स्वरूप-विशेष को अंगीकार करके स्थिर और परिभाषित हो जायगी, वही उसकी मृत्यु का दिन होगा।"[2]

प्रयोगशीलता और परिवर्त्तन की प्रक्रियाई प्रकृति 'नयी कहानी' का विविध आयामों में प्रसार करती है। विविधक्षेत्रीयता की प्रकृति ने कहानी का बँधा-बँधाया ढाँचा तोड़ा है। यह विविधता आन्तर और वाह्य दोनो ही क्षेत्रो की है। 'नयी कहानी' के अन्तर्गत परिगणित प्रायः सभी कहानियो के कथ्य-कोण अलग-अलग हैं और कथ्य-क्षेत्र नवल-अस्पृष्ट। 'नयी कहानी' वैविध्य को नष्ट करने वाली, निर्णीत समवेतता की कहानी नही है। यहाँ सवेदना और विविधक्षेत्रीयता का सम्बन्ध ग्रहण-प्रदान दोनो ही से है। बड़ी बात यह है कि ऐसी समस्त विविधताओ में भी कथाकार का व्यक्तित्व अनिवार्यतः सुरक्षित रहता है।[3]

---

१. हर सृष्टि प्रयोग है। हर नयी कहानी प्रयोग में से आती है। क्या पहले, क्या अब ? यह प्रयोगशीलता गर्भित है जीवन में और पुरुषार्थ का नाम है।
—'कहानी : अनुभव और शिल्प', पृष्ठ ८६।

२. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ५१।

३. परमानन्द श्रीवास्तव : 'हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ २६७।

'नयी कहानी' की छठी प्रकृति आधुनिकता को नवीन सामाजिक सन्दर्भों से जोड़ने की है, जिससे एक विरोधिता, एक द्वन्द्व अनुभूत होती है। इसी आधुनिक संचेतना नवीन स्थितियों को समाहित करती अभिव्यक्त होती है। इसके बीच से ही मानव-मूल्य का मार्ग भी निकलता है। कहते हैं, 'नयी कहानी' आधुनिकता से जन्मी है, न कि इसमें उसका समावेश-मात्र है। आधुनिकता 'नयी कहानी' के लिए सन्दर्भहीन मूल्य नहीं है। वह जीवन को सार्थक अस्तित्व से जोड़ती है, जिसका अपना सार्थक महत्त्व भी है। जीवन के प्रति आस्था अनास्था-भाव से संचित रहती है। जीवन के समग्र के प्रति और सन्दर्भ के व्यापकत्व के प्रति यही आस्था 'नयी कहानी' की सिद्ध सैद्धान्तिक शक्ति है।

'नयी कहानी' की एक प्रकृति यथार्थ को समाजधर्मी और प्रगति-तत्त्व मूल्य से वेष्टित करते हुए चित्रित करने की है। इसलिए वह गोष्ठीनुमा नहीं हुई है और सस्ती सपाटता से परे भी रह गयी है। 'नयी कहानी' समय की यथार्थ अनुभूति और संवेदन की देन है। इसका कथा-यथार्थ विसंगतियों, विसंगतियों और संश्लिष्टताओं के अनन्तर निजी अस्तित्व-बोध और समा-स्थिति को आदमी की जीने वाली जिन्दगी से रू-ब-रू परिचित कराने का यथार्थ है। वातावरण, स्थिति-परिस्थिति, मानसिक संस्थिति, पात्र और जीवन की तलाश का यह यथार्थ केवल बाहरी माहौल का यथार्थ नहीं है, वरन् यथा-तथ्य परिवेश में आदमी को टटोलने और खोजने का यथार्थ है। यह यथार्थ 'सन्दर्भ से जुड़ी पूर्ण मूर्ति'[1] का है, जो स्थिर तत्त्व न होकर गत्यात्मक नैरन्तर्य है, जिसकी प्रत्येक करवट मनुष्य को बदलने के लिए काफी है। इसीलिए 'नयी कहानी' सच्चाई और प्रामाणिकता के बीच से गुजरने की अनुभूतिपरक प्रक्रिया है।[2] स्पष्टतः यह यथार्थ इतिहास-जन्य परिस्थितियों की सर्जना, परिस्थितिगत द्वन्द्व की सत्यापना और ढेर-सारे प्रवादों तथा आवरणों के तलातल की अन्वेषणा है।

'नयी कहानी' की आठवीं प्रकृति जातीय तथा राष्ट्रीय सन्दर्भों से जन-जीवन को जोड़ने की है। ऋजु-सरल सम्बन्ध-स्थापन की यह प्रकृति अपनी संवेदना के आधार पर समाज के मानसिक, आर्थिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक पार्श्वों को सहेजती है। 'नयी कहानी' की यह प्रकृति लोकमानस के प्रति

१. गजानन माधव मुक्तिबोध : 'एक साहित्यिक की डायरी', पृष्ठ १०६।
२. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ १०४।

उसकी चेतना को जागरूक बनाने वाली है। यहाँ सन्दर्भ संघर्ष के हैं और संवहन उस यथार्थ संकट का है, जिसे कला-धर्मी, क्षणजीवी और लघुमानवतावादी हो रही 'नयी कविता' सह-सँभाल नहीं पा रही थी।

बौद्धिकता की प्रकृति ने 'नयी कहानी' में व्यक्त रागात्मक अनुभव को भी बौद्धिकता की निष्पत्ति बना दिया है। यह बौद्धिकता भावुकतावाद के भस्म से उत्पन्न हुई है तथा आधुनिक यथार्थ-बोध द्वारा पल्लवित और विकसित। 'नयी कहानी' में भावुकता भरे प्रेम और सम्बन्ध-निर्वाह का अभाव है। प्रेम के दोनों पक्ष अतिरिक्ततः सतर्क (कॉन्शस) होने के कारण बौद्धिकता को प्रश्रय देते हैं। फलतः भावुकता निःशेष हो जाती है। नामवर सिंह ने बौद्धिकता के आधार पर ही पुरानी कहानी से 'नयी कहानी' को विलगाया और मूल्यित किया है,[1] यद्यपि बौद्धिकता 'नयी कहानी' की सिर्फ एक प्रकृति है। 'निर्गुण' की 'एक शिल्पहीन कहानी' भावुकता के धरातल पर ही पुरानी और उषा प्रियंवदा की 'वापसी' बौद्धिकता के धरातल पर ही नयी है।[2] भावुकता पुरानी आदर्श-भरी मानवतावादी युक्ति को उजागर करती है, बौद्धिकता इसका निषेध। भावुकता निजी शक्ति में आस्थाहीन और उतावलेपन से भरी होती है, बौद्धिकता में इसका अभाव होता है। भावुकता से अतिसरलीकरण का खतरा भी है, जो वस्तुतः जीवन की समस्याओं और अभिव्यक्ति के माध्यम का खतरा हो जाता है।[3] भावुक और भावप्रवण में अन्तर है। इसको स्पष्ट करने वाली बौद्धिकता ही 'नयी कहानी' की ठोस प्रकृति है। इसीलिए जैनेन्द्र की धारणा है कि 'इस अवधि में बोधात्मक ज्ञान को मान मिला है, भावोत्कर्ष को नहीं'।[4]

'नयी कहानी' की अन्तिम प्रकृति उसके संक्षिप्त न हो पाने की, फलतः सम्पूर्ण रूपायन की प्रकृति है। यहाँ रूपबन्ध की दृष्टि से कहानी का कथ्य जीवन के संसर्ग से प्राप्त, लेखक का प्रस्तावित वक्तव्य बन गया है। 'नयी कहानी' अपनी प्रकृति से ही पुरानी कहानियों से बदली हुई है; क्योंकि यह निश्चित साँचों की कहानी नहीं है। ऐसी स्थिति में इसका संक्षेपण दुष्कर,

---

१. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ १७६।

२. 'पुरुष होकर निर्गुण जहाँ बड़े आँसू बहाते हैं वहाँ नारी होकर उषा प्रियंवदा एक बूँद भी आँसू नहीं ढुलकाती'। —वही, पृष्ठ १७६।

३. वही, पृष्ठ १८८।

४. जैनेन्द्र कुमार : 'कहानी : अनुभव और शिल्प', पृष्ठ ७६।

अध्याय ३

'नयी कहानी' : विचारगत प्रयोग

विचारगत प्रयोग की अस्तित्ववादी पृष्ठभूमि

यह एक सन्दर्भ-वाक्य कि—"समकालीन संवेदना में विभिन्न वैचारिक तत्वों का बड़ा ही रसमय घोल मिलता है"[1]—'नयी कहानी' के वैचारिक प्रयोग की मीमांसा के लिए साफ तौर पर मुखर आमंत्रिति है। 'नयी कहानी' के विचारगत प्रयोग आरोपित न होकर स्वाभाविक हैं। चिंतन का यह कोण मानो अपने ठोसपन मे सम-सामयिक बदली हुई संवेदना से स्वीकृत हो उठा है। यदि किसी एक, सिर्फ एक दर्शन का नाम लिया जाए तो 'नयी कहानी' के विचारगत प्रयोग को अपने पूरेपन मे अस्तित्ववाद का प्रयोग कहना चाहिए। यह अस्तित्ववाद किसी एक व्यक्ति का दर्शन नहीं है, न ही यह कल्पना-जल्पना पर आधारित है। इसका सम्बन्ध उस अपरिमेय मानवीय पीड़ा मे है, जो अपनी अपराजेयता और अपरिसीमता मे पूरे जीवन में निहित है। अस्तित्ववादी विचार मानव की अनिवार्य समर्थता मे उद्भूत है। धर्म और आस्था के उपेक्षित दृश्य-पट की स्थिति में मनुष्य अपने कर्म की इतिमत्ता से ही अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है। यह अस्तित्ववाद का मूल स्वर है।[2] इस प्रकार अस्तित्ववादी विचारधारा निश्चयतः किसी एक व्यक्ति की स्वच्छ कल्पना न होकर परिवर्तित युग के अनुरूप आविर्भूत वैचारिक-दर्शन है। बडी बात यह है कि अस्तित्ववादी धारणा सर्जनात्मक साहित्य मे पहले उभरी है, दर्शनशास्त्र मे बाद मे। यह दर्शन से साहित्य में न आकर अपनी

---

१. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना' : 'विकल्प', नवम्बर '६८, पृष्ठ ३०।

२. श्रीपत राय : 'कहानी की बात', 'कहानी', फरवरी '६८, पृष्ठ ५।

पहली उद्भूति में सर्जनात्मक क्षेत्र में ही उत्पन्न-विकसित है।[1] इसीलिए पूर्ववर्ती दर्शनों की तरह अस्तित्ववाद जीवन में कोई बाह्यारोपित अर्थ नहीं भरता।[2]

दार्शनिक दृष्टि से अस्तित्ववादी दर्शन हीगेल के उस अस्तित्ववाद और काट के उस स्व-निहित वस्तुवाद की निराशात्मक प्रतिक्रिया मे आविर्भूत हुआ, जिसकी विफलता मनोविज्ञान मे मूल तत्त्व के भ्रान्त प्रतिनिधित्ववश चिन्हित की गयी थी। इसे 'प्लेटो' के 'रिपब्लिक' मे समाहित मनुष्य और उसके विश्व-विषयक विचारो की प्रतिक्रिया भी बताया जाता है। *अस्तित्ववाद का मूल उस जर्मन 'स्वच्छन्दतावाद' में निहित है, जो व्यक्तित्ववाद के नाम पर अट्ठारहवी सदी के नये ज्ञान के प्रति जबर्दस्त विरोधपत्र बनकर उभरा था।* यह दृढ़त: अध्यात्म-विमुख, पूर्वकल्पना-विमुक्त दर्शन है; साथ ही अस्तित्व की मनोवैज्ञानिक यथार्थताओ को एक सामान्य रूपाकन देने का प्रयासी भी।[3] ब्रितानी दार्शनिको के नजरिये मे यह यूरोप के अतिरेको और विचारो के खुरदुरेपन को प्रतीक्षित करने वाला है।[4] इमानुएल मौनियर द्वारा की गयी अस्तित्ववाद की परिभाषा कि "अस्तित्ववाद विचारो के दर्शन एव वस्तु के दर्शन की अति के विरुद्ध मनुष्य के दर्शन की प्रतिक्रिया है"[5]—प्रायः सभी अस्तित्ववादी चिन्तको की धारणाओ पर घटित है। जूलियन बेन्ड्रा के अनुसार यह भाव तथा विचार के प्रति जीवन का विद्रोह है तो एलेन के अनुसार परम्परागत दर्शक की दृष्टि से विलग अभिनेता की दृष्टि।[6] अस्तित्ववाद के स्वरूप को अलग-अलग दार्शनिको ने निरूपित-व्याख्यायित किया है। सॉरेन कीर्केगार्द इसके उपस्थापक-व्याख्याता हैं और फ्रेडरिक नीत्शे को इसकी पूर्ववर्ती सरणि डालने का श्रेय है। इनके बाद यह चिन्तन-प्रणाली आस्तिक

---

१. डॉ० कुमार विमल : 'अस्तित्ववादी सौन्दर्यशास्त्र', 'आलोचना', अप्रैल-जून '६६, पृष्ठ २४।
२. वही, पृष्ठ ३१।
३. डेगोबर्ट डी रून्स : 'द डिक्शनरी ऑव फिलॉसफी', पृष्ठ १०३।
४. जॉन पैसमोर : 'दर्शन के सौ वर्ष' (अनुवादक—शर्मा, शास्त्री; शिक्षा-मंत्रालय, भारत सरकार, १९६६), पृष्ठ ५६८।
५. डॉ० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खंड), पृष्ठ ११५।
६. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'अस्तित्ववाद', 'हिन्दी साहित्य-कोश', खंड १, पृष्ठ ८५ पर उद्धृत।

और नास्तिक दो भिन्न विचार-वीथियों में पूरी तरह विकसित हो जाती है। कीर्केगार्द और कार्ल यास्पर्स आस्तिक धारा के विचारक हैं और मार्टिन हाइडेगर तथा ज्याँ-पाल सार्त्र नास्तिक विचार-धारा के।[1] अस्तित्ववादी विचारको मे इनके अतिरिक्त गेब्रियल मार्सेल, सिमोन द व्युवोइ, ज्याँ जेने आदि के नाम भी प्रमुख हैं। अलबर्ट कामू को एल० रोथ अस्तित्ववादी नही मानते, क्योंकि कामू बेहूदगी को तात्त्विक रूप देने मे विश्वास नही करता।[2]

अस्तित्ववाद का प्रसारण १६३० से पूर्व ही हो चुका था। १६४१ तक आते-आते यह दर्शन काफ़ी स्पष्ट और पूरी तरह मान्यता-प्राप्त हो गया। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इसकी प्रमुखता बढ़ी और यह सारी दुनिया मे व्यष्टि तथा समष्टि-स्तर की प्रभाव-दृष्टि के कारण अपरिहार्यतः महत्त्वपूर्ण हो उठा। अस्तित्ववाद एक सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली है। इसका मूल मंत्र मनुष्य की सही स्थिति की अर्थहीनता है। 'अस्तित्व का प्रधान अर्थ स्वतन्त्रता है। अस्तित्ववाद सारी स्थितियो के लिए व्यक्ति को ही स्वयमेव उत्तरदायी मानता है। इस दर्शन की आधार-शिला शून्य और नास्ति है। ये विचारक पूरी-की-पूरी दृष्टि और चेतना के मूल में शून्य को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार यह ससार मृत है। यह अतीत-व्यतीत विश्व रूढ़ियों और परम्पराओ में गद-वद ससार है। वस्तुतः जीवन और स्वतन्त्रता का अर्थ 'जो कुछ है या था' से पूर्ण विलगाव है। यह 'मैं' का दूसरे अस्तित्वो के बीच अस्तित्व में होना है, जिसका अनुभव वह दूसरो के बीच नही कर पाता। वस्तुतः एक अस्तित्ववादी के लिए "मैं उन अस्तित्वो को पदार्थ के रूप में नही मान सकता, जो मुझे घेरे हुए हैं और न मैं स्वयं को ही घिरा हुआ अस्तित्व मानता हूँ।··· मैं स्वयं को स्वयं के अस्तित्वमय रूप में नही, अपितु अस्तित्वमय के अपने व्यवहार के रूप में चुनता हूँ"[3]—कहना ही अस्तित्ववाद की सार्थ मौलिकता का प्रमाण है।

कीर्केगार्द के अनुसार अस्तित्व त्रिक्षेत्रीय है—१. लालित्य-क्षेत्रीय, २. नीति-क्षेत्रीय और ३. धर्म-क्षेत्रीय। लालित्य का क्षेत्र इस तिहरेपन में अवरकोटिक, परन्तु अत्यन्त व्यापक है, जो अस्तित्व के नैतिक, धार्मिक स्तरों

---

१. डॉ० धीरेन्द्र मोहन दत्त : 'द चीफ़ करेंट्स ऑव कंटेम्पोरेरी फ़िलॉसफ़ी', पृष्ठ ५०८।

२. एल० रोथ : 'ए कंटेम्पोरेरी मोरेलिस्ट अलबर्ट कामू', फ़िलॉसोफ़ी, १६५५।

३. ज्याँ-पाल सार्त्र : 'बीइंग ऐंड नथिंगनेस', पृष्ठ ५४८।

पर भी वर्तमान रहता है। दूसरी ओर धर्म का क्षेत्र सर्वोच्च है। इन तीनो क्षेत्रो मे क्रमशः आनन्द, कर्म और वेदना की प्रमुखता है। कीर्केगार्द मानव-इतिहास और मानव-चिन्तन को हीगेल द्वारा व्याख्यायित विकास-क्रम से असबद्ध तथा मनुष्य के वैयक्तिक निर्णयो से सबद्ध मानते हैं। ये सत्य को सदैव आत्मगत स्वीकारते हैं। वस्तुनिष्ठ सत्य-स्थापन और प्रयत्न-स्थिति को ये अन्तर्मन की आत्महत्या कहते हैं।[1] फलत. इनके अनुसार हमे अस्तित्व की यथार्थता का बोध सदैव आत्मान्तर से होता है। कीर्केगार्द भौतिकवादिता की छाया का स्पर्श तक नही करते। कीर्केगार्द अधिकारियो, गिरजाघरो और धार्मिक-साम्प्रदायिक सघटना की प्रभुत्व-सत्ताओ का विरोध करते हैं; क्योकि इनके आरोपण से व्यक्ति का आत्मिक विकास अवरुद्ध और ह्रासोन्मुख हो पड़ता है।

कार्ल यास्पर्स ने बड़े-बड़े कल-कारखानों की वर्तमान सभ्यता को रोग माना और बताया कि वस्तुगत निकष पर मनुष्य की निजी परख मनुष्य को मानवीय अस्तित्व की विशेषता से दूर कर देती है। उन्होने मनुष्य के सामने दो मार्ग रखे—या तो मनुष्य अभिमानवश ईश्वर की सत्ता को नकार दे या अपना दुःखी मन उसे ही समर्पित कर दे। वे दर्शन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और अन्यान्य अस्तित्ववादियो के अभिमत की पृष्ठभूमि में ही अपनी विचारणा स्पष्ट करते हैं।[2] वे कीर्केगार्द के अतिवादी निषेधात्मक दृष्टिकोण, वैवाहिक अपवर्त्तन तथा सासारिक जीवन-विषयक मूल्याकन और अस्तित्ववादी दर्शन के प्रत्यक्ष प्रस्थापन से असहमत हैं। उनके अनुसार कीर्केगार्द अपने समसामयिकों को यह स्पष्टत. नही बता सके कि उन्हे क्या करना चाहिए, किन्तु उन्हे यह अनुभव कराने का प्रयत्न किया कि वे गलत मार्ग पर हैं।[3] यास्पर्स कीर्केगार्द की अपेक्षा अपने चिंतन मे अधिक विधेयात्मक हैं।

मार्टिन हाइडेगर भी वस्तुगत ज्ञान के विरोधी थे। वे मनुष्य के इन्द्रिय-प्रत्यक्ष को वस्तुनिष्ठ नही मान कर आत्मनिष्ठ मानते थे तथा मानव के लिए इस जागतिक मायालोक की निरर्थकता और निरुद्देश्यता का साक्षात्कार अपेक्षित समझते थे। वे मानते थे कि अपने जीवन के स्वयकृत निश्चित उद्देश्य से ही मनुष्य निरर्थ वाह्य ससार को अर्थ दे सकता है। हाइडेगर ईश्वरी सत्ता के

१. सोरेन कीर्केगार्द : 'कनक्लूडिंग अनसाइंटिफिक पोस्टस्क्रिप्ट', पृष्ठ ११३।
२. कार्ल यास्पर्स : 'मैन इन मॉडर्न ऐज' द्रष्टव्य।
३. वही, पृष्ठ २०।

नास्ति-भाव के पोषक थे। वे कीर्कगार्द के आत्मगत अस्तित्व की अन्तर्बुद्धि—विशेषतः चिन्ता-उद्वेग (केयर ऑर कन्सर्न), त्रास (ड्रेड), आश्चर्य (एवी) जैसे सावेगिक भाव-रिंगणों से प्रभावित थे। लेकिन कीर्कगार्द जहाँ 'आत्मपरक' को ही सत्य स्वीकारते थे वहाँ हाइडेगर 'आत्मपरक' के भीतर-बाहर सत्यान्वेषण करने के प्रयासी थे। उनके अनुसार सत्य का सत्त्व ही स्वतंत्रता है।[1] स्वतंत्रता से उनका अभिप्राय 'होने देना' से है।[2] वस्तुतः 'जो है' के अभिव्यंजन के तद् सत्य पर ही मनुष्य का वर्ताव और व्यावहारिक जीवन निर्भर है।[3]

ज्याँ-पाल सार्त्र के अनुसार मनुष्य-जीवन का कोई पूर्व-निर्धारित अर्थ नही है। जीवन जीने आने के पूर्व कुछ नही है। इसे अर्थ देना तो मनुष्य पर निर्भर है और जिस अर्थ को मनुष्य चुनता है उसके अतिरिक्त और कोई मूल्य भी नही है।[4] उनका मैथ्यू नामक पात्र सोचता है : "मनुष्य (प्राणी) के लिए विद्यमान होना स्वयं को चुनना है; उसके पास ऐसी कोई भी चीज अंतस् के बाहर या भीतर से नहीं आती, जिसे वह पाया स्वीकार सके। इस प्रकार स्वतन्त्रता विद्यमान होना मात्र नही है, बल्कि एक मानव का विद्यमान होना है अर्थात् उसका 'न होना' है!"[5] इस अस्तित्व-बोध के अभाव मे उसकी स्थिति असंभव है। 'इंटिमेसी' कहानी मे वे कहते हैं—"बाढ तुम्हे वहा ले जाती है। यही जीवन है। हम न समझते हैं, न निर्णय दे सकते हैं। हम केवल वह सकते हैं।"[6] सार्त्र के अनुसार व्यक्ति की आत्मनिष्ठता ही यथार्थतः अस्तित्ववादियो का प्रयाण-बिन्दु है और यह सही अर्थों में दार्शनिक कारणो के लिए है। ऐसा नहीं है कि अस्तित्ववादी बुर्जुआ हैं, बल्कि ऐसा इसलिए है कि अस्तित्ववादी ढेर सारे सुन्दर सिद्धान्तो की जगह एक सत्य-निर्भर मतवाद चाहते हैं।···वस्तुतः यहां इसके अतिरिक्त और कोई सत्य नही है कि 'मैं

---

१. मार्टिन हाइडेगर : 'एक्जिस्टेंस एँड बीइंग', पृष्ट ३३७।
२. वही, पृष्ठ ३३३।
३. वही, पृष्ठ ३३६।
४. ज्याँ-पाल सार्त्र : 'एक्जिस्टेंशियलिज्म एँड ह्यूमन एमोशन', पृष्ठ ४९।
५. ज्याँ-पाल सार्त्र : 'ल सुर्सी' : 'द रोड्स टु फ्रीडम' (अँगरेजी अनुवाद ३ कृतियों का, न्यूयार्क, नोफ १९४७-१९५१)।
६. प्रकाशचन्द्र गुप्त : 'सार्त्र की कला', 'आलोचना, अक्टूबर '६३, पृष्ठ ७० पर उद्धृत।

सोचता हूँ, इसलिए मैं अस्तित्व रखता हूँ।'[1] प्रतिश्रुति (कमिटमेंट) के विषय में सार्त्र की मान्यता एक-दूसरे की स्थिति से बँधे उत्तरदायी मनुष्य, नास्ति-भाव से अविच्छिन्नतः जुड़े मनुष्य, अपने चारों ओर मूल्य, आदर्श, संकेत और सही निर्देश के अभाव से ग्रस्त मनुष्य तथा अपनी परिस्थितियों में निरन्तर स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व के साथ संघर्ष कर रहे मनुष्य की है, जो ईमानदारी-भरी प्रतिश्रुति के साथ हैं या नहीं, इसका निर्णय भी खुद वे ही कर सकते हैं।[2] सार्त्र ईश्वर के अस्तित्व को नकारते हुए कहते हैं कि "यदि ईश्वर अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य पर निर्भर नहीं है तो उसमें अस्तित्व हो ही नहीं सकता; क्योंकि अस्ति-सत्ता केवल उनमें होती है जो अपनी सत्ता के लिए अन्यान्य उपादानों पर निर्भर हैं।"[3] वे मानवीयता को ईश्वर-निर्मित नहीं मानते हैं। उनके अनुसार इस विभु-विहीन विश्व में मनुष्य निजी मानवीयता स्वतः गढ़ता है। पर अन्य अस्तित्ववादियों से सार्त्र का विभेदक वैशिष्ट्य यह है कि अन्तर्जगत् की परिधि में सीमित अस्तित्ववाद का खुद एक प्रतिष्ठापक-अनुयायी व्यक्तित्व होते हुए भी उन्होंने चिन्तन के उत्तर-काल में 'सुन्दरम्' को 'शिवम्' से सूत्रबद्ध कर दिया।

उक्त विचारकों के पारस्परिक मत-वैभिन्न्य को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि आस्तिक-नास्तिक, जर्मन-फ्रेंच, पुराने-नये कई प्रकार के अस्तित्ववादियों ने अस्तित्ववादी दर्शन को एक ऐसा वाद्य-वृन्द (ऑर्केस्ट्रा) बना दिया है, जिसमें सम-भग और विसंवादी स्वरों की कमी नहीं है।[4]

'नयी कहानी' के विचारगत प्रयोग का मूलाधार अस्तित्ववाद का नास्तिक-पथ है। नास्तिक अस्तित्ववाद की चार विशेषताएँ हैं।[5]—१. यह निजी अस्तित्व के लिए विश्व-प्रकृति अथवा निरपेक्ष सत्ता (एसेंस) के अस्वीकार का दर्शन है। २. यह राजनीति, संस्कृति, आचार, धर्म, समाज—सभी सन्दर्भों

---

१. ज्याँ-पाल सार्त्र : 'एक्जिस्टेंशियलिज्म एँड ह्यूमन एमोशन', पृष्ठ ३६।

२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आधुनिक संकट का शीर्ष व्याख्याता : सार्त्र', 'धर्मयुग', ३ जनवरी '६५, पृष्ठ ४६।

३. ज्याँ-पाल सार्त्र : 'बीइंग एँड नथिंगनेस', हेजेल ई० बर्न्स की संपादकीय भूमिका, पृष्ठ ३०।

४. डॉ० कुमार विमल : 'अस्तित्ववादी सौन्दर्यशास्त्र', 'आलोचना', अप्रैल-जून '६६, पृष्ठ ३०।

५. डी० एम० दत्त : 'द चीफ करेंट्स अव कंटेम्पोरेरी फिलॉसफी', पृष्ठ ५०६-५१०।

में सर्वातिशायी स्वातंत्र्य का पक्ष-पोषक (एडवोकेट) तथा अधिकारी वर्गों और शाश्वत मूल्यों के प्रति विद्रोह का दर्शन है। ३. यह प्रमाण-मीमांसा (एपिस्टेमोलॉजी) में हेतुवाद, बुद्धिवाद और जड़वाद का विरोधी दर्शन है। ४. यह ज्ञान प्राप्त करने का निषेधक तथा मनुष्य को अस्तित्ववान् बनाने—'एक्जिस्टेंस प्रिसीड्स एसेंस'[1]—वाला दर्शन है।

'नयी कहानी' के विचारगत प्रयोग पर विशेषतः ज्याँ-पाल सार्त्र और ज्याँ जेने जैसे अस्तित्ववादी विचारकों का प्रभाव पड़ा है। सार्त्र जीवन को निरन्तर 'स्व' का आह्वान मानते हैं। उनके तर्कानुसार रूप, नक्श, आकार, रचाव यथार्थ हैं। उनकी मान्यता पुरा-मूल्यों को सन्देह और अविश्वास से देखने की है। वे इसे साहित्यकार का जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं। जेने सार्त्र से भी आगे बढ़कर मानव के मुख की अपेक्षा मानव के मुखौटे को अधिक वैश्वासिक-प्रामाणिक मानते हैं। उनके अनुसार दृष्टिगोचर होने वाला यथार्थ और भी आगे का यथार्थ है। इस विचार-क्रम में अग्रसित होकर सार्त्र और जेने—दोनों ही मनुष्य की वास्तविक निरर्थ स्थिति का बोध करते हुए उसके अस्तित्वमय 'होने' की स्थापना करते हैं। अस्तित्ववाद की मानव-यातना की समस्या, मृत्यु और मानवीय पतन की समस्या, मनुष्य और ईश्वर की आपसी सम्बन्ध-विच्छिन्नता तथा त्रास से मुक्ति की मानवीय चेष्टा जैसी एकाधिक मान्यताओं के आधार पर क्षमता-बोध, पुरा-मूल्यों का नकार, संत्रास और मृत्यु-बोध जैसे चार विचारगत प्रयोग स्पष्ट होते हैं। अतः यह कहना सर्वथा अज्ञता है कि 'नयी कहानी' का अपना न कोई दर्शन है और न वैचारिक स्तर है, जो है भी वह सार्त्र, कामू या काफ्का आदि से उधार लिया गया है, उसे भारतीय सन्दर्भ में देखना भूल है।"[2] सच पूछिए तो जीवन-दर्शनों और विचारों पर कभी किसी एक का अधिकार नहीं रहा है। फिर स्वतंत्र भारतीय परिवेश में धीरे-धीरे एकजुट उत्पन्न अनेक विपाक्त समस्याओं से मुक्ति दिलाने का इससे अधिक उपयुक्त कोई दूसरा विचार या जीवन-दर्शन न तो तब हो सकता था और न अब ही है। 'नयी कहानी' की नयी संवेदना ने इसी विचार-धारा से अपनी धमनी में रक्त का महत्त्व रखने वाले तत्त्व प्राप्त किये।[3] उसने समय

---

१. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा : 'हिन्दी साहित्य-कोश', खंड–१ के पृष्ठ ८५ पर उद्धृत।
२. सुरेश सिन्हा : 'नयी कहानी की मूल संवेदना', पृष्ठ ५५।
३. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना', 'निकष' [illegible] '६८, पृष्ठ २९।

पर समय की अनिवार्य मांग को पहचाना। फलतः 'नयी कहानी' के चारों विचारगत प्रयोग अपने परिवर्तित वातावरण के अनुकूल मानवीय पीड़ा से मुक्ति के लिए प्रयास करने वाली विचारणा के प्रयोग हैं।

क्षमता-बोध का विचारगत प्रयोग

क्षमता-बोध की असल भित्ति स्वतंत्र अस्तित्व की स्वीकार्यता है। यहाँ अपने अस्तित्व के स्वीकार-हेतु ही आत्म-स्वातंत्र्य से परिचित व्यक्ति अपनी क्षमता को जीवन्त रखने के लिए कहीं-न-कहीं प्रतिबद्ध होता है। क्षमता-बोध में मनुष्य और उसका व्यक्तित्व जिजीविषा से प्रेरित होकर आखिरी क्षण तक संघर्ष करता रहता है। वह सम्पूर्ण मानवीय शक्ति को अपने भीतर से प्रदीप्त-उत्प्रेरित कर उठता है, जिससे अस्तित्व की रक्षा संभव हो। हीन-से-हीन स्थिति में भी वह इसी विचार-बिन्दु पर केन्द्रित होकर समर्थ बना रहता है। अतः क्षमता-बोध स्थिति को स्वीकारने की वह क्षमता है, जिसमें यातना, मृत्यु, अन्तर्विरोध, भयावहता आदि को देख-सह पाने की यथार्थता सम्मिलित है। क्षमता-बोधी व्यक्ति अपने, अपने तात्कालिक परिवेश तथा अपने समय की त्रिक्-स्तरीयता पर जीवन जीता है। 'नयी कहानी' में पात्र जिजीविषा की लड़ाई लड़ते हैं। जिजीविषा का यह समझौता किसी दूसरे व्यक्ति से न होकर अपने-आप से होता है, क्योंकि यह लौकिक या पारलौकिक शक्ति से उपलब्ध न होकर व्यक्ति में ही विहित-निहित है। क्षमता-बोध मृत्यु को भी कठोर वैचारिक स्तर पर स्वीकारता है।

क्षमता-बोध को प्रश्रय देने वाली विशेष कहानियाँ 'ज़िन्दगी और जोंक' (अमरकान्त), 'नन्हों' (शिवप्रसाद सिंह), 'मांस का दरिया' (कमलेश्वर), और 'आदमी का आदमी' (काशीनाथ सिंह) हैं।

अमरकान्त की 'ज़िन्दगी और जोंक' का रजुआ उद्दाम जिजीविषा का परिचय प्रस्तुत करने वाला पात्र है। वह परिस्थिति की प्रत्येक मार सहता है, पर अपने अस्तित्व से कभी विमुख नहीं होता। उसे चोर बनाया जाता है, कुटम्मस करके पीटा जाता है, कहा जाता है कि "बता साले, साड़ी कहाँ रखी? नहीं वह मार पड़ेगी कि नानी याद आ जाएगी।"[1] जैसे ही उसे पुलिस के सिपुर्द करने का निश्चय किया जाता है कि शिवनाथ बाबू को साड़ी मिल जाती है। पर कभी न भूली जाने वाली इस बेशर्म घटना के बाद भी रजुआ

---

१. अमरकान्त : 'ज़िन्दगी और जोंक, पृष्ठ ११६

उस वातावरण से भाग नहीं खड़ा होता ! वह इतना अस्तित्व-सम्पन्न और क्षमता-बोध से जुड़ा है कि उस मुहल्ले में ही टिका रह जाता है। कहानीकार का यह वाक्य कि "कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि उस दिन की पिटाई के बाद भी खंडहर का वह भिखमंगा मुहल्ले में टिके रहने की हिम्मत कैसे कर सका ?"[1] उसकी क्षमता-सम्पन्नता का अद्भुत प्रमाण है। रजुआ बाद में शिवनाथ बाबू के यहाँ रहने लगता है, 'मैं' के यहाँ भी उनकी श्रीमती जी के कहने से आता-जाता और काम करता है। वह अपनी रंकता और खानाबदोशी में भी जीवन का रस लेता रहता है। पतिया की स्त्री को वह 'सलाम हो भौजी' कहकर मजा लेता तथा उससे गालियाँ सुनकर गधे की तरह 'ढीचू-ढीचू' कर बैठता है। वह एक पगली को अपने साथ ले आता है। हैजे जैसी महामारी से भी वह जी उठता है। सचमुच रजुआ 'एक-एक क्षण दाँत से पकड़ कर जी रहा है।'[2] घोर जिजीविषा है उसमें ! वह अपने सर पर कौवा बैठ जाने पर 'अशकुन' को टालने के लिए 'मैं' पात्र से चाचा के नाम अपने मर जाने की झूठी चिट्ठी लिखवाता और बाद में स्वयं उपस्थित होकर एक कार्ड से अपने जिन्दा होने की खबर भी भिजवाता है। कथान्त में कथाकार का यह वाक्य कि 'वह जिन्दगी से जोंक की तरह चिमटा था'[3] वैचारिक रूप में उसके क्षमता-बोध का ही परिचायक है। पूरी कहानी में रजुआ अस्तित्व-वान् बने रहने का प्रयासी है। वह अपने जिस 'होने' को काष्ठागत महत्त्व देता है, उस 'होने' के सन्दर्भ में ही पाठकों को उसके क्षमता-बोध का परिचय प्राप्त होता है।

शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हो' भी वैचारिक दृष्टि से क्षमता-बोध की कहानी है। नन्हो कुँवारी से परिणीता और परिणीता से विधवा होती है। यहाँ देवर से पूर्व-आकर्षण रखने पर भी वह सुलझी रह जाती है और अन्त में देवर का दिया रूमाल वापस करती हुई कहती है—"बाबू ने तुम्हारा मुँह देख कर मुझे अनदेखा सुहाग सौंपा था, तुम्हारी माँ ने उसी के अमर रहने के लिए रुपये दिये थे आशीर्वाद में। बड़ों ने जो दिया उसे मैंने माथे पर ले लिया। मैं कम-जोर थी बाबू, भाग्य से हार गयी। पर आज तो मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ, आज मुझे तुम हारने मत दो। तुम्हारा रूमाल मेरे पाँव बाँध देता है, लाला,

---

१. अमरकान्त : जिन्दगी और जोंक, पृष्ठ १२१।
२. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ २०६।
३. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ १४३।

इसी से लौटा रहो हूँ,'''।"[1] नन्हो की शादी के लिए नन्हो के पिता ने जिस वर को देखा था वह नन्हों का पति न होकर देवर बन गया। शादी प्रपंचतः रामसुभग से न होकर उसके बड़े भाई से हुई। उसके जीवन पर यौवन के प्रथम चरण में यह पहली मार थी। उसके पगु पति के मृत हो जाने से उस पर दुहरी मार पड़ी। तब उसका देवर उसे अपनाने के लिए उपस्थित हुआ, लेकिन उसने इतनी मारों के बाद भी टूटना नहीं स्वीकारा और देवर की बाँह नहीं गह अपने क्षमता-बोध का परिचय दिया—'मैं अपने पैरों पर खड़ी हूँ।' परिस्थितियों के प्रति सहनशीलता, जिजीविषा और निज पर विश्वास—इन सबने मिल-जुल कर ही जैसे 'नन्हों' का क्षमता-बोध मिरजा है।

कमलेश्वर की 'मास का दरिया' एक दूसरी महिला के क्षमता-बोध की कहानी है। जुगनू कोठे पर रहने वाली बाजारू औरत है। कहानी का सारा वातावरण गली और कोठे का ही है। अपने अत्यन्त दुर्बल स्वास्थ्य के कारण जुगनू तपेदिक की रोगिणी होने लगती है। वह शीशे मे अपना बिम्ब निरख घबड़ा उठती है—"अब क्या होगा ? कैसे बीतेगी यह पहाड-सी बीमार जिन्दगी ? सहारा'''कोई और सहारा भी तो नहीं, कोई हुनर भी तो नहीं'''।"[2] तब वह 'सेनिटोरियम' मे दाखिल होती है। किंचित् स्वास्थ्य-लाभ कर जब वह 'सेनिटोरियम' से लौटती है तब पुलिस वाले उसे तग करने लगते हैं। वे उससे पैसे चाहते हैं। इधर जुगनू का शरीर अशक्त हो चुका है और उपचार मे कर्ज का बोझ भी चढ चुका है, जिसे वह नुस्खे की पीठ पर विधिवत् टाँके हुई है। उसका एक कर्ज़दार कँवरजीत होटल वाला है। वह प्रायः अपने पैसे उधाने उसके पास आया करता है। जुगनू की जाँघ पर एक फोड़ा निकल आया है। बीमारी मे लिये पैसे को चुकाने के लिए वह उस फोड़े के रहते हुए भी कँवरजीत को महन करती है। उसका झोलेवाला 'आपसी का आदमी' लौट जाता है, लेकिन कँवरजीत को वह 'अरी अम्मारी। मार डाला'[3] कह कर भी झेल जाती है। कँवरजीत चला जाता है तो वह फर्से को पानी लाने को कहती है। फिर नीली कमीज और थैला वाले 'आपसी का आदमी' को, जिसको कँवरजीत के आने के पहले लौटा दिया था, बुलाने के

१. डा० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ २६।
२. कमलेश्वर : 'मांस का दरिया', पृष्ठ २८।
३. वही, पृष्ठ ३६।

लिए एक बार कहकर भी रोक देती है। वह अपने फोड़े को हलके-से दाब देती है। उससे मवाद निकलता है और दर्द से उसके चेहरे पर पसीना छल-छला जाता है। जुगनू की यह कहानी बीमारी में लिये गये रुपयों की चुकती के लिए अपनी टूटी हुई शारीरिक स्थिति में भी, जाँघ में फोड़े के उभर आने पर भी उन कर्जदारों को अपने ऊपर झेलने-सहने की कहानी है, जिसके मूल में जिजीविषा-परक ठोस क्षमता-बोध है। यहाँ अपनी दुर्बल स्थिति का स्वीकरण है और आत्म की भरपूर सामर्थ्य का प्रदर्शन भी। वह दोनों दर्दों को एक साथ स्वीकारती है, परिस्थितियों से झुकती नहीं, हार नहीं मानती और निजी क्षमता ज्ञापित करती संघर्षरत रहती है।

काशीनाथ सिंह की कहानी 'आदमी का आदमी' वैचारिक स्तर पर क्षमता-बोध की रचना है। इसके नायक में भी स्थिति का स्वीकार और जिजीविषा का भाव है। वह आदमी, जो अस्सी चौराहे की सड़क पर पिछले डेढ़ वर्षों से खड़ा रहा है, जो भीड़ का हिस्सा नहीं है, जो एक हाथ में डंडा रख कर ललकारता और दूसरा हाथ खाली रखकर सलाम करता है, अपनी विविध चलित परिस्थितियों में भी जीवन के प्रति पूरी तरह अनुरक्त है। चुनाव के सन्दर्भ में उसका उपयोग भिन्न-भिन्न दलों के लोग करते हैं। एक बार कोतवाल से उसके पिट जाने के विषय में जब 'मैं' पात्र उसके 'खातिर किये जाने' की बात कहता है तब उसका तर्क सुनकर उसे लगता है कि "अपने लिए उसके पास ठोस सबूत है।"[1] वह भीतर से अपने अस्तित्व के विषय में सतर्क है। वह चौराहे पर भटकने वाले इन्सान से परचून का दूकानदार बन जाता है, जहाँ वह व्यापक पैमाने पर सबको उधार देने के लिए आत्मना स्वतंत्र है, "ओह साहब ! आप तो कभी आते ही नहीं।"[2] कहने तक के लिए स्वतंत्र है। वह सम्यक् आत्मनिष्ठा में अस्तित्ववान् है। वस्तु-जगत् में अपने लिए हुए परिवर्तन के बावजूद वह अपना क्षमता-बोध बनाये रखता है। दूकान छुड़ाये जाने पर वह पुनः सड़क पर चला जाता है। शायद उसकी दूकान पर दूसरे का कब्जा हो जाता है। शायद यह कोई दूसरा न होकर उसका भतीजा होता है। और अन्ततः कथाकार के शब्दों में "भीड़ उसके खिलाफ तैयार है, मगर लाचार है।"[3] भीड़ की इस लाचारी का

---

१. काशीनाथ सिंह : 'आदमी का आदमी', 'सारिका', जनवरी '६८, पृष्ठ २६।
२. वही, पृष्ठ २७।
३. वही, पृष्ठ २७।

धारण उस अकेले आदमी का वही क्षमता-बोध ही है, जिसे वह पागल और आवारागर्द की तरह जीयी जाने वाने वाली जिन्दगी में भी बनाये रखता है। दूकान से हटा दिये जाने पर भी वह टूटता नहीं, बल्कि जीवन को उसी आस्था मे जीता है। अपने अस्तित्व के सन्दर्भ में उसका आत्मकेन्द्रण अद्भुत है। पूरी कहानी में उसका संलाप उसकी स्वतन्त्रानुभूति का प्रमाण है। हाइडेगर ने जो मनुष्य के संसार में रहने और अस्तित्व रखने के लिए, 'होने' के उपयोगी और व्यावहारिक आवश्यकतावश प्रसंगोपेत पहलुओं के लिए प्रत्येक पल को जानने और उस पर पड़े रहने की बात बतायी है और इस प्रकार वैसा विशेष 'होने' के लिए जो वचना मे भी जीना स्वीकार किया है,[1] वह 'आदमी का आदमी' मे प्रत्यक्षतः दृश्य है।

मृत्यु के सन्दर्भ में क्षमता-बोध का वैचारिक प्रयोग शिवप्रसाद सिंह की 'मुरदा सराय' और सुरेश सिन्हा की 'मृत्यु और······' जैसी कहानियों में द्रष्टव्य है।

'मुरदा सराय' में अध्यापक हरिचरण की प्राणाधार पत्नी की मृत्यु हो जाती है और उसका नवजात शिशु भी अकाल ही काल-कवलित हो जाता है। हरिचरण मृत्यु के भय से बुरी तरह प्रभावित और ग्रस्त हो जाता है—'मृत्यु दुनिया का सबसे बड़ा सत्य है—मैं बार-बार अपने मन से पूछता।'[2] उसे जड वस्तु में भी मौत की उपस्थिति का अहसास होता है—'मुरदा सराय की सफेद दीवारें, उसकी इधर-उधर उभरी लाल-लाल बदरंग ईंटें—जैसे मौत अट्टहास करके हँस रही हों।'[3] वह भूत-प्रेत से भी जितना कभी भीत नहीं हुआ उतना अधिक मृत्यु से सन्त्रस्त हो जाता है···"पर जाने क्या था चारों ओर, धूप में चिपचिपी चमक की तरह, दीवारो में मूक हादसे की तरह, पत्तियो मे अदृश्य कम्प की तरह, सराय की मेहराबो मे छिपे बंकिम घुमाव की तरह, जो मेरी आत्मा मे लाखोंलाख अबाबील पंछियो की तरह चीत्कार कर रहा था।···यह मौत सब-कुछ लीलकर अब मुझे भी लीलने आ रही है क्या?"[4] हरिचरण स्वीकारता है कि 'मौत मेरे मन मे अपनी पूरी शक्ति के साथ घँस गयी थी।'[5] वही मरण, जो पत्तो को छूकर शान्त कर देता है,

---

१. डॉ० धीरेन्द्र मोहन दत्त : 'द चीफ करेंट्स ऑव कंटेम्पोरेरी फिलॉसफी', पृष्ठ ५३५-५३६।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदा सराय', पृष्ठ १३३।
३. वही, पृष्ठ १३४।
४. वही, पृष्ठ १३४।
५. वही, पृष्ठ १३६।

वस्तुओं को पिघला कर रंग-रहित द्रव की भाँति एक में गडमड कर देता है, पैरों में धसक और कम्प लिये चलता है तथा गंध में बेहोशी।[1] पर जब हरिचरण मुरदा सराय में सूरदास और सुलक्खी का जीवन देखता तथा सुलक्खी की गोद में आने वाले शिशु का भविष्यत्-प्रत्यक्ष करता है तब उसका मृत्यु-बोध जिजीविषा के क्षमता-बोध से पराजित हो उठता है—"हम मौत को रोक नहीं पाते इसीलिए तो उससे भय लगता है? पर मुरदा सराय की यह जिन्दगी भी क्या हमारे रोके रुक सकेगी?"[2] मुरदा पड़ाव की यह सही जानकारी, जिससे हरिचरण मृत्युभय से परित्राण पा लेता है, क्षमता-बोध के स्तर से ही उभरती है।

सुरेश सिन्हा की 'मृत्यु और···' कहानी के अन्त की ये पंक्तियाँ "···उससे *नितान्त असम्पृक्त वह अनुभव करता है कि प्रत्येक पृष्ठ पर पिताश्री जीवित* हैं। उनकी मृत्यु नहीं हुई है। वे तब तक जीवित रहेंगे, जब तक उन्हें जीवित *रखा जाएगा और यही एक सत्य है, शेष सभी मरीचिकाएँ हैं*···"[3] मृत्यु को एक ठोस वैचारिक स्तर पर झेलने और उसके स्वरूप को अपने क्षमता-बोध से सद्य: परिवर्तित कर देने की जानकारी देती हैं। सार्त्र के अनुसार यह मृत्यु हमारे प्रियपात्र को भले छीन सकती है, पर उसके प्रति हमारी चेतना-पूर्ण कर्त्तव्य-निष्ठा को नहीं मिटा सकती।

उपर्युक्त दृष्टान्तों के अतिरिक्त 'असमर्थ हिलता हाथ' (अमरकान्त), 'प्रतीक्षा', 'टूटना' (राजेन्द्र यादव), 'जख्म' (मोहन राकेश)' 'डेढ़ इंच ऊपर' (निर्मल वर्मा), 'बिन्दा महाराज' (शिवप्रसाद सिंह), 'आकाश का दबाव' (अवधनारायण सिंह), 'नौ साल छोटी पत्नी' (रवीन्द्र कालिया) कहानियों में भी *क्षमता-बोध के विचारगत प्रयोग* हुए हैं। *क्षमता-बोध का यह प्रयोग* वैचारिक स्तर पर 'नयी कहानी' के अधिकाधिक कथाकारों द्वारा किया गया है।

पुरा-मूल्यों के अस्वीकार का विचारगत प्रयोग

'नयी कहानी' ने प्राचीनता से समर्थित विचारों को केवल समर्थित होते रहने के लिए मान्यता न देकर पुरा-मूल्यों के शीश-महल को अस्वीकृत-बहिष्कृत करते हुए उसे जर्जर खंडहर में बदल कर परम्परा से सर्वथा वर्जित चले

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदा सराय', पृष्ठ १४०।
२. वही, पृष्ठ १४२।
३. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ १०३।

अने प्रदेशों तक में प्रवेश किया है। इस विचारगत प्रयोग के केन्द्र में यह मान्यता है कि "प्राचीनतावादी गरिमा? झूठ है। कोई नहीं जानता वह कभी थी भी या नहीं। अगर हो भी तो वह आज हमारी कोई मदद नहीं कर सकती। नैतिकता? बकवास है। पिछले सामाजिक मूल्यों को आज के विकसित समाज पर लादने का दुराग्रह है। कौन-सा विज्ञान कहता है कि व्यावहारिक साहसहीनता और शारीरिक नपुंसकता को ही नैतिकता कहते हैं? मर्यादा अपने बचाव और दूसरों की आँखों में धूल झोंकने का नाम मर्यादा है।"[1] 'नयी कहानी' में इस पुरा-मूल्य के प्रति आत्यन्तिक घृणा है, बेहद नफरत है। इसीलिए यह अस्वीकार निषेधात्मक तो है ही, साथ ही समसामयिकता में नवीन मूल्य की स्थापना के लिए विधेयात्मक भी है।

इस बदली हुई मनीषा में अस्तित्ववाद से सबद्ध पुरा-मूल्य के नकार को धर्म-विषयक, समाज-विषयक, दाम्पत्य-विषयक और यौन-विषयक—पाँच वर्गीकृत सन्दर्भों में देखा जा सकता है।

'नयी कहानी' ने रूढ़ हिन्दू विचार-धारा का समर्थ जीने वाले धर्म-विषयक पुरा-मूल्यों का अस्वीकार किया है। पुरा-मूल्यों का अर्थ यहाँ रूढ़ हिन्दू पद्धति और प्रवृत्ति से है। पुराना कथा-साहित्य हिन्दू संस्कारों से रचित-निर्मित है। वहाँ धर्म-विषयक पुरा-मूल्य पात्रों के घोर आदर्शवाद और सम्बन्ध-निर्वाह की अतिरंजना का रहा है। यहाँ तक कि इसे शाश्वत मूल्य बना दिया गया। इससे नियन्त्रित मनुष्य अपने सामान्य जीवन में न जीकर आरोपित जिन्दगी में जीता रहा। यह मूल्य भाई को सर्वस्व-न्योछावर करने वाले त्यागी के रूप में कथाङ्कित करने को बाध्य करता था तो पति के लिए पत्नी को निजी सम्पत्ति समझने वाले हकदार के रूप में; मित्र को मित्रतावश प्राण की बाजी लगाने वाले के रूप में प्रस्तुत होने को बाध्य करता था तो पडोसी को सेवक की तरह समय-समय पर काम आते रहने वाले के रूप में, साधुओं को ठौर-ठौर रमने वाले योगी के रूप में उपस्थित होने को बाध्य करता था तो प्रेमी को सर्द आहें भर कर, घुट-घुट कर जीने वाले त्यागी के रूप में; वेश्या के लिए प्राण देने वाले गुंडों को सद्गति पाते हुए निरूपित करने को बाध्य करता था तो तन-व्यवसायिकर वेश्यर को आत्मा को सदैव सँजोकर सुरक्षित रखने वाली के रूप में; पिता को सदैव पुत्र-पुत्री और परिवार के प्रति शासक-रक्षक के रूप में प्रस्तुत होने को बाध्य करता था तो माता को सदैव ईश्वर-भक्तिन के रूप

१. राजेन्द्र यादव : 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २३।

मे।[1] यह पुरा-मूल्य धर्मतः सत् और असत् के कोण को नुकीला और तीखा बनाता था। इसी पुरा-मूल्य के प्रभाववश पुरानी अधिकाधिक कहानियों की नारी पात्राएँ हिन्दू पत्नियाँ, हिन्दू बहनें, हिन्दू ननदें, हिन्दू सासें, मुसलमान वेश्याएँ और ईसाई कुलटाएँ थी। पुरुष-पात्र हिन्दू पति, हिन्दू भाई, हिन्दू ससुर, मुसलमान गुंडे और भ्रष्ट ईसाई थे। इस हिन्दूपन के व्यामोह में कहानी-लेखक केवल हिन्दू बने रह गये। उन्होंने मुसलमान पात्रों का स्पर्श तक नही किया (प्रेमचन्द अपवाद रहे)। यदि अपेक्षित ही हुआ तो एकाध मुसलमान वेश्या या पतित किस्म के ईसाई को उठा लिया गया।[2]

धार्मिक हिन्दूपन की पुरा-मूल्यवत्ता के अस्वीकार का उदाहरण भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' कहानी है। इसमें पुरा-मूल्य के आधार पर माता को जिस संस्कार में उपस्थित किया जा सकता था, उसको नकारा गया है। माँ को बरामदे मे बैठाना तथा गुसलखाने के रास्ते बैठक में भेजना माँ के पुरा-मौल्यिक संस्कार का खंडन है। यहाँ माँ भक्तिन के रूप में न रहने दी जाकर अपना पुराना संस्कार त्यागती हुई पुत्र के साहब से हाथ मिलाने के लिए बाध्य की जाती है—"माँ, हाथ मिलाओ।" "पर हाथ कैसे मिलाती! दायें हाथ में तो माला थी। घबराहट में माँ ने बायाँ हाथ ही साहब के दायें हाथ मे रख दिया। शामनाथ दिल-ही-दिल में जल उठे। देशी अफसरों की स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।"[3] साहब को प्रसन्न करने के लिए इस माँ से विवाह का पंजाबी गीत भी सुनवाया जाता है और अपनी पदोन्नति के लिए फुलकारी काढ़ देने तक की शर्त करवायी जाती है। इस प्रकार 'चीफ की दावत' की माँ के व्यक्तित्व में पुरा-मूल्यों का निर्मम अस्वीकार स्पष्ट है।

कमलेश्वर की कहानी 'पराया शहर' का पिता दुर्गादयाल भी हिन्दू-प्रवृत्ति के पुरा-मौल्यिक संस्कार का सफाया करने वाले के रूप मे चित्रित हुआ है। यहाँ पिता संस्कारी और शासक-रूप में चित्रित नही होकर उस लफंगे के रूप में चित्रित है, जिसकी शोहरत का ध्यान आते ही पुत्र के कानों में एक बहुत पुरानी आवाज़ हथौड़े मारने लगती है—"है कोई माँ का लाल, जो जमानत दे दे?"[4] 'पराया शहर' का पिता बदमाश है। वह एक परिचित

---

१. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ २२।
२. वही, पृष्ठ २२-२३।
३. भीष्म साहनी : 'चीफ़ की दावत', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २२७।
४. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ १३५।

व्यक्ति की पुत्री के विवाह में जेवर बनवाने के लिए रुपये लेता है और फिर लापता हो जाता है। उसके विषय मे उसके बेटे सुखवीर के सामने ही एक तीसरा आदमी कहता है—"पुलिस में रिपोर्ट कीजिए साले को बँधवा दीजिए।"[1] यह पिता हिन्दू आदर्शों का पिता न होकर सामान्य दोषपूर्ण मनुष्य के रूप में चित्रित है, जिसमें परम्परित मूल्य का सोलहों आने अस्वीकार है। इस कोटि के मूल्य-भंग की कहानी गिरिराज किशोर की 'पगडंडियाँ' भी है।

हिन्दूपन के अतिशयतावादी आग्रह और मुसलमान पात्रो के अवर-कोटिक चयन की पुरानी मूल्यवत्ता का इनकार शिवप्रसाद सिंह की 'किसकी आँखें'[2] कहानी मे द्रष्टव्य है। 'किसकी आँखें' मे अशरफ चाचा प्रशंस्य मान-वीय चरित्र के रूप मे उभरे हैं। इस कहानी में मुसलमान पात्रो के प्रति पूर्वग्रस्त हीन मूल्य का निषेध है। शिवप्रसाद सिंह ने 'कृश्नचन्दर' की तरह हिन्दू और मुसलमान को एक साथ दोषी ठहराने का प्रयास नही किया है। 'मैं' पात्र के पिता की दोषपूर्ण दृष्टि सहसा पाठकीय चेतना मे धँस जाती है। अशरफ चाचा का व्यक्तित्व उस प्रबुद्ध मानव का है, जो बड़ी दृढ़ता के साथ हर कही न्याय चाहता है। इसीलिए अशरफ चाचा चन्द्रदेव द्वारा शिकायत किये जाने पर चाबुक फटकारते सीधे सकीना के यहाँ चले जाते हैं और बिट्टो से नाच करने को कहते हैं। कहानी मे चन्द्रदेव और शानू पंडित—दोनो हिन्दुओ को ही दोषी बनाया गया है। अशरफ चाचा उस महती मानवीयता के पक्षधर हैं, जिसके प्रति वे कहते हैं—"मैंने आज तक कभी आदमी को मजहब की तराजू पर नही तौला, पंडित! मैं तो यही समझता था कि मुकद्दस माँ के दरबार में सभी बच्चे बराबर हैं। वहाँ जात-कौम का कोई फर्क नही होता।"[3] जमीरन चाची का चरित्र भी पूर्ण वात्सल्य से भरा है। इस प्रकार इस कहानी मे मुसलमान पात्रो का सही मानवीय रूप में चित्रण धर्म-विषयक पुरातन मूल्यों का जड से उच्छेद कर देता है।

'नयी कहानी' मे समाज-विषयक शाश्वत मूल्य का अस्वीकार भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूप में हुआ है। पहले पात्रो के नियति-प्रदत्त सार्थक क्षणो मे कही

१. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ १४०।
२. यह कहानी 'नयी कहानियाँ' में 'ये आँखें किसकी हैं' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी।
३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदा सराय', पृष्ठ ६३।

ो के लाटरी खुलने और इनाम मिलने या किसी के गोली का निशाना बन कर शहीद हो जाने जैसी महत्वाकांक्षाओं में पुरा-सामाजिक मूल्य सुरक्षित । पर इसके अस्वीकार में 'नयी कहानी' में लाटरी खुलने की प्रत्याशा में टते चलने वाले और कोई भी लाटरी न पा सकने वाले व्यक्ति चित्रित हुए, साथ ही यहाँ सारी महत्वाकांक्षाओं को नष्ट कर अपने आप में ही गेंडुली : कर रहने वाले इन्सान को शहीद घोषित किया गया है।

समाज-विषयक पुरा-मूल्यों का अस्वीकार अपने चूडान्त में कृष्णा सोबती 'यारों के यार' कहानी में हुआ है। मध्यवर्गीय कुंठा-ग्रस्त बाबू के लिए े पुराने मूल्य ध्वस्त हो गये हैं। प्रतिष्ठा, नैतिकता और आचार-संहिताएँ ानी हो गयी हैं। पुराने मूल्य-बोध में अपने साहब के प्रति न तो आक्रोश क्त किया जा सकता था और न तो उसे गन्दी गालियाँ ही दी जा सकती । पर यहाँ लेखिका ने यह सब सम्पन्न करा दिया है। प्राचीन समाज-पयक मूल्य में शालीनता और औचित्य का जो आवरण रहता था, 'यारों यार' में उसका पूरा पर्दाफ़ाश हो गया है—"सूरी ने एक नज़र साहब की ार पर डाली और टैक्सी में बैठते-बैठते एक फटकार फेंक दी, चूतिया, साला, कश्नों की कार में लट्टू बना घूमता है, बहनचोद! किसी दिन हराम का चूना टने पर आ गया तो सारी चिनाई धरी रह जाएगी।"[1] "बहनचोद, चू-ृिया साला भाँसा-पट्टी से बाज़ नहीं आता। जब देखो तब चूनी लगाता है। बहनचोद, किसी दिन पासा पलट गया तो रोएगा यार के सालों को।"[2] ...."याद रख बादर, दफ्तर में अक्सर मौ क्लर्कों की तरह ही दृष्टी फिरते हैं।"[3] ...."सच यह है हिसाब बाबू कि हममें से हरेक चूतिया है और हरेक उल्लू का पट्ठा। यूँ तो हममें भी बड़े उल्लू के पट्ठे मौजूद हैं, जो हरान-जदगी में गुरुघंटालों के भी बाप हैं, जो पोस्ट की चुस्कियाँ छिपाकर मस्तन के महबूब बने फिरते हैं।"[4] 'यारों के यार' में सारे पुरातन मूल्य खंडित हैं। यह इसी का अस्वीकार है जिसके कारण कथ्य और अभिव्यंजन तक सर्वथा नये मूल्य-साँचे में ढल गये हैं। यहाँ अपने प्रति, अपने मित्रों-सहयोगियों के प्रति,

---

१. कृष्णा सोबती : 'यारों के यार', 'नयी कहानियाँ', जनवरी' १९६७, पृष्ठ ८।
२. वही, पृष्ठ १३।
३. वही, पृष्ठ १३।
४. वही, पृष्ठ ४३।

अपने पदाधिकारियों के प्रति, महिलाओं के प्रति सारी पुरानी विचारणाएँ, धारणाएँ ध्वस्त हो गयी हैं।

राजेन्द्र यादव की 'भविष्यवक्ता' कहानी में स्वरूप के चरित्र का प्रस्तुतीकरण परम्परा-प्रथित सामाजिक मूल्य के अनुरूप आशावादी और सुखान्त न होकर निराशा-मूलक मिटते चलते याने रूप में हुआ है। यहाँ 'मैं' पात्र की सामाजिकता औपचारिक सम्बन्धों तक सिमट कर रह गयी है। पुराने जीवन का मित्र—स्वरूप जब आता भी है तब सोफे पर नहीं बैठकर ड्राइंग रूम की कालीन पर ही लेट जाता है। और अन्त में कभी के भविष्यवक्ता को अपने मित्र के यहाँ से जैसे अपरिचित-अनभियोजित (मिसफ़िट) ही लौट जाना पड़ता है। 'मैं' पात्र के बच्चे से हाथ न मिला पा सकने की उसकी स्थिति निश्चयतः वैचारिक दृष्टि से एक पारम्परिक मूल्य का अस्वीकार है, जिसके बाद वह सीढ़ियाँ उतरता चला जाता है—"मैं उसे सिर झुकाये सीढ़ियाँ उतरते देखता रहा। शायद मोड़ पर वह एक बार मुड़ कर 'टा-टा' करे, लेकिन वह ढीली-ढाली टाँगों से उसी तरह नीचे उतरता चला गया···।"[1] भीष्म साहनी की 'भाग्यरेखा', मोहन राकेश की 'मिस्टर भाटिया' और श्रीलाल शुक्ल की 'शहीद' कहानियों में भी पुरा-सामाजिक मूल्यों का नकार है।

परिवार-विषयक प्राचीन मूल्यों का अस्वीकार मूलतः सम्बन्ध पर आधारित है। 'नयी कहानी' में सम्बन्धों की परम्परित धारणा का खंडन हुआ है। अब तक चली आती पारिवारिक मूल्य-मान्यता में पुरुष अर्जन का दायी था और नारियाँ पुरुष-निर्भर थी। पिता का घर में एक दबदबा होता था, जिसके महत्त्व को हर ओर से स्वीकारना पड़ता था। परिवार की परम्परागत वस्तु पर परिवार की प्रतिष्ठा आधारित मानी जाती थी, जिसकी सुरक्षा प्रत्येक स्थिति में पारिवारिक सदस्य किया करते थे। परिवार संयुक्त रूप में गठित और बड़ा होता था। 'नयी कहानी' में ये सारे ही मूल्य सहसा अस्वीकृत हो उठे।

उषा प्रियंवदा की 'वापसी' में पिता पुरा-मूल्य का प्रतीक बन जाता है। उसको परिवार का प्रत्येक सदस्य अस्वीकृत कर देता है। उसके पढ़ने वाले पुत्र से नौकरी करने वाले पुत्र तक और उसकी पुत्रवधू से पुत्रियाँ तक—सभी उसके विचारों का खंडन करते और उसे अस्तित्व-विहीन कर देते हैं। गजाधर बाबू को घर छोड़कर बाहर जाने का निर्णय करना पड़ता है। नयी व्यवस्था

---

१. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ १०१।

और नयी मूल्यवत्ता में पुरा-मूल्य पहले अस्वीकृत फिर वहिष्कृत हो जाता है—"नरेन्द्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टिन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गये। एक दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली और फिर दूसरी ओर देखने लगे। रिक्शा चल पड़ा।"[1] प्रियंवदा की ही एक और कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में नौकरी करता हुआ भाई घर बैठ जाता है और भाई पर आश्रित रहने वाली बहन नौकरी करने लग जाती है। फिर तो भाई की मेज, मेजपोश, टाइमपीस—सारे सामान उठकर बहन के कमरे में चले जाते है और भाई बहन द्वारा शासित, चालित एवं व्यवस्थित गृहस्थी मे आदेशपालक मात्र बन कर रह जाता है।[2] यहाँ पुरुष-विषयक पारिवारिक पुरा-मूल्य विखण्डित हो जाता है।

राजेन्द्र यादव की कहानी 'तलवार पंचहजारी' में तलवार पंचहजारी रोब और अधिकार का प्रतीक बनी हुई है। पिता अपने वंश की धरोहर तलवार का गुणानुवाद करते अघाते नही हैं, पर पुत्र उस तलवार को लेकर भाग जाता है और उसे तोड डालता है। पुत्र लालू के शब्दो मे "मैंने उसे तोड़-ताड दिया। उस तलवार ने सिर्फ अधिकार-ही-अधिकार तो जाने थे।"[3] जो राय साहब पिता अपने वंश की विरदावली गाते है उन्ही का लड़का होटल में बैरे का काम करने लगता है। अपने पिता की सारी बखिया उधेड़ता हुआ पुत्र कहता है—"वे मेरे बाप हैं। गढी की एक बहू-बेटी को तो उन्होंने छोडा होता।...सुनोगे, इस राक्षस ने मेरी माँ को मार डाला था...।"[4] इस कहानी के नवीन मूल्य-लोक में स्थिर पुत्र-पिता-विषयक पुरानी-पारिवारिक मान्यता को अत्यन्त जबर्दस्त ढंग से अस्वीकार करता है। राजेन्द्र यादव की दूसरी कहानी 'बिरादरी बाहर' में पिता घोर उपेक्षा के पात्र बन गये हैं। यहाँ उनकी आवाज़ कोई नही सुनता। उनकी डाँट का असर किसी की 'हा-हा, ही-ही' पर नही होता। उनको लड़के साल-साल तक पत्र नही लिखते। 'बिरादरी बाहर' के पिता के मुँह पर उनकी पुत्री मालती ही कालिख पोत

---

१. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १५४।
२. वही, पृष्ठ १५५-१५७।
३. राजेन्द्र यादव : 'छोटे-छोटे ताजमहल', पृष्ठ ७०।
४. वही, पृष्ठ ६५-६६।

कहानी में पुरा-मौल्यिक विखंडन के क्रम में ही सारे आत्म-संघर्षों, द्वन्द्वों और खतरों को झेला जाता है।

मन्नू भंडारी की 'कमरे, कमरा और कमरे' में पति-पत्नी का दाम्पत्य पुरानी कहानियों का न होकर नये मूल्यों का हो जाता है। यहाँ पत्नी पति को गृहिणी और यौन-सहकर्मिणी न रहकर कार्यालय तक के सारे कार्य-व्यापार संचिकाओं को देख-देखकर बड़े मनोयोग-पूर्वक सम्पन्न करती है। एक ओर इस दाम्पत्य में ऐसी अधिकता का पत्नी की ओर से अवदान है, दूसरी ओर पति की ओर से दाम्पत्य के निजी पलों के प्रतिदान में सर्वथा कमी और ह्रास।[1]

गिरिराज किशोर की 'फ्रॉक वाला घोड़ा और निकर वाला साईस' की रीता भी दाम्पत्य की परम्परा-प्रथित मान्यता को खंडित करती है। वह अपने पति को नाचीज समझकर उसकी उपेक्षा करती और 'नागरथ' से अपना सम्बन्ध बनाये रखती है। इसके लिए उसके मन में कहीं ग्लानि का भाव तक नहीं है। यहाँ पुरा-मूल्य का सबसे बड़ा अस्वीकार ग्लानि-भाव के इस अभाव में ही है। नागरथ से वह अपने पति के विषय में कहती है—"हीन है। हीनता उसमें कूट-कूट कर भरी है। मुझे उससे घृणा है।"[2] यह परम्परित मूल्य का दूसरा अस्वीकार है, जहाँ दाम्पत्य के लिए जैविक, सामाजिक और धार्मिक अपेक्षाओं पर बिल्कुल ध्यान न देकर, उन्हें उपेक्षित कर आत्म-हीनता और आत्मोच्चता की ग्रन्थि पर विचार किया जाता है। दाम्पत्य-सम्बन्ध की इस कहानी में पति एक महत्त्वहीन, महज औपचारिक और निष्प्राण आकृति बन कर रह जाता है।

रमेश बक्षी की 'उत्तर' भी पति और पत्नी के विच्छिन्न दाम्पत्य की कहानी है। यहाँ पति बच्चे को अपने साथ रख रहा है। 'उत्तर' में पति-पत्नी के पारस्परिक घमासान वाग्युद्ध का सूच्य उल्लेख है। इसीलिए यहाँ तलाक और वियुक्त जीवन की बात छोटा बच्चा भी बोलता है। 'खुदकुशी' उसके लिए 'कुल्फी' और 'तलाक' 'लॉलीपाप' हो गयी है। पत्नी पति को दाँत पीस कर उत्तर देती है—"हाँ, ले आना कोई नाचने वाली औरत, जो तुम्हारी दिन-रात परिक्रमा लगाया करे और तुम भी उसके तलवे चाटा करना।"[3]

---

१. मन्नू भंडारी : 'एक प्लेट सैलाब', पृष्ठ ११६-१२५।
२. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ १०२।
३. रमेश बक्षी : 'उत्तर', 'धर्मयुग', १८ सितम्बर १९६६, पृष्ठ २३

दाम्पत्य के इस नए व्यवहार-धर्म में पुराने आदर्शों का अच्छी तरह सफाया हो गया है।

यौन-विषयक पुरा-मूल्य पुरुष और नारी दोनों ही के लिए संयमन का था, नारी के लिए विशेषतः। जहाँ-कहीं पूर्ववर्ती कहानियों में यह संयमन टूटा है, वहाँ या तो कोई मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि उभरी है या पश्चात्ताप प्रकट हुआ है। अर्थ यह कि यौन-स्खलन पूर्ववर्ती कहानियों में चोरी-छिपे हुआ है। 'नयी कहानी' इस पुरा-मूल्य को साफ-बयानी और सरेआम में अस्वीकार कर देती है। यहाँ अविहित और स्वच्छन्द यौनाचार साहस और बल के साथ प्रस्तुत हुआ है। स्त्री-समयौनाचार भी पुरा-मूल्यों का अस्वीकार कर उभरा है। 'राजा निरबंसिया' (कमलेश्वर), 'प्रतीक्षा' (राजेन्द्र यादव), 'रीछ' (दूधनाथ सिंह), 'दाम्पत्य' (ज्ञानरंजन), 'एक पति के नोट्स' (महेन्द्र भल्ला) जैसी कहानियों में यौन-विषयक पुरा-मूल्य का ऐसा ही अस्वीकार है। बड़ी बात यह है कि उक्त सारी कहानियों में यह अस्वीकार नारियों की ओर से हुआ है।

'राजा निरबंसिया' की चन्दा जगपति को उपेक्षित कर बचन सिंह से यौन-सम्बन्ध स्थापित करती है और उसी के पीछे जगपति का प्यार छोड़ चली जाती है। चन्दा के जाने की बात पर जगपति बड़ी गम्भीरता से सोचता है—"पर चन्दा यह सब क्या करने जा रही है? उसके जीते जी वह दूसरे के घर बैठने जा रही है।···वह इतनी घृणा बर्दाश्त करके भी जीने को तैयार है या मुझे जलाने को?"[1] चन्दा के जीने की ऐसी स्वीकृति में ही पुरा-मूल्य तिरस्कृत-अनादृत है, जहाँ अततः जगपति को चन्दा और कानून के नाम दो चिट्ठियाँ लिखकर आत्महत्या करनी पड़ती है।

राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा' दो नारियों के समयौनाचार की कहानी है। गीता और नन्दा का समयौनाचार पुरा मान्यता को ध्वस्त कर ही आचरित होता है। गीता यौन-उत्तेजना में नन्दा से वियुक्त नहीं हो पाती—"उस रात नन्दा के निर्वस्त्र समर्पित शरीर को अपनी उत्तेजित साँसों और उन्मत्त बाँहों में जकड़े उसके दाहिने वक्ष के रुपये के बराबर दाग पर होठ रखे गीता पागलों की तरह बस यही कहती रही, नन्दन मुझे छोड़ कर मत जाना।"[2] गीता नन्दन का गला, होंठ, कनपटी, बाँह चूमती तथा उसके अभाव में अपने नहीं जी सकने की बात कहती है। यौन-वर्णन का यह कोण सर्वथा अभिनव है।

---

१. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ' (सं० राजेन्द्र यादव), पृष्ठ ४८।
२. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ४१।

'रीछ' में यौनाचार का अतिशय स्वच्छन्द ग्रहण है। यौन-सम्पर्क का इतना उन्मुक्त प्रक्रियाई वर्णन करने की छूट देने में प्राचीन मूल्य सर्वथा अशक्त असमर्थ है। 'रीछ' का पति अतीत जीवन मे अपनी प्रेमिका के साथ प्राप्त अपने पुराने यौन-सम्बन्ध का अनुभव अपनी पत्नी को सुना कर स्वयं स्मृति-यत्रणा से मुक्त होना चाहता है। पर पत्नी उसे इस प्रकार उन्मुक्त नही होने देती। इस कहानी में यौन-सम्बन्ध का भयावह सत्य अत्यन्त निर्मम ढग से स्पष्ट हुआ है। पत्नी पति की ओर से किसी दूसरी नारी के साथ यौन-सम्बन्ध-स्थापन की सम्भावना के प्रति प्रतिक्रिया प्रकट करती तन जाती है। यौन-विषयक 'रीछ' का मूल्य—"थोडी देर बाद वह शुरू कर देता। वह इस तरह मान जाती जैसे कुछ भी न हुआ हो। लेकिन वह क्षण दहशत भरा रहता। न जाने कब···अगले किसी क्षण टोक दे···उसकी उँगलियाँ काँपने लगती। वह संवादों की कल्पना करने लगता···जैसे वह अभी पूछेगी, उसकी जाँघें कैसी थी ? एकदम चिकनी। तभी तो···वह अपनी थरथराती उँगलियाँ रोक लेता। लगता उसकी जाँघो मे हजारो सुनहरे तीर अँखुआ रहे हो'[1]—निश्चयात्मक रूप मे पुरा मूल्य को अस्वीकारता अपनी इयत्ता की सर्वथा विलग स्थापना करता है, जिसमें दाम्पत्य यौन-चर्चा की पूरी परिचर्या ही सम्मिलित है।

ज्ञानरंजन की 'दाम्पत्य' की पत्नी यौन-सुख के हेतु जितनी उत्कंठिता है वही उत्कंठा उसे बडे बेबाक ढंग से पुरातनता से विच्छिन्न करती अपने शक्त मूल्य के साथ उपस्थित करती है। गुसलखाने मे कमर में एक तौलिया-भर लपेटे हुए पत्नी पति के बाहर जाने की आहट सुनकर बाहरी दरवाजे के किवाड़ तक आकर पति के अंग-प्रत्यंग पर चुम्बन की बौछार कर देती है। निश्चयतः इस नारी का यौन-मूल्य बिल्कुल नया है, जिसके चूमने की ललक भरी प्रक्रिया मे कमर में लिपटा अधोवस्त्र भी सरक कर ज़मीन पर गिर जाता है। कथान्त मे यौनाचार का उपभोग-परक प्रकरण भी अपने प्रस्तुतीकरण में सर्वथा अभिनव है, जहाँ दोनों एक दूसरे को अपनी-अपनी कमजोरियों का परिचय देते और थकावट महसूस करते हैं।[2]

महेन्द्र भल्ला की 'एक पति के नोट्स' मीता के पति के अत्यन्त स्वच्छन्द यौन-जीवन की कहानी है। यहाँ आकर्षण-विकर्षण सब-कुछ यौन-संवेदन से

---

१. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ...।

२. ज्ञानरंजन : 'दाम्पत्य', 'कहानी', जून' १९६८, पृष्ठ ९६।

परिचालित है। 'रीछ' की तरह यौन का प्रक्रियाई वर्णन यहाँ भी है—एक-एक अजीब भाव से मैंने उसकी टाँगों को कैंची की मानिन्द खोल दिया। बीच में पड़े अपने रूमाल को निकाल के बाहर फेंक दिया। कुछ दिन पहले शेव की गयी कलूटी चमड़ी के बीच आँखों के लाल टुकड़ों में थोड़ी सफेदी बची थी। मेरा मुँह बिचक गया। मैं छलाँग-सी लगा के उसके साथ लेट गया और उसे पकड़ कर उसके अंगों को मसलने, तोड़ने, मरोड़ने लगा। मुझे कहीं कुछ नष्ट करना था। यों तैयार मैं बहुत बाद में जाके हुआ।"[1]

संत्रास का विचारगत प्रयोग

संत्रास-बोध अस्तित्ववादी विचार-धारा का विषय है। यह अँगरेजी 'टैरर' का हिन्दी-रूपान्तर है। अमृत राय हिन्दी-कहानी में संत्रास की चर्चा निर्मल के लेख-विशेष से स्वीकारते हैं।[2] यह संत्रास "नयी संवेदना से प्राप्त वह विषमय कसैलापन है, जो आहत करता है, मूर्च्छित करता है, हतसंज्ञ भी करता है।[3] सार्त्र ने अस्तित्ववादी धारणाओं के अनुरूप संत्रास और निराशा की व्याख्या की है। अस्तित्ववादी के सम्पूर्ण जीवन को दुःखान्त यथार्थ (ट्रैजिक रियलिटी) मानने से संत्रास का भाव जुड़ा हुआ है। अस्तित्ववादियों द्वारा रचित सर्जनात्मक साहित्य जैसे जीवन के खुरदुरे यथार्थ और संत्रास के क्षणों को व्यक्त करता है, वैसे ही 'नयी कहानी' ने भी अपनी रचनात्मकता में संत्रास के विचारगत प्रयोग किये हैं। संत्रास भावजगत् से विचार-जगत् की यात्रा तय करता है। यह विशेष मनोदशा की विशेष चिन्तनात्मकता है। भय और त्रास से हमें बोध होता है कि हमारा अस्तित्व क्या है।[4]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जो राजनीतिक दृष्टि से भारतीय परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ, उससे सबसे पहले व्यक्ति को संविधान द्वारा कहीं भी पूरी तरह सुरक्षित होने की प्रतीति हुई। जैसे स्वतन्त्रता अपने साथ सुरक्षा लिये आयी हो; क्योंकि सुरक्षा के बिना स्वतंत्रता का कोई उपयोग नहीं है। हम

---

१. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ ७७।

२. अमृत राय : 'सम्पादकीय', 'नयी कहानियाँ', नवम्बर '६८, पृष्ठ ४।

३. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ३०।

४. डॉ० रामविलास शर्मा : 'अस्तित्ववाद और नयी कविता', 'आलोचना', अप्रैल-जून १९६९, पृष्ठ ७।

स्वतंत्र हैं—इसके लिए यह आवश्यक है कि हम सुरक्षित, असंत्रस्त रहने का सम्यक् अवबोध करें। मगर स्वतंत्रता-प्राप्ति के जल से सींचे गये भारतीय जन-मानस का यह प्राप्त्याशा-प्रसून शीघ्र ही कुम्हला गया। सम्पूर्ण देश में स्वतंत्रता-प्राप्ति का उल्लास धीरे-धीरे मरता गया और वह केवल कागजी होकर रह गया। असन्तोष की उठती लहर से विद्रोह, आत्रामकता, भीड़, प्रदर्शन, नारे, जुलूस तथा अराजकताएँ बढ़ीं। धीरे-धीरे खतरे और खौफ का एक संत्रास देश में फैलने लगा। भारतवर्ष में संत्रास विभाजन के दंगे, साम्प्रदायिक दंगे, दुर्भिक्ष, सूखा, बाढ़, चीनी और पाकिस्तानी आक्रमण, सामाजिक अराजकता, प्रदेशगत राजनीतिक अस्थिरता आदि के कारण विभिन्न प्रकार से व्यक्ति के असुरक्षा की भावना से ग्रस्त होने के कारण उत्पन्न है। यह संत्रास न तो केवल वैयक्तिक स्तर पर है, न नकल का लबादा ; न शोभाचारिता (फैशन) का प्रदर्शन है और न यौन-अराजकता का उद्वेलन। अतः इसके अस्तित्व पर कोई आरोप नहीं किया जा सकता कि यह है ही नहीं।[1] वस्तुतः संत्रास मनुष्य से संबद्ध समाज की सारी-की-सारी वस्तुगत परिस्थितियों से उत्पन्न है। शासन की भ्रष्टता संत्रस्त विचारणा की प्रकृत जननी है। शैक्षणिक, प्रशासनिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक प्रत्येक रूप में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद का भारत संत्रास-रूपी अन्धकार के प्रखर शरों से बिंध गया है। महानगरों की निरन्तर बढ़ोत्तरी से भी जीवन-प्रणालियों में एकाकीपन और असुरक्षा का बोध गहराया है। फलतः संत्रास उत्पन्न हुआ है। लोग दैनिक बोलचाल तक में कहते हैं—आजकल जीवन बहुत असुरक्षित हो गया है।' (नाउ-ए-डेज लाइफ इज टोटेली अनसेक्योर्ड) यह संत्रास नहीं तो और क्या है ?

---

१. (क) "यह संत्रास दो-चार लोगों के मन का भूत छोड़ और कुछ है भी नहीं। जनता में कहीं संत्रास नहीं है।"—अमृत राय, सम्पादकीय, 'नयी कहानियाँ', दिसम्बर '६८, पृष्ठ ७।

(ख) "जैसे एक रोती हुई औरत को देखकर उसके पास जाने वाली औरत प्रायः बेमतलब रोती है। जब किसी एक से कारण पूछा जाता है तब जवाब मिलता है—हम तो इसलिए रो रही हैं, क्योंकि ये रो रही हैं। उसी तरह संत्रास के प्रयोग की बात है।"—ललित शुक्ल : 'संत्रास' : 'सन्दर्भ और वास्तविकता', 'नयी कहानियाँ', दिसम्बर '६८, पृष्ठ १२७।

संत्रास निजी अनिष्ट की आशंका से उद्भूत भावनाओं का संकोचन है, जो आत्मनिष्ठता में घुमड़न, तनाव, भय और असन्तोष को सहेजे है। इसके "अवलम्बन हैं जीवन के विषम परिवेश और भविष्य की अनिश्चितता और उद्दीपन हैं वे परिणाम, जिन्हें हमारी वृत्ति अनुकूल नहीं पाती।"[1] इस दृष्टि से "समूह में अनुभूत सह-संवेदना ही संत्रास है।"[2]

अमृत राय संत्रास को हिटलर और स्तालिन से सबद्ध करते हैं, जब सन्तानें माँ-बाप के विरोध में जासूसी करती थीं। कोई भी व्यक्ति किसी समय गोली का निशाना बन जा सकता था। "घर का आदमी सवेरे काम पर जाता था तो शाम को लौट कर घर आएगा या नहीं, कहना मुश्किल था।"[3] यह सच है कि भारतवर्ष में उस कोटि का सत्रास नहीं है। वह युद्ध की भयावह पृष्ठभूमि का सत्रास था। वैसे सत्रास को भोगते समय साहित्य-रचना नहीं की जा सकती। प्रथमतः तो जब सारा देश सहकता होता है तब साहित्य प्रणयन सुकर नहीं होता। "जलती हुई आग में साहित्य नहीं लिखा जाता।"[4] वह तो शान्ति की चिनगियों को सांकर तथा काल की अस्थिरता को पचाकर व्यक्त होता है। दूसरे, युद्ध-विभीषिका की पृष्ठभूमि में सत्रास को व्यक्त करने वाले साहित्य की अपेक्षा देश को विजय की ओर बढ़ाने वाले साहित्य की रचना होती है। उग्र राष्ट्रीयता सत्रास को निगरित कर लेती है। भारतीय संत्रास विकल्पों को प्राप्त कर सकने की स्वातन्त्र्य-इति से पैदा हुआ है। इस इति की प्रभूतता ने ही सत्रास को सुदृढ़ भूमि प्रदान की है।[5] यह संत्रास मनुष्य की मानसिक चेतना और बोधगम्यता से सबद्ध है, जहाँ चेतना परिस्थिति को परिमित कर उसे उससे उत्पन्न परिणाम के प्रकाश में स्थिर कर देती है। तभी मनुष्य उस पीड़न को अनुभव करने की यत्रणा से गुजरने लगता है। अकाल, सूखा, बाढ़ और भुखमरी के सन्दर्भ में तो यह सत्रास अपनी खास माटी का सत्रास है। 'नयी कहानी' में इसके दहशत और

---

१. रामगोपाल गुप्त : 'संत्रास' : 'सन्दर्भ और प्रतिक्रियाएँ', 'नयी कहानियाँ', जनवरी '६६, पृष्ठ १२६।

२. वही, पृष्ठ १२७।

३. अमृत राय : सम्पादकीय, 'नयी कहानियाँ', नवम्बर '६८, पृष्ठ ४।

४. डा० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ २०८।

५. चन्दन नेगी : 'विचार-मंच', 'नयी कहानियाँ', जनवरी' ६६, पृष्ठ १२६।

खौफ का अपेक्षाकृत कम चित्रण हुआ है। पर इसके पीड़न के अनुभव की यंत्रणा यहाँ भी असह्य है।

संत्रास के विचारगत प्रयोग के उदाहरण 'लन्दन की एक रात' (निर्मल वर्मा), 'एक ठहरा हुआ चाकू' (मोहन राकेश), 'उसका क्रॉस' (श्रीकान्त वर्मा) जैसी कहानियाँ हैं। सुरेश सिन्हा की 'हालत' कहानी सूखे से उत्पन्न अकाल का संत्रास देती है।

'लन्दन की एक रात' नामवर सिंह के अनुसार उग्र-राष्ट्रवादी (फासिस्ट) खतरे को व्यक्त करने वाली कहानी है,[1] तो इन्द्रनाथ मदान के अनुसार यह लन्दन की एक रात है या लन्दन के एक पब की, पीने की रात है या पीने के बाद की, डर की एक रात है या आतंक की, भूख की एक रात है या बेकारी की, रंग-भेद के अहसास की रात है या महायुद्ध के परिणाम की, सिगरेट न पीने की रात है या लड़की न पाने की, अजनबीपन की अनुभूति की रात है या अकेलेपन के अनुभव की, मानवीय नियति-संकेत की रात है या उग्रराष्ट्रवादी खतरे के सकेत की ? इनमें से सहसा किसी एक को निर्दिष्ट नही किया जा सकता, क्योंकि इस कहानी में ये सभी सन्निहित हैं।[2] पर इतना तो सच है कि 'लन्दन की एक रात' का पूरा परिवेश संत्रास का है। सारा लन्दन अरक्षा का प्रतीक बन गया है और महानगर समस्त संसार का प्रतीक। दूसरे देशों के लोग लन्दन में सुरक्षा खोजते आये हैं, किन्तु वहाँ रक्षाहीनता है। कहानी अपनी इस आन्तर लय में संत्रास को चित्रित करती है। लन्दन की बाहरी रात भी अधिक अरक्षित है, जहाँ जार्ज, विली—सब एक-दूसरे से विलग हो अपना-अपना मार्ग पकड़ लेते हैं। कहानी 'एफ्रेड'''टेरिब्ली एफ्रेड' की ध्वनि मुखर करती है और फिर यह संत्रस्त विचारणा—"शायद इससे भयंकर और चीज नही, जब दो व्यक्ति एक संग होते हुए भी यह अनुभव कर कर लें कि उनमें से कोई भी एक-दूसरे को नही बचा सकता, जब यह अनुभव कर लें कि बीती घड़ियो की एक भी स्मृति, एक भी क्षण उनके मौजूदा'''इस गुजरते हुए क्षण के निपट अकेलेपन में हाथ नहीं बँटा सकता है, साझी नहीं हो सकता'''।"[3] यही 'लन्दन की एक रात' का संत्रास है, *जिसका तीखा अहसास* दरवाजा खुलने के दूसरे ही क्षण बाहर होने से होने लगता है। आवाजें और दहशत चीख, सीमान्तहीन पीड़ा, सरकती हुई छायाएँ, घूँसे, गालियाँ और

२. 'नयी कहानियाँ', अप्रैल १९६५, पृष्ठ ११८।
३. 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ १३६।
१. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १४०।

दूरी में अपने जिस्म का भान, भाग की पसन्द परिस्थिति—सभी 'फ़ौलाद का आकाश' के समाज की मर्यादाएँ हैं। यह सार्वभौम असुरक्षा का मनःस्थिति-मूलक समाज है।

'एक ठहरा हुआ चाकू' एक असुरक्षित मनुष्य की कहानी है। इसमें प्रशासन की अन्तरंग सामाजिक गुण्डागर्दी के समाज से अभिशप्त एक मानव की स्थिति है। यह समाज अपने प्रभाव से अन्दर भीतर तक गूँथा हुआ (कारपेटेड) है। चाकू चलाने वाले गुण्डे की पहचान के लिए आतंक-ग्रस्त व्यक्ति थाने में आता है। आमतौर गवाह सिद्ध साबित करने वाला दुर्दान्त यन्त्र है। शिनाख्त करने के लिए आगत व्यक्ति का मन लगता फिर भी अतीत-भविष्य आत्मचिन्ता से ग्रस्त है। उस गहन असुरक्षा के भय से वह थाने (सुरक्षा-भवन ?) में बैठा हुआ भी भयमुक्त नहीं है। कहानी का वातावरण-निर्माण तक समाज-उत्तेजक है। परम्परागत गूँगों की भाषा—चाकू—चाकू-चाकू भी उसे ग्रस्त करने वाली है। मछली-गली के सरदार, जिसने दाँत भींचकर मुँह पर एक तमाचा मार लगा दिया था, जिसने 'हरामजादे' सम्बोधन करते हुए चाकू चमका दिया था—उसका स्मरण भी आतंकित व्यक्ति को ग्रस्त करने वाला है। जब अभियुक्त को कई व्यक्तियों के साथ पंक्ति-बद्ध कर पहचानने के लिए उसके सामने से गुजारा जाता है तब उसकी आँखों में चेहरे को चिटा लेने वाली सीधी नजर से वह त्रस्त हो उठता है। उस क्षण-विशेष का तनाव—"वह एक लम्बा वक्त था, खामोश वक्फ़ा—जिसमें कि उसके कान ही नहीं, गाल भी जैसे दहकने लगे। पैर में तेज खुजली उठ रही थी, फिर भी उसने उसे दूसरे पैर से दबाया नहीं। उसकी आँखें खिड़की से हटकर जमीन में धँस गयीं और तब तक धँसी रहीं जब तक कि वक्फ़ा गुज़र नहीं गया।"[1]—उसे सर्वथा चेतना-शून्य कर देता है। इस तनावग्रस्त स्थिति में जब थानेदार उससे 'यह वही आदमी था न ?"—प्रश्न करता है तब वह 'हाँ' में उसका उत्तर सोचने लगता है। पर जब थानेदार उसे चिन्तित देख पूछता है—'आपने उस आदमी को पहचाना नहीं ?'[2]—तब उसके मन में सचमुच उसे नहीं पहचानने की बात कहने का विचार उभरता है। मगर वह तनाव की चेतना-शून्यता में पूर्व-निर्धारित उत्तर ही दे देता है—'हाँ, यही

१. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ १४२।
२. वही, पृष्ठ १४२।
३ वही, पृष्ठ १४३।

आदमी था वह।'[1] इसके बाद जब वह थाने (सुरक्षा-भवन ?) से बाहर आता है तब उसका संत्रास अछोर फैले संसार की तरह और व्यापक हो जाता है—"बाहर की तेज खुली धूप में उसे अपना-आप बहुत असुरक्षित और नंगा सा लगा। लगा, जैसे वह अपना बहुत-कुछ उस कमरे के अन्दर छोड़ आया हो—कल तक का सारा संघर्ष, मिन्नी का चेहरा और आगे की सब योजनाएँ...अब मैं उस इलाके में नहीं रह पाऊँगा, उसने सोचा, और वह घर छोड़ देना पड़ा तो और कहाँ रहूँगा ? नौकरी तो अब मिली नहीं...।"[2] इस प्रकार 'एक ठहरा हुआ चाकू' का संत्रास भ्रष्ट प्रशासन और अराजक समाज के दो पाटों के बीच पिसने वाले बदनसीब इन्सान के अस्तित्व का संत्रास है।

श्रीकान्त वर्मा की 'उसका फाँस' आज के परिवर्तित परिवेश में मनुष्य के हृदय में आच्छन्न संत्रास की कहानी है। इसके नायक को हर कहीं लगता है कि उसे लोग किस्म-किस्म से पीट रहे हैं। सड़क पर, भीड़ में, पार्क में, पार्क के बाहर, थाने में, अस्पताल में—हर कहीं वह संत्रस्त है। इस संत्रास को चिकित्सकीय परीक्षा और समर्थक प्रमाणों से नहीं मिटाया जा सकता। भय से अभिभूत होकर भागने की कोशिश तक इस संत्रास का प्रसार है, जिससे मुक्ति दिलाने का वास्तविक प्रयासी कोई नहीं है—न व्यक्ति, न समाज, न प्रशासन, न सुरक्षा-संस्थान—"घबड़ाकर उसने चिल्लाना शुरू किया—बचाओ। मगर उसने देखा कि कोई भी उसकी पुकार नहीं सुन रहा था। सब लोग बिना उस पर ध्यान दिये अपने रास्ते आ-जा रहे थे।"[3] 'उसका फाँस' का संत्रास आज के यान्त्रिक-आधुनिक परिवेश में असुरक्षित-बोध का संत्रास है, जो सीमान्त तक पहुँच गया है। रस्से से बाँधे जाने, नंगा किये जाकर मार खाने, भिगो-भिगो कर बेंत लगाये जाने, घिघियाने और त्रस्त दृश्य-सूत्रों को बुनने का यह संत्रास एक प्रतिष्ठित भले आदमी का संत्रास है—"मैं एक इज्जतदार आदमी हूँ, मुझे दूसरों को इस तरह गालियाँ नहीं देनी चाहिए।"[4] पर आज जो जितना ही भद्र है वह उतना ही अधिक संत्रस्त है। यही इस संत्रास की मूल भित्ति है। संत्रास का विचारगत प्रयोग दूधनाथ सिंह की 'कोरस' और सुरेन्द्र प्रकाश की 'रोने की आवाज' कहानियों में भी द्रष्टव्य है।

---

४. मोहन राकेश : फौलाद का 'आकाश', पृष्ठ १४३।

१. वही पृष्ठ १४३-१४४।

२. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ४६।

३. वही, पृष्ठ ४१।

सुरेश सिन्हा की 'हालत' कहानी में 'पपड़ी की तरह बँरन बदसूरत धरती' से उपजे अकाल का वातावरण है। इस दहशत से खौफ खाकर कामतानाथ आत्महत्या की बात सोचता है, पर मर नही पाता। कहानी मे कामतानाथ की पुत्री के मरने, उसको कफन नही दिये जाने, इतना ही नहीं, उसे न तो पूरी तरह जलाये जा सकने और न नदी सूखने के कारण बहाये जा सकने, फिर लौटने पर कामतानाथ के जिस-किसी तरह पाँव धोने का सत्रास पूर्ण वातावरण है। यहाँ संत्रास खेत बिकने, गहने बिकने, पन्द्रह दिनो के भीतर ही दो-दो बैलो के उठ जाने, कही पानी नही पाने तथा राजनीतिक दलों और सहायता समितियो के द्वारा लूट-खसूट किये जाने का सत्रास है। 'हालत' में कामतानाथ साहब की टिफिन से तीन पूड़ियाँ चुराकर जेब में रख लेता है और सोचता है कि घर चलकर एक-एक पूड़ी सरला और गोविन्दा को देगा। पर पूड़ियो को वह घर तक कहाँ ले जा पाता है ? सत्रास मे ही उसने पूरियाँ चुरायी थी, संत्रास मे ही वह उन्हें रास्ते मे ही गटकने लग जाता है —"और उसने बिना कुत्ते की ओर देखे जेब में से ही एक-एक टुकड़ा तोड़कर जल्दी-जल्दी निगलना शुरू किया।"[1]

मृत्युबोध का विचारगत प्रयोग

मृत्युबोध का सीधा अर्थ है मृत्यु-भय का साक्षात्कार ! यह वैचारिकता अस्तित्ववाद से सबद्ध है। अस्तित्ववाद में एक ओर क्षमता-बोध मृत्यु-भय पर विजयी होता है तो दूसरी ओर मृत्यु-भय का साक्षात् ही क्षमता को विजित कर लेता है। अस्तित्ववाद मे इस विसगति का उन्मुक्त अवकाश है···"अस्तित्ववादी दार्शनिक की वैचारिक असंगतियाँ भयानक हैं। वह कहता है कि मनुष्य कभी तो परम सुखी, देव-तुल्य और महान् होता है और कभी निकृष्ट कीट-पतग से भी निकृष्टतर।"[2]

मृत्युबोध संत्रास से सर्वथा अविच्छिन्न नही है। यह संत्रास पृष्ठभूमि में भी है—मृत्यु-विषयक तीव्र और उत्प्रेरित विचारणा ! संत्रास व्यापक है, पर मृत्युबोध सीमित। अतः केवल मृत्युबोध को संत्रास कहने अथवा इसे सत्रास के अन्तर्गत परिगणित करने की अपेक्षा मृत्युबोध कहना अधिक समी-

---

१. सुरेश सिन्हा : 'कई आवाज़ों के बीच', पृष्ठ ८४।

२. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना', 'विकल्प', नवम्बर १६६८, पृष्ठ २८।

चीन है। आतंक से प्रेरित मृत्युबोध चलित संत्रासजन्य हो सकता है, पर एक स्वाभाविक और सामयिक मृत्युबोध भी है, जो इससे भिन्न कोटि का होकर भी अस्तित्ववान् है।

भारतीय वातावरण में उल्लिखित दोहरा मृत्युबोध व्याप्त है। मृत्युबोध किसी एक देश या महादेश की विशेषता-दुर्बलता नहीं है, आज इसकी स्थिति सर्वत्र संभव है। अतः भारतीय मनुष्य की ओर से मृत्युबोध को अनस्तित्व करते हुए उसकी प्रकृति-सम्बन्धी जिज्ञासा करना, उसे पश्चिमी देशों के खास बोध की मान्यता देना, भारतीय चिन्तन में मृत्यु-विषयक सार्वत्रिक मान्यता-हीनता तथा मृत्यु-विरत सहज आश्वस्तता को अवरेखित करना, उसे नवजीवन की द्वार-उद्घाटिका मानना और आत्मा की अमरता तथा ईश्वर और चराचर से उसकी तद्रूपता दिखाना[1]—मृत्युबोध के उत्पत्ति-कारण और स्थिति-ज्ञान दोनों ही से आँखें मूंद लेना है। यह सही है कि भारतीय चिन्तन में मृत्यु को इतना प्रामुख्य कभी नहीं दिया गया ; पर आज का भारत प्राचीन भारत नहीं है। आज यहाँ के सर्वसाधारण व्यक्ति के जीवन में 'श्रीमद्भगवद्गीता' का आत्मा-विषयक चिन्तन फलीभूत नहीं होता। वह आज आचरित हो भी नहीं

---

१. "वह कौन-सा मृत्युबोध है जिसे भारत का साधारण आदमी भोग रहा है ? मृत्यु की विभीषिका को एक बड़े पैमाने पर दोनों ही विश्वयुद्धों में यूरोप ने प्रत्यक्षतः भोगा है, लेकिन क्या यही भारत के लिए भी है ? वस्तुतः भारतीय चिन्तन में मृत्यु को इतना असाधारण महत्त्व कभी नहीं दिया गया। हमारे ऋषियों और तत्त्वज्ञानियों ने मृत्यु के सम्बन्ध में इतना विचारा है कि वह विचलित नहीं करती। हम मृत्यु को आकस्मिक और भयंकर मानते हुए भी उसकी निश्चितता के प्रति आश्वस्त हैं। हमारे यहाँ तो मृत्यु को एक साधारण औपचारिकता माना गया है, जो एक नये जीवन का द्वार खोलती है। हम तो प्राचीन काल से आत्मा को अमर मानते चले आ रहे हैं।''''''सार्त्र ने मानव को जिस ढंग से अवश और निरुपाय चित्रित किया है वैसी दृष्टि भारत को कभी नहीं रही। यहाँ तो 'अहं ब्रह्मास्मि' और 'यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे' का मंत्र जन-जन में फूंका गया है।"

—डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : 'नवलेखन और सम्पादकीय प्रतिक्रियाएँ', 'कल्पना', अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर '६६, पृष्ठ १३२-१३३।

सकता। समय की बदली हुई गति और स्थिति ने मनुष्य को हत्या-आत्महत्या की प्रवृत्ति से भीषण-से-भीषण बीमारियाँ तक दी हैं, जिनसे मृत्युबोध अनायास प्रत्यक्ष हो उठा है। आज हममें इसे सर्वथा दलित कर देने वाली वह साधना नहीं है, जिसे सिद्ध कर ऋषियों ने इसे अपने जीवन से दर्शन में उतारा था। दूसरे, विश्व-प्रवाह भी आज इसके अननुकूल ही है। यदि आज भारतीय जीवन में हम अपना प्राचीन दर्शन आचरित कराएँ तो यह प्रकृत न होकर आरोपित होगा ; क्योंकि सफल दर्शन जीवन-पद्धति से निस्सृत होता है, दर्शन को कभी जीवन पर आरोपित नहीं किया जा सकता। अतः साम्प्रतिक भारत की शिराओं में मृत्युबोध की हलचल भी है, जो कभी-कभी काफी तेज हो पड़ती है, इस सत्य को किसी भी घटाटोपी मूल्य पर नकारा नहीं जा सकता। यही मृत्युबोध 'नयी कहानी' के अन्तिम विचारगत प्रयोग के रूप में निर्भ्रान्ततः स्वीकृत-स्थापित हो जाता है।

'नयी कहानी' में मृत्युबोध का विचारगत प्रयोग 'रात' (कृष्ण-बलदेव वैद), 'यादें' (भीष्म साहनी), 'क्षय' (मन्नू भंडारी) और 'प्रेत' (गंगा प्रसाद विमल) जैसी कहानियों में द्रष्टव्य है।

'रात' स्वैर-कल्पनात्मक कहानी है। इसमें आद्यन्त मृत्युबोध व्याप्त है। कहानी आरम्भ होते ही प्रमुख पात्र को लगता है कि "मैं इस डर से बहुत डरता हूँ। मैं हर डर से बहुत डरता हूँ। मेरी मदद करो।"[1] बाद में वह सोचता है—"मौत का डर शायद इतना न हो अगर मौत की आगाही हमें बराबर रहे।...लेकिन हम सब मौत से डरते हैं। यह शर्म की बात है न गर्व की।...बुढ़ापे से मौत तक का फासला बहुत कम होना चाहिए। यह फासला दो तरीकों से कम किया जा सकता है। आत्महत्या से या हत्या से।"[2] चिन्तामग्नता का यह क्रम आगे भी चलता रहता है—"मैं मौत से डरता हूँ। और जिन्दगी से भी। मुझे नींद चाहिए। स्वप्न-दुःस्वप्न नींद। यानी मौत।[3]" फिर वह चारपाइयों पर रात-दिन पड़े रहने वाले उन दोनों के विषय में सोचता है—"या शायद मौत के डर ने उनकी चेतना को बिल्कुल सुन्न कर दिया है? इस मृतप्राय अवस्था में उनकी सोचों की कोई अहमियत नहीं। उनकी यंत्रणा की भी कोई अहमियत नहीं। उनका जिन्दा होना एक

---

१. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ४०२।
२. वही, पृष्ठ ४०६-४०७।
३. वही, पृष्ठ ४०९।

शारीरिक अप्रासंगिकता है।[1]" और अन्ततः "रात है। सन्नाटा है। और मैं हूँ।[2]"—इस मृत्युबोध को और लहका देता है।

'यादें' कहानी का मृत्युबोध पहली कोटि से भिन्न है। यह दो बूढ़ियों की कहानी है। एक वृद्धा दूसरी वृद्धा से मिलने आती है। दोनो ही उम्र के कगार पर हैं। दोनो को ही मृत्युबोध हो रहा है, पर किंचित् भिन्न रूप मे। एक के मृत्युबोध का प्रत्यक्ष 'बेटा, दुनिया मे जाने का वक्त आ गया'[3] में लिया जा सकता है तो दूसरी के मृत्युबोध की झलक 'मैं उठ नही सकती, लछमी। खाट के साथ जुड़ी हूँ। तू देख ही रही है'[4] में पायी जा सकती है। यह भी छिपा मृत्युबोध ही है, जिसके कारण लछमी को गोमा के विराग का गीत अच्छा नही लग पाता है और अँधेरे से भी बहुत-बहुत डर लगता है। एक ओर लछमी के कथन—"अच्छा गोमा, अब सजोगी मेले। अब मैं फिर नही आऊँगी। अब अगले जन्म में मिलेंगी"[5]—में प्रत्यक्ष नाचता मृत्युबोध है तो दूसरी ओर गोमा की कोठरी मे घुप्प अँधेरे के छाने और सूने मौन के घिरने मे भी बूलता मृत्युबोध है।

मन्नू भंडारी की 'क्षय' क्षयग्रस्त पिता और नौकरी करने वाली पुत्री के दायित्व-बोध की कहानी है। इस कहानी में मृत्युबोध कई स्तरों पर है। पहले स्तर पर पिता का निजी मृत्युबोध है—"कुन्ती सोच रही थी कि बात करने से ही पापा के मन में जीवन के प्रति कैसी घातक निराशा छा जाएगी।[6]" दूसरे स्तर पर पिता के प्रति पुत्री का मृत्युबोध है—"एक क्षण वह उनके मुरझाये जर्द चेहरे को देखती रही, फिर भारी मन से लौट आयी।"[7] तीसरे स्तर पर पिता की मृत्यु की बात चाह कर बोल लेने के साथ ही झटके से आया उनका मृत्युबोध है—"हे भगवान् ! अब तो तू पापा को उठा ले ? मुझसे बरदाश्त नही होता। मैं टूट चुकी हूँ···" और फिर "उसने दोनो हाथ कसकर मुँह पर रख लिये, मानो मुँह से निकली हुई इस बात को वापस

---

१. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ४०९।
२. वही, पृष्ठ ४१६।
३. 'भटकती राख', पृष्ठ २३।
४. वही, पृष्ठ २५।
५. वही, पृष्ठ ३२।
६. 'मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ ७८।
७. वही, पृष्ठ ८७।

धकेल देना चाहती हो।"[1] और चौथे स्तर पर कहानी के अन्त मे उसका निजी मृत्युबोध है—"एकाएक कुन्ती को लगा कि उसकी यह खाँसी, यह खोखली-खोखली आवाज, पापा की खाँसी से कितनी मिलती-जुलती है··· हू-ब-हू वैसी ही तो है।···सहमकर उसने गाडी के शीशे मे से देखा, कहीं उसके चेहरे पर तो वैसा कुछ नही, जो उसके पापा के चेहरे पर···"[2] यह मृत्युबोध कुन्ती को बेतरह त्रस्त कर देता है।

'प्रेत' एक स्वैर-कल्पनात्मक कहानी है। गंगा प्रसाद विमल ने इसमें एक ऐसे पात्र—मुकुन्दी लाल का चित्रण किया है, जिसे बार-बार अनाम पत्र लिख-कर उसके मर चुकने और प्रेत-जीवन जीने की बात बतायी जाती है। वह मरण की बात सोच-सोच कर भयानक ढंग से उसके बाद मे पड़ने वाले प्रभाव-वश मृत्युबोध करता है। उसके मन मे यह सिहरन है कि कही वह सचमुच तो नही मर चुका है— "खत के मुताबिक मैं बीस साल पहले मर चुका था, लेकिन अकाल-मृत्यु की वजह मैं प्रेत बन कर मुकुन्दी लाल के शरीर में प्रवेश कर गया।"[3]

विचार-दर्शन के ये सारे प्रयोग 'नयी कहानी' के अन्यान्य प्रयोगो से विलग न होकर कही उनके मूल में हैं तो कही उनसे प्रेरणा या प्रभाववश जुड़े हुए हैं।

---

१. 'मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ ६१।
२. वही, पृष्ठ ६२।
३. 'धर्मयुग', ३१ अगस्त १९६६, पृष्ठ १२।

अध्याय ४

'नयी कहानी' : विषयगत प्रयोग

भोगे गये आन्तर यथार्थ के चित्रण का विषयगत प्रयोग

'नयी कहानी' का विषयगत प्रयोग प्रामाणिक रूप में भोगे गये यथार्थ के चित्रण का प्रयोग है। इसका विशेष प्रयोगमूलक आग्रह प्रथमतः मुक्त प्रामाणिकता का अभिव्यंजन, द्वितीयतः यथार्थ का चित्रण और तृतीयतः यथार्थ की आन्तरिकता का उद्रेकन है। भोगी हुई प्रामाणिकता या आनुभूतिक प्रामाणिकता पर आरोप-प्रत्यारोप भी किये गये हैं, पर इससे 'नयी कहानी' का यह विषयगत प्रयोग न तो निर्मूल होता है और न मलिन पड़ता है। १९६५ के दिसम्बर में कलकत्ते में आयोजित कथा-गोष्ठी में बोलते हुए जैनेन्द्र ने कहा था कि 'नयी कहानी' क्या है; यह भोगवाद की कहानी है। 'नयी कहानी' वाले कहते हैं कि वे भोग कर लिखते हैं। सिगरेट और शराब पीना और औरत के साथ भोग करना ही इनका अनुभव है। इन्होंने औरत को मादा बना दिया है। उसे माँ और सीता के आसन से उतार दिया है''' 'नयी कहानी' की यथार्थ की पुकार भोगवाद की पुकार है, जो महिमामंडित स्त्री को भ्रष्ट करने पर तुली है।"[1] जैनेन्द्र कुमार ने 'भोगने' का अर्थान्तर किया था। इसका उत्तर कथा-गोष्ठी मे मोहन राकेश ने दिया कि "जैनेन्द्र कुमार भोगने का जो अर्थ (जान-बूझ कर) लगाते हैं, वह हमारा अभिप्राय नहीं है। हम उसे झेलने के रूप में प्रयुक्त करते हैं और उसका सम्बन्ध जीवन की हर विभीषिका, अन्याय और अत्याचार के भोगने से है।"[2]

वस्तुतः भोगने का अर्थ सामान्य व्यक्ति-रूप में जीवन को झेलने-भोगने से है, विषय-भोग से नहीं। इस विषयगत प्रयोग के मूल में बदलती हुई जीवन-

---

१. द्रष्टव्य : 'ज्ञानोदय' : फरवरी १९६६, पृष्ठ १४६-१४७ और १४८।
२. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ५४।

दृष्टि है, जिसने कहानी का परिदृश्य ही परिवर्तित कर दिया है। पूर्ववर्ती कहानियों का यथार्थ बाह्य-परिवेश और वर्णन का यथार्थ था, किन्तु 'नयी कहानी' का यथार्थ आन्तर है। आन्तर यथार्थ गतिमान् है। यह निरन्तर बदलते रहने की प्रक्रिया है। बड़ी बात है कि 'नयी कहानी' के कथाकार अपने-आप को यथार्थ का दास भर नही मानते, बल्कि अपने मतव्य के मुस-रण के लिए यथार्थ की अपेक्षा किसी और ठोस शब्द को टटोलना चाहते हैं। उनका आन्तर यथार्थ ही कहानी मे प्रामाणिक अनुभूति उजागर करता है—"प्रामाणिकता, जो हमारे विचारों और इतिहास के संदर्भन को केवल हवाई महल ही न रहने दे, बल्कि हमारी परीक्षा की घड़ियों मे उन्हे सार्थक सिद्ध करे, हमारे लिए उपयोगी भी हो और हमारी सभावनाओं को सक्रिय रूप मे विकसित कर सके।"[1] 'नयी कहानी' के सभी विषयगत प्रयोग इस एक सर्वातिशायी प्रमुख प्रयोग से ही उभरते हैं—

१—मोहभगवश नर-नारी के नये सम्बन्ध-निरूपण का प्रयोग।

२—विभिन्न सम्बन्धों मे अजनबीपन (अतिपरिचित मे से अपरिचित के रेखांकन) का प्रयोग।

३—पात्रों के अथमगत होने का प्रयोग।

४—प्रामाणिक अनुभव के आलोक मे प्रेम के यथार्थ चित्रण का प्रयोग।

५—पीढ़ियों के सघर्ष-चित्रण का प्रयोग।

६—पात्रों मे विचारों के प्रतीकन का प्रयोग।

७—सार्वक्षेत्रीय रूढ़ियों पर आक्रमण का प्रयोग।

८—व्यग्य और आक्रोश-चित्रण का प्रयोग।

९—उपेक्षित जन-समूह के सहानुभूतिशील चित्रण का प्रयोग।

१०—विभक्त ससार के चित्रण का प्रयोग।

'नयी कहानी' मे परम्परा-चालित और उससे आगत समग्र मोह-व्यामोह बरबस भग हो जाता है। फलतः नर-नारी का सम्बन्ध-निरूपण नये-नये कोणों से होने लगता है। इस मोह-भग के निष्पादक तत्त्व स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जुटने लग जाते हैं; क्योंकि १४ अगस्त की आधी रात के एक मिनट पूर्व तक घोर सयमी, आदर्शवादी, साधुतापूर्ण, चरित्रवान् और त्यागी-रूप मे मान्य-स्वीकृत पीढी साठ पलों के बाद ही स्वार्थ-लिप्सापूर्ण अत्याचारियों मे परिवर्तित हो जाती है। स्वच्छ जल मे कर्दम-ही-कर्दम छा जाता है, जिसमे

१ कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ १५८ पर उद्धृत।

रक्त चूसने वाली जोंक बिलबिलाती है, कोई कमल नहीं खिलता। स्वार्थपरता, जातिवाद, भाई-भतीजावाद, कालाबाजारी, बेईमानी आदि के परिणामस्वरूप मोह की स्थिति खंडित होने लगती है। यह मोहभंग परिवार, समाज, राजनीति, अर्थ—सभी दृष्टियों से होता है, क्योंकि स्वतन्त्रता के बाद न केवल बाहर के शरणार्थी आये थे, बल्कि अपने ही देश, अपने ही गाँव, अपने ही कस्बे, अपने ही परिवार और अपने ही सम्बन्ध में आदमी स्वयं शरणार्थी होने लगा था। इस मोहभंग का सम्बन्ध केवल व्यक्ति के मोह पालने की आत्मगतता से नहीं था। मोह का सम्बन्ध तो उन वस्तुगत स्थितियों से भी था, जो अनुकूलतः बदल नहीं पा रही थी और जब वे परिवर्तित हुई तब मोह पूरी तरह खंडित हो गया। यह मोह आश्वासन, स्वर्णिम संकल्प और भाषण-प्रवचन की साकारिता के प्रति था। हम इसे चाहते थे। फलतः इसके प्रति हमें मोह था। कांग्रेसी शासन-व्यवस्था में इन्हीं आश्वासनों की अपूर्ति और प्रतीक्षा की वंचना के कारण मोह-भंग होता है। स्पष्टतः स्वतन्त्रता-संघर्ष के हिस्सेदार व्यक्तियों के मोहभंग से इस मोहभंग की प्रकृति और तीव्रता में अन्तर है। पूर्ववर्ती में सपाट उदासीनता और निराशा की भयानकता है तो परवर्ती में अस्तव्यस्तता और अजनबीपन तथा असंगति के भीतर चलती संघर्षात्मकता। इस द्विकोटिक मोहभंग से ही नयी आधुनिकता की उत्पत्ति होती है।[1]

मोहभंग के फलस्वरूप नर-नारी के आपसी सम्बन्धों की नैतिक धारणा में मूलभूत अन्तर प्रत्यक्ष हुआ। पति-पत्नी के नये सम्बन्ध पर आत्मपरक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से कहानियाँ लिखी गयीं। आत्मपरक सम्बन्ध-निरूपण की कहानियाँ 'सुहागिनें' (मोहन राकेश), 'एक और जिंदगी' (वही) जैसी अन्यान्य हैं तो सामाजिक सम्बन्ध-निरूपण की कहानियाँ 'सावित्री नम्बर दो' (धर्मवीर भारती), 'प्रकाश के आईने में', (मन्नू भंडारी), 'नीली धुंध के आर-पार' (सुरेश सिन्हा), 'कोई नहीं' (उषा प्रियंवदा) आदि। प्रेम-विषयक नवीन सम्बन्ध-निरूपण स्वार्थ, वासना तथा व्यक्तियों के पारस्परिक उन्मीलन की सफलता-विफलता में स्पष्ट हुआ। यह सम्बन्ध-निरूपण भावुक प्रेम का गला टीप कर अदूरदर्शिता की अपेक्षा पूरी सजगता से हुआ। यहाँ स्वार्थ का अर्थ आधुनिक और प्रगतिशील नारियों का मंत्रियों, उच्च-

---

१. कुबेरनाथ राय : 'आधुनिकता : कुछ सीमाएँ और अकर्म से कर्म की ओर', 'ज्ञानोदय', सितम्बर '६७, पृष्ठ १७।

पदाधिकारियों और अधिकार-प्राप्त व्यक्तियों से प्रेम करना, नारीत्व बेचना और सभी प्रकार की स्वार्थ-पूर्ति का साधन बनना हो गया। वासनात्मक प्रेम नैतिकता और आचार-संहिता की वर्जनाओं के विरुद्ध यथार्थ और प्रतिक्रिया-मूलक होकर उभरा। साथ ही प्रेम का उद्देश्य नारी और पुरुष की परस्पर प्रेम-बद्धता के पूर्व अपने-अपने जीवनोद्देश्य-विषयक चिन्तन की नयी चेतना मे दीपित हो उठा। व्यक्तित्व के उन्मीलन ने आर्थिक स्तर पर स्वावलम्बिनी नारी के निजी अस्तित्व का प्रश्न उठाया। यही प्रेम मे अस्तित्व के प्रति प्रत्येक क्षण की सचेतता है। प्रेम और स्वार्थ के नये सम्बन्ध में सुरेश सिन्हा की 'सोलहवें साल की बधाई', प्रेम और वासना के निरूपण में निर्मल वर्मा की 'लवर्स', मोहन राकेश की 'वासना की छाया में', नरेश मेहता की 'वर्षा भीगी', सुधा अरोड़ा की 'एक सेंटिमेंटल डायरी की मौत'; प्रेम और उद्देश्य के नवीन सम्बन्ध-निरूपण में आत्मपरक दृष्टि से निर्मल वर्मा की 'तीसरी गवाह', राजेन्द्र यादव की 'छोटे-छोटे ताजमहल', सुधा अरोड़ा की 'एक मैली सुबह'; सामाजिक दृष्टि से मन्नू भंडारी की 'यही सच है', कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', विनीता पल्लवी की 'एक अनउगा दिन'; प्रेम और अस्तित्वोन्मीलन के सम्बन्ध-निरूपण की दृष्टि से निर्मल वर्मा की 'पिक्चर पोस्टकार्ड', नरेश मेहता की 'एक इतिश्री', मोहन राकेश की 'पाँचवें माले का फ्लैट', राजेन्द्र यादव की 'पुराने नाले पर नया फ्लैट', कृष्णा सोबती की 'डार से बिछुड़ी', कमलेश्वर की 'पीला गुलाब' जैसी कहानियाँ आती हैं। निर्मल की 'परिन्दे' मे तो मोहभग की अनुभूति कहानी का अभिन्न अंग ही है।[1] उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ' के अन्त में मुको और नटराजन् के कचक गये सम्बन्ध मे भी मोह-भग की अनुभूति सघन हो उठी है, जो समूची कहानी में रम रही है।[2]

विभिन्न सम्बन्धों में अजनबीपन के चित्रण का प्रयोग

'नयी कहानी' सम्बन्धों के टूटने की कहानी है। इस कथा-ससार मे सारे सम्बन्धो से विच्छिन्न व्यक्ति अधिकाधिक अकेला और अजनबी होता चला गया है। पिछली पीढ़ी के प्रति घृणा, अविश्वास और पारस्परिक अपरिचय-अनिश्चय—'नयी कहानी' इसी यथार्थ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है।[3] परिवार की सारी सम्बन्ध-शृङ्खला टूटने लगती है। विघटन के क्षण बाप-बेटे,

---

१. डा० इन्द्रनाथ मदान : हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ १३१।
२. वही, पृष्ठ १३३।
३. राजेन्द्र यादव : एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३१।

भाई-बहन, भाई-भाई सबके जीवन में उभरने लगते हैं और इसकी व्याप्ति इन सारे सम्बन्ध-स्तरो पर संश्लिष्ट रूप में दीख पड़ने लगती है। यह अजनबीपन आत्म-निर्वासन (सेल्फ़ एलियनेशन) की स्थिति है। इसकी काष्ठा हो जाने पर सारे सामाजिक और मानवीय सम्बन्ध निरर्थ हो जाते हैं और पाशव ही मानवीय हो जाता है—"निर्वासन की स्थिति में जब तमाम सामाजिक और मानवीय सम्बन्ध व्यर्थ प्रतीत होने लगते हैं तब जो पाशव है वही मानवीय हो जाता है और मानवीय पाशव।"[1] आत्मपरायेपन की धारणा में वे सारे कार्य अजनबी हो जाते हैं, जो मनुष्य के लिए 'अभिलषित मुक्त, सचेतन, सहज और रचनात्मक कार्य' हैं; साथ ही वे 'निजता' से छूट भी जाते हैं। "इस तरह अजनबी कार्यकृति तथा निर्वैयक्तिक मनुष्य क्रमशः अकेली भीड़ तथा अजनबी इंसान के हेतु हैं।"[2] वस्तुतः आधुनिक मानव का अकेलापन ही इसकी त्रासदी और विडम्बना है।[3]

इस अजनबीपन को रेखांकित करते हुए कहा गया है कि "हम अभिशप्त हैं अतिपरिचित होने के लिए। इसीलिए हमारे देश की मानसिकता इस अतिपरिचय से ऊबी हुई है और इस अतिशय ऊब का परिणाम है अपरिचय की ऐच्छिक मनोदशा। इसीलिए हमारा अपरिचय इस अतिपरिचय की देन है…।"[4] वस्तुतः :—

> "हम एक दूसरे से अपरिचित होने की कोशिश में
> कुछ अधिक अपरिचित होकर
> गुजर रहे हैं
> एक-दूसरे के समीप से लगातार।
> प्रत्येक सुबह तुम लगती हो
> कुछ और अधिक अजनबी मुझे।"[5]

---

१. 'आलोचना, जनवरी-मार्च, '६८, डॉ० नामवर सिंह लिखित 'बहस का प्रारूप' में उद्धृत, पृष्ठ २२।

२. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ : 'आधुनिकताबोध और आधुनिकीकरण (प्रथम सं०, '६६), पृष्ठ १६४।

३. डॉ० देवीशंकर अवस्थी : 'प्रेम कहानियाँ : परिचय के मध्य अपरिचय', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १६१।

४. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ १२६।

५. 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' के पृष्ठ १५९ पर उद्धृत श्रीकान्त वर्मा की काव्य-पंक्तियाँ।

अजनबीपन के विषय में दस वर्ष पूर्व तक या ही चिन्तन प्राप्त होता है। बीते वर्षों में इसके प्रति रुझान स्पष्ट कर इसे बौद्धिक व्यामोह के सीमान्त तक पहुँचा दिया गया है। यह एक सश्लिष्ट और गत्यात्मक रूप में विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जिसका तनाव तकनीकी कम, आन्तर अधिक है।

अजनबीपन पर पहली चर्चा मार्क्स ने आरम्भ की थी, जिसने इसे आत्म-निर्वासन (एलियेनेशन) कहा था। पहले इसे पूँजीवादी व्यवस्था के साथ-साथ समाप्त हो जाने वाली स्थिति के रूप में स्वीकार किया गया था, परन्तु बाद में इसे यान्त्रिक सभ्यतावश समाजवादी देशों में भी अनुभूत किया जाने लगा। हीगेल और फायरबाख ने आत्मपरायेपन की धारणा का उन्नयन किया। मार्क्स ने आत्म-निर्वासन की ऐतिहासिक धारणा को व्यक्त किया था, हीगेल ने अमूर्त एवं नित्य धारणा को प्रस्तुत किया तथा फायरबाख ने देवतात्विक आधार की जगह इसे भूतात्विक आधार दिया। निर्मल वर्मा द्वारा 'लादिस्लाव फुक्स से एक साक्षात्कार'[1] में किये गये प्रश्न में भी अजनबीपन सम्बन्धी प्रकृति-स्थिति स्पष्ट हुई है। फुक्स के अनुसार अजनबीपन पश्चिमी देश और समाज-वादी निर्माण में लगे देश-दोनों ही जगहों पर बहुत मिलता-जुलता है। उन्हें अपने राष्ट्रीय संदर्भ में अजनबीपन स्तालिनी मान्यताओं के मोहभंग से जुड़ा प्रतीत होता है। इसके बावजूद वे अपने अजनबीपन को निजी कारण, निजी स्वभाव, निजी गन्ध, विशिष्ट जीवन-धारा तथा उससे संबद्ध समस्या और संघर्ष से जुड़ा हुआ मानते हैं। इवान विस्कोचिल अपने अजनबीपन को संसार से परे नहीं मानते हुए भी परिस्थिति और परिवेश की भिन्नता स्पष्ट करते है।[2] पर यारोस्लाव प्रतीक अजनबीपन को स्वतन्त्रता, आत्मा और नैतिकता जैसे व्यापक बहुर्थी शब्दों के खाने में स्थान देते हैं। इस दृष्टि से वे अपने और पश्चिमी देशों के बीच बहुत बड़ा अन्तर स्वीकारते हैं, क्योंकि विकसित जीवन-स्तरीय देश से दोनों शाम रोटी के लिए संघर्ष करने वाले देश में अजनबीपन का अर्थ भिन्न हो जाता है। पूँजीवादी समाज में इसकी जननी वैयक्तिक सम्पत्ति है, पर समाजवादी व्यवस्था में नौकरशाही। उनके अनुसार व्यक्ति के अजनबीपन पर तकनीकी सभ्यता का प्रभाव अत्यन्त गौण है।[3]

---

१. 'निर्मला वर्मा : 'परम्परा, परायापन और प्रतिबद्धता', आलोचना, अप्रैल-जून '६७, पृष्ठ ९९।
२. वही, पृष्ठ ९९।
३ वही, पृष्ठ १००।

गोविन्द रजनीश के अनुसार सबसे पहले अकेलापन अथवा अजनबीपन अथवा परायापन सामाजिक अलगाव, सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक विघटन से जुड़े तत्त्वों से उद्‌भूत है। दूसरे, यह अलगाव, कुंठा जैसी प्रतिक्रियात्मक अशक्यता से उत्पन्न है। तीसरे यह मद्यपान से कारण-रूप और प्रभाव-रूप में सम्पृक्त है। चौथे, यह दाँशवीय परिवेश की स्थिति और सामान्य परिवेश के परिवर्त्तन से सर्जित है। अजनबीपन के उक्त चार प्रकारों में तीसरे और चौथे प्रकार के अजनबीपन से 'नयी कहानी' का कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। रजनीश अकेलेपन को भोगते हुए व्यक्तियों को दो रूपों में विभक्त करते हैं—"पहले वे जिनको निर्भर सम्पृक्ति से पहचाना व टटोला जा सकता है। दूसरे वे जिनको मानवीय सम्पर्कों की असम्पृक्ति से जाना व पहचाना जा सकता है।"[1] वे प्रवृत्ति के आधार पर द्विविधतः असम्प्रेषणीयता का अकेलापन, थोपा हुआ अकेलापन और असम्पृक्ति का अकेलापन स्वीकारते हैं। 'नयी कहानी' में मूलतः पीढ़ियों के अलगाव से उत्पन्न थोपा हुआ अकेलापन और असम्पृक्ति का अकेलापन है। 'नयी कहानी' ने इसका चित्रणात्मक प्रयोग कर न केवल परिस्थितिगत वैषम्य को व्यक्त किया है, न केवल आवर्त्तक और अनुन्मूलनीय अवस्था को चित्रित किया है, अपितु जिजीविषा के लिए चल रहे संघर्ष के रूप में इसकी आवश्यकता को भी पुष्ट किया है।

मन्नू भंडारी अकेलेपन का अनुभव कभी-कभी थोड़े समय के लिए करती हैं और अकेलेपन के पीछे चारों ओर की जिन्दगी से न जुड़ पाने का क्षोभ स्वीकारती हैं[2] तो कृष्णा सोबती प्रायः अपने को उदासीन और अलग पाती हैं।[3] शिवप्रसाद सिंह इस वैयक्तिकता को महज उपलब्धि मानते हैं[4] तो शरद जोशी इसका विरोध करते हैं।[5] विजय मोहन अजनबीपन को यथार्थ (रियलिटी) नहीं मानकर अत्युक्ति (रोमांस) मानते हैं।[6] भीष्म साहनी कहते हैं कि "…यह सच है कि आज के मशीनी युग में मनुष्य बहुत-कुछ अकेला होता जा रहा है, बड़े-बड़े कारखानों, बड़े-बड़े संस्थानों में काम करने

१. 'ज्ञानोदय', अप्रैल १९६६, पृष्ठ ११५।
२. 'नई धारा', फरवरी-मार्च १९६६, पृष्ठ ११३।
३. वही, पृष्ठ ११४।
४. वही, पृष्ठ १२३।
५. वही, पृष्ठ १३०।
६. वही, पृष्ठ १५३।

वाले लोगों के आपसी सम्बन्ध अवैयक्तिक होते जा रहे हैं। यह अकेलापन एक सामाजिक तथ्य है, आज के युग की सभ्यता है।"[1] सच्चे अर्थ में यह अजनबीपन अतिशय आवाजों के शोर का है, जहाँ राजनीतिक अराजकता-अव्यवस्था में बरकरार झूठे आश्वासन का बुनियादी संकट-बिन्दु उभरा है। अपने यहाँ व्यक्ति समाज से खंडित होकर अजनबी हुआ है। उसके अकेलेपन की अनुभूत पीड़ा बड़ी गहरी है, जिस बीच वह मर कर जी रहा है और जीकर मर रहा है। अजनबीपन का एक कारण व्यवहार की कृत्रिमता भी है। व्यक्ति जिन लोगों को पसन्द नहीं करता, उनके साथ भी अपने काम आ सकने के लिए मेल-जोल बढ़ाता है। व्यक्ति व्यवहार की इस कृत्रिमता के कारण पहले परिवार से, फिर समाज से और अन्ततः अपने-आप से अजनबी हो जाता है। श्रीमती विजय चौहान ने अजनबीपन के तीन विभिन्न सोपान—१. मन के फिल्टर का अत्यन्त सूक्ष्म होना, २. व्यक्तित्व का विभाजित होना (स्प्लिट पर्सनालिटी) और ३. शीज़ोफ़ेनिया रोग का होना—निर्दिष्ट करते हुए भारतीय और पाश्चात्य अजनबीपन का अन्तर स्पष्ट किया है। उनके अनुसार भारतीय समाज इन तीन सोपानों में दो को पार कर तीसरे की ओर उन्मुख है, परन्तु पाश्चात्य समाज तो इसकी तीसरी सीढ़ी भी पार कर चुका है।[2] दूधनाथ सिंह 'निर्णय के अन्तरंग क्षण' में कहते हैं कि अकेलेपन की बात रूढ़ हो गयी है, पर अकेलापन रूढ़ नहीं हुआ है। उसकी स्थिति अनिवार्य है। पहले वह शायद व्यक्तिगत रूप में भी रहा होगा, किन्तु अब पूरी दुनिया समूचे रूप से अकेली होने लगी है। उनके शब्दों में—"हमारे युग का तथाकथित अकेलापन एक बृहद् अकेलेपन की भूमिका-मात्र है। यह एक आरम्भ है।"[3] वे एक बहुत बड़ी बात कहते हैं कि "क्या हम घर के एकांत कोने में जब बिलकुल अकेले होते हैं तब पूर्णतः सुखी नहीं होते? क्योंकि तभी हम सच्चे अर्थों में अकेले नहीं होते, लेकिन ज्योंही हम किसी से टकरा जाते हैं, हम अकेला होना शुरू कर देते हैं, हम अपने को खोना शुरू कर देते हैं।"[4]

'नयी कहानी' में अजनबीपन का विषयगत प्रयोग पिता-पुत्र-सम्बन्ध में 'तलवार पचहज़ारी', 'वापसी' और 'वापसी' में, मातृ-पुत्र-सम्बन्ध में

---

१. 'आलोचना', अक्तूबर-दिसम्बर '६८, पृष्ठ १०।
२. 'नयी कहानियाँ', दिसम्बर '६६, पृष्ठ १०८।
३. 'ज्ञानोदय', अप्रैल '६६, पृष्ठ ३७।
४. वही, पृष्ठ ३७।

'चीफ की दावत', 'रक्तपात' और 'एक टूटी हुई आत्मा' में, भाई-बहन के सम्बन्ध में 'कमरा और गली', 'गार्जियन', 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' तथा 'वृक्ष' में और भाई-भाई के सम्बन्ध में 'शवरी' तथा 'घरघुसरा' में हुआ है। अजनवीपन का यह सम्बन्ध नर-नारी के नजदीकी रिश्ते में ही उभरा है, क्योंकि "आज की नयी कथा-चेतना नारी-पुरुष के आपसी सम्बन्धों के संक्रमण और संकट को ही नहीं चित्रित करती या उन्हें अलग-अलग स्थितियों में ही नहीं पकड़ती, उन्हें एक-दूसरे से अलग होने और रहने की स्थिति में भी जाँच लेना चाहती है।...."[1] निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' का एक वाक्य पाठकीय चेतना में वार-वार अपनी आन्तर अनुगूँज छोड़ जाता है--"पियानो का हर नोट चिरन्तन खामोशी की अँधेरी खोह से निकलकर बाहर फैली नीली धुंध को काटता-तराशता हुआ एक भूला-सा अर्थ खींच लाता है।"[2] और वाद की यह पंक्ति--"क्या वे सब भी प्रतीक्षा कर रहे हैं--वह डाक्टर मुखर्जी, मिस्टर ह्यूबर्ट, लेकिन कहाँ के लिए ? हम कहाँ जाएँगे ?[3] इस प्रश्न का उत्तर नहीं देकर सचमुच अजनबीपन की अनुभूति को गहराया गया है, मानव की अनिश्चित नियति का संकेत दिया गया है।"[4] 'हम कहाँ जाएँगे' का अजनवीपन एक व्यक्ति का अजनवीपन नहीं होकर आज का सामाजिक अजनवीपन है। उनकी 'लवर्स', 'एक शुरुआत' और 'पराये शहर' में भी अजनवीपन का अर्थ व्यर्थ नहीं है। 'पिछली गर्मियों में' अजनबी व्यक्ति की ही कहानी है, जो घर के बाहर रहता है। उसके लाख चाहने पर तनाव टूटता नहीं और आत्मीयता विडम्बना हो जाती है--उसे अचानक लगा, "मानो वे दोनों ज़मीन के एक टुकड़े के सामने खड़े हैं जो बिलकुल अपरिचित और अजाना-सा है। उनके बीच उन भाई-बहन के बीच--एक मूक समझौता है कि वे इस पर नहीं चलेंगे। वहाँ उनकी बढ़ती हुई उम्र थी। उसे वैसा ही छोड़ देंगे जैसा वह है। वहाँ वे अकेले थे।"[5] इस अजनवीपन से लड़ने के लिए जो संघर्ष करना पड़ता है, उसकी गवाही राजेन्द्र यादव की 'एक कटी हुई कहानी' का एक वाक्य देता है--"फिर भी कुलवंत, कभी-कभी मैं सोचता

---

१. राजेन्द्र यादव : 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३६।
२. वही, पृष्ठ १७८।
३. वही, पृष्ठ १८८।
४. डा० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ १३०।
५. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ १४९।

हूँ, इस अकेलेपन से लड़ने के लिए आदमी कितनी उलझनें खुद अपने चारों तरफ बुन लेता है। जानता है कि यह सब ऊपरी है, निमित्त है, किसी से लड़ने का हथियार है।"[१] उनकी 'खेल' कहानी के अन्त में दिये गये संकेत—'चलिए, दिवाकर साहब' में दोनों को लगता है कि वे परिचित होकर भी अपरिचित हो गये हैं, परस्पर निकटस्थ होकर दूर हो गये हैं, जाने-पहचाने होकर अजनबी हो गये हैं। देवेन गुप्त की 'अजनबी समय की गति' का विश्राम-प्राप्त (रिटायर्ड) आदमी और रघुवीर सहाय की 'प्रेमिका' का प्रेमी किरानी अतिपरिचय के बीच अपरिचय से त्रस्त है। ज्ञानरंजन की 'सम्बन्ध' कहानी में माँ-पिता, बहन-भाई से अलग होता हुआ आदमी अपने रेशे-रेशे में विलग होकर रह जाता है, टूटते-घिसटते सम्बन्धों की किशोर विह्वलता समाप्त हो जाती है और अलगाव एक कठोर सत्य बन जाता है। मोहन राकेश की कहानियों में भी अलगाव और अजनबीपन का चित्रण है। 'मलबे का मालिक', 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिनें' आदि ऐसी ही कहानियाँ हैं। उषा प्रियंवदा की कहानियों में इस अजनबीपन की दोनों स्थितियाँ हैं—कभी मनुष्य का स्वेच्छया वरण करना और कभी उसके वरण के लिए बाध्य विवश हो जाना। 'मोहबंध' में अकेलापन अचला को है, जो उसकी स्वयं आलिंगनेच्छा रखती है तो 'छुट्टी के दिन' में अकेलापन माया की जिन्दगी में है और 'वापसी' में अकेलेपन को झेलने के लिए गजाधर बाबू विवश हैं। 'नीली झील' (कमलेश्वर) में अजनबीपन अपनी व्यापक परिधि में है तो 'खोयी हुई दिशाएँ (वही) में आधुनिकता की उपपत्ति में। यह अजनबी-पन गहन अवसाद को कुरेदने वाला, मानव को खण्डित-अकेला बना देने वाला है।

अजनबीपन का बोध 'नयी कहानी' में निरन्तर विकसित होता चला है। '६० के बाद कहानी में यह प्रयोग जीवन को झेलने का अनुभव करने, उसकी निरर्थकता का बोध करने, उसकी लाचारी और अव्यवस्था का प्रत्यक्ष करने तथा नितान्त भौतिक और शारीरिक स्तर पर यौन-चित्रण करने का प्रयोग हो गया है। यहाँ मार्क्स के आत्म-निर्वासन की परिणाम-व्याख्या सार्थक हो उठी है""इसीलिए सम्भोग की क्रिया जैसा पाशव-कर्म एकमात्र ऐसा कर्म बच रहता है, जिसमें निर्वासित व्यक्ति अपने-आपको मानव समझता है, अगर्चे स्तर गिर कर पशुता तक पहुँच जाता है।"[२] यह अजनबीपन मानवीय

---

१. राजेन्द्र यादव : 'टूटना', पृष्ठ ४७।
२. 'आलोचना', जनवरी-मार्च १९६८, (नामवर सिंह लिखित 'बहस का प्रारूप' में उद्धृत), पृष्ठ २२।

सम्बन्धों की अमानवीयता में बदलकर दूधनाथ सिंह के 'रक्तपात' में प्रत्यक्ष हो पड़ता है—"जैसे धीरे-धीरे कहीं सारे सम्बन्ध-सूत्र टूटते गये और वह निर्विकार-सा, भूला हुआ-सा चुपचाप पड़ा रहा। किस बात का इन्तजार था उसे ? शायद किसी बात का नहीं, कभी उसे लगता कि सभी ने उसे छोड़ दिया है। अब धीरे-धीरे यह लगता था कि उसी ने अपने को छोड़ दिया है...।"[1] यहाँ पात्रों के पारस्परिक सम्बन्ध अतिशयतः समीपस्थ हैं, पर सभी एक एक-दूसरे से निर्वासित हैं। एक निष्क्रिय उदासीनता इस अजनबीपन से उत्पन्न हुई है। दूधनाथ ने अपने 'अनुभव का अकेलापन' शीर्षक लेख में इसी की स्थापना की है—"मैं अनुभव की इसी अव्यवस्था, अक्रियता और निष्पत्ति का साक्षी हो सकता हूँ। इसी को अभिव्यक्त करने का मेरा अधिकार है। यह अव्यवस्था न तो अनास्था है और न मूल्यहीनता ही, बल्कि एक गहरे संदर्भ में सत्य का निदर्शन है।"[2] पर रवीन्द्र कालिया आदि कुछ कथाकारों की कुछ कहानियों में यत्र-तत्र अजनबीपन आरोपित हो गया है। यहाँ पात्र अजनबीपन को भोगते हुए नहीं, अपितु उससे दबे मालूम पड़ते हैं। साक्ष्य काव्य पंक्तियों का—

> "किसी ने मुझे अजनबी कहकर पुकारा है
> किसी ने मेरी नियति को
> अभिशप्त ठहराया है
> कभी मैं
> बाहर का आदमी माना जाता हूँ
> कभी
> विसंगत पुरुष के नाम से जाना जाता हूँ
> इस प्रक्रिया में मैं सिमट कर
> वर्णमाला का एक अक्षर
> मात्र रह गया हूँ
> आरोपित नामों की भीड़ में मैं अनाम हो गया हूँ।
> पहले से अधिक उदास हो गया हूँ।"[3]

परन्तु ऐसे आरोपित प्रयोग समर्थ कहानीकारों में बहुत कम हैं। श्रीकांत

---

१. 'सपाट चेहरे वाला आदमी' : पृष्ठ १२१।
२. 'ज्ञानोदय', जून १९६८, पृष्ठ १४४ पर उद्धृत।
३. 'ज्ञानोदय', अप्रैल १९६७, पृष्ठ १२ पर उद्धृत।

वर्मा की 'झाड़ी' मे पति-पत्नी के बीच बिस्तर की खाली जगह पर लेटा हुआ अँधेरा है। हाथ है तो ठंडा, निर्जीव, छाया हुआ है तो पश्चात्ताप और उपस्थित है तो विशालकाय अँधेरा। यह अजनबीपन सम्बन्धों की ठिठुरन (कोल्डनेस) का है। तुलनात्मक दृष्टि से निर्मल वर्मा के पात्र अपने को किसी सन्दर्भ से अभियोजित कर अकेलापन का अनुभव करते हैं, पर श्रीकान्त वर्मा के सारे पात्र सन्दर्भों से बलात् खण्डित होकर अकेला होना चाहते हैं। अजनबीपन सुदर्शन चोपड़ा आदि कहानीकारों की कहानियों में भी है, जहाँ यह अजान, अनाम या रहस्याभिमुख न होकर वास्तविक यथार्थ-परिचिति बन गया है। 'नयी कहानी' का यह प्रयोग एक समर्थ और व्यापक विषयगत प्रयोग है।

पात्रों के अवसंगत होने का विषयगत प्रयोग

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद की स्थितियों से उत्पन्न अवसन्नता ने व्यक्ति के अवसगत होने की प्रवृत्ति स्पष्ट की थी। इसी आधार पर 'नयी कहानी' मे पात्रों के अवसगत होने का विषयगत प्रयोग हुआ है। तब विश्वास के अभाव मे अपनी शक्ति पर आधारित रहने के बाद भी व्यक्ति को अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में दुःखद अनुभव हुए, जिसका केन्द्रित लक्ष्य अवसगत होना रहा। धुरी को नहीं खोज पाने के कारण प्रतिभा, कार्य-कुशलता और रचनात्मक शक्ति उपेक्षित हो उठी। प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्तमान कार्य से असतुष्ट होने लगा। पदाधिकारी अपने परिवेश से असन्तुष्ट, श्रमिक और बाबू वर्ग अपने वातावरण से असन्तुष्ट! फलत. सामाजिक-राजनीतिक वातावरण से उत्पन्न एक विराट् शून्य छा गया, जहाँ व्यक्ति कामचलाऊ पुर्जा भर रह गया। पुर्जा भी ऐसा, जो सही मशीन मे व्यवहृत नहीं हो सके। जनशक्ति के इस घोर अपमान और लोकमानस की विकलागता के मूल मे राजनीतिक वातावरण की कूट सक्रियता थी—

> "बाकी शहरों में राजनीतिक वेश्याओं ने
> पीला-मटमैला अधकार फैला रखा है
> अपनी देह को उजागर करने के लिए"
>
> —राजकमल चौधरी[1]

यह अवसगति जितनी बाह्य रही उतनी ही आन्तर भी। इसीलिए यह केवल अवसरों की अनुपलब्धि की अवसगति नहीं है, प्रत्युत साम्प्रतिक मनुष्य

---

१. 'आलोचना', जनवरी-मार्च '६८, पृष्ठ ५२ पर उद्धृत।

को अवसंगत करने वाली रूढ़ियाँ भी हैं, जिनका सम्बन्ध हमारे आभ्यन्तर से है। विचारों की सड़ाँध और गन्दगी, जो रूढ़ि के स्रोत से चलकर आयी थी, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे मन-मस्तिष्क में जक-धक जमी रही। वस्तुतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् जो नये क्षेत्र खुले उनमें जन-सामान्य को प्रवेश का अवसर नहीं मिल सका और जो क्षेत्र भीतर रुँध गये उनमें से निकालने की कोशिश नहीं हो सकी। यानी बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे, वह परितः अवसंगतियों से घिरा रहा। इस फालतूपन का एक कारण भीड़ भी हुआ। आज अस्तित्व की सार्थकता अनुभव न कर पाने वाले लोग फालतूपन के अहसास से भरे हुए हैं। आदमी अतिरिक्त (सरप्लस) और तमाशाई हो गया है। वह आर्थिक, वैचारिक और सामाजिक संसार में फालतूपन की नियति से आबद्ध है।[1] कहीं व्यक्ति अपने को छोड़ सबको फालतू समझ रहा है तो कहीं केवल स्वयं को। इसका एक पृष्ठाधार अपने पुरातन देश की वह विशाल मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक परम्परा है, जिसका बहुलांश हमारे मनन और आचरण में व्याप्त है। फलतः जीवन से जुड़ी सारी सस्थितियाँ फालतू हैं और उनके नियामक विचार भी फालतू हैं। इसी आधार पर 'नयी कहानी' में पात्रों के अवसगत होने का विषयगत प्रयोग हुआ है।

कामू ने आज के मनुष्य की स्थिति को आधारहीन माना है। यह मनुष्य अपने परितः विसंगतियों का विश्व लिये त्रिशंकु बना है। कामू अन्तर की विवेकसम्मत माँग और बाहर की अविवेकी घटनाओं तथा अनुभवों के बीच युक्तियुक्तता और तारतम्यहीन स्थिति को विसंगति कहता है। विसंगतियों के जगत् में ऋत की धुरी और अतिमापरक सत्ता का अभाव होता है। आज की इस विसंगति से ही अवसंगति पैदा होती है। विसंगतियों के जगत् में हमारा वरण-स्वातंत्र्य नहीं रह पाता। कामू की कहानी 'द गेस्ट' का अध्यापक उस गाँव में पढ़ाता है, जिसके आस-पास अरबों ने विद्रोह किया है। उसे एक आरक्षी-अधिकारी द्वारा एक अरब बन्दी को विशेष आरक्षी-केन्द्र पर पहुँचाने के लिए आदेश दिया गया है। (शिक्षक से यह विसंगत माँग है!) शिक्षक उस निर्दोष, भोले-भाले अरब बन्दी से मिलकर सोचता है कि बन्दी को आरक्षी-केन्द्र पर अकारण मरना होगा। (विसंगति का दूसरा विन्दु!) वह

---

१. "हर व्यक्ति अपने कुल में 'मिसफ़िट' है। 'मिसफिट' होना उसकी नियति हो गयी है।"—डा० श्याम परमार : 'अकविता और कला सन्दर्भ (प्रथम संस्करण '६८), पृष्ठ २३।

कोमलांगों में शोषण झेलती नारी 'नयी कहानी' में प्रमुख रूप में चित्रित हुई है। अनुभव की असामाजिकता शारीरिक भोग के प्रति झुकने वाली नारी को दर्शाती है तो अकेलेपन की यातना झेलने वाली नारी को भी। यह प्रेम एकान्त में जाकर जीवन बिताने वाला प्रेम भी है और बढ़ती अवस्था की आतुरताओं को जीने वाला भी। यह प्रेम गुजर कर नहीं मिल पाने का प्रेम है और व्यक्तित्व के गुमनाम होने का भी।

'नयी कहानी' में प्रेम-चित्रण पहली बार मानसिक विकास की अनुभूति से हट कर हुआ है। यहाँ यह पूरे व्यक्तित्व के यथार्थ प्रक्रियाई प्रयोग के रूप में अभिव्यक्त हो उठा है। यह प्रक्रिया सारे वैयक्तिक और सामाजिक जीवन का वहन करने वाले तथा नितान्त व्यक्तिगत अनुभूति को भी सहेजने वाले साधारण मनुष्य की है। यहाँ मनुष्य प्रेम के लिए प्रेम न कर, प्रेम को प्राकृतिक प्रवृत्ति मान, उसे जीवन के सुख-दुःखात्मक आस्वाद के साथ अनुभूति के स्तर पर भेलता हुआ जीता है। 'नयी कहानी' में प्रेमानुभूति कुंठाओं में घुट-घुट कर जीने के लिए नहीं है, अपितु व्यक्ति-समाज के सम्बन्धों को सन्तुलन देने वाली है। यहाँ 'देवोपम उदात्तता' और 'दृढ़ चरित्रशीलता' कही जाने वाली विशेषताएँ खंडित हो गयी हैं और प्रकृत मनोभावों की गहन-से-गहन सत्य-निष्ठा-भरी सहज मानवीय प्रक्रिया जगह पा गयी है। प्रेम-कहानी के इस नये आयाम को देखते हुए ही 'नयी कहानी' ने अपना रचनात्मक प्रयोग किया है।

वस्तुतः पूर्ववर्ती कहानियों में प्रेम का चित्रण या तो छिछले सन्दर्भ में बहुत स्थूल रूप में होता था या आदर्शों के सन्दर्भ में बहुत वायवीय रूप में। पर 'नयी कहानी' में वास्तविक जिन्दगी को भुठलाने वाली कृति के माध्यम से आरोपित भावुकता और उसकी सत्यता के रचना-विधान को पहले-पहल नकारा गया। "प्रेम और भूख और इसी तरह जीवन के समस्त भाव पूर्ववर्ती कहानियों में वस्तु-सत्य के नाम पर बाह्य दृष्टि के रूप में छिछला सन्दर्भ बन कर आते थे, जो प्रमाण-सापेक्ष तो माने जा सकते हैं, पर प्रामाणिक उन्हें नहीं कहा जा सकता। क्योंकि कला-धर्म के अन्तर्गत प्रामाणिकता का प्रश्न अलग से अनिवार्य कारण बन कर नहीं आता।...[1]" पर 'नयी कहानी' में प्रेम के प्रक्रियाई चित्रणात्मक प्रयोग में एक और ही धड़कन सुन पड़ती है।

---

१. हृषीकेश : 'नयी कहानी : परिवेश की ऐतिहासिकता की भाषा', 'विकल्प', नवम्बर, पृष्ठ १५६।

यहाँ यह एक पीला, बीमार और एकांगी शब्द नहीं है। यह एक भयानक अनुभव है, मनुष्य का आत्यन्तिक रूप मे मूल्यवान् अनुभव।[1] पूर्ववर्ती कहानी में 'प्रेम' एक जनाना शब्द था। वहाँ प्रेम अनिश्चित था, पर उसका सम्बन्ध निश्चित। 'नयी कहानी' मे प्रेम अनिश्चित है साथ ही उससे उत्पन्न सम्बन्ध भी। यह एक अनिर्णयात्मक स्थिति है। अपनी कोई नैतिकता नहीं रखने के बाद भी यह अपने-आप में एक बड़ा नैतिक अनुभव है। आज "प्रेम अर्द्ध-स्वीकृति है या अर्द्ध-अस्वीकृति, यही पता कर सकना कठिन हो गया है। छूटे हुए व्यक्ति के बारे मे यह फैसला कर पाना मुश्किल हो गया है कि हम सचमुच उससे कभी जुड़े भी थे या नहीं। अगर हम कभी उससे जुड़े भी थे तो भी हम उसे झुठलाना चाहते हैं, क्योंकि यह अनुभव करना कि हम उससे जुड़े थे, अपनी यंत्रणा को और भी गहरा करना है।"[2]

इस प्रेम की कहानी राजेन्द्र यादव की 'सुले पल, टूटे डैने' है, तो मोहन राकेश की 'मिस पाल', उषा प्रियंवदा की 'एक कोई दूसरा' है तो रमेश बक्षी की 'थर्मस में कैद कुनकुना पानी', शानी की 'पत्थरों में बन्द आवाज' है तो राजेन्द्र यादव की दोनों पक्षों की टूटन को चित्रित करने वाली 'टूटना'। भावुकता की अपेक्षा निस्संग तटस्थता इस प्रेम के यथार्थ चित्रण की अनुभव-क्षम प्रामाणिकता है। 'कहानी' के अक्तूबर '६९ अंक में प्रकाशित प्रद्युम्न की 'समानान्तर' कहानी इस तथ्य को व्यक्त करती है। सुखान्त प्रेम-कहानी के दो सपाट स्त्री-पुरुष के मिलन-अर्थ से आगे की कहानी एक ओर श्रीकान्त वर्मा की 'परिणय' जैसी प्रेम-कहानी है तो दूसरी ओर मन्नू भंडारी की 'नशा' जैसी प्रेम-कहानी। श्रीकान्त वर्मा की 'दूसरे के पैर' में यह अनुभव किया जाना कि "हम पहले प्रेम करते है, बाद मे केवल उत्तरदायित्व के कारण प्रेम करते हैं,[3] 'साथ' में रति के साथ विवाहित होने की घटना को आजीवन आत्म-ग्लानि के साथ निभाते जाना, 'ट्यूमर' के नायक को यह प्रतीत होना कि वह एक "समझौते की दुनिया मे रह रहा है और किसी भी क्षण यह समझौता टूट सकता है।"[4] क्योंकि प्रेम समाप्त है और इसे

१. श्रीकान्त वर्मा : 'प्रेम कहानियों का बदला हुआ स्वरूप', 'नयी कहानी : दशा, दिशा, सम्भावना', पृष्ठ २२९।
२. वही, पृष्ठ २३१।
३. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ २७।
४. वही, पृष्ठ ८५।

मिथ्याने से कोई लाभ नही—प्रेम-चित्रण के नये झरोखों का खुलना है, जहाँ यथार्थ की प्रकाश-किरणें प्रतिपल झिलमिलाती हैं। ये सारी कहानियाँ प्रेम-हीनता की कहानियाँ हैं, फिर भी प्रेम के साथ इनका सम्बन्ध आत्यन्तिक रूप मे गहरा है। 'जलती झाडी' की अधिकाश कहानियाँ प्रेम के आत्मीय सम्बन्धो की कहानियाँ हैं। वे प्रेम की निरर्थकता को प्रेम करने के बाद नही, प्रेम करने के पहले ही पा लेती हैं। एक स्थाणु सृष्टि के आरम्भण के पहले ही सृष्टि को निरर्थ मान कर समाधिस्थ हो गया था और आत्मघात के मार्ग पर बढ गया था। इन कथा-नायकों की कहानियाँ ठीक इसी प्रकार की हैं। ये प्रणय की स्वैरकल्पनाओ की कहानियाँ हैं। इनका यौन देह के अधोभाग से उठकर मस्तिष्क के ऊर्ध्व भाग मे चढ़ गया है। ये भोग से पलायन भी करते हैं और खीझ तथा निरर्थकता का दर्शन भी बघारते हैं। वस्तुतः प्रेम का क्रियाशीलता के रूप मे न उभर कर चिंतन के रूप में उभरना भी 'नयी कहानी' के ऐसे ही प्रयोग का एक कोण है।

उषा प्रियंवदा ने तो धीरे-धीरे मरने वाले प्रेम की जबर्दस्त गवाही दे सकने वाली भाषा के सहारे भी प्रेम-सम्बन्धी कहानियों की ही खोज की है। *यहाँ पात्र प्रेम के बाद भी निहग रह जाते हैं।* पारदर्शिता के रहते हुए भी उनके बीचोबीच जैसे काँचिया भित्ति स्थिर खड़ी है। प्रेम का यह यथार्थ चित्रण पारस्परिक ठडेपन और बेगानेपन का व्यक्तीकरण है। इसके मूल में पश्चिमी जीवन की उन्मुक्त, खुली, काम-कुठाजन्य प्रतिक्रिया भी स्वीकृत है, जिसे उपेक्षित नही किया जा सकता। प्रेम के यथार्थ चित्रणात्मक प्रयोग की ये कहानियाँ सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सक्रमण के रूप मे सर्जित हुई है।

प्रामाणिक अनुभव के आलोक मे प्रेम के जो यथार्थ चित्रणात्मक प्रयोग हुए हैं, उनमे वैयक्तिक स्पर्श भी है। प्रबोध कुमार की 'आखेट'[1] कहानी मे एक लडकी एक परिचित चिकित्सक की दूकान मे दवा लेने जाती है। चिकित्सक उससे पारिवारिक वार्तालाप करता और जिज्ञासु-भाव से विभिन्न सवाल पूछने लगता है। लड़की बडे शील से सब सुनती रहती है। थोड़ी देर बाद उधर चिकित्सक उस लडकी से प्रेम-निवेदन करना आरम्भ कर देता है, इधर लडकी का भी सारा शील-सकोच छूट जाता है और व्यवहार का ऋतु-परिवर्तन हो पड़ता है। अभी तक की शील-सकोच-भरी, सहमी-सहमी लडकी

---

१. द्रष्टव्य : 'कृति', अगस्त १९६१।

सहसा सजग हो चिकित्सक पर अपना अधिकार-भाव अनुभव करती कहती है कि अब मैं नही आ सकूँगी। आप ही स्वयं आएँ। पलमात्र के इस अनुभव-बंध में लड़की एक और ही (और ही) लड़की हो रहती है। चिकित्सक प्रेम का प्रार्थी हो जाता है और लड़की चिकित्सक से भी बड़ी हो जाती है। बरबस की यह वयस्कता, सजगता तथा अपने से भी ऊँची उठी महत्ता 'नयी कहानी' के प्रेम का एक यथार्थ चित्रणात्मक प्रयोग है।

सुदर्शन चोपड़ा के पात्रों के लिए प्रेम विलासिता नही रहकर आवश्यकताओं का आकर्षण बन जाता है। उनके एक पात्र की भाषा मे "प्यार को आत्माओं का आकर्षण मानने की 'लग्जरी' हम 'एफोर्ड' नही कर सकते। हमारे-आपके लिए तो प्यार आपसी जरूरतों का आकर्षण है, आत्माओ का नही। क्योंकि हमारी जिन्दगियों में जरूरतें आत्माओं से ज्यादा महँगी हैं।"[1] सुदर्शन चोपड़ा ने ही हरिभाऊ उपाध्याय जी के 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित पत्र का नये-नयों की ओर से उत्तर देते हुए लिखा था, "हम उन नयो मे भी एक कदम आगे आकर यहाँ तक मानने लगे हैं कि प्यार से बड़ा झूठ आज तक बोला नही गया।"[2] प्रामाणिक यथार्थ के अनुभव-आलोक में प्रेम-चित्रण की सत्यता इसी झूठ की सत्यता है, जिससे सबद्ध प्रयोग इस क्षितिज तक पूरी तरह व्याप्त है।

पीढ़ियों के संघर्ष-चित्रण का प्रयोग

पुरानी कहानी मध्यम मार्गीय साधना से अनुशासित कहानी है, पर 'नयी कहानी' पुरानी-नयी पीढ़ी के संघर्ष-चित्रण की प्रयोग-प्रखर कहानी ! "पीढ़ियो का संघर्ष इस स्वातंत्र्योत्तर काल में प्रमुख समस्या रही है।"[3] पुराने प्रतिमान के टूटने और नये मूल्य के उभरने के इस संक्रान्ति युग मे पुरानी और नयी पीढियों में संघर्ष आवश्यक था। हर कही अविश्वास और आशंका से नवमूल्य और आधुनिक प्रवृत्ति को देखने वाली पुरानी पीढी की पराजय ही इस संघर्ष के लिए फलागम बन गयी। नयी पीढ़ी पुराने प्रतिमानों को अव्यावहारिक घोषित कर जयी हो रही थी। 'नयी कहानी' मे इस संघर्ष-चित्रण का प्रयोग प्रचलित युग-बोध के कारण शुरू हुआ था। यह संघर्ष

---

१. सुदर्शन चोपड़ा : 'हल्दी के दाग', पृष्ठ १२३।

२. 'ज्ञानोदय' अप्रैल १९६६, पृष्ठ १४२।

३. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व', पृष्ठ ११४।

१६५७ के साधारण निर्वाचन के बाद पुराने सत्ता-लोलुप अस्तित्व के करवट बदल कर बरकरार रह जाने से अधिकाधिक प्रखर हो उठा। अब नये और पुराने के बीच का यह संघर्ष बहुकोणिक, विविध-प्रेक्ष्यीय और त्रिक्षेत्रीय हो गया।

लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के अनुसार पीढियो का यह सघर्ष अपने विकसित रूप मे आत्मपरक सन्दर्भों न उभर कर सामाजिक सन्दर्भों मे उभरा।[1] किन्तु दूधनाथ सिंह के अनुसार स्वतत्रता-प्राप्ति के पूर्व सघर्ष बाह्य था, स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् वह लक्ष्यहीनता की स्थिति मे आन्तर हो गया।[2] यह आत्म-सघर्षात्मिक प्रयोग अभिव्यक्ति की मजबूरी के टलते रहने और नही टल पाने पर अभिव्यक्ति के 'ज्यों-की-त्यो' रह जाने से आरभ होता है। पर इसके मूल में भी पीढियो का सघर्ष ही है, क्योकि बाध्यताएँ पीढियो के सघर्ष की ही देन है। ये ही आन्तर सघर्ष को सिरजती हैं। 'नयी कहानी' अपने विकास-क्रम मे पुराने और नये के संघर्ष मे अनुदिन तीक्ष्ण होती आयी है। इसलिए 'नयी कहानी' का ऐसा प्रयोग सिर्फ पुराने से विच्छिन्न नही है, अपितु निजी असगतियो से भी अंदर-ही-अन्दर टकराने का प्रयोग है। सुरेन्द्र चौधरी भी इसी आत्म-सघर्ष को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानते हैं—"एक लम्बे और व्यापक संघर्ष की भूमिका के साथ हमारा काल-खड एक आततायी सवेदना की भूमिका का युग बन गया है'''उसका अपना आत्म-संघर्ष भी इस अर्थ मे कम महत्त्वपूर्ण नही है। उसकी रचनाशीलता उसके भीतर के अवसरवाद से भी उतनी ही बाधित हो रही है, जितनी बाहर फैली अव्यवस्था से! ऐसी स्थिति मे उसे एक साथ ही अलग-अलग स्तरों पर अपना रचनात्मक सघर्ष चलाना है।"[3]

पीढियों का यह सघर्ष अवस्था-दृष्टि से दो अलग-अलग पीढियो का सघर्ष नही है, क्योकि यह सर्जनशील साहित्य का प्रयोग है। वस्तुतः यह सघर्ष जीवन-दृष्टि और साहित्यिक मूल्यो का है, जहाँ कहानी युद्ध-क्षेत्र बनी है और चेतना साकार हो रही है। यद्यपि "सघर्ष का अर्थ केवल युद्ध या कोई स्थूल लड़ाई नही है। यह एक प्रकार से व्यक्तियो और समुदायो के आपसी सम्बन्धों की प्रतिक्रिया है।"[4] 'नयी कहानी' का 'घमासान' संघर्ष कहानी की शक्ति-

१. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व', पृष्ठ ११४
२. 'ज्ञानोदय', फरवरी '६६, पृष्ठ ११८।
३. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ २१८ और २२३।
४. डा० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ६०।

सत्ता, जीवन्तता, सतत रचनाशीलता और विकासमयता का प्रतीक है। वास्तुत्य संघर्ष सम्पूर्ण हिन्दी-कहानी के इतिहास में अभूतपूर्व है। इससे नयी जमीनें टूट रही हैं, नये स्तम्भ खड़े हो रहे हैं, कलश और कगूरे उठ रहे हैं और पूरा भवन तैयार हो रहा है।[1] पर इस संघर्ष-चित्रण के कारण 'नयी कहानी' को पूरी तरह स्थापित न स्वीकार कर उसे प्रयासात्मक प्रक्रिया मानना[2] सर्वथा भ्रान्त और भ्रष्ट तथ्य है। 'नयी कहानी' प्रकृति से निरन्तर विकसनशील, गत्यात्मक और वेगवती होने के कारण जड़ होना नहीं जानती। फलतः उसका संघर्ष शाश्वत है। जब तक परम्परावाद और रूढ़ियाँ हैं, अस्तित्व-स्थापन के लिए दैनंदिन संघर्ष अपेक्षित है। इसके मूल में समाज-नीति और राजनीति दोनों ही हैं। यह संघर्ष नये संवेदन और पुराने मन का संघर्ष है। इस धरातल पर नारी की सर्वथा परिवर्त्तित समस्याएँ हैं, जो पुराने समाधानों से तुष्ट न होकर नये समाधान खोजती है। मन्नू भंडारी की 'ईसा के घर इन्सान' में जब मिसेज शुक्ला यह कहती है कि "काश, ये दीवारें किसी तरह हट जाती"—तो इससे नारियों की विवशता, लूसी की मुक्तीच्छा, विषम परिस्थितियों से उसका निर्भीक और साहसपूर्ण संघर्ष —सबका-सब एकबारगी व्यक्त हो जाता है।[3] इस कहानी में नारी-संघर्ष का चित्र भावुक नहीं होकर भी अत्यन्त आत्मीय और सच रूप में उभरा है। जूली यहाँ धार्मिक और सामाजिक प्रतिमानों से संघर्ष कर रही है तो एंजिला यहाँ तिरस्कृति के साथ-साथ पुरातन-पंथी धार्मिक धारणाओं को झेलने के बजाय चुनौती दे रही है।

कमलेश्वर की 'ऊपर उठता हुआ मकान', 'देवा की माँ', धर्मवीर भारती की 'यह मेरे लिए नहीं', राजेन्द्र यादव की 'पास फेल', मोहन राकेश की 'जंगला', उषा प्रियंवदा की 'खुले हुए दरवाजे', विनीता पल्लवी की 'ऊपर-नीचे', सुधा अरोडा की 'एक अविवाहित पृष्ठ' तथा ज्ञानरंजन की 'पिता' जैसी कहानियाँ दो पीढ़ियों के बीच उभरते संघर्ष को व्यक्त करती हैं तो ज्ञान-रंजन की 'सम्बन्ध' कहानी में आत्मसंघर्ष मुखर हो उठता है—"यहाँ कोई संघर्ष नहीं किया जाता, केवल ध्वंस को निज के टूटने तक किसी तरह सहा जा सकता है"'जीवन में व्यर्थता का प्रतिशत ऊपर हो रहा है। नये

---

१. 'अकहानी नहीं होगी', माध्यम, जुलाई १९६५, पृष्ठ १९।

२. वही, पृष्ठ १९।

३. 'आलोचना', स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक–२, पृष्ठ ११५।

और पुराने का यह भयावह संघर्ष अपने प्रकर्ष पर यहाँ प्रस्तुत हो उठा है।"[1] यह आत्मसंघर्ष कमलेश्वर की 'नागमणि', निर्मल वर्मा की 'कुत्ते की मौत', ज्ञानरंजन की 'शेष होते हुए' जैसी कहानियों में द्रष्टव्य है। सुधा अरोड़ा की अधिकांश नायिकाएँ आत्म-संघर्ष की स्थिति से गुजरती हैं—'मरी हुई चीज' में भी और 'आग' में भी—"आज यह उन्हें जला डालेगी, उसने सोचा। जब किसी निर्णय के बारे में यह देर तक सोचती है, निर्णय बदल जाता है। डायरियाँ पड़ी रहती हैं, तो उसे लगता है, बीता हुआ सब-कुछ जिन्दा है।"[2]

ज्ञानी की कहानियों में आर्थिक मुक्ति के यथार्थ का संघर्ष है। "ज्ञानी का यथार्थ संवेदना से अधिक भुक्ति का यथार्थ है और उसकी भूमि आर्थिक है। उसी के संघर्ष उनमें मुखर हैं'''आज की ढोयी जा रही जिन्दगी के देश की अस्सी-फी-सदी जनता के मूलभूत संघर्ष की ये कहानियाँ हैं।"[3] ज्ञानी की 'नंगे, गँदले जल का रिश्ता', 'भूले हुए' आदि कहानियाँ इसी संघर्ष को व्यक्त करने वाली हैं। सचमुच 'नयी कहानी' का प्रयोग देश के इतिहास की अलिखित कहानी का प्रयोग है।

पात्रों में विचारों के प्रतीकन का प्रयोग

पात्रों में विचारों के प्रतीकन का अर्थ है कहानी के प्रतिपाद्य का मूर्त्त की पटरियों पर चल कर अमूर्त की ओर, बाह्य की पटरियों पर चल कर आन्तर की ओर, स्थूल की पटरियों पर चल कर सूक्ष्म की ओर प्रयाण। पर विचारों के प्रतीकन वाली इन कहानियों को अपने पूरे रचाव में न तो अमूर्त होना चाहिए और न बोध प्रक्रिया में केवल बुद्धिजीवियों द्वारा व्यायाम-सुलभ। इन विचारों को मूलतः वहन करने वाले पात्रों के जरिये नाट्यीकृत होना चाहिये। बड़ी बात यह है कि यहाँ भाषा ऐन्द्रेयिक प्रमाणों से सुसज्जित हो।[4]

'नयी कहानी' का यह प्रयोग उसका निजी वैशिष्ट्य है, यद्यपि प्रयोगात्मक कहानियों की संख्या अनुपाततः कम है। इस सन्दर्भ में आज के आलोचकों के प्रति शिकायत की गयी है कि "आज का आलोचक 'आइडिया' में

---

१. ज्ञानरंजन : 'फेंस के इधर-उधर', पृष्ठ ७४।
२. सुधा अरोड़ा : 'बगैर तराशे हुए', पृष्ठ १४२।
३. डॉ० धनंजय वर्मा : 'नयी पीढ़ी की उपलब्धियाँ : बारह नयी कहानियाँ', 'आलोचना', स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य-विशेषांक, खंड—२ पृष्ठ १०६।
४. लियोन सर्मेलियन : 'टेकनीक्स आफ फिक्शन राइटिंग', पृष्ठ १५७।

बदलते हुए चरित्र को न तो समझ पाता है और न समझने की कोशिश करता है।"[1] यह सचमुच हिन्दी-आलोचना के कठमुल्लापन पर उठायी गयी उँगली है। मेरे सामने हिन्दी के कथा-चरित्रों के वैशिष्ट्य का उल्लेख करने वाला एक निबन्ध और एक शोध-प्रबन्ध दोनों हैं। पर 'नयी कहानी' के पात्रों में विचारों के प्रतीकन-प्रयोग का किसी में भी उल्लेख नही है। कोमल सिंह सोलंकी[2] ने नये चरित्रों की सर्जना के मूल में आधुनिक भाव-बोध को स्वीकार किया है, पर पात्रों के विचारो के प्रतीकन की ओर उनका भी ध्यान नही गया है। डॉक्टर वेचन ने भी हिन्दी कहानी के चरित्र-विकास विषयक अपने प्रवन्ध में इस परिप्रेक्ष्य में पात्रो के निरूपण की महत्त्वपूर्णता नहीं दिखायी है। अपने स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य और चरित्र विकास,' नामक निवन्ध में उन्होंने लिखा है कि "विशिष्ट चरित्रों पर आधारित कुछ कहानियाँ बडी महत्त्वपूर्ण हैं, जिनमे 'शाखामृग' (शिवप्रसादसिंह), 'ऐक्टर' (राजेन्द्र यादव) तथा 'नींद' उल्लेख्य हैं।"[3] यहाँ वे 'नयी कहानी' के चरित्रों में असाधारणता-असामान्यता (एब्नार्मेलिटी) की समाप्ति मानते तथा आस्था और जागरण की चेतना स्वीकार करते हैं, परन्तु विचारों में परिवर्तित हो जाने वाले पात्रो का कोई उल्लेख नही करते।

'नयी कहानी' में जो श्रेष्ठ चरित्र-प्रमुख कहानियाँ लिखी गयी हैं उनमें चरित्र और धारणा का परस्पर सम्बन्ध-मूलक प्रयोग हुआ है। 'नयी कहानी' का कहानीकार इस विशिष्ट सन्दर्भ में अपने भीतर चरित्र-स्थिति, संघर्षशीलता और जीवनगत वास्तविकता के चरित्रांशों को भली-भाँति जोडने वाला ऐसा अनुभव सँजोये रहता है, जो सूक्ष्म, सही तथा प्रामाणिक होता है। पात्रो के माध्यम से धारणाविशेष को आलोकित करना सामान्य चरित्र-चित्रण से ऊपर का सोपान है, दर्शन की भाषा में यह 'प्राग्प्रक्षेपक विचार' (प्री रिफ्लेक्सिव कॉगिटो) है, जिसके लिए अत्यन्त उच्चस्तरीय चेतना अपेक्षित है। 'नयी कहानी' में यह प्रयोग पात्रो की वहुविध क्रियाशीलता में 'समय के छन्द की सही प्रक्रिया' को अनावश्यक कर्म-विधि से विलग कर चेतना-प्रवाह में गतिशील करता हुआ चरित्र के रूपायन को निश्चित धारणात्मक स्वरूप देता है।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'कुछ न होने का कुछ', 'मुरदासराय', पृष्ठ १५।
२. 'माध्यम', मार्च १९६६, पृष्ठ १९।
३. 'आलोचना : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक, खंड–२, जनवरी' ६६, पृष्ठ ९१।

यहाँ चरित्र के बाह्य रूप तक ही दृष्टि सीमित नही रखकर उसके आभ्यन्तर को ध्वन्यर्थ दिया जाता है। लिहाजा चरित्र लम्बी काठियों, चट्टान-सी छातियो और रस्सी-सी बुनी बाँहो वाले चरित्र-नायको के चरित्र-मात्र नही रह कर बहुत कुछ अतिरिक्तोत्तम हो उठते है, एक व्यापक ऊष्मा से सप्राण हो उठते हैं। चरित्र-चित्रण वाले ऐसे प्रयोग से परिचित नही रहने के कारण ही ही कमलेश्वर को भ्रामक मन्तव्य तक देने पड़े हैं कि "ये कहानियाँ जीवन-खंड नही थी, बल्कि चरित-नायकों की कहानियाँ थी।"[1]

शिवप्रसाद सिंह की 'धारा' कहानी की पात्रा तिउरा एक विचारधारणा में बदल जाती है, जिसकी दीप्ति (फ्लैश) धारा में कूदने वाले हर आदमी के पार नही लग पाने और पार न लग पाने वाले की जिन्दगी के अमहत्त्वपूर्ण नही होने के विचार को प्रकाशित कर देती है। उनकी दूसरी कहानी 'सुबह के बादल' के पात्र भी अपने निश्चित विचारो मे उद्भासित हो उठते हैं। 'सुबह के बादल' के चरित्रो में मुक्त प्रतीकात्मकता[2] नही होकर चरित्र को विचार मे परिवर्तित-प्रतीकित करने वाला प्रयोग ही है। हरिया स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की निरर्थक लगी लगाने वाली, किसी को कुछ नही समझने वाली बहरी पीढ़ी की तात्त्विकता को प्रकाश देता है तो दीनू बहुत फूंक-फूंक कर बुसली और सकट से बचने के प्रयासो और इच्छुक वर्ग की तात्त्विकता को। 'चीफ की दावत' मे भी भीष्म साहनी वैचारिक धारणाओं के रूप मे पात्र को परिवर्तित कर देते हैं। मार्कण्डेय की कहानियो मे भी चरित्रो को विचार-रूप मे बिम्बित करने का विषय बनाया गया है। 'भूदान' मे रामजतन नये विकास के स्वप्न-भग और नयी त्रासदी को नयी दृष्टि के समावेश से वैचारिक प्रकाश देता है। रामजतन रामजतन नही रहकर एक निश्चित विचारणा हो जाता है। 'नयी कहानी' के पात्रो मे विचारों के प्रतीकन का यह विषयगत प्रयोग 'बहुत कठिन और सूक्ष्म कथा-कर्म है'।[1] अतः अन्य प्रयोगो की तरह इसकी प्रचुरता नही है। यह प्रयोग मूलत: शिवप्रसाद सिंह की निजी और प्रामाणिक विशेषता है। उनकी अधिकाश चरित्र-प्रधान कहानियो मे यह प्रयोग गम्प्राप्त है। वस्तुतः यह एक साहसिक प्रयोग है, जिससे कहानी को नवजीवन मिलता है।

---

१. कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ ७८।
२. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी की भाषा', 'कल्पना', अगस्त-सितम्बर' ६६, पृष्ठ १६७।
३. डा० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १३।

सार्वक्षेत्रीय रूढ़ियों पर आक्रमण का प्रयोग

'नयी कहानी' की मान्यता ही रूढ़ियों पर प्रहार करने की है। रूढ़ियों को तोडने के स्पष्टतः दो अर्थ हैं। एक अर्थ कथा-रूढ़ियों को तोड़ने का है और दूसरा कथ्य की वैचारिक रूढ़ियो को तोड़ने का। रवीन्द्र कालिया ने कलकत्ते के कथा-दशक में कथा-रूढ़ियों को तोडते जाने की बात कही थी—"जो कथा-रूढियो को तोड रहे हैं वे हमारे निकट हैं, जो नही तोडते उनसे हम अपने को सम्बद्ध नही पाते···अब कथा-रुढियों को भंग करना जरूरी है। कहानी इसी से जिन्दा रहती है—राकेश की 'जख्म' या रमेश बक्षी की 'मातम'।"[1] 'नयी कहानी' ने *कथा-लेखन का साँचा एक-ब-एक तोड़ दिया।* यह काम परम्परा से हट कर हुआ था। अतः यह एक प्रयोग था। यह तोडना कथ्य और भाषा—दोनों ही स्तरो पर हुआ। भाषा और कथ्य दोनो अविच्छिन्न रूप से एक-दूसरे से जुड़े हैं। भाषिक साँचे को तोडना भाषा के रूढ़िग्रस्त, पुरा आवृत्त बनावटी कवच को बहिष्कृत-निष्कृत करना है। 'नयी कहानी' में "अभिव्यक्ति की इस छटपटाहट ने बहुत तोड़-फोड़ की है—अलकार, अनुप्रास, भाषाई रूमान सब ऐसे टूटे कि शैली की बात करना भी भारी लगने लगा। अब तक खडी बोली ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों के चमत्कार ही प्राप्त करती रही थी, गद्य की सही भाषा का आविष्कार यही कही शुरू हुआ है।"[2] सचमुच रूढि के प्रति विद्रोह करके ही कहानी को नये तथ्य से जोडा जा सका है। इसकी बात करते हुए रमेश बक्षी बदतमीज़ी करना—पुराने व्यक्ति पर ढेला फेंकना—धर्म समझते हैं। उन्होंने कलकत्ते की कथा-गोष्ठी में एक अनाम व्यक्ति की ओर से हुए प्रश्न के उत्तर में कहा था—"बदतमीज़ी से तात्पर्य उन पुराने दायरों को तोडने से है और वे दायरे टूटते हैं, तो हम अनायास रूप से सामने आ सकते हैं।"[3]

रूढियो के प्रति विद्रोहात्मक प्रयोग पुरानी दृष्टियों, सस्कारों, मान्यताओं, मूल्यो, सम्बन्धो व्यवस्थाओ आदि से ऊबे नये जन-मानस की प्रतिक्रिया को व्यक्त करने वाला है। बकौल शिवप्रसाद सिंह: "हम उलझे सम्बन्धो के उस मोड़ पर पहुँच गये हैं जहाँ भटके सूत्रों को खोजने से नही, उन्हें झटके से मारकर तोडने मे ही निस्तार है।"[4] 'नयी कहानी' में भीड का यही विद्रोह

१. 'ज्ञानोदय' : फरवरी १९६६, पृष्ठ १२१।
२. वही, पृष्ठ १५।
३. वही, पृष्ठ १७५।
४. डा० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, पृष्ठ २१२।

व्याप्त है, जो दूसरी ओर 'नेताओं के खोखले आदर्शों और अदूरदर्शिता-भरी योजनाओं' तक से क्षुब्ध-विक्षुब्ध है। इस विद्रोह में नंगे हो जाने का दम, अस्वीकृति के उन्मेष का सिलसिला, चिढ़ाने की हरकत, ताप पैदा करने की कूवत, जुलूस में सम्मिलित होने वालों को उनका सही स्वरूप दिखा देने का प्रकृत गुण आदि अपने पूरे उभार पर हैं। 'नयी कहानी' का यह विद्रोहात्मक प्रयोग निम्नलिखित प्रसगेतर कविता के विद्रोह से भी बढ़कर है—

"नहीं—अब यहाँ कोई अर्थ खोजना
व्यर्थ है
पेशेवर भाषा के तस्कर सकेतों और
बँलमुत्ती इबारतों में
अर्थ खोजना व्यर्थ है
हाँ, हो सके तो बगल से गुजरते हुए
आदमी से कहो—
लो, यह रहा तुम्हारा चेहरा, यह
जुलूस के पीछे गिर पड़ा था।"[1]

यहाँ विद्रोह सिर्फ दिखावटी नहीं होकर विषमता-जन्य स्थिति तथा वैचारिक और सर्जनात्मक खतरों का विद्रोह है। यह जीवन से बड़े गहरे जाकर जुड़ा है, और अवसर बनाने के लिए घुमड़ रहा है।

जैसे-जैसे 'नयी कहानी' में रूढ़ि के प्रति विद्रोहात्मकता का प्रयोग हुआ है, वैसे-वैसे एक विरोधी शोर का बगूला भी अम्बार उठाता आया है। हृषीकेश—जैसे 'नयी कहानी' के आलोचक इस बढ़ते हुए रूढि-विद्रोही स्वर को बनावटीपन, ढोंग और अवसरवाद मानते हैं—"बहुत वस्तुनिष्ठ बनने के चाव मे युवा-पीढ़ी बहुत आदर्शवादी, एक हद तक काफी निष्क्रिय और ईर्ष्या करते-करते झुक जाने की मन:स्थिति का शिकार है। पूर्ववर्ती पीढ़ी के ढोंग अवसरवाद और बनावटीपन को खंडित करने के प्रयास मे उसने अपना नया ढोंग, नया अवसरवाद और नया बनावटीपन पैदा कर लिया है।'[2] हृषीकेश का उक्त अभिमत सम्पूर्ण युवा लेखन के लिए सिद्धांत-रूप में भले ही आंशिक सत्य को व्यक्त करता हो, लेकिन कहानी-लेखन की व्यावहारिकता मे इसकी सत्यता कही भी प्रामाणिक नही हो पाती। नये कहानीकार की कहानियों मे

---

१. 'ज्ञानोदय', जुलाई १९६८, पृष्ठ ६३ पर उद्धृत।
२. 'आलोचना' (पूर्णाङ्क—४४): अक्तूबर-दिसम्बर १९६८, पृष्ठ ६८।

रूढ़ि को तोड़ने का वैसा विवक्षा-दोष भी नही है, जैसा कविता की पंक्तियों में आमतौर पर देखने को मिलता है—

"……जीवन में तोड़ रहा हूँ
……शब्द और शिल्प और भाषा और छन्द
सारे के सारे ये पिछले सम्बन्ध
मैं तोड़ रहा हूँ।"[1]

नये रचनाकार के विद्रोही स्वर के विरुद्ध एक सुसंस्कृत आरोपकर्ता द्वारा सम्बोधन-शैली में व्यक्त किया गया विचार भी प्रास्तुत्य है—"तुम्हारी अधिकाश रचनाओ मे जो क्रांति, विद्रोह और आक्रोश का स्वर उभरा है, उसका लक्ष्य स्पष्ट नही होता। वह सब एक नकली नारा बनकर रह गया है। क्रांति और विद्रोह पत्रिकाओ या गोष्ठियो या काफी हाउस की बहसों तक सीमित रह गये हैं।"[2] और फिर "भाई, कोरा विद्रोह अपने-आप में बेमतलब होता है। कोई-न-कोई उच्चतर लक्ष्य और सुलझी हुई दृष्टि तो होनी ही चाहिए। क्राति, विद्रोह, आक्रोश और अस्वीकार के पीछे कुछ तो स्वीकारात्मक आधार होना चाहिए। बिना किसी रचनात्मक दृष्टि के विद्रोह निरर्थक होता है।"[3] उक्त आरोपों के उत्तर में कुछ भी कहना निरर्थ है, क्योकि आरोपकर्त्ता पुलिस-मनोवृत्ति के शिकार हैं। पहले तो क्राति और विद्रोह एक नहीं, दो हैं, जिनकी भिन्न प्रकृति कामू ने स्पष्ट की है। दूसरे, इस विद्रोह की जड़ें बहुत गहरी हैं। यह विद्रोह मुखौटे और नकाब की तरह ऊपर से ओढ़ा हुआ नही है, बल्कि यह संलक्ष्य-सलक्षक क्रम में अवसर-प्राप्ति की होड़ का विद्रोह है। दरअसल ऐसे दोनों ही प्रकार के लोग—जो एक ओर तो विद्रोह को अपने-आप में बेमतलब मानते और साहित्य में उसका 'डाटा' गिनाने लगते हैं तथा दूसरी ओर समसामयिक लेखन में विद्रोह नजर नही आने की बात करते हैं—अतिगामी दृष्टि के पुरोधा होते है और साहित्य मे निरूपित इस प्रयोग को कार्य-कारण-सन्दर्भ में लेखने में सर्वथा असमर्थ रह जाते हैं। ऐसे आरोप की बयानगी शिगूफा छोड़ने की बानगी बनकर रह जाती है।

कामू ने विसंगतियो के ससार में एक हल आस्था-स्तुति को माना था,

---

१. दूधनाथ सिंह : 'सुरंग से लौटते हुए' : पृष्ठ ४४-४५।
२. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी : 'ज्ञानोदय', फरवरी' ६६, पृष्ठ ११-१२।
३. वही, पृष्ठ १४।

दूसरा आत्मघात को। फिर दोनों ही को उसने मिथ्या-बोध बताते हुए तीसरे मार्ग पर भी प्रकाश डाला था—"हाँ, तीसरा मार्ग भी है और यह है विद्रोह। विसंगतियों के परिवेश में ही रहकर नये मूल्यों की रचना का प्रयास।"[1] इनका यह विद्रोह अतीत की सारी धुरियों को अस्वीकारने वाला और तात्कालिक अनुभूति के निकष पर नितांत नये मूल्यों की स्थापना करने वाला है। आस्था-प्लुति, आत्म-हत्या और विद्रोह में विद्रोह को कामू ने सत्य के सन्निकट और श्रेयस्कर माना है। विद्रोह चाहे ग्रीक दार्शनिकों का हो या अति यथार्थवादियों (Surrealists) का, वह समग्र मानवीय स्थिति से उत्प्रेरित हो या स्वोत्तेजित, पर ये दोनों हैं दार्शनिक ही। कामू ने ईश्वर की अस्वीकृति कर चलने वाले विद्रोह को इनसे विलगाते हुए राजनीतिक आर्थिक विद्रोह कहा है।

कामू की विद्रोह-व्याख्या की बड़ी बात क्रान्ति और विद्रोह में उसका अन्तर बताना है। क्रान्ति का दर्शन पूर्व-निश्चित है। यह निर्गुण आदर्श-लोक (यूटोपिया) है। उसका आधार अमूर्त सिद्धान्त है। अपनी निर्माणावस्था में और विजय के बाद भी यह क्रान्ति पहले से निर्धारित काल्पनिक सत्य या सिद्धान्त के प्रत्येक भाग की परिणति (क्लाइमेक्स) पर देखती है। इसीसे हमें अविवेकी नर-संहार का फल प्राप्त होता है। पर विसंगति का दर्शन चरम-मूल्य को मिथ्याने के कारण अपना हल क्रांति में न ढूंढ़कर विद्रोह में ढूंढ़ता है। इसीलिए विद्रोह सापेक्ष मूल्यों पर आधारित क्रांति है। विद्रोह की गुंजाइश विकास की हर सम्भव गुंजाइश है। विद्रोह की परिस्थितियाँ सदैव ठोस होती हैं, अमूर्त नहीं। उदाहरण के लिए श्रमिक संघ आंदोलन (ट्रेड-यूनियन मूवमेंट) एक विद्रोह है। यह सगुण तथ्यों का दावेदार है और अधिलाभांश (बोनस), भत्ता, अवकाश, रोजी, तनख्वाह आदि को लेकर आगे बढ़ता है।

कामू के अनुसार विद्रोह और अराजकता में भी अन्तर है। अराजकता में ध्वंस का रस-लोभ होता है, मगर विद्रोह में सगुण तथ्य-परकता। यह महज शौकिया नहीं है। विद्रोह अपने भावगत पहलू में ध्यान है। कामू ने ध्यान और विद्रोह को परस्पर पूरक-रूप में स्वीकारा है। ध्यान ही वह कर्म है, *जिसके माध्यम से हम गहराई पा सकते हैं और विद्रोह का वरण सतही रूप में* न कर, मूल के गर्भ में उतरते हुए कर सकते हैं। यद्यपि विद्रोह की दृष्टि

---

१. कुबेरनाथ राय : 'क्रांति, विसंगति और कामू का विद्रोह-दर्शन' : 'ज्ञानोदय', अप्रैल' ६५, पृष्ठ २८।

अधूरी और सीमित है, तथापि यह अप्रामाणिक और नकली नहीं है। अपनी प्रामाणिकता में यह जहाँ कहीं भी उपलब्ध है, इसकी सत्यता स्वयं-सिद्ध है। हाँ, विद्रोह की दृष्टि में दो पीढ़ियों के बीच का फ़र्क एक चौड़ी खाई है। इस पर कोई सेतु निर्मित नहीं हो सकता।

'नयी कहानी' की ढेर-सारी कहानियाँ—राजेन्द्र यादव की 'तलवार पंच हज़ारी' धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो,' भीष्म साहनी की 'पहला पाठ,' 'समाधि भाई रामसिंह,' रेणु की 'तीर्थोदक', मन्नू भंडारी की 'सयानी बुआ', सुरेश सिन्हा की 'मृत्यु और······' जैसी कहानियाँ रूढ़ियों पर प्रहार करने वाली हैं।'

रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का यह प्रयोग स्थितिशील नैतिकता के विरुद्ध दिशा निर्दिष्ट करता है। श्रीमती विजय चौहान की 'आधुनिका नारी' पुरातनता के प्रति तीव्र वितृष्णा प्रकट करती उस पर निर्मम प्रहार करती है। वह दक़ियानूसी नैतिकता, सभ्यता के खोखले आदर्श, प्रेम, विवाह आदि के प्रति कुंठाहीन रहकर विक्षोभ और विद्रोह व्यक्त करती है। इस सम्बन्ध में उनकी 'शरत् की नायिका' शीर्षक कहानी स्मरणीय है। यह पूरी कहानी पुरातनता तथा रूढ़ि के प्रति असंतोष, क्षोभ, विद्रोह और आक्रमण का निर्वाह करने वाली है। प्राचीन समर्पित नारी की प्रवात प्रतिक्रिया है—"देखती हैं दीदी, इस देश में मातृत्व का कितना मूल्य है ? (अगर आप मुझसे शादी कर लें तो मैं पाँच लाख रुपये फ़ौरन आपके नाम करवा दूँगा और पाँच लाख रुपये बच्चा होने के बाद—अर्थात् पचास फ़ी सदी एडवांस और बाक़ी कॉन्ट्रेक्ट पूरा होने पर।)[1]" 'एक बुतशिकन का जन्म' में भोला को जो भाषणों में कहे जाने वाले 'चाहिए' शब्द से हार्दिक घृणा हो जाती है उसके मूल में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह ही सक्रिय रहता है।

सुदर्शन चोपड़ा की कहानी 'ऊब' में यह खाई अत्यन्त चौड़ी हो गयी है। सुदर्शन चोपड़ा के 'हल्दी के दाग' कथा-संग्रह में नयी ज़मीन टूटती दीखती है। ये कहानियाँ सम्बन्ध-परिवर्त्तन की न होकर सम्बन्ध-विच्छेद की कहानियाँ हैं, जो व्यक्तित्व की नक़ली नक़ाब उतारती हैं। यहाँ इसीलिए करुणा न होकर द्रोह और तल्खी है। सुन्दर लोहिया की 'स्वयहारा' कहानी में बहन बिना नौकरी के घर चलाती है और भाई को पढ़ाती है। इसी स्थिति का सताया भाई बहन को अपनी पढ़ाई चलाने के लिए ट्यूशन करने की अपनी

१. द्रष्टव्य : 'आलोचना', जुलाई' ६५, पृष्ठ ११६।

इसका ध्यान करता है और सोचता है कि वह रो देगी, पर वह उसकी कल्पना को मिथ्याती खिलखिला उठती है। इस पर वह बड़ी ग्लानि में खिसिया उठता है।

रूढ़ियों के प्रति विद्रोहात्मक प्रयोग 'नयी कहानी' का एक ऐसा प्रमुख विषयगत प्रयोग है, जो केन्द्रीय भाव-तत्त्व के रूप में उभरता है। यह निश्चित रूप में 'नयी कविता' के विद्रोही प्रयोग से कहीं अधिक सार्थक और ठोस है।

व्यंग्य और आक्रोश-चित्रण का प्रयोग

'नयी कहानी' व्यंग्य और आक्रोश की कहानी है। व्यंग्य कोरा मनोरंजन न होकर जीवन से साक्षात् कराता है। इससे बढ़कर जिन्दगी की सही आलोचना हो ही नहीं सकती बल्कि यह विभिन्न सामाजिकताओं को—समाज, राजनीति, धर्म और अर्थ से उत्पन्न सामाजिकताओं की—सीधी समीक्षा करता है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि व्यंग्य जीवन के प्रति ईमानदार नहीं होता अथवा वह दायित्वहीन होता है। व्यंग्य का प्रयोक्ता अन्य रचनाकारों की अपेक्षा अधिक गम्भीर दायित्व का अनुभोक्ता है। व्यंग्य की भूमि विसंगतियों की ही भूमि है, क्योंकि वह विसंगतियों के बीच ही पैदा होता और मिथ्याचारों तथा पाखंडों का पर्दाफाश करता है। विसंगति का कोण बदलता रहता है। जैसा हरिशंकर परसाई ने स्पष्ट किया है; "आदमी कुएँ की बोली बोले एक यह विसंगति है और वन-महोत्सव का आयोजन करने के लिए पेड़ काट कर साफ किये जाएँ, जहाँ मंत्री महोदय गुलाब के वृक्ष की कलम रोपें, यह भी एक विसंगति है। दोनों में भेद है, जो दोनों से हँसी आती है। मेरा मतलब है, विसंगति की क्या अहमियत है, वह जीवन में किस हद तक महत्त्वपूर्ण है वह कितनी व्यापक है, उसका कितना प्रभाव है, ये सब बातें विचारणीय हैं।"[१] 'नयी कहानी' का पुरानी कहानी से व्यंग्य और हास्य के प्रयोग का यही सबसे बड़ा अन्तर है। 'नयी कहानी' ने सबसे पहले उर्दू-हिन्दी की भँड़ौवा हास्य-व्यंग्य-परम्परा से अपने को विलग कर हलकेपन की उपेक्षा करते हुए गम्भीर और चुटीले प्रयोग किये हैं। दूसरे, इसके व्यंग्य-प्रयोग में हिन्दी-कविता के पत्नीवाद की सतही स्तरीयता की भी उपेक्षा हुई है। व्यापक सामाजिक जीवन की विसंगतियों को न देखकर पत्नी की मूर्खता

---

१. 'एक इन्टरव्यू परसाई-का-परसाई के साथ', 'नयी कहानियाँ', अगस्त १९६६, पृष्ठ १३६।

का बखान करना संकीर्णता नहीं तो और क्या है ? 'नयी कहानी' मे राजनीतिक व्यग्य की मात्रा अधिक है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में राजनीति बहुत बडी निर्णायक शक्ति हो गयी। इसीलिए 'नयी कहानी' के अधिक व्यंग्य प्रमुखतः और अनुपाततः दोनो ही रूपों में राजनीतिक-प्रशासनिक ही हैं ; चाहे हरिशंकर परसाई का 'भोलाराम का जीव' हो, शरद जोशी की 'जीप में सवार इल्लियाँ' या गिरिराज किशोर का 'पेपरवेट'।

'नयी कहानी' में हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल जैसे कलाकारों ने प्रमुख रूप में और मनोहर श्याम जोशी भीष्म साहनी जैसे कथाकारो ने गौण रूप में अपनी स्थापित कहानियो में व्यंग्य के प्रयोग किये हैं। इनके अतिरिक्त ज्ञानरंजन की कहानियाँ पैना व्यग्य करने वाली हैं तो काशीनाथ सिंह की कहानियाँ व्यंग्य-प्रयोग को अतिशय तीखी धार देने वाली। ज्ञानरंजन की 'कलह', 'सीमाएँ' और 'आत्महत्या' व्यंग्य-अर्थवत्ता की स्मरणीय कहानियाँ हैं। 'फेन्स के इधर-उधर' के स्पष्टतः दो ससार हैं। एक नयों के प्रति सर्वथा असहनीय नायक के परिवार का निजी संसार है, दूसरा पड़ोसी परिवार का सर्वथा अत्याधुनिक ससार। यहाँ सर्वतः निर्लिप्त और वीतराग कथाकार टिप्पणी नही मार कर विवरण (रिपोर्ट) देता चलता है। उसके सारे व्यग्यपूर्ण सकेत बड़ी कुशलता से अभीष्ट अर्थवत्ता उजागर कर देते हैं। ज्ञानरंजन की कहानी में परिवेश के प्रति जो व्यंग्यात्मक भंगिमा है उससे समाज का अन्तर्विरोध बड़ी गहनता से पकड़ में आ जाता है। एक ओर इस व्यग्य में सघनता है, दूसरी ओर निर्मम प्रखरता। ये विडम्बनात्मक सहानुभूति (आइरॉनिक सिम्पैथी) के कथाकार हैं। इनकी 'सीमाएँ' कहानी में कथ्य की आन्तरिक जटिलता ही नहीं, व्यग्य और विडम्बना भी है। ज्ञानरंजन का व्यंग्य जहाँ स्थितियो का व्यंग्य और समझदारी का व्यग्य है वहाँ काशीनाथ सिंह का नाटकीय व्यग्य। इन्होंने 'नयी कहानी' को केवल व्यग्योक्ति (आइरनी) दी है। 'अपने घर का देश' इनकी ऐसी ही कहानी है। 'कस्बा, जंगल और साहब की पत्नी' में मिसेज गोठी की बीतती जवानी पर व्यग्य है। 'लोग बिस्तरों पर' कहानी आद्यन्त रोचक अखबारी व्यंग्यो से भरी है। 'आदमी का आदमी' का व्यग विषय-दृष्टि से राजनीतिक-सामाजिक है तथा प्रभावदृष्टि से प्रखर और गत्यात्मक। 'चायघर में मृत्यु' मे उन बुद्धिजीवियो पर कठोर व्यंग्य है, जो कॉफी हाउस मे मृत्यु-बोध और सन्त्रास की चर्चा करते हैं तथा स्वयं विदेशी लेखकों के पढ़ चुकने का प्रमाण दिया करते हैं।

हरिशंकर परसाई ने 'नयी कहानी' को सर्वाधिक राजनीतिक-सामाजिक व्यग्य से विभूषित किया है। उन्होने 'नयी कहानी' को व्यग्य के रूप-रंग और मनस्तत्त्व में ही जैसे आकृत और प्राणवत कर दिया है। उनकी प्रसिद्ध व्यग्य कहानियाँ 'सुदामा के चावल', 'फैमली प्लैनिग', 'सदाचार का तावीज', 'प्राइवेट कालेज का घोषणा-पत्र', 'प्रेम-प्रसग में फ़ादर', 'एक गोरक्षक से भेंट' 'लिटरेचर ने मारा तुम्हे', 'मैं हूँ तोता प्रेम का मारा' आदि हैं। उनकी सर्वोपरि विशेषता यह है कि "अपने व्यग्य-लेखो एव कहानियो के माध्यम से वे हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों की विसगतियो को उभार कर रख देते हैं और तर्क का साथ नही छोडते।"[1] शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी आदि भी इन्ही की परम्परा के कथाकार हैं।

व्यग्य के प्रयोग पर आरोप करते हुए एक स्थल पर कहा गया है कि "हिन्दी में जो अधिकाश व्यग्य लिखे जा रहे हैं वे बैठे-ठाले पाठको के लिए लिखे गये चुटकुले हैं, मनोरजन की सामग्री है। व्यग्यकार के अस्त्र 'आइरनी' 'सरकाज्म', 'इनवेक्टिव', 'विट' और 'ह्यूमर' मे से इनके पास केवल 'ह्यूमर' है। इसीलिये वह टुच्चा और जनाना किस्म का है। सही व्यग्य की विराट्ता और पौरुष इनमे नही है। सच्चे और सार्थक व्यग्य की यह ताकत होती है कि वह मूल्यो की आपाधापी और सन्नान्ति का चित्र ही नही देता, नये मूल्यो की तलाश और उनकी ओर इशारा भी करता है।"[2] पर 'नयी कहानी' के व्यग्य पर ईमानदारी से विचार करने पर यह आरोप घोर असगत दीखता है। 'बैठे ठाले' के शीर्षक मे यदि कोई चाहे तो कुछ देर के लिए सतहीपन मान सकता है, यद्यपि इसमे भी बडी गत्वरता से कही व्यग्य का ही फरफराता सूत्र है, प्रतिपाद्य की व्यंजना को कैसे नकारा जा सकता है? और वह निश्चयत: इसमे है। दूसरी बात 'चुटकुला' और 'व्यग्य' की विभेदक-दृष्टि की है। 'व्यग्य' गहरा अन्तर्मुख प्रमाण है, पर 'चुटकुला' बहिर्मुख। 'व्यग्य' को 'चुटकुला' कहना 'चुटकुला को 'व्यजना' देना और 'व्यग्य' को 'हलका' करना है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जो व्यग्य नयी कहानियो मे उभरा है उसमे कही भी ऐसी स्थिति नही है। हिन्दी व्यग्य-प्रयोगो का मूल्याकन परम्परा की अपेक्षा समृद्धि की दिशा को स्पष्ट करता है। यहाँ व्यग्य-प्रयोग केवल हास्य (ह्यूमर) तक सीमित नहीं

---

१. उपेन्द्र नाथ 'अश्क' : 'हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय', पृष्ठ ३३४।
२. डा० धनंजय वर्मा : 'युवा लेखन : सही-गलत चेहरे', 'नयी कहानियाँ', मार्च' ६६, पृष्ठ ११७।

है। पर ख्वाहमख्वाह व्यंग्य आलोचक बनने वाले को क्या कहा जाए ? उसकी स्थिति कठिनाई से भरी है।" व्यंग्य के बारे में वह क्या कहे। अकसर वह यह कहता है–हिन्दी में शिष्ट हास्य का अभाव है। (हम सब हास्य और व्यंग्य के लेखक लिखते-लिखते मर जाएँगे तब भी लेखकों से इन आलोचको के बेटे कहेंगे कि हिन्दी मे हास्य-व्यंग्य का अभाव है।) आलोचक बेचारा और क्या करे? जीवन-बोध, व्यंग्यकार की दृष्टि, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक परिवेश के प्रति उसकी प्रतिक्रिया, विसगतियों की व्यापकता और उनकी अहमियत, व्यंग्य-सकेतो के प्रकार, उनकी प्रभावशीलता, व्यंग्यकार की आस्था, विश्वास —आदि बातें समझ और मेहनत की माँग करती हैं। किसे पड़ी है?"[१] दूसरे हिन्दी में विश्व-साहित्य के व्यंग्य-प्रयोगों के महज कुछ प्रकारो का अभाव देख कर व्यंग्य के अस्तित्व को ही सर्वथा अस्वीकार कर देने का प्रयास किसी भी प्रकार आलोचना का उत्तम निकष नही है। ऐसे भी "हिन्दी कहानी भानुमती का पिटारा नहीं है, जिसमें संसार के सब लेखको की सब विशेषताएँ उपलब्ध होनी चाहिए।"[२] पाश्चात्य अनुकरण के मोह में तो व्यंग्य यथार्थ की भूमि छोड़ कर सर्वथा शिल्प-चमत्कारी, अप्रकृत और आरोपित हो उठेगा। इसलिये यहाँ 'नयी कहानी' के व्यंग्य-प्रयोग की प्रवृत्ति, दिशा, सकेत-शक्ति आदि की परख करते हुए व्यग्य के सम्यक् स्वरूप का निर्धारण तथा उसकी भंगिमाओं का नया शास्त्रीय विभाजन करना सबसे अभीष्ट है। 'नयी कहानी' में टुच्चा और जनाना किस्म का व्यग्य नही नही है। यहाँ जी० पी० श्रीवातस्व, काका हाथरसी, शौकत थानवी और अजीमबेग चुगताई की प्रवृत्ति का सार्वत्रिक निषेध है। 'नयी कहानी' का व्यंग्य तैराकी की अपेक्षा गोताखोरी का व्यंग्य है। इसलिए यहाँ सामन्ती मनोरजकता नही है।

'नयी कहानी' के व्यग्य-प्रयोगो में मूल्यों की सार्थकता भी है। इसका एक दृष्टान्त हरिशंकर परसाई की 'सदाचार का ताबीज' कहानी है। कहानी में प्रत्यक्षतः कोई सुधारवादी सकेत नहीं है। महज इतना है कि ताबीज बाँधकर आदमी को ईमानदार बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। कहानी में भाषणों और उपदेशों से प्रभावित,'सदाचार का ताबीज' बाँधने वाला बाबू दूसरी तारीख को रिश्वत नहीं लेता है।—'कर्मचारी ने उन्हें डाँटा—भाग जाओ यहाँ से!

---

१. हरिशंकर परसाई : 'सदाचार का ताबीज (प्रथम संस्करण, १९६७), 'कैफियत', पृष्ठ ७।

२. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ ८।

और यथार्थ विरुद्ध नही है। ये कहानियाँ सही आक्रोश की कहानियाँ हैं, जिन्हें बच्चन सिंह 'ट्यूमर' और 'ब्रेन ट्यूमर' की कहानियाँ कहते है—कही आत्म-ग्लानि और झल्लाहट है, कही अनिर्णयात्मक स्थिति—एकचित्तता का सर्वत्र अभाव, बेहद बेचैनी और क्षोभ।[1]" सचमुच नये कहानीकारो ने कथ्य के आक्रोश को अपनी सम्पूर्णता मे प्रकट करने के लिए अभिव्यक्ति के छाये विराट् मौन को प्रखर त्वरा, आक्रोश और साहस के साथ भेद दिया है। फिर तो एक-एक कर पूरा हुजूम ही उभरता चला आया है—"वैज्ञानिक उपमाएँ और शॉकिंग इमेजेज, भाषा में एक हद तक अनगढपन और आक्रोश की भगिमा, प्रहार करते हुए तेज नेजे की धार-से चुभते हुए शब्द और पूरी बनावट मे एक शार्पनेस[2]" और इसी पर सवार प्रस्थित, सर्वतः गतिशील आक्रोश-भरा कथ्य उभरा है, अपनी सनसनाती तेजी से प्रयोगशः।

उपेक्षित जन-समूह के सहानुभूतिशील चित्रण का प्रयोग

'नयी कहानी' के एक सिद्ध आलोचक के शब्दों में "एक जमाने मे जिस प्रकार वेश्याओ और पतिताओ के उद्धार का उत्साह था, उसी प्रकार आज के कुछ सवेदनशील कहानीकारो ने कजरो, नटो, मुसहरो, मीरासियो, हिजडो, रमन्तू नर्तको आदि यायावरीय मनुष्यो का उद्धार किया है...।[3]" यही 'नयी कहानी' के सर्वथा नये रूप में उभर कर आने वाले उपेक्षित जन-समूह के चित्रण का प्रयोग है। इस प्रयोग को प्राय ग्राम-कथा से संयुक्त किया जाता है, जबकि नगर-कथा और ग्राम-कथा का ही विभाजन असगत है। सवेदना के धरातल की दृष्टि से इसका कोई औचित्य नही है।

कबीले या उपेक्षित जन-समूह के चित्रण से 'नयी कहानी' मे सवेदना का नया आयाम खुला है। इस प्रयोग के अन्तर्गत कजर, नट, मुसहर, मीरासी, हिजडे, भील, कलावे—जैसी पिछड़ी और उपेक्षित जातियो के जीवन का यथार्थता के आलोक में प्रामाणिक मुक्ति के तौर पर चित्रण किया गया है। 'विदा-

---

१. डॉ० बच्चन सिंह : 'हिन्दी कहानी : नयी प्रवृत्तियाँ और उपलब्धियाँ', 'आलोचना', स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक', जुलाई १९६५, पृष्ठ ६६।
२. डॉ० धनंजय वर्मा : 'सरहदों पर लड़ाई या बोध-दृष्टि।', 'ज्ञानोदय', मई १९६६, पृष्ठ १२४।
३. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी-नयी कहानी' : पृष्ठ ९३।

पत' गाने वाले नर्तकों की जिन्दगी पर 'रेणु' की प्रसिद्ध कहानी 'रसप्रिया' है, तो 'आर-पार की माला', 'सँपेरा', 'पापजीवी', 'बिन्दा महाराज' जैसी शिवप्रसाद सिंह की कहानियाँ हैं। हाँ, नट्टिनो और कलावों की जिन्दगी पर जयसिंह नामक एक अल्प-चर्चित कथाकार की भी कुछ कहानियाँ प्राप्त होती हैं।

हिन्दी कहानी में यह प्रयोग विस्तार की दृष्टि से प्रमुख न होकर भी गहनता और तीव्रता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस प्रयोग को महत्त्व संवेदना का वह निकष देता है, जो अल्प-चलित और सीमित रहने के बाद भी स्वीकार्य हैं। बंगला-मराठी कहानियों में ऐसी उपेक्षित जातियों का जीवन सर्वथा एक नवीन मर्मस्पर्शी यथार्थ उजागर करता आया है। हिन्दी-कहानियों में इन उपेक्षितों के जीवन-चित्रण में इनके प्रति संचित, पहले से चली आती उपेक्षा का भाव खंडित हुआ है। आज का नया कथाकार उस उपेक्षा-भाव को खंडित करते हुए आगे बढ़ने की दिशा में संवेदनशील हो गया है। इसीलिए 'कलियाँ मैं चुन-चुन सेज लगायी, मोरा सुननेवाला बिदेस तरसे'—जैसी पंक्तियाँ गानेवाला बिन्दा महाराज जब कथान्त में मुस्कुराता है, तब उसकी व्यथा—भरी हँसी दुपहरिया के फूल की तरह बिखरती मालूम पड़ती है। 'सँपेरा' के अन्त मे तो आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगते हैं। पर वही एक नवीनता है, जो इन कथाओं में विचित्र उपेक्षित पात्रों द्वारा आलोकित होने वाले विचारों के पूरेपन से व्यक्त होती है। बिन्दा महाराज की शारीरिक अक्षमता के बावजूद उसकी वह अतृप्त मानस-पिपासा, जो ठीक अन्य व्यक्तियों की ही तरह है और 'सँपेरा' का वह परिवेश, जो अभी 'अज्ञेय' की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियों के व्यंग्य के नावाकिफ है—

> "साँप। तुम सभ्य तो हुए नहीं
> नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
> (एक बात पूछूँ? उत्तर दोगे?)
> तब कैसे सीखा डँसना
> विष कहाँ पाया?"
>
> ...('हरी घास पर क्षण भर')

...दोनों ही इस प्रयोग के वर्ण्य बने हैं।

विभक्त संसार के चित्रण का प्रयोग

'आनेवाली दुनिया' शानी की एक कहानी है। इस कहानी के घर के फर्श

पर सिगारों की धूल का एक टुकड़ा आकर चार कालों का एक चतुर्भुज बनाता है—"कभी-कभी मुझे लगता है कि हमलोग दो दुनियाओं में रहते हैं—एक घर की और दूसरी बाहर की। घर को बाहर से काटकर रखते हैं और बाहर को घर से। यह बात नितान्त व्यक्तिगत स्तर भी लागू पर होती है। मानो भीतर को बाहर से अलग रखते हैं और बाहर को भीतर से।[1]" यह एक पूर्ण मनःस्थिति का संकेत है, जो समय को घोपता तथा कथ्य के स्तर पर विभक्त संसार की जटिलताओं को उकेरता है।

'नयी कहानी' का यह प्रयोग रामकुमार, रवीन्द्र कालिया, विजय चौहान, राजकमल चौधरी जैसे कथा-लेखकों में विशेष रूप से प्राप्त है। रामकुमार की 'सेलर' कहानी में भीतरी-बाहरी-दोनों ही संसार हैं। यहाँ गफूर के घर में अपनी और अपने पुत्र की स्थिति का कथा-पात्र द्वारा विश्लेषण करते चलना कहानी की बाह्य जागतिक सृष्टि है। कथारम्भ की "कुछ देर तक उसी प्रकार एक हाथ में शीशा लिये वह अनिश्चित उदासीन भाव से देखता रहा—खुली खुली शून्य-सी आँखें, जैसे दो दरवाजे अपने-आप खुल गये हों, जिनके बीच में दूर-दूर तक उजाड़ दिखाई देता है"[2]—पंक्तियाँ कहानी के नायक के भीतरी संसार को प्रत्यक्ष करती हैं। पूरी कहानी में भीतर और बाहर का मानस-संघर्ष है। अन्त के भी—"मन्नू की खुली-खुली शून्य-सी आँखें, जैसे कोई बन्द दरवाजा खुल गया है, जिसके बीच में दूर-दूर तक वह झाँक सकता है। भीतर क्या है इसे जानने के भय से उसने आँखें बन्द कर ली"[3]—वाक्य से कठोर और निर्मम, असह्य और दारुण आन्तर सत्य का अभिव्यंजन होता है।

रवीन्द्र कालिया की 'नौ साल छोटी पत्नी' में तृप्ता स्पष्टतः दो संसारों में जीती है। अपने बाहरी संसार में वह कुशल की है, पर भीतरी संसार में सोम की। बाहरी दुनिया के अनुभव-बोध में वह कुशल से कहती है : "सुम्मी बहुत खराब लड़की है...देखने में कितनी भोली लगती है, पर मुई को लड़कों के खत आते हैं...मैंने खुद देखे हैं, इसके पास दर्जन के खत। नासपीटी उसके जवाब भी लिखती है।[4]" पर ऐसे ही कई-कई पत्र तृप्ता की भीतरी दुनिया के तहखाने में छिपे पड़े हैं, जिन्हे कुशल ने देखा है—"कागज़ों का एक सस्ता

---

१. द्रष्टव्य : 'कल्पना' : जनवरी-फरवरी १९६९, पृष्ठ २४।
२. द्रष्टव्य : 'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ' (सं० सुरेन्द्र), पृष्ठ ३३०।
३. वही, पृष्ठ ३४०।
४. रवीन्द्र कालिया : 'नौ साल छोटी पत्नी' (प्रथम संस्करण, ६९), पृष्ठ-७४।

पुलिन्दा था, जिसमें दोनों के खत थे सोम के भी और तृप्ता के भी, जो शायद तृप्ता ने चालाकी से वापस ले लिये थे, या सोम ने शराफत से लौटा दिये थे।[1]" इस भीतरी संसार में तृप्ता और ही ढंग से सोचती है : "...उसने सोच लिया था कि कुशल की दृष्टि इतनी पैनी नहीं हैं जितनी कि वह समझ बैठी है।[2]"

विजय चौहान की 'एक बुतशिकन का जन्म' कहानी में भीतरी ससार निर्माण का है और बाहरी संहार का। जो भोला किसी के सकेत पर उत्सर्ग होना और कुछ कर दिखाना चाहता था कथात मे वही घोर जंगली हो जाता है—"अगर मुझे निर्माण न करने दिया गया तो मैं ध्वस करूँगा, उसे याद आया, बचपन मे जब वह कागज पर मनपसंद तसवीर नही बना पाता था तो कागज को नोचकर फेंक देता था।[3]" राजकमल चौधरी की कहानी 'दाम्पत्य' में उर्मिला और राजनाथ दोनों ही भीतरी-बाहरी संसारों का अनुभव भोगते हैं।[4] विभक्त दुनिया का यह सार्थ प्रयोग व्यक्तिगत और सार्वजनिक जिन्दगी की अलग-अलग खानापूरी न होके अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष के आधार पर व्यक्ति-मन के विभाजन को उपस्थित करने वाला है।

'नयी कहानी' के ये विषयगत प्रयोग एक ओर विचारगत प्रयोग से प्रेरित-प्रभावित हैं, दूसरी ओर शिल्पगत प्रयोग और भाषागत प्रयोग से सम्बद्ध।

●

१. वही, पृष्ठ ७८।
२. वही, पृष्ठ ७१।
३. सुरेन्द्र (सम्पादक) 'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ', पृष्ठ ३८०।
४. वही, पृष्ठ ३५६-३७३।

अध्याय ५

'नयी कहानी' : शिल्पगत प्रयोग

शिल्पगत प्रयोग : स्वरूप और प्रकार

'शिल्प' शब्द 'शिल्प्' धातु और 'पक्' प्रत्यय से निष्पन्न है। शिल्प कलात्मक निर्वाह की पद्धति है। यह किसी भी कला मे साधना की प्रणाली अथवा प्रतिपादिति है।[1] 'शिल्प' सच्चे अर्थ में वह माध्यम है, जिसके जरिये लेखक अभिव्यक्ति के लिए बाध्य करने वाली अपनी सारी अव्यक्त अन्तः-प्रेरणाओ के बीच यथार्थ तौर पर यह अनुभव करता है कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। यह वह माध्यम है, जिससे उसकी रचनात्मकता एक रूप-रग पकड़ पाती है।[2] वस्तुतः सार्थक अभिव्यक्ति को कलात्मक मोड़ देना ही शिल्प है।

'नयी कहानी' मे विचारगत और विषयगत प्रयोगो की अपेक्षा कलात्मक प्रयोग रचना की कही अधिक सघनता और प्रसार की कही अधिक व्यापकता में हुए हैं। कलागत प्रयोग के दो रूप हैं—१–शिल्पगत प्रयोग और २–भाषागत प्रयोग।

एक आलोचक ने 'नयी कहानी' के शिल्प का अध्ययन रेखाचित्र, डायरी, लघुकथा जैसे मुद्दो में बाँट कर किया है।[3] पर इससे शिल्प को कोई वास्तविक

---

१ "टेकनीक इज द मैनर ग्रॅव आर्टिस्टिक एग्जिक्यूशन, व पर्फामेशन ऑर द मेथॅड ग्रॅव मैनीपुलेशन इन एनी आर्ट ." 'इनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका,' वाल्यूम-२७ (शिकागो विश्वविद्यालय से १६४६ में प्रकाशित संस्करण), पृष्ठ ८७०।

२. लियोन सर्तेलियन : 'टेकनीक्स ऑव फिक्शन राइटिंग,' मार्क शोरर लिखित भूमिका पृष्ठ १६।

३. डॉ० स्वर्ण किरण : 'नयी कहानी, 'अद्यापुनिक हिन्दी-साहित्य', पृष्ठ २००।

नवीनता अथवा वैविध्यपूर्ण प्रयोग-क्षमता प्रकट नहीं होती। अँगरेज़ी में हेनरी जेम्स की कहानियों में शिल्प की मीमांसा करते समय कृष्ण बलदेव वैद ने पहले से चली आ रही सरणि पर ही उत्तम पुरुष और अन्य पुरुष जैसे कथात्मक शिल्पों का वर्गीकरण किया है।[1] शिल्प के ऐसे अध्ययन में मीमांसकों की दृष्टि सूक्ष्मता की ओर नहीं गयी है। 'नयी कहानी' में शिल्प के अत्यन्त सूक्ष्म और कलात्मक प्रयोग हुए हैं, जिन्हें केवल रेखाचित्र शैली, डायरी-शैली और संकुचन-प्रसार शैली में आरोपित नहीं किया जा सकता। 'नयी कहानी' का शिल्प मन्नू और अमरकान्त की कहानियों-सा कभी सीधा-सादा हो जाता है, कभी सर्वेश्वर और रघुवीर सहाय की कहानियों-सा चित्र-भाषाई, कभी निर्मल वर्मा की कहानियों-सा सर्वथा विदेशी, कभी रेणु की कहानियों-सा सर्वथा देशी, कभी श्रीकान्त वर्मा की कहानियों-सा शैली-हीन तो कभी राजकमल की कहानियों-सा शैलीग्रस्त।"[2]

'नयी कहानी' के शिल्पगत प्रयोग सोलह विभिन्न शीर्षकों में विवेचित-विश्लेषित किये जा सकते हैं—

१—आंचलिक शिल्प का प्रयोग।

२—विविध-स्तरों वाले सूक्ष्म, सांकेतिक शिल्प का प्रयोग।

३—प्रतीकात्मक शिल्प का प्रयोग।

४—बिम्बात्मक शिल्प का प्रयोग।

५—दुहरे कथा-शिल्प का साम्य-वैषम्य-मूलक प्रयोग।

६—समाप्ति से आरम्भण के शिल्प का प्रयोग।

७—कथानक-ह्रास और कथा-सूत्र के विशृ खल शिल्प का प्रयोग।

८—चरमोत्कर्ष पर बोधसूत्र के स्पष्ट होने वाले शिल्प का प्रयोग।

९—विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प का प्रयोग।

१०—स्वैरकल्पना (फ़ैंटेसी) के शिल्प का प्रयोग।

११—व्यक्तित्व के द्विधा प्रस्तुतीकरण के शिल्प का प्रयोग।

१२—एक कथा के अन्तर्गत कई कथा-नियोजन के शिल्प का प्रयोग।

१३—आवर्तक शिल्प का प्रयोग।

---

१. द्रष्टव्य : 'टेकनीक इन द टेल्स ऑव हेनरी जेम्स' (हॉर्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस: कैम्ब्रिज, मैसाच्युसेट्स, १९६४)।

२. रमेश बक्षी। 'कथाकार की अपनी बात : आज की कहानी के सन्दर्भ में,' 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १०९।

१४—गाथा-शिल्प का प्रयोग।
१५—समीकरण-शिल्प का प्रयोग।
१६—तान्त्रिक शिल्प का प्रयोग।

'नयी कहानी' में इन शिल्प-प्रयोगों को मूलतः इन्द्रिय-सचेतना के रूप में अवरेखित किया गया है।[1]

आंचलिक शिल्प का प्रयोग

'अंचल' शब्द के विविध निर्वचन किये गये हैं, इस विषय मे सामान्य मान्यता अचल और उस वृहत्तर राष्ट्रीय सस्कृति, जिसका अपने-आप में अचल एक भाग है, के बीच भेदक महत्त्व की है। आचलिक साहित्य चुने गये वर्ण्य स्थल की खासियत का, प्रकृति और मानव-सबधी वातावरण के एक-एक तथ्य का विशेष तौर पर बडी सफ़ाई से उल्लेख करता है। फिर भी अपने-आप मे इसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा नही की जा सकती। आचलिकता को सामाजिक, भौगोलिक और भाषिक आधार भी परिभाषा की हदबन्दी नही दे पाते हैं।[2]

आचलिकता एक शिल्पगत प्रयोग है। यह ग्राम-कथा से अपने स्वरूप में भिन्न है। ग्राम-कथा की भूमि विषय की है, पर वह प्रयोग नही है; आचलिकता की भूमि शिल्प की है और वह प्रयोग-रूपत स्वीकृत है। ग्राम-कथा में साधन-रूप मे आने वाले आचलिक तत्त्व सम्भाव्य हैं, पर ग्राम-कथा का पर्याय भाचलिक कया नही है " ..ग्राम-कथा ज्यादा व्यापक और उपयुक्त शब्द है। आचलिकता एक प्रवृत्ति-मात्र है, ग्राम-कथाएँ सभी आचलिक नही होतीं।"[3] स्पष्टत ग्राम-कथा विषय से सबद्ध होने के कारण अधिक व्यापक और सामान्य पर आचलिकता शिल्प से सबद्ध होने के कारण अपेक्षाकृत कही अधिक विशिष्ट है। ऐसा नही है कि "आचलिकता के भीतर ही ग्राम-कथा आती है।"[4]

---

१. वही, पृष्ठ १०७।
२. इनसायक्लोपीडिया अमेरिकाना, १७वाँ खण्ड (अमेरिकाना कार्पोरेशन, न्यूयार्क, इंटरनेशनल एडीशन, १९६४) पृष्ठ-५७१-५७२।
३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आज की हिन्दी कहानी : प्रगति और परिमिति', 'नयी कहानी : संदर्भ और प्रकृति', पृष्ठ-१४३।
४. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ २०९।

आंचलिकता अंचल-विशेष के रीति-रिवाज, समास-राजनीति, धर्म-संस्कृति, रूढ़ि-परम्परा, पर्व-उत्सव, गीति-नृत्य, रहन-सहन, भाषा-मुहावरे आदि के विस्तृत परिवेश में चित्रित करती है। इस प्रक्रिया में शिल्पगत कलात्मक प्रयास के रूप में उभरती है—आंचलिकता भी एक प्रकार का शिल्प ही है—आंचलिक शब्दों, आंचलिक मुहावरों, आंचलिक दृश्यों से कहानी की सम्पूर्ति।[1]" आंचलिकता अंचल-विशेष के चित्रण की एक विशेषीकृत प्रणाली, परिपाटी और पद्धति है। सत्यान्वेषण के इस शिल्प में कथाकार की जीवन-दृष्टि की व्यापकता है जिससे इसको अभिनव आयाम मिला है। डॉ० शंकरदेव अवतरे ने आंचलिकता को विषय से संबद्ध मानने की भूल की है—"विषय-वस्तु की खोज की मुख्यतः दो दिशाएँ सामने आयी हैं। पहली विशेषता थी आंचलिकता और मानव के निम्नतम वर्गों के चित्रण और दूसरी थी सम-सामयिकता के परिवर्तनशील चित्रों के अंकन की।[2]" प्रश्न है कि क्या आंचलिकता रीति-रिवाज, रहन-सहन, लोक-जीवन, गीति-नृत्य, भाषा-मुहावरे आदि के अतिरिक्त 'कुछ और' नहीं कहती? निश्चित रूप से वह 'कुछ और' भी कहती है। यही 'कुछ और' आंचलिकता की मुहर नहीं लगी कहानियों का विषय भी रहता है। अतः वस्तु तो यही 'कुछ और' है, आंचलिकता वस्तु नहीं है। "आंचलिकता अंचल-विशेष के यथार्थ को उकेरने का कलात्मक प्रयास है। आंचलिकता स्थानीय रंग में नहीं, बल्कि स्थापत्य में है।[3]" फिर आंचलिकता और मानव का निम्नवर्गीय चित्रण—दोनों एक ही नहीं हैं। उपेक्षित निम्नवर्गों का चित्रण मुख्यतः ग्राम-कथाओं में हुआ है, आंचलिक कहानियों ने तो उस विषय को गले तक नहीं लगाया। इसमें तो गाँव के कोमल, सनातन, श्रेण्य स्वर की ही पकड़ रही। इकहरी ग्राम-संस्कृति का निखार रहा, तिहरी-चौहरी विकृति उभर कर नहीं आ सकी।[4]

यह भी ध्यान देने योग्य है कि आंचलिक कहानियाँ केवल ग्रामीण नहीं

१. डॉ० स्वर्णकिरण : 'नयी कहानी', 'अत्याधुनिक हिन्दी-साहित्य', पृष्ठ २००।
२. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ २०८।
३. डॉ० सियाराम तिवारी : 'सिद्धान्त' अध्ययन और समस्याएँ', पृष्ठ १०।
४. विवेकी राय : 'आधुनिक कहानी में ग्राम्य-जीवन', 'कल्पना', अगस्त-सितम्बर, १९६८, पृष्ठ १६७।

होतीं, जैसा कामेश्वर शर्मा ने स्वीकार किया है।[1] प्रतिकूलतः कोई भी ऐसी कहानी, जो अचल-विशेष की सामान्य प्रवृत्तियों को परिवेश की व्यापकता देती और चित्रित करती है, आचलिक कहानी है। यह अचल ग्राम्य भी है और नागर भी, मुहल्ले का भी है और कस्बाती भी ; क्योंकि अंचल का अर्थ न तो सिर्फ़ गाँव है और न नगर ही।[2] धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' और मन्नू भडारी की 'रानी माँ का चबूतरा' नागर जीवन की कहानियाँ होती हुई भी आचलिकता के प्रयोग को उजागर करती हैं। 'नयी कहानी' में ग्रामीण आचलिकता का अधिकाधिक चित्रण हुआ है, किन्तु नागर आचलिकता का चित्रण अनुपाततः बहुत कम है।

'नयी कहानी' में आचलिक प्रयोग करने वाले कहानीकारो में फणीश्वरनाथ 'रेणु', शैलेश मटियानी, मधुकर गगाधर आदि प्रमुख हैं। 'रेणु' की 'टेबुल', सवदिया', 'अतिथि-सत्कार', 'नयी कहानी पुराना पाठ', 'उच्चाटन', 'सिरपचमी का सगुन', 'नैना जोगिन' जैसी कहानियो मे आचलिकता का पूर्ण सफल निर्वाह हुआ है। उनकी आचलिकता रचनात्मक चेतना का उपयोग करती है। इसीलिए एक ओर वे अचल की धडकन तक को आत्यतिक सजीवता और कला से तद्वत उतार देते हैं तो दूसरी ओर सजीव आधुनिकता का भी बोध करा देते हैं। 'रेणु' की 'तीसरी कसम उर्फ मारे गये गुलफाम' मे विशेष अचल का प्रश्न विशेष ग्रहणशीलता का हो जाता है। 'रेणु' की आचलिकता की शैली रिपोर्ताज की है। उस पर भी यह चित्रात्मक (फोटोग्रैफिक) है। उनकी आचलिकता की बहुत बड़ी विशेषता उनके ध्वनि-यन्त्र की खासियत है। अंतरंगता मे उत्पन्न होने वाला नाद उनकी 'तीन बिंदियाँ' कहानी की आचलिक विशेषता है। 'रेणु' की यह आचलिकता 'मूलगैन' से चलती-'फोयफोंय', 'सोय-सोय', 'घिरिया-गि घिनमा' करती, 'दसदुआरी' होती 'रसपिरिया' गाती है, 'शुभनछत्तर' मे 'नेम-टेम' करके 'पचलैट' की जोत लिये 'नयी

---

१. डॉ० कामेश्वर शर्मा : 'बोध और व्याख्या', पृष्ठ ३०३।

२. (क) "ग्राम्यांचल एक विशेष मनोदशा है, ग्राम्य मन की एक विशिष्ट संस्कृति है। इस ग्राम्य मन का स्पर्श नगर की पृष्ठभूमि पर लिखी कहानियों में भी हो सकता है।".. विवेकी राय : 'नयी कहानी में एकरस आधुनिकता और नगर-बोध', 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६८, पृष्ठ ६३।
(ख) डॉ० सियाराम तिवारी : 'सिद्धान्त, अध्ययन और समस्याएँ', पृष्ठ ११।

कहानी' की भाषा को अपने संग-दोष (?) से अक्वाल देती है, जहाँ सचमुच 'मरे हुए मुहूर्तों की गूँगी आवाजें' मुखर होना चाहती हैं। जेम्स ने फेरीमूर विल्सन के विषय में लिखा था कि "उसका रचनाकार एक-एक पौधे और फूल को जानता है, हरएक खुशबू और हरएक आवाज को पहचानता है, प्रत्येक पक्षी के गान और उड़ान को जानता है, जगल के होंठों के नीचे की बातों को जानता है। यही नहीं, वह नीग्रो की भाषा पर अत्यन्त वैज्ञानिक रूप में ध्यान देता है।"[1]. हिन्दी में अकेले 'रेणु' ऐसे कथाकार हैं, जिनपर यह कथन पूरा का पूरा लागू होता है। 'रेणु' के अतिरिक्त शैलेश मटियानी ने आचलिकता के शिल्प से अल्मोडे की लोक-संस्कृति को सुन्दर विन्यास दिया है तथा मधुकर गंगाधर ने 'ढिबरी' सग्रह की कहानियों में भी आचलिक्ता के शिल्पगत प्रयोगो को सार्थकता दी है।

ध्यातव्य है कि शिवप्रसाद सिंह, मार्कण्डेय, लक्ष्मीनारायण लाल जैसे कथाकारों की कहानियो में आंचलिकता का शिल्प-प्रयोग नही है। ये सब-के-सब ग्राम्य कथाकार हैं। अतः शिवप्रसाद सिंह को सबसे बड़ा आचलिक कथाकार कहना उचित और युक्तिसंगत नही है।

'नयी कहानी' में आचलिकता के शिल्प-प्रयोग मे अतिशय व्यामोह और शोभाचारिता (फ़ैशन) ने भी अपना कमाल दिखाया है। एक आलोचक के अनुसार "···फिर जिसे देखिए अचल की ओर भागा जा रहा है और अजीब, अनगढ, कर्ण-कटु, दुर्बोध आचलिक शब्दो की भरमार से पाठकों और आलोचको को डरा और उनसे अपनी सत्ता मनवा रहा है !···पर इन आचलिक कथाकारो ने किसी तमीज के विना भोजपुरी, मैथिली और राजस्थानी के शब्द भरने शुरू किये। जिसने जितनी क्लिष्ट शब्द-शैली अपनायी वह उतना ही बड़ा कथाकार ठहरा।[2]" पर आचलिक शिल्प का यह ह्रासोन्मुख प्रयोग एक लघु सीमा में ही हुआ, प्रमुखता अधिक-से-अधिक सार्थ प्रयोग की ही रही।

आचलिकता की तीन विशेषताएँ हैं—१. स्थानीय रग, २. विभाषा और ३. प्रजातात्रिक सौंदर्यवाद।[3] इनमें 'नयी कहानी' मे पहली दो विशेषताएँ तो

---

१. इनसायक्लोपीडिया अमेरिकाना, १७ वाँ खंड (अमेरिकाना कार्पोरेशन, न्यूयार्क), पृष्ठ ५७१ पर उद्धृत।
२. कामेश्वर शर्मा : 'बोध और व्याख्या', पृष्ठ ३०३।
३. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : 'हिन्दी कहानियाँ और फ़ैशन', पृष्ठ ४१।
४. इनसायक्लोपीडिया अमेरिकाना, १७वाँ खंड (अमेरिकाना कार्पोरेशन, न्यूयार्क), पृष्ठ ५७१।

बखूबी उभरी हैं, किन्तु तीसरी विशेषता रूपायन नहीं पा सकी है, फिर भी 'नयी कहानी' इस शिल्प के प्रयोग से एक दूरी तक विकसित, पुष्ट और समृद्ध हुई है,[1] यह निस्सन्देह कहा जा सकता है।

विविध स्तरों वाले सूक्ष्म सांकेतिक शिल्प का प्रयोग

नामवर ने एक स्थान पर एक छोटी-सी कहानी का हवाला दिया है कि "एक चिकित्सक को जब उसके चित्रकार मरीज के मर्ज का पता नही चला तब उस चित्रकार ने अपना नगा चित्र बनाया और एक खास जगह पर छोटा-सा निशान लगाते हुए यह टिप्पणी देकर चिकित्सक को भेज दिया कि 'यहाँ दुखता है।' सचमुच कहानी मे इतना-सा इशारा ही सोद्देश्यता है।[2]" यही सोद्देश्यता सार्थकता है और यह सार्थकता जिस सकेत से उभरती है वह सकेत अपनी सूक्ष्मता और व्यापकता दोनो ही रूपो में 'नयी कहानी' का एक विशेष शिल्पगत प्रयोग है।

साकेतिकता यद्यपि 'नयी कहानी' की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, तथापि कहानी में इसकी नियोजना प्रेमचन्द की 'पूस की रात' और 'कफन' से ही आरम्भ हो गई थी। जैनेन्द्र, यशपाल और अज्ञेय ने भी यदा-कदा साकेतिक कहानियाँ लिखी थी, पर तब साकेतिकता सघनित (कन्डेन्स्ड) और विविध-स्तरीय नही थी। पुरानी कहानी की साकेतिकता से 'नयी कहानी' की साकेतिकता का अन्तर तीन बिन्दुओ पर स्पष्ट होता है। पूर्ववर्ती कहानीकार साकेतिकता का सहारा यदा-कदा ही लेते थे, नया कहानीकार अब इसका उपयोग प्रायः करने लगा है। पूर्ववर्ती कहानियों मे आधारभूत विचार अत में सकेतित होता था, 'नयी कहानी' के रूप-गठन और शब्द-गठन दोनो ही साकेतिक हैं। अर्थात् 'नयी कहानी' में स्थल-स्थल पर सकेत उभरे हैं, जो परस्पर जुडे हैं और इनमे से प्रत्येक कभी पूर्ववर्ती तो कभी परवर्ती की ओर साकेतिक है। इसकी स्थिति वैसी ही है "देह में जैसे रक्त अथवा प्राण।[3]" पुरानी कहानी में प्रभावान्विति साकेतिक नही हुई थी, पर 'नयी कहानी' मे प्रभाव की सम्पूर्ण अन्विति साकेतिक है। इसीलिए 'नयी कहानी' सकेत करती नही, बल्कि

---

१. नेमिचन्द्र जैन : 'नयी कहानी : कुछ विचार', 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति', पृष्ठ १२२।

२. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', प्रथम संस्करण, पृष्ठ ६२।

३. वही, पृष्ठ ४२।

संकेत है।[1]" पूर्ववर्ती कहानियों की सांकेतिकता शिल्प के मोह और शोभा-चारिता (फैशन) में प्रकट होने वाली है, पर 'नयी कहानी' की साकेतिकता कथाकार की विवशता है।

उक्त सन्दर्भ में भाषा के अधिक सूक्ष्म और सर्जनात्मक होते जाने की भी बात है। मोहन राकेश ने साकेतिकता को किसी एक भाषा की उपलब्धि न मानकर कहानी-मात्र की एक अनिवार्य उपस्थिति स्वीकारा है। रूपकात्मक साकेतिकता से सहज साकेतिकता को अलगाते हुए उन्होंने लिखा है कि "कुछ लोगों ने कहानी के अन्तर्गत रूपकात्मक प्रयोगों को ही कहानी की साकेतिकता मान लिया है और उसी आधार पर आज की हिन्दी-कहानी की साकेतिक उपलब्धियों का ब्यौरा प्रस्तुत कर दिया है, परन्तु रूपकात्मकता कहानी की साकेतिकता का एक रूप है। यह रूपकात्मकता बहुत दूर तक ले जायी जाय, तो पहले के तुलनात्मक अलकारो उपमा, उत्प्रेक्षा आदि की तरह अखरने भी लगती है...इसीलिए कहानी की सहज साकेतिकता रूपकात्मक सांकेतिकता से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।[2]" 'नयी कहानी' में दोनों प्रकार की सांकेतिकता नियोजित हुई है। रूपकात्मक साकेतिकता से प्रतीक-शिल्प उत्पन्न होता है। बड़ी बात "उन विविध रंगों को पकड़ने और कहानी की साकेतिक अन्विति मे अभिव्यक्त करने की है।[3]"

द्रोणायन की 'चालान' कहानी में चौराहे का सिपाही (ट्रैफिक पुलिस) विना बत्तीवाले इक्केवान का चालान कर देता है। इक्के पर सवार व्यक्तियों में से कोई इसका विरोध नही करता है। सैर-सपाटे पर निकले दम्पति इसे देखकर आगे बढ जाते हैं। कुछ दूर जाने पर पत्नी पति को भावी सतान की शुभ सूचना देती है। पर पति इस पर ध्यान नहीं देते। थोड़ा और आगे बढ़ने पर जब उसकी चेतना जागरूक होती है, तब वे कुछ सोचते हुए-से बोलते हैं-"तुम ...तुम किसी बच्चे के चालान की बात कर रही थी।" और यह सुनकर पत्नी हँस पडती है—"बच्चे का चालान ?—यह कहते-कहते पत्नी के चेहरे का फुलाव दूर हो गया और वह इठलाकर हँस दी।" यहाँ 'बच्चे का चालान' से लेखक व्यक्त क्या करना चाहता है ? जो बच्चा गर्भस्थ है, उसका चालान ?

---

१. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४२।
२. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी' की भूमिका, पृष्ठ १०।
३. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी' की भूमिका, पृष्ठ १६।
४. द्रष्टव्य- 'कहानी', मई-१९५८, पृष्ठ १३।

पर भालान को दरवेशान का हुआ। फिर इस गरेट का प्रयोजन क्या है? क्या दरवेशान गर्भस्थ शिशु नहीं है, मानवता का गर्भस्थ शिशु, असंहारा।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कहानी 'सूटकेस' में जिस सूटकेस को लिया आत्मीय, सहचर, बन्धु, सगा सब कुछ माना है, उसी 'चिड़िया' बिल्कुल सम्बन्ध, विच्छेद कर लेती है—"अभी कल चिड़िया के सामने यह सूटकेस रखते हुए मैंने कहा, बेटे, इसमें तुम अपने खिलौने रखो। "नहीं पापा, यह गन्दा है", उसने तुरन्त बेधड़क कहा। मैं सोचने लगा, कितनी आसानी से उसने यह कर दिखाया, जो मैं आज तक नहीं कर सका था।[1]" रामनारायण शुक्ल की 'एकाउन्ट' में भी सांकेतिकता का अत्यन्त सार्थक, अर्थवान् और श्रेष्ठ प्रयोग हुआ है, जो पाठक की चेतना और अनुभूति के गहन स्तरों का संस्पर्श करता है। 'एकाउन्ट' का नायक एक बच्चा है। उसके पिता को आर्थिक संकट की जिन्दगी जीनी पड़ रही है। बच्चा उन तमाम लोगों से घृणा करता है जो इसके मूल में हैं। वह एक व्यक्ति से कहता है— "मैं तुमसे बात नहीं करना चाहता, क्योंकि तुमने मेरे पिता के दो सौ रुपये दाब लिये हैं।" और कहानी लेखकीय टिप्पणी के एक वाक्य के साथ समाप्त हो जाती है—"यह सुनकर मुझे लगा, क्या इस देश के बच्चे बच्चे नहीं रहेंगे—इन्हें भी बड़ों की तरह बात करनी पड़ेगी?" कहानी का यह संकेत पूरी कहानी पर छा जाता है।[2]

कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया', 'दूसरे', 'नागमणि', नरेश मेहता की 'निशाऽजी', राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा', उषा प्रियंवदा की 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', 'एक कोई दूसरा', निर्मल वर्मा की 'लंदन की एक रात', नरेश मेहता की 'वह मर्द थी', 'किसका बेटा', धर्मवीर भारती की 'बंद गली का आखिरी मकान', ज्ञानरंजन की 'सम्बन्ध', 'पिता', 'शेष होते हुए', दूधनाथ सिंह की 'सपाट चेहरे वाला आदमी', अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत', 'पटरियाँ', रेणु की 'विघटन के क्षण', मोहन राकेश की 'एक और जिन्दगी', 'सुहागिनें', शिवप्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड़' आदि कहानियों में सांकेतिक स्थिति है।

नरेश मेहता की 'किसका बेटा' कहानी के अंत में जब बुड्ढी झटका खाकर उठती, पर ऐंठती और कहती है, "अपनी माँ से पूछना कि तू किसका बेटा है।

---

१ : सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : 'सूटकेस' 'धर्मयुग', ४ नवम्बर १९६२। तथा 'पागल कुत्तों का मसीहा' (प्रथम संस्करण, १९३०), पृष्ठ ५०।

२. द्रष्टव्य 'दिनमान', ९ जून १९३८, पृष्ठ ४३।

नाराज न होना... गरीबों के बेटों का बाप नहीं होता, बाबू। वे माँ के ही बेटे होते हैं..."[1] तब इस वाक्य से गरीबिन की जिन्दगी का सबसे बड़ा यथार्थ उभर आता है और सकेत पूरे सामाजिक आकाश में चील की तरह चक्कर मारने लगता है। राजेन्द्र यादव की 'प्रतीक्षा' मे गीता के मन मे निहित यौन-कुंठा नन्दा के प्रति उसकी मानसिक आसक्ति और आकुलता जैसे कई स्तरो पर सकेतो में स्पष्ट हो उठती है। कहानी का एक वाक्य—"तब गीता को लगा कि यह उसकी छाती पर सिर रखे नदा नही, स्वय उसके भीतर से कोई बोल रहा है..."[2] कहानी के साकेतिक प्रयोजन को प्रत्यक्ष कर देता है। कमलेश्वर की 'दूसरे' कहानी की ये पक्तियाँ अपने पूरे रूप-गठन में साकेतिक हैं—"घर का निताात अपना निर्णय ही कोई नही होता। जरा-जरा-सी बात में उन दूसरो का दखल होता है, जो घर के नही। कितना धुंधला-सा दखल है दूसरों का, पर कितना सम्पूर्ण? घर में मशीन आये कि न आये, इसे अपनी अनुपस्थिति में ही कर्जदार तय कर देते हैं, बिलकुल अनजान तरीके से। माँ के बच्चे और हों या न हों, इसका फैसला पड़ोसी कर चुके हैं। पिता जी चुनाव में किसे वोट दें, यह दूसरे तय कर लेते हैं।"[3] समूची 'दूसरे' कहानी मे यह साकेतिकता कहानी का वास्तविक संकेत बन कहानी के सहज गठन में भीष्म की 'चीफ की दावत' और अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' की तरह स्वत. उभरती और पूरी कहानी पर छा जाती है। 'चीफ की दावत' में सकेत माँ के चरित्र में है, 'दोपहर का भोजन' में दोपहर के वर्णन मे और 'दूसरे' मे घर के वातावरण के वर्णन में। भीष्म साहनी की कहानी 'पटरियाँ' की अन्तिम पंक्तियाँ—"उसे लगा, जैसे टूटे सपनो के टुकडे, जो इधर-उधर बिखर गये थे, फिर-से जुडने लगे हैं और कटरा राघोमल पीछे छूटता जा रहा है और बस लाजपत नगर की ओर बढे जा रही है"—अभाव की स्थिति के छूटने और सम्पन्नता का गतव्य प्राप्त करने का सकेत करती है, जिसकी यात्रा शीर्षक की पटरियों पर पूरी होती है।

कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' जैसी आरम्भिक कहानी और 'नागमणि'—जैसी हाल की कहानी में प्रक्रियाई नैरन्तर्य की साकेतिकता का निर्वाह हुआ

---

२. नरेश मेहता : 'तथापि' : पृष्ठ २०।
१. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ३६।
२. कमलेश्वर : 'मांस का दरिया', पृष्ठ ८२।
३. भीष्म साहनी : 'पटरियाँ', 'विकल्प', नवम्बर '६८, पृष्ठ ५७।

है। यद्यपि ये दोनों कहानियाँ दो भिन्न शिल्पों में लिखी गयी हैं—'राजा निरबंसिया' सश्लेष शिल्प में और 'नागमणि' प्रतीक शिल्प में—तथापि इनमें संकेत स्थल-स्थल पर विद्यमान हैं। 'राजा निरबंसिया' के "राजा निरबंसिया अस्पताल में आ गये"[1] और "तुम्हारे कभी कुछ नहीं होगा"[2]—जैसे साधारण वाक्य भी संकेत करते हैं। और इन संकेतों के क्रम में ही 'राजा निरबंसिया' की लेटे-लेटे होने वाली प्रतीति को निम्नलिखित गद्य-सन्दर्भ रूपायित कर देता है—"वह मनुष्य हुआ। लम्बा-तगड़ा, तन्दुरुस्त पुरुष हुआ। उसकी शिराओं में कुछ फूट पड़ने के लिए व्याकुलता से खौल उठा। उसके हाथ शरीर के अनुपात से बहुत बड़े, डरावने और भयानक हो गये। उनमें लम्बे-लम्बे नाखून निकल आये। वह राक्षस हुआ, दैत्य हुआ—आदिम, बर्बर।[3]" इसी की परिणति अन्ततोगत्वा राजा निरबंसिया में होती है। "सामने का घना पेड़ स्तब्ध खड़ा था। उसकी काली परछाईं की परिधि जैसे एक बार फैलकर उन्हें वृत्त में समेट लेती और दूसरे ही क्षण मुक्त कर लेती"[4]—जैसा गद्य-सन्दर्भ बचन सिंह के अस्तित्व को स्वीकार करता है तो "उसे लग रहा था कि वह पंगु हो गया है, बिलकुल लँगड़ा एक रेंगता कीड़ा, जिसके न आँख है, न कान, न मन, न इच्छा"[5]—जैसा वाक्य जगपति की स्थिति-इयत्ता को पूरी तीव्रता और प्रसार में संकेतित कर देता है। संकेत शकूरे द्वारा कही गयी ये पंक्तियाँ भी देती हैं—"हरा होने से क्या, उखट तो गया है। न फूल का, न फल का। अब कौन उसमे फल-फूल आएँगे। चार दिन में पत्ती झुरा जाएँगी।[6]" जगपति के मस्तिष्क में अर्थ गुंजाने वाली ये पंक्तियाँ कभी बचन सिंह की ओर से, कभी नन्दा की ओर से और कभी स्वयकृत बोध में संकेत-यान पर कितनी-कितनी दूर तक अर्थ-यात्रा करा देती हैं? पूरी कहानी के अन्तर्ग्रंथन में सांकेतिकता है, जो कहानी के प्रमुख रूप में सश्लेष शिल्प में अभिव्यक्त हो जाने के बाद भी अपनी महत्ता अक्षुण्ण रखे हुए है।

'नागमणि' कहानी भी संकेत के ताने-बाने से बुनी गयी है। "उसका हाथ

---

१. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ ३१।
२. वही, पृष्ठ ३२।
३. वही, पृष्ठ ३२।
४. वही, पृष्ठ २९।
५. वही, पृष्ठ ५५।
६. वही, पृष्ठ ४६।

झोले पर चला गया। इसकी तनी भी आज ही टूटनी थी। खादी में यही खराबी होती है। एक तार टूटा तो सब टूटते चले जाते हैं। कच्ची कपास के कारण।[१]" और "चारों तरफ सूखा हुआ निचाट मैदान। दूर-दूर तक कोई छतनार पेड़ या बाग-बगीचा नहीं"[२]..."राम खाना खा। राम खाना ला। अब घर चल। राम अब घर चल"...[३]"गांधी जी की तस्वीर तो वहीं थी, पर जैसा फ्रेम वह चाहता था वैसा नहीं मिला। तसवीर भी बड़ी मुश्किल से मिली"[४]...जैसे सारे संकेत प्रकृतिपरकता और वस्तुपरकता के साधारण स्तर से उठकर देश के विशेष सन्दर्भ में अनेकानेक स्तरों पर कथ्य का आयाम खोलते हैं। और अन्तिम संकेत—"इन्हें अस्पताल पहुँचा दिया जाए, यही ठीक रहेगा"[५]...तो उक्त संदर्भ में अपने चरम पर पहुँच जाता है, जहाँ बाईस वर्षों की लम्बी स्वतंत्रता के बीच सब-कुछ अस्वस्थ, रुग्ण और मृण्मय हो उठा है। अमरकान्त की 'दोपहर का भोजन' कहानी में भी स्थल-स्थल पर प्राप्त होने वाली सांकेतिकता कहानी के पूरे गठन में व्याप कर अर्थ दे रही है।

रघुवीर सहाय की कहानी 'खेल' के अन्तिम अनुच्छेद—"पता नहीं, उसे क्या इतना अच्छा लगा कि वह हुड पर से उतरा ही नहीं, ऊँचे पर से मैदान को देखता रहा जहाँ और बच्चे खेल रहे थे। लकड़ी का टुकड़ा और उसके सीधे-सादे खेल उसे भूल गये थे?"[६] में रेखांकित वाक्यांश बच्चे के सन्दर्भ से से ऊपर उठकर दुनिया सन्दर्भ में संकेत उजागर करते हैं।

मोहन राकेश की 'अपरिचित' कहानी संकेतों के जरिये एक ओर महिला के जीवन की विषमताओं को उभारती है तो दूसरी ओर 'मैं' पात्र के जीवन की नीरसता और अवसाद-पूर्णता को व्यक्त करती है। कहानी के पूरे ग्रथन में उभरने वाली इस सांकेतिकता की स्थिति स्थायीभाव-रूपी कहानी के लिए संचारी भाव की है।

वस्तुतः "ये छोटे-छोटे संकेत स्थिति को इतना उजागर करते हैं जितना

---

१. 'धर्मयुग', स्वाधीनता विशेषांक १९६९, पृष्ठ १९।
२. वही, पृष्ठ १९।
३. वही, पृष्ठ १९।
४. वही, पृष्ठ १९।
५. वही, पृष्ठ २२।
६. रघुवीर सहाय : 'सीढ़ियों पर धूप में' (प्रथम संस्करण, १९६०), पृष्ठ २२।

कि बड़े-बड़े झूठी गरिमा से पूर्ण वाक्य कभी न कर पाते।[1]" श्रेष्ठ सांकेतिक कहानियों की दृष्टि वस्तुभेदिनी होती है, जो वस्तु की प्रतिक्रिया को भी मूल उत्स के रूप में देखती है। इसके द्वारा कहानी की सूक्ष्म रचना-प्रक्रिया के प्रति पाठक में पर्युत्सुकता जगती है। सांकेतिकता कथाकार के व्यक्ति-मन और परिवेश को भी अच्छी तरह व्यक्त करती है। इसके नियोजन के लिए कथानक, चरित्र, संवेदना और वातावरण के आन्तर सबन्धो की जानकारी आवश्यक है। पर सकेत को इतना वायवीय नही होना चाहिए, जिससे पाठक को कुछ नही मिल सके—"सकेत इतना भी बारीक हो सकता है कि पाठक ताकता ही रह जाय—कभी कहानी की ओर और कभी लेखक के अदृश्य मोह की ओर। ऐसी स्थिति मे कहानी के सर्वथा विचार-शून्य हो जाने का भारी खतरा है।"[2] राजेन्द्र यादव की 'अंधा शिल्पी और आँखों वाली राजकुमारी' ऐसी ही सांकेतिकता का दृष्टात है। पर 'नयी कहानी' मे ऐसी कहानियाँ नगण्य हैं।

वस्तुतः सकेत 'नयी कहानी' के शिल्प का सशक्त स्वर है। इसने कहानी की सीधी और सतही यात्रा को नकार दिया है, क्योकि "सतह पर चलने वाली कोई चीज कभी गहरी नही हुई। गहराई तभी आती है जब वह सतह-रेखा से नीचे उतरती है। 'नयी कहानी' इस रेखा से नीची उतरी है।[3]" 'नयी कहानी' में सांकेतिकता की इस प्रयोगात्मक उपलब्धि को जैनेन्द्र जैसे 'नयी कहानी' के विरोधी व्यक्तित्व तक ने स्वीकार किया है।[4]

प्रतीकात्मक शिल्प का प्रयोग

प्रतीक एक प्रकार का सकेत ही है, पर सकेत और प्रतीक दोनों में व्यापकत्व और सकोचन का अन्तर है। प्रत्येक प्रतीक सकेत हो सकता है,

---

१. श्रीपत राय: 'कहानी', मई १६५८, पृष्ठ ११।
२. डॉ० नामवर सिंह: 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ४५।
३. राजेन्द्र अवस्थी: 'हम पूरी सचाई से जीएँगे', 'नयी कहानियाँ', अगस्त १६६४, पृष्ठ ६५।
४. "शिल्प की दृष्टि से अवश्य विकास हुआ लगता है। सूचकता और सांकेतिकता का आग्रह बढ़ा है। 'मुझे निर्मल वर्मा से शिल्प की सूक्ष्मता और सांकेतिकता मिली है।' " जैनेन्द्र कुमार: 'कहानी : अनुभव और शिल्प', पृष्ठ ८०।

पर प्रत्येक सकेत प्रतीक नही हो सकता। संकेत का साँचा प्रतीक से अधिक अनिश्चित और अनेकविध होता है। इसीलिए 'नयी कहानी' के शिल्पगत प्रयोगो में प्रतीक की चर्चा अलग से करना उपयुक्त और संगत है।

कहानी में प्रतीक का प्रयोग सांकेतिकता को अपने पूरेपन में अर्थवान् कर सार्थक होने में है तथा प्रतीक के प्रयोग की सार्थकता अनुभव की वास्तविकता को अधिक विशद रूप में उपस्थिति देने की है। कविता में जिस प्रकार प्रतीक की प्रोज्ज्वलता मे उस पार की भूमि या दूर की नगरिया देखी जाती अथवा कुंठाओं के अन्धकार में मानस-गह्वर में प्रवेश किया जाता है उस तरह कहानी में नही होता। इसीलिए कहानी मे रहस्यमयता खंडित होती है। "प्रतीक यहाँ सुराग या संकेत-सूत्र नही होते, जिनके सहारे कहानी के तिलिस्मी संसार में पैठा जाए।"[1] कहानी में प्रतीक पूरे गद्य-विस्तार के सन्दर्भ में अर्थ-सम्भार का अतिरिक्त उच्छलन होकर उपस्थित होता है। यहाँ यह कथात्मक यथार्थ की आन्तरिक सर्जना हो जाता है। अज्ञेय इसी को अनुभूति की गुणात्मकता कहते हैं—"महत्त्व या मूल्य प्रतीक का या प्रतीक में नही होना। वह उससे मिलने वाली अनुभूति की गुणात्मकता में होता है।"[2] प्रतीको के अन्वेषण की प्रक्रिया व्यंजना के नवीन माध्यम की खोज की प्रक्रिया है। यह रचना की प्रवहमान अन्तर्धारा का व्यक्तीकरण है। प्रतीक अर्थ-प्रधान और काव्य-प्रधान दोनो ही प्रकार के सभव हैं।[3] कहीं-कहीं प्रतीक अस्वस्थ प्रवृत्तियो के लिए आवरण का भी काम करता है। प्रतीक-प्रधान कहानियाँ सामान्य कहानियो की अपेक्षा अधिक बौद्धिक होती हैं।

पुरानी कहानी के प्रतीक मुख्यतः फ्रायडीय हैं। अज्ञेय की 'हीलीबोन की बत्तखें' तथा पहाडी की 'हिरना की आँखें' में प्रयुक्त प्रतीक फ्रायडीय प्रतिपत्ति की परिचिति से ही सुलझ पाते हैं। 'नयी कहानी' में प्रतीक का प्रयोग अपने प्रस्तुत अर्थ में विशिष्ट और अद्वितीय होते हुए भी प्रतीकतः

---

१. डॉ० देवीशंकर अवस्थी : 'नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति' की भूमिका, पृष्ठ २०।

२. सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' : 'आत्मनेपद', पृष्ठ २५६।

३. "प्रतीक संकेत की पद्धति से भाषा में जहाँ एक ओर सूक्ष्म अर्थवत्ता आयी है वहाँ दूसरी ओर उस पर अनावश्यक काव्यात्मकता का लदाव भी हुआ है।"

—डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ४६।

कहानी को समाजपरक, युगपरक जैसी अनन्य विशिष्टता से भी संवलित करने वाला है। यहाँ प्रतीक कथ्य के अन्तर्गत खुलते हैं और अपने प्रासंगिक विवरण (रिलेवेंट डिटेल्स) से व्यन्यर्थ के सहारे पूरे युग और परिवेश का संस्पर्श करते है। 'नयी कहानी' की 'अंधकूप', 'केवड़े का फूल' (शिवप्रसाद सिंह), 'शवरी', 'थर्मस में कैद कुनकुना पानी' 'अगले मुहर्रम की तैयारी' (रमेश बक्षी), 'परिन्दे' (निर्मल वर्मा), 'जलती झाड़ी' (निर्मल वर्मा), 'सेफ्टी-पिन', 'ग्लासटैंक' (मोहन राकेश), 'रीछ', 'आइसबर्ग' (दूधनाथ सिंह), 'मछलियाँ', 'जाले' (उषा प्रियंवदा), 'चश्मे' (मन्नू भंडारी), 'प्रश्नवाचक पेड़' (राजेन्द्र यादव), 'झाड़ी' (श्रीकान्त वर्मा) आदि कहानियों में प्रतीकात्मक शिल्प का प्रयोग हुआ है।

रमेश बक्षी की कहानियों में प्रतीक रूढ़ि की हद तक स्वीकृत है। इनका अर्थ-स्थापन बहाव को बाँध कर ही संभव हुआ है। यहाँ प्रतीक कहानी से निःसृत न हो अपने-आप से ही कहानी को निःसृत करते हैं। वस्तुतः "कहानी में प्रतीक बहुत भटकाने वाले भी हैं और बात को कहने, स्पष्ट करने, सम्प्रेषित करने का सशक्त माध्यम भी।[1]" कुछ विचारकों का मत है कि कहानी में प्रतीकात्मक प्रयोग, पाठक की पकड़ से चूक जाने पर भी, कहानी के भाव-बोध और आस्वाद को नष्ट करने वाला नहीं होना चाहिए। यह सही है कि प्रतीकात्मक शिल्प के अधिक प्रयोगाग्रह से अप्रस्तुत प्रस्तुत को नीरस और युक्तिहीन कर देता है, जो उसका ओछापन (वल्गराइज़ेशन) है; यह भी सही है कि प्रतीक मिलाने की प्रक्रिया के आरम्भण से जो अर्थ-सीमा में कविसुलभ प्रयोग होते हैं, उनसे कहानी शब्द-पहेली-चित्र (क्रॉस वर्ड पहेली) बन जाती है, फिर भी कहानी में प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग का महत्त्व अक्षुण्ण है।

'नयी कहानी' प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग की कहानी है। शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'केवड़े का फूल' की समाप्ति इस प्रकार होती है—"मैं अब भी जब कभी अनीता के बारे में सोचता हूँ, मेरे सामने केवड़े के फूलों की याद आ जाती है। यदि इन्हें स्वतन्त्र खिले रहने दें तो जहरीले साँप इन्हें अपनी गुंजलक में लपेट लेते हैं, क्योंकि इनकी मादक गंध सही नहीं जाती और यदि किसी को निवेदित किये जाएँ तो भद्र लोग उन्हें तोड़-मरोड़ कर कुएँ में डाल देते है, क्योंकि इससे पानी खुशबूदार होता है।[2]" यहाँ केवड़े का

---

१. राजेन्द्र यादव : 'एक दुनिया समानान्तर' की भूमिका, पृष्ठ ६५।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'कर्मनाशा की हार', पृष्ठ ५८।

फूल न केवल अनीता को प्रतीकित करता है, प्रत्युत भारतीय नारी को भी प्रतीकित करता है। वह भारतीय नारी, जिसका न तो आयात संभव है और न निर्यात।

मार्कण्डेय की कहानी 'तारों का गुच्छा' का प्रतीकात्मक शिल्प इन पंक्तियों तक पहुँच कर अपना अभीष्ट अर्थ खोलता है—"जाने क्यों उसे लगता है, जैसे उसकी खिड़की के पास तारों का गदराया आसमान झुक आया है और वह खिड़की बन्द किये बैठी है। क्यों न वह तारों का एक गुच्छा तोड़ ले? कहीं उसने माँग ही लिया तो क्या होगा? और वह चारपाई से नीचे उतर कर खिड़की खोल देती है।"[1] यहाँ तारों का गुच्छा अपूर्त इच्छाओं का प्रतीक बन गया है।

राजेन्द्र यादव की 'प्रश्नवाचक पेड़' कहानी के अंत की इन पंक्तियों में भी प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग दीप्त हो उठता है—"डॉ० चरन ने खट् से टेबिल लैम्प बुझा दिया। बाहर चाँदनी में वह बबूल का प्रश्नवाचक पेड़ सिर झुकाये खड़ा, कुछ सोचता, खुली खिड़की से साफ दिखाई दे रहा था। जी फिर एक बार धक् से रह गया। इसे तो किसी-न-किसी तरह कटवाना ही पड़ेगा। माथुर की बात याद आयी तो चन्दा का चेहरा भी सामने आ गया। अजब-सा ख्याल दिमाग में उठा, चाँदनी में बबूल का ठूँठ पेड़, कैसा लगता है जाने।"[2] प्रश्नवाचक पेड़ जीवन और प्रकृति के गहरे असतुलन और असंगति को प्रतीकित करता है। पर इस कहानी में प्रतीक पूर्ण जीवन्त और प्रभविष्णु नहीं रह सका है, जिससे पाठकीय चेतना को आघात लगता है।

दूधनाथ सिंह की 'रीछ' की प्रतीकात्मकता कथानायक को स्वयं रीछ बना देती है—"क्या तुम जानते हो, उसके साथ कैसा लगता है? जैसे कोई रीछ मेरे ऊपर झूम रहा हो···साँस बदबू करती है। न, पायरिया नहीं। पहले गोमती में दिन-दिन भर तैरा करते थे। हर वक्त जुकाम बना रहता था। पीला-पीला कफ निकलता है···हजरतगंज में कोई औरत देखी, पीछे-पीछे घूमते हुए दो-चार चक्कर लगाये। लौटकर दो-चार कपड़े लिये और स्टेशन भागे··· ग्यारह बजे उतरे और आते ही नोचना शुरू···।"[3] यहाँ कहानी का नायक अपने आपको भी प्रेयसी-पति की तरह रीछ-रूप में देखता है। फिर तो कहानी

---

१. मार्कण्डेय : 'हंसा जाइ अकेला', पृष्ठ ५८।

अपने भयावह सत्य से पाठक को झकझोरने लगती है। इसमें प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग की दृष्टि शत-प्रतिशत नवीन है। यह ज्याँ जेने और हेनरी मिलर के साहित्य (नाटक) की खालिस नकल[1] नहीं है। सच पूछिए तो साहित्य मे प्रेरणा का स्रोत ही ढूँढना छिद्रान्वेषण से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। श्रीपत राय इसीलिए कृष्ण बलदेव वैद की 'मेरा दुश्मन' और दूधनाथ सिंह की 'रीछ' के विषय में बहुत स्पष्ट होकर कहते हैं—"इन दोनों रचनाओं की मूल प्रेरणा कहीं बाहर से ली गयी है या वे परस्पर प्रेरित हैं या अगल-अगल अपनी प्रेरणा से चालित हुई हैं, यह मेरे लिए अवांतर है। दूधनाथ सिंह की उत्कृष्ट कृति 'रीछ' का उल्लेख होना चाहिए। इस रचना की प्रशंसा उचित ही है।"[2] 'रीछ' कहानी पति की पुरानी स्मृति-यन्त्रणा को भी प्रतीकित करती है, जिससे अतत वह पति रीछ बन जाता है।

श्रीकान्त वर्मा की 'झाड़ी' कहानी भी प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग का उदाहरण है। इन पक्तियों मे शिल्पित प्रतीक "इतने वर्षों के बाद भी अब भी जब कभी उसे बचपन की वह बात याद आती तो उसे लगता, इस सारे दौरान में उसके साथ-साथ बचपन की वह झाड़ी भी बड़ी होती रही है और अब भी वह उसी तरह असहाय है, अपनी झाड़ी के सामने छोटा है।···अपने चारों ओर एक हमउम्र होने की कल्पना पर वह सिहर उठता[3]"···कहानी का सवेदनात्मक वैशिष्ट्य है। झाड़ी का प्रतीक-शिल्प बुद्धिजन्य नहीं है, न ही यह जीवनानुभूति को बलात् सूत्रबद्ध करने का प्रयास है, जिससे कथाकार की नीयत पर शका की जा सके। यह कहना युक्तिसगत नहीं है कि "वह हमें कहानी की केन्द्रीय मानवीय स्थिति में न तो पूरी तरह 'इनवाल्व्ड' प्रतीत होता है, न पूरी तरह तटस्थ ही।[4]" सत्य तो है कि 'झाड़ी' का 'वह झाड़ी कभी लाँघ नहीं सकेगा'[5] का दृष्टिकोण सवेदनात्मक स्तर पर पूरी कहानी मे व्याप्त है।[6]

---

१ धनंजय 'कहानी परिवेश और प्रभाव', कहानी', जून १९६८, पृष्ठ २३-२४।

२. श्रीपत राय : 'समकालीन कहानी में नयी संवेदना', 'विकल्प', नवम्बर, '६८, पृ० ३७।

३. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १०।

४. रमेश चन्द्र शाह : 'कहानी की प्रतिमा : भारतीय सन्दर्भ, 'कहानी', जून १९६९, पृष्ठ ५९।

५. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १०।

६. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : 'हिन्दी कहानी : अपनी जबानी', पृष्ठ १५०।

निस्सन्देह कहानी के अन्तर्मुख रचना-शिल्प—प्रतीक-प्रयोग ने 'नयी कहानी' को अपनी किंचित् प्रयासात्मक त्रुटियों के बावजूद बहुविध पुरस्सर-प्रखर किया है। नयी कहानी में प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग की महत्ता उसकी सार्थक कलात्मकता, सघटनात्मकता, सांकेतिकता, उसके द्वारा लक्ष्यहीनता को दी गयी लक्ष्यप्रदता, वास्तविकता को दी गयी गहनता तथा दृष्टि की तटस्थ निर्वैयक्तिकता में है।[1]

विम्बात्मक शिल्प का प्रयोग

प्रतीक की तरह विम्ब भी 'नयी कहानी' का सार्थ शिल्प-प्रयोग है। यह कल्पना से उत्थित कला का क्रिया-पक्ष है।[2] शिल्प और भाषा दोनों ही इसके क्षेत्र हैं, परन्तु अत्याधुनिक कथा-साहित्य में इसका उपयोग भाषाई-मात्र न रह कर शैल्पिक हो उठा है।

प्रतीक से विम्ब निर्मित हो सकते हैं और विम्ब से प्रतीकों का निर्माण हो सकता है। अलगाव का मुद्दा यह है कि कल्पना के मूर्त्त होने पर विम्बों का सर्जन होता है और विम्ब की प्रतिमिति तथा उसकी पुनः पुनः प्रयुक्ति से निश्चित अर्थ में निर्धारित हो जाने पर प्रतीकों का सर्जन होता है।[3] विम्ब अपेक्षया सहज, पर प्रतीक शुद्ध विचारात्मक। फिर भी मानसिक प्रतिमाएँ

---

१. "हिन्दी की आज की कहानी को प्रतीकों ने निश्चय ही सार्थक कलात्मकता और सांकेतिकता प्रदान की है। अन्तर्जगत् के लक्ष्यहीन बहते यथार्थ को लक्ष्य और बहिर्जगत् की लक्ष्योन्मुख दौड़ती वास्तविकता को गहराई दी है। यथार्थ कथानक पहले गढ़ा जाता था, फिर उसकी प्रतिक्रिया में विशृंखलित हो गया—अब उसे सार्थक गठन देने का श्रेय भी प्रतीकों को ही दिया जाएगा।"

"हाँ, प्रतीकों का महत्त्व इतना ही नहीं, इससे कुछ अधिक भी है। उनकी लाक्षणिक प्रकृति ने जहाँ गम्भीर अर्थवत्ता को पकड़ने और उनके सम्प्रेषण को 'साधारणीकरणता' की दिशा में अनेक प्रयोग करने का गौरव दिया, वहाँ व्यक्ति के अपने अनुभवों को तटस्थ होकर देखने की निर्वैयक्तिकता भी दी।"

—राजेन्द्र यादव : 'एक दुनिया समानान्तर की' भूमिका, पृष्ठ-६७ :

२. डॉ० कुमार विमल : 'सौन्दर्य-शास्त्र के तत्व', पृष्ठ २०१।

३. डॉ० कुमार विमल : 'सौन्दर्य-शास्त्र के तत्व,' पृष्ठ २०१।

प्रतीकतः उपस्थित होती हैं। प्रतीक विशेषतः जातीय चेतना पर निर्भर है, क्योंकि उसकी सर्जना नहीं होती, आविष्कार होता है, पर बिम्ब-निर्माण व्यक्ति की चेतना पर सन्निम-निर्भर है। प्रतीक में तीव्रता और सांकेतिकता होती है, पर बिम्ब में समग्र और पूर्ण का गुण होता है। प्रतीक केन्द्राभिसारी है, पर बिम्ब केन्द्रापसारी। भाव-संवेदन या विकसित स्तर जब प्रतीक से अधिक की माँग करता है तब बिम्बात्मक शिल्प का प्रयोग होता है।[1]

बिम्बात्मक शिल्प का प्रयोग सार्थक चित्र-शिल्प को विस्तार-प्रसारण देता है। यह वस्तु के साथ इन्द्रिय-बोध का विविध पक्षों वाला सबन्ध-स्थापन करता है, सुख-दुःख के सूक्ष्म बोधों का प्रतिष्ठापन करता है, सौन्दर्यानुभव के सूक्ष्म, झीने रहस्यों का मूर्तन करता है, वस्तु के आरम्भिक अनुभव वाली प्रक्रियाई पुनः रचना में सहभावन करता हुआ कल्पना के उन्मेष का आकलन करता है और अर्थ-संस्कारों का विविध स्तरों पर उद्घाटन करता है।

'नयी कहानी' में बिम्बों का प्रयोग एक कठिन रचनात्मक संकल्प के रूप में उपस्थित हुआ है। यहाँ प्रत्यक्ष संवेदना से आगे बढ़कर विशेष अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए मानसिक प्रतिक्रियाएँ सघन स्तर पर व्यक्त हुई हैं। 'नयी कहानी' में बिम्ब-रचना की प्रक्रिया का अर्थवाही सन्दर्भ आज के यथार्थ की जटिलता और परिवर्तनशीलता है। अतः 'नयी कहानी' भाव-बोध के विशेष स्तर के अनुरूप टूटे, असबद्ध बिम्बों को भी अपनी समग्र सार्थकता में यथावत् पाने का प्रयास करती है। नया कहानीकार जटिलताओं में मनुष्य के अस्तित्व के मूलभूत प्रश्नों का निदान पाना चाहता है। फलतः 'नयी कहानी' कल्पना के प्रतिबद्ध प्रतिक्षेप तक ही अवस्थित न रह कर बिम्ब-परिनिर्माण की क्रियाशीलता भी दिखाती है। बिम्ब से 'नयी कहानी' की भाषानुभूति में सूक्ष्म ऐन्द्रियता का विस्तार होता है, साथ ही छिपे हुए आलोक के यथार्थ का उपस्थापन भी।

'नयी कहानी' में ताजे, अछूते, विविधस्तरीय बिम्बों का प्रयोग हुआ है। ये बिम्ब सामान्य और उपमान-मूलक दोनों ही प्रकार के हैं। सामान्य बिम्ब कहीं क्रिया के सहारे और कहीं विशेषण के सहारे उजागर किये गये हैं। प्रकार-दृष्टि से ये चाक्षुष और श्रोतृक तथा प्रक्रियाई दृष्टि से अयुत और संयुत हैं। ये बिम्ब—१—नक्षत्र-परक—लाल डूबता सूरज (शिव प्रसाद सिंह)

---

१. डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव : 'हिन्दी-कहानी की रचना-प्रक्रिया', पृष्ठ २६७।

२—प्रकृति-परक—नीरस बादलों का झुंड, गाढ़ी चाँदनी (वही), गमकती घाटी, चढ़ी नदी, थरथराता पानी (कमलेश्वर), ३—पशु-परक—चिग्घाड़ते हाथी (शिवप्रसाद सिंह), ४—सर्प-परक—भूरे अजगर, अधमरे सांप की लहर, केंचुल छोड़े नागिन की बिछलन (शिवप्रसाद सिंह), ५—मत्स्य-परक—रोहो की मुलायम गलफर (वही), ६—जीव-परक—चूहा, छिपकली, बिच्छू, गिलहरी, चमगादड़ (वही), ७—पक्षी-परक—नुचे पंछी (वही), अबाबील, हंस, चील, बकुला (कमलेश्वर), ८—कीट-परक—मकड़ा, मधुमक्खी, भौंरा, तितली, इन्द्रगोप, टिड्डी (शिवप्रसाद सिंह), ९—पौधा-परक—कुकुरमुत्ता, नागरमोथा, रेंड़ (वही), नरकुल, केला (कमलेश्वर), १०—पदार्थ-परक—पतंग, कुंकुम, लासा, इत्र का फाहा, गुब्बारा, नन्हा तिनका, खूंटा, रेंड का बीज (शिवप्रसाद सिंह), ११—वृक्ष-परक—फटे बाँस, घुन लगे बाँस, नागफनी, गुलचीन की काली नंगी डाल (शिवप्रसाद सिंह), १२—फूल-परक—जटामासी का फूल, कुईं का फूल, महुए का फूल, कपास के फूल (शिवप्रसाद सिंह), चमेली का फूल, कमल का फूल (कमलेश्वर), १३—फल-मेवा-परक—करौंदे की ललाई, पेशावरी बदाम, टमाटर (शिवप्रसाद सिंह), १४—धातु-परक—लोहा, अबरख, रांगा, शीशा (शिवप्रसाद सिंह), पीतल, पारा, तांबा (कमलेश्वर), १५—यंत्र-परक—मशीन का पुरजा (शिवप्रसाद सिंह), १६—रोग-परक—चेचक (वही), १७—अस्त्र-शस्त्र-परक—बन्दूक, धनुष, भाला (कमलेश्वर), तीर (शिवप्रसाद सिंह) १८—वर्ण-गन्ध-परक—उघड़े रंग की उदासी, अगरबत्ती की गंध (वही), १९—मिथक-परक—यमराज की भैंस, लोक-कथा की देवी, अलादीन के चिराग वाला जिन्न, दैत्य, सुरसा, राकस, भूत (वही) और २०—मनुष्य-परक—वैयक्तिक रूप में शरीरतः—जलती हुई आँख, मुरदे की आँख, कुंवारी मांग; परिवारतः—नये जन्मे बच्चे, नयी और लाजवन्ती बहू और समाजतः—रोजमर्रे की हलचल तथा दुनियादारी की यथार्थता आदि (शिवप्रसाद सिंह) हैं।[1]

'नयी कहानी' में बिम्बों के व्यापक प्रयोग के साथ-साथ घनत्वपूर्ण प्रयोग भी हुए हैं। इसका सम्बन्ध बिम्ब की रचना-प्रक्रिया से है। एक ही बिम्ब प्रस्तुत करने में कहीं-कहीं कथाकार ने विशेषण, क्रिया और उपमान-तीनों का ही सहारा लिया है। 'नयी कहानी' का बिम्ब-विधान प्रायः कथ्य को स्पष्ट

१. द्रष्टव्य : पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी की भाषा', 'कल्पना', अगस्त-सितम्बर, ६९, पृष्ठ १८५-१८६।

करने के लिए हुआ है। इन बिम्बों ने सामान्य अर्थ को तीव्रता, भास्वरता, निखरता और स्थायिता दी है। उपमानमूलक बिम्ब पाठक मन को संतुष्ट करते और अर्थ-बोध को गहरा तथा प्रभावशील बनाते हैं। 'नयी कहानी' के बिम्ब अधिकांशतः मूर्त हैं तथा स्वाभाविक और काल्पनिक नहीं होकर जीवन से उठाये गये हैं। यहाँ वाचकों का प्रयोग भी विविध है। शिवप्रसाद सिंह ने 'की तरह', 'मानो', 'जैसे', 'सा-जैसी', 'गोया', कमलेश्वर ने 'की तरह', 'जैसे', 'मानो', निर्मल वर्मा ने 'मानिन्द', 'जैसे', नरेश मेहता ने 'की तरह', 'जैसे', भाँति', राजेन्द्र यादव ने 'की तरह' तथा रमेश बक्षी ने 'जैसे' आदि वाचकों के प्रयोग किये हैं।

'नयी कहानी' में उपमान-मूलक बिम्ब के प्रश्न पर उठाते हुए एक-दो आलोचकों ने उसका विरोध किया है। एक कथाकार ने यह आरोप किया है कि ऐसे उपमानों को 'इन्सर्ट' करने में ही कहानीकार की निगाह भटकती रहती है और वह चालाकी से वर्ण्य-विषय के स्थान पर 'पेंसिल' से बच जाता है।[1] वे उपमा को पात्र की मनःस्थिति स्पष्ट करने वाली भी नहीं मानते हैं। पर यह आरोप असंगत है। सही स्थिति यह है कि एक सच्चे कहानीकार का कोण सदैव कहानी लिखने का होता है। ऐसे में यह कथाकार की भाषा, ज्ञान और अनुभव-समृद्धि पर निर्भर है कि वह साधन-रूप में उपमानों से सहायता लेता चले। हर कथाकार यदि उपमान का प्रयोग करना चाहेगा तो निश्चयतः उसे उपमानों को 'इन्सर्ट' करने में ध्यान देना होगा। बावजूद इसके कहानी में वह मौलिक और प्रभविष्णु नहीं हो सकेगा। पर 'नयी कहानी' में शिवप्रसाद सिंह आदि कथाकारों ने जो उपमान-मूलक बिम्ब-विधान किया है वह उन सबकी अनुभव-समृद्धि का द्योतक है। इन लोगों ने वर्ण्य को अधिकाधिक स्पष्ट करने के लिए उपमानों का सहारा लिया है। दूसरे, पात्र की जिस मनःस्थिति के अस्पष्ट रह जाने की बात राजेन्द्र यादव करते हैं यह निरर्थ है। 'नयी कहानी' के विविध स्तरीय उपमान पाठक की अमूर्त मन स्थिति को मूर्त और स्पष्ट करने में बहुविध सहायक हैं। तीसरे, कहानी में केवल पात्र की मनःस्थिति स्पष्ट नहीं की जाती, बल्कि परिवेश या चित्रण, संलाप की उपयुक्तता, व्यापक कथाभूमि में अर्थ की आच्छन्नता आदि भी देखी जाती है और उपमान-मूलक बिम्ब इन सबकी पूर्णता के लिए अपना योगदान करता है।

---

१. राजेन्द्र यादव : 'प्रयोग की प्रक्रिया', 'धर्मयुग' १३ मार्च, १९६६।

'नयी कहानी' के इस विम्ब-प्रयोग की आलोचना करते हुए नामवर सिंह ने लिखा है—"जिस प्रकार कहानियों में शिवप्रसाद सिंह जैसे लेखक कदम-कदम पर उपमानों का कोश लुटाते चलते हैं, उससे एक दिन कहानी के ही लुट जाने का खतरा है।[1]" नामवर जी के पास भाषा-शैली है, बात को प्रभावोत्पादक ढंग से कहने की कला-क्षमता है, पर आलोचक की निष्पक्ष-निस्संग दृष्टि का नितान्त अभाव है। उपमान और विम्ब के काव्य में प्रयुक्त होने के कारण उन्हें काव्य-मात्र में सीमित कर देना और कहानी में उनका निषेध करना उचित नहीं है। दूसरे, 'नयी कहानी' के लिए ऐसा निर्णय नहीं दिया जा सकता कि एक प्रकार की श्रेष्ठ कहानी का जो शिल्प है वही दूसरे प्रकार की श्रेष्ठ कहानी का भी होना चाहिए, क्योंकि कहानी का शिल्प-निर्माण कहानीकार स्वेच्छया करता है। उस पर इसका कोई दबाव नहीं होता। तीसरे, विम्बात्मक शिल्प का प्रयोग भाषिक स्तर पर भी वैयक्तिक लेखन-शैली से सबद्ध है। यदि उसमें गद्य की श्रेष्ठ विशेषता-स्पष्टता समाहित है तो उसे वैयक्तिक शैली में लिखा होना ही चाहिए। यदि वैयक्तिकता की छाप हटाकर सारी 'नयी कहानी' को भाषिक स्तर पर एकरूप कर दिया जाए तो इससे अनुकरणशील सपाटता का संकट पैदा हो जाएगा। चौथे, विम्बात्मक प्रयोग कहानीकार की उस दृष्टि के परिचायक हैं, जिससे वह किसी के चलने-बोलने, उठने-बैठने आदि की सूक्ष्मताओं और विशेषताओं का भी परिचय प्राप्त करता है। जैसे—'रोही मछली की तरह मुँह निकाल कर कमली बोली'।[2] ये ऐसे तत्त्व भी हैं, जो पाठ्य-प्रक्रिया के दायरे में वर्णन की एकरसता भंग कर बीच-बीच में हृदयबोध कराते चलते हैं। अतः काव्यभाषा के नाम पर विम्ब का विरोध वस्तुतः 'विरोध के लिए विरोध' है।

'नयी कहानी' में कल्पना के सहारे विम्बों के प्रक्रियाई निर्माण का स्वाभाविक प्रयास द्रष्टव्य है—"उस शाम हम पवेलियन के पीछे टैरेस पर बैठे थे। मेरे रूमाल में उसकी चप्पलें बँधी थीं और उसके पाँव नंगे थे। घास पर चलने से वे गीले हो गये थे और उन पर बजरी के दो-चार लाल दाने चिपके रह गये थे। अब वह शाम बहुत दूर लगती है। उस शाम एक धुँधली-सी आकांक्षा आयी थी और मैं डर गया था। लगता है, आज वह डर दोनों का है। गेंद की तरह कभी उसके पास आता है, कभी मेरे पास।"[3] प्रस्तुत उद्धरण में

१. डॉ नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ४६।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १।
३. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १४-१५।

'बजरी के दो-चार लाल दाने', 'धुंधली-सी-आशंका', 'गेंद की तरह का डर'—जैसे बिम्बों से एक ही मानसिक प्रतिक्रिया की निष्पत्ति होती है, परन्तु एक में रंग की प्रत्यक्षता है तो दूसरे में रंग की सूक्ष्मता और तीसरे में सूक्ष्म, पर विलक्षण संवेद्य-भावना। इससे 'नयी कहानी' में बिम्बों के बहुविध प्रयोग की सम्भावना स्पष्ट होती है।

'नयी कहानी' में वातावरण-निर्माण के लिए भी बिम्ब-विधान किया गया है। वातावरण यहाँ अनुकरण नहीं होकर अन्तःकरण है, जिससे बिम्ब आधुनिक युग की कलात्मक अभिव्यक्ति का अनिवार्य माध्यम सिद्ध हुआ है।[1] शेखर जोशी की 'कोसी का घटवार', शिवप्रसाद सिंह की 'सुबह के बादल', राजेन्द्र यादव की 'नया मकान' और 'प्रश्नवाचक पेड़', मोहन राकेश की 'आर्द्रा' और निर्मल वर्मा की 'तीसरा गवाह' में वातावरण की सार्थ उपयुक्तता में हुए बिम्बात्मक प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं। इन कहानियों में कहीं कोसी नदी की सूनी धारा घटवार के अकेलेपन का बिम्ब फेंकती है तो घटकोइया की 'टिट्-टिट्' शून्य हृदय के निरर्थ स्पन्दन की नादमयता बिम्बित करती है, कहीं आम की ओठी जीवन की गाँठों का बिम्बन कर उठती है तो कहीं छह बच्चों की माँ सूअरी अपनी 'हुँफ्-हुँफ्' से गहरा भीतरी अर्थ उजागर कर देती है। ये बिम्ब बिम्ब के अतिरिक्त संकेत और प्रतीक से भरे हैं, साथ ही नितान्त अभिनव हैं। सचमुच 'इस दृष्टि से नयी कहानियाँ बहुत समृद्ध हैं'।[2]

'नयी कहानी' में बिम्बात्मक शिल्प का प्रयोग विशेषणों के सहारे भी सम्पन्न हुआ है। चाक्षुष और श्रोतृक दोनों ही प्रकार के बिम्ब अर्थों के की गहरी यात्रा करा देते हैं—"ऊबड़-खाबड़ धरती पर उनकी खामोश छायाएँ ढलती हुई धूप में सिमटने लगी।··· खास-भुरभुरे पत्तों की ओट में भूला हुआ सपना झाँकता है, गुनगुनी-सी सफेद हवा, मार्च की पीली धूप, बहुत दिन पहले सुने हुए रिकार्ड की जानी-पहचानी ट्यून, जो चारों ओर फैली घास के तिनकों पर फिसल गयी है···।"[3] प्रस्तुत सन्दर्भ में दस बार विशेषण के प्रयोग हुए हैं। ऐसे प्रयोगों से बिम्ब अपनी अभूतपूर्वता में लहर उठा है।

बिम्ब कहानीकार के विकसित ऐन्द्रिय-बोध का प्रमाण है। बिम्बविषयक संवेदनशीलता 'नयी कहानी' के वातावरण को मार्मिकता-सजीवता देती है।

---

१. नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ४३।
२. वही, पृष्ठ ४३।
३. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १०१।

इस दृष्टि से निर्मल वर्मा ने सर्वाधिक प्रभाव उत्पन्न किया है। उनकी 'दहलीज' कहानी में "ग्रामोफोन के घूमते हुए तवे पर फूल-पत्तियाँ उठ आती हैं, एक आवाज़ उन्हें अपने नर्म, नंगे हाथों से पकड़ कर हवा में बिखेर देती है, संगीत के सुर झाड़ियों में हवा से खेलते हैं, घास के नीचे सोई हुई भूरी मिट्टी पर तितली का नन्हा-सा दिल धड़कता है...मिट्टी और घास के बीच हवा का घोंसला काँपता है...काँपता है।"[1] 'नयी कहानी' में ऐसे बिम्ब-विधान से दुर्लभ संवेदनाएँ जगायी गयी हैं, जिन तक चरित्र और कथानक का जोर मार-कर कभी नहीं पहुँचा जा सकता। वस्तुतः बिम्बात्मक शिल्प-प्रयोग ने 'नयी कहानी' को अनेकानेक नयी दिशाओं में उपलब्धि करायी है, अनुभूति और भाषा दोनों की सम्पन्नताओं के साथ।

दुहरे कथा-शिल्प का साम्य-वैषम्यमूलक प्रयोग

दुहरे कथा-शिल्प का साम्य-वैषम्य-मूलक प्रयोग 'नयी कहानी' में अपने शिल्प-वैशिष्ट्य के कारण अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। डॉ० शंकरदेव अवतरे ने 'नयी कहानी' के शिल्प को जहाँ केवल दो पहलुओं में देखने का प्रयास किया है वहाँ भी सश्लेष शिल्प का उल्लेख हुआ है।[2] सश्लेष शिल्प की कहानी प्रायः द्विकथात्मक होती है। इसमें एक कथानक पुराना होता है और दूसरा नया। पुराने कथानक की संवेदना और पद्धति दोनों ही पुरानी होती हैं और नये कथानक की संवेदना तथा पद्धति नयी। इन दोनों ही कथानकों को सश्लेष एकीकृत करता है। यह सश्लेष न तो सन्दर्भ की समता-मात्र से सम्भव है, न पात्रों की समता से और न ऐतिहासिक शृङ्खला की अनुकूलता से। इसके लिए तो संवेदना-चालित झटके देने वाले शिल्प-वैशिष्ट्य की अपेक्षा होती है। यह प्रयोग केवल साम्यमूलक न होकर वैषम्यमूलक भी होता है। "और यह दुहरा शिल्प दो युगों की समानान्तर तुलना और अन्तर्विरोध प्रस्तुत करता जाता है...नयी और पुरानी कहानी के अन्तर और दूरियों को उजागर करता है।"[3] इस शिल्प के सहारे कहानी के अर्थ को अनुभव करने और उद्रिक्त करने वाला एक नवीन आरोह-अवरोह से भरा अर्थ-चक्र-कपाट खुलता है।

---

१. वही, पृष्ठ ६७।

२. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ २१०।

३. प्रमुख-स्वर, 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ ६।

शिवप्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड़' इस शिल्प की पहली कहानी है, जो मार्च '५२ के 'प्रतीक' में पहले-पहल प्रकाशित हुई थी। नव हिन्दी-कहानी के लिए यह शिल्प सर्वथा अछूता, नितान्त मौलिक और नवीन बन कर उभरा था। डॉ० बच्चन सिंह (शिवप्रसाद सिंह के अनुसार काशी के एक 'धौरन्धरिक') ने इसी आधार पर शिवप्रसाद सिंह को 'इमारती आदमी' कहा था। 'बरगद का पेड़' की कहानी में एक पुरानी कहानी चलती है—"देवीगढ़ में रामसिंह सरकार का राज था। राजा के तीन बेटे थे। बड़ा बेटा वीरेन्द्र बड़ा सुन्दर था···।"[1] और फिर अन्त में—"राजकुमारी ने राजकुमार को देखकर कहा—ओ पापसाकी, तूने मुझ पर सन्देह किया। मेरे श्राप से गढ़ मिट्टी में मिल जाएगा और आज से इस टूटे गढ़ की छाँह में कभी भी दो प्रेमी हृदय मिलकर नहीं रह सकेंगे।" 'मैं' पात्र की संवेदना को राजकुमार और राजकुमारी की यह कहानी साम्य-पद्धति पर गहरी तीव्रता देती है। शीला और विनय के प्रेम की नियति राजकुमारी के शाप से प्रभावित है। शिवप्रसाद सिंह की 'महुए का फूल' कहानी भी इसी शिल्प में लिखी गयी है। इसकी एक कहानी सती की है और दूसरी कहानी महुए एवं काले साँप की। दोनों का अन्त सुन्दर सक्षेप में हुआ है—"उस रात को घूमने वाले साँप को महुए के फूलों की परियों ने खूब छकाया। सती ने भी वही किया। महुए के वे फूल अब भी खिलखिलाते हैं, वे पवित्र हैं, पर महुए के इस फूल को साँप लील गया।"[2]

कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया' साम्य से वैषम्य के गन्तव्य की ओर अग्रसित होती है। इसीलिए राजा निरबसिया और जगपति की कहानी का आरम्भ एक-सा होता हुआ भी अन्त दोनों का अलग-अलग हो जाता है। राजा की दो बातें और जगपती की दो बातों में भी कहानीकार साम्य दिखाता है—"राजा ने दो बातें की।···एक तो रानी के नाम से उन्होंने बहुत बड़ा मन्दिर बनवाया और दूसरे, राज के नये सिक्कों पर बड़े राजकुमार का नाम खुदवा कर चालू किया···।"[4] जगपती ने मरते वक्त दो परचे छोड़े—"एक चन्दा के नाम, दूसरा कानून के नाम।"[5] यहाँ किये कामों की संख्या में साम्य

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आर-पार की माला', पृष्ठ १२।
२ वही, पृष्ठ १८।
३. वही, पृष्ठ ३६।
४. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ', पृष्ठ ५०।
५. वही, पृष्ठ ५०।

होते हुए भी वैषम्य स्पष्ट है। इसके पूर्व के वैषम्य को भी कमलेश्वर ने स्पष्ट किया है। रानी का तपस्या करना, राजा को रानी के सतीत्व का सबूत मिल जाना और फिर चरण पकड़कर रानी को देवी कहकर उन लड़कों को अपना पुत्र मान लेना मध्ययुगीन संवेदना का परिचायक है। दूसरी ओर चन्दा का दूसरे के घर बैठ जाना, बचनसिंह कम्पाउन्डर के कर्जदार जगपती का कारोबार छोड़ अफीम-तेल पीकर मर जाना समकालीन संवेदना का द्योतक है। इसीलिए "माँ जब कहानी समाप्त करती थी तो आस-पास बैठे बच्चे फूल चढ़ाते थे। मेरी कहानी भी खत्म हो गयी, पर...।[1]"

संश्लेष-शिल्प में कमलेश्वर की दूसरी कहानी 'बदनाम बस्ती' है। दोनों कहानियों के लेखन-समय में वर्षों का अन्तराल है। 'बदनाम बस्ती' की कथा एक ओर उस बदनाम बस्ती की कथा है, जहाँ से सरुपा फरार हो गया; दूसरी ओर महारानी विक्टोरिया के राज्य की वह ऐतिहासिक कथा है, जिसमें 'हर क्षेत्र में बहुत उन्नति हुई।'[2] और फिर "सन् १९४७ में देश आज़ाद हुआ। इतिहास बदला। किन्तु आज भी इतिहास कागज़ों पर लिखा जा रहा है।"[3] कहानी का अन्त करते हुए कथाकार ने वैषम्य स्पष्ट किया है कि "बादशाहों की बस्तियों को खोदने से बेशकीमत मूर्त्तियाँ, सिक्के और कीमती चीजें निकलती हैं, पर इन बस्तियों को खोदने से जुल्म और सितम की निशानियाँ निकलती हैं।[4] और फिर साम्य भी कि "इतिहास बराबर लिखा जा रहा है और ये कहानियाँ भी बराबर लिखी जा रही हैं।"[5]

रमेश बक्षी की 'इंग्लिशतानी राजा और हिन्दुस्तानी जीजा' भी दुहरे कथा-शिल्प की कहानी है। इसमें एक ओर इंग्लिशतानी राजे जेम्स फ़र्स्ट, चार्ल्स फर्स्ट, क्रॉमवेल, चार्ल्स दूसरे और जेम्स की कहानी चलती है, दूसरी ओर दिनेश फर्स्ट के बाद दिनेश सेकेंड और उसके बाद...की कहानी। दोनों कहानियों का साम्य प्रदर्शित करती हुई कथा-नायिका निम्मो अपनी बहन पुन्नू से कहती है—"इंग्लैंड की तरह तुम भी कहो पुन्नू, जीजा जी मर गये और जीजा जी हज़ार बरस जिंदा रहें...बोलो पुन्नू। 'जीजा इज़ डेड, लौंग

---

१. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ, पृष्ठ ५०।
२. कमलेश्वर : 'मांस का दरिया', पृष्ठ १४७।
३. वही, पृष्ठ १५२।
४. वही, पृष्ठ १५३।
५. वही, पृष्ठ १५३।

लिव जीजा'''' ।[१]" फिर मन-ही-मन वह वैषम्य भी गाह लेती है—"उसका मन मन-ही-मन बोल रहा था, देखो, पुन्नू, दोनो मे बड़ा फरक है। इग्लैंड मे राजा के बाद राजा ही मिल जाता है, पर हिन्दुस्तान में जीजा के बाद जीजा नहीं मिलता ।[२]"

बक्षी की 'एक समानान्तर कहानी' भी एकाधिक पात्रों के साथ साम्यमूलक सश्लेष-शिल्प की कथा-सृष्टि है। इसमे एक ओर शेखचिल्ली और दूसरी ओर नेताजी, चाची, पत्रकार और प्रिस की कहानी चलती है। शेखचिल्ली की कहानी नानी सुनाया करती थी, पर नेताजी, चाची, पत्रकार तथा प्रिस की मिली-जुली कहानी कहानीकार स्वय करता है। नानी द्वारा सुनायी गयी कहानी का आरम्भ इस प्रकार होता था—"एक था शेखचिल्ली। बड़ा लालची था। किसी ने उसे बतला दिया कि जो ढोल होते है ढमाक ढम-ढम, ढमाक ढम-ढम बजने वाले, उन्हे फोड़कर अगर देखो तो उनमे पाओगे सोने-चाँदी की गिन्नी-अशर्फियाँ और हीरे-जवाहरात ''उसने खरीदे ढोल। बड़े ऊँचे थे उसके ढोल। बडा भारी था उसका मोल। पर न थी उसमे गिन्नी-अशर्फी, न थे रुपये गोल-गोल। ढोल को जब फोडा तब अन्दर से निकली पोल'' ।[३]" आज भी कथाकार को नानी की कहानी याद आती है और वह सोचता है कि नेता जी ने कौन-सा ढोल खरीदा ? धर्म का ? पूँजी का ? राजनीति का ? किसके बोल ऊँचे थे—चाची के ? पत्रकार के ? प्रिस के ? नेता जी के ? किसका मोल बड़ा भारी था—चाची के शरीर का ? पत्रकार की नैतिकता का ? प्रिंस की शान का ? नेताजी के व्यक्तित्व का ? इस प्रकार इस कहानी मे एक पुरानी कहानी के साथ कई भिन्न पात्रो वाली एक सामयिक कहानी का सश्लेष किया गया है। कथात मे कथाकार दोनो ही कथाओ का प्रभाव-वैषम्य स्पष्ट करता है—"सोचता हूँ कि बचपन में जिस कहानी को सुनकर हँसते-हँसते पेट मे बल जाते थे, आज उस कहानी से हँसी क्यो नही आ रही है ?[४]"

सतीश कुमार की 'बादशाह सलामत रहें' कहानी भी सश्लेष-शिल्प का सुन्दर उदाहरण है। सह-सम्पादक मुरारी और उसके बच्चे की इस कहानी में

---

१. रमेश बक्षी : 'इंग्लिशतानी राजा और हिन्दुस्तानी जीजा', 'ज्ञानोदय', जनवरी, ५६, पृष्ठ ५८ ।
२. वही, पृष्ठ ५८ ।
३. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ, पृष्ठ ५५ ।
४. वही, पृष्ठ ५४ ।

से जब भारत सरकार के प्रतिनिधि मंत्री जी की कहानी शुरू होती है तब उसका संश्लेष इग्लैंड के बादशाह के प्रतिनिधि बड़े लाट की कहानी से हो जाता है। लाट साहब की कहानी स्मृति-प्रत्याह्वान शैली में आ जुड़ती है। रूबी के विद्यालय में मन्त्री जानेवाले हैं। खूब धूम-धाम, गाजे-बाजे और तैयारी है। 'जयहिन्द', 'स्वागतम्' और 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा' का बाकायदा पूर्वाभ्यास (रिहर्सल) करा कर तैयार कराया गया है। मुरारी लाल के बचपन में भी लाट के आते समय शहर के मुख्य द्वार से विद्यालय तक तैयारी हुई थी। तब शहर में एक साथ जिलादार, तहसीलदार, नम्बरदार सब एकत्र हुए थे और विद्यालय में मास्टर मूलचन्द ने बच्चे को एक नज्म याद करायी थी—'शाहशाह सलामत रहें या इलाही।[1]' रूबी के विद्यालय में सब-कुछ सम्पन्न होने के बाद भी एक अति आवश्यक कार्यवश मन्त्री जी नही आये। आया तो बस हार्दिक खेद। मुरारी लाल को भी याद आता है—"लाट साब भी तो नही आये थे, क्योकि उन्हे जुकाम हो गया था।[2]" संवेदना का यही स्तर दोनो कहानियों के साम्य से अर्थ को तीव्रता देता है और फिर यह पक्ति···दूर···सात समुद्र पार बादशाह अपने संगमरमर के महल में रहता है।[3]" अगर सामान्य स्तर पर बादशाह के लिए सब है, तो विशेष गहरे स्तर पर मन्त्री के लिए भी।

विद्यासागर नौटियाल की कहानी 'सुन्धी डोर' भी सश्लेष-शिल्प की कहानी है। इसमे दक्ष प्रजापति के यज्ञ की पुरानी कथा है और चन्द्रवदनी के मन्दिर के भू-भाग मे घटने वाली 'मैं' नामक पात्र, मोची और चोर की साम्प्रतिक कथा। कहानी के आरम्भ में पुरानी कहानी लगातार चली है, लेकिन कथान्त मे उस कहानी का उल्लेख नही किया गया है। दक्ष प्रजापति ने अपने यज्ञ मे अनामन्त्रित पहुँचने वाली सती को अपमान किया था और बिरजू ने चमड़ा चुरा कर भाग जाने वाले नौजवान को घर ले जाकर उसकी चोरी की लत तोड़ी है। कथाकार बिरजू के विषय में कहता है—"वह ऐसे स्वर में बोल रहा था, जैसे वह उस नौजवान का बाप हो।" "उसकी बातें सुनकर मैं आश्चर्य में पड गया। ऐसे भी लोग इस दुनिया में हैं। बिरजू बात-की-बात मे उस नौजवान का सरक्षक बन गया था और उसे ऐसे डाँट रहा

१. 'कहानी', फरवरी १९६९, पृष्ठ ३५।
२. वही, पृष्ठ ३७।
३. वही, पृष्ठ ३७।

था, जैसे वह उसका अपना बेटा हो। उसे इतना दुःख अपनी खाल के चुराये जाने का नही था, जितना इस बात का कि नौजवान की आदतें खराब हो गयी हैं।[1]" एक पिता था दक्ष प्रजापति, जिसने सती को पैदा किया था और एक उस पहाड़ी कस्बे का बिरजू है, नौजवान किसका कोई नही होता, पर वह उसका पिता से भी ज्यादा अपना बन बैठा है। बिरजू को नौजवान की आदतें खराब हो जाने का बेहद दुःख है। वह उसकी आदत सुधारने के बाद उसे राहखर्च देकर घर भेज देना चाहता है। कहानी में सश्लेष की परिणति अधिकाधिक साकेतिकता मे होती है। इस कहानी का सश्लेष वैषम्यमूलक है।

'नयी कहानी' में एक साथ सश्लेष और समकालीन संश्लेष—दोनो ही प्रकार के दुहरे कथा-शिल्प का प्रयोग हुआ है। राजेन्द्र यादव की 'अभिमन्यु की आत्महत्या' इसका उदाहरण है। इसमे हातिम की पूरी कहानी, जिसमे सतखडे की हाथीदाँती खिडकी से झाँकती शाहजादी नौजवान को बुलाती है, सश्लेष शिल्प में नियोजित हुई है। यह सश्लेष वैषम्यमूलक है। दूसरी ओर कैलाश और सुभद्रा भाभी की कहानी समकालीन सश्लेष का प्रयोग है। इसके साम्यमूलक प्रभाव के साथ राजेन्द्र यादव कहानी को एतादृश आन्तरिक परिणति देते हैं—"और मैं झटके से उठ बैठा। ठीक जैसे सुभद्रा भाभी उठी थी। हाथ के कक्ड़ को ज़ोर से घुमाकर लहरो पर फेंक दिया और दूर प्रतीक्षा करते जहाज की ओर गुर्राती लहरों से बोला—नही, दोस्त सागर, अभी नही···अभी नही अँधेरे की गरजती लहरो, भाई जहाज फिर कभी आना। आज तो मैं लौट रहा हूँ··· ।[2]" उक्त अश मे हातिम के जैसा सागर की गरजती लहरो के बीच कूदने का हौसला छोड देने के कारण वैषम्य और सुभद्रा भाभी की तरह बरी हुई मृत्यु से बच निकलने कहो 'मुझे बचाओ, डॉक्टर'-जैसे आत्माग्रह के कारण साम्य स्पष्ट है।

दुहरे कथा-शिल्प का साम्य और वैषम्य-मूलक प्रयोग तीव्र सवेदनशीलता, अतिशय मार्मिकता, निश्चित सोद्देश्यता, अनुगूंजित सार्थकता और प्रभाव की व्यापिता—जैसी एक साथ अनेक विशेषताओं का प्रयोग है। यह पुरानी कहानी के शिल्प से सर्वतोभावेन विलग और अभिनव है।

---

१. 'नयी कहानियाँ', सितम्बर १९६४, पृष्ठ २७।
२. राजेन्द्र यादव : 'अभिमन्यु की आत्महत्या', पृष्ठ ३५।

समाप्ति से आरम्भण-शिल्प का प्रयोग

कहानी की समाप्ति की स्थिति से उसका आरम्भण 'नयी कहानी' का एक शिल्पगत प्रयोग है। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इस शिल्प का प्रयोग प्रेमचन्द की 'कफन, कहानी तक में ढूंढ निकाला है,[1] जो पूर्णतः भ्रान्त और असंगत है। कहानी के समापन से आरम्भण-शिल्प का अभिप्राय स्मृति-प्रत्याह्वान शिल्प का प्रयोग नहीं है, जैसा वार्ष्णेय जी ने अन्य कहानियों के दृष्टान्त देकर परोक्षतः स्थापित किया है।[2] स्मृति-प्रत्याह्‌वान में किसी आन्तिक सूत्र को पकड़ कर पूरी कहानी स्मरण-प्रक्रिया मे उद्घाटित की जाती है। यह प्रयोग पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिक कथाकारो का है। इसे समापन से आरम्भण-शिल्प-प्रयोग के साथ अविच्छिन्न रूप में नही देखा जा सकता। ये दोनो परस्पर पर्याय नहीं हैं। यह दूसरी बात है कि स्मृति-प्रत्याह्वान प्रणाली के अन्तर्गत भी समापन से आरम्भण का शिल्प-प्रयोग संभव है।

'नयी कहानी' में समापन से आरम्भण-शिल्प के प्रयोग के स्पष्टतः दो अर्थ हैं। प्रथम तो कहानी के आन्तिक सन्दर्भ, परिवेष और वाक्य-विशेष से हू-ब-हू मिलता-जुलता आरम्भण होने पर यह शिल्प-प्रयोग चरितार्थ होता है। यहाँ आरम्भ मे समापन का शिल्प भी इस शिल्प से संयुक्त होता दीखता है।[3] पर आरम्भ की तरह अन्त करना समापन से आरम्भ करने की अपेक्षा कही अधिक सुगम है, क्योकि उसमे औचित्य से अधिक आरोपण है, साथ ही स्तर भी वैचारिक या वैषयिक कम, भावुक अधिक है; जब कि अन्त से आरम्भण का शिल्प-प्रयोग पूरी तरह रचना-प्रक्रिया पर निर्भर है। दूसरे, कहानी के आरम्भ मे अन्तिम स्थिति-नियति भर सिद्ध करने वाले वाक्यो के सहारे भी यह शिल्प-प्रयोग सार्थ होता है। यहाँ सन्दर्भ, परिवेश और शब्दावलियो की आन्तिक तादृशता नही होती, अपितु कहानी के प्रारम्भिक विकार-सूत्र समाप्ति-मूलक कथ्य-भी अभिव्यंजना देते हैं।

निर्मल वर्मा की 'खोज' कहानी का आरम्भ अन्त से होता है। कथाकार ने अन्त में लिखा है—

"बिन्नो...सो गयी ?"

---

१. डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : 'आधुनिक कहानी का परिपार्श्व', पृष्ठ १२४।

२. वही, पृष्ठ १२४।

३. द्रष्टव्य : उषा प्रियंवदा, 'पिघलती हुई बर्फ', 'एक कोई दूसरा', पृष्ठ ६१ से १२१ तक।

"नहीं...क्यों ?"

"सुनो...वह बाल। क्या वह उनका था ?[1]"

और इस कहानी का प्रारम्भ भी इसी आन्तिक सन्दर्भ से होता है—

"आह।

उसके बाल तकिये के नीचे दब गये थे। अचानक उठने पर वे खिंचते चले गये।"

"आह।" उसने कराहते हुए कहा।

"क्या हुआ ?" छोटी बहिन ने किताब से सिर उठा कर पूछा।

"कुछ नहीं...ये बाल।[2]"

राजेन्द्र यादव की कहानी 'माध्यम का विरोध' में कहानी के अन्त से ही कहानी की शुरुआत हुई है। कहानी का अन्त करते हुए कहानीकार ने लिखा है—"मगर जब अचानक सुषमा रो पड़ी तो सब सकपकाकर एक-दूसरे का मुंह देखने लगे।[3]" और कहानी शुरू भी इसी अन्त से होती है—"जयन्त को अगर जरा भी यह अन्दाज होता कि सुषमा उसके मजाक पर यों रो पड़ेगी तो शायद वह सक्सेना वाली बातें न शुरू करता।[4]" उक्त वाक्य से स्पष्ट होता है कि जयंत के मजाक पर सुषमा का रोना कहानी का अन्त है। कहानी का आदि तो सक्सेना वाली बात की शुरुआत में ही कहीं अन्तर्हित रह गया है। उपर्युक्त दोनों ही कहानियों के उदाहरण इस शिल्प के प्रथमकोटिक उदाहरण हैं, जहाँ आरम्भ में अन्त के सन्दर्भ, परिवेश और शब्द तक ज्यों-के-त्यों हैं।

दूसरी कोटि के शिल्प-प्रयोग के उदाहरण राजेन्द्र यादव की 'एक खुली हुई साँझ' तथा नरेश मेहता की 'वर्षाभीगी' कहानियाँ हैं। 'एक खुली हुई साँझ' का आरम्भिक वाक्य—"वह जो कुछ भी हुआ था उसमें शायद शिवेन भी था...शायद शिवेन ही था...[5]"कहानी के समापन से आरम्भ-द्वार खोलने का उपक्रम है। इस कहानी के आन्तिक सन्दर्भ में ऐसी शब्दावली की कोई तादृशता नहीं है।

नरेश मेहता की 'वर्षाभीगी' भी ऐसे ही आन्तिम आरम्भ से अपनी यात्रा

---

१. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ ५८-५६।

२. वही, पृष्ठ ४६।

३. राजेन्द्र यादव : 'किनारे-से-किनारे तक', पृष्ठ १५२।

४. वही, पृष्ठ १३६।

५. राजेन्द्र यादव : 'टूटना', पृष्ठ ७१।

पर निकलती है—"अभी-अभी वस पानी थमा ही है और अभी-अभी कानन उसके होटल से अस्वीकृता लौटी है। कानन ने इसे तिरस्कार समझा, लेकिन स्वयं उसने समझा—यह वह नहीं जानता।[1]" यहाँ कहानी की अन्तिम परिणति का सूत्र पकड़ कर ही कहानीकार ने कहानी के मंच से आरम्भिक यवनिका हटा दी है।

कथानक-ह्रास और कथा-सूत्र के विशृंखल शिल्प का प्रयोग

फ्रांसिस विवयान के अनुसार "आप अनुमति दें या न दें, मैं कथानक शब्द को ठोकर मार कर समुद्र में डुबो दूँगा ताकि वह फिर बाहर न निकले।"[2] हिन्दी में इस कथन के प्रायः चौदह वर्षों बाद 'नयी कहानी' मे कथानक-ह्रास का शिल्प-प्रयोग दीख पड़ा।

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के अनुसार हिन्दी कहानी मे कथानक का ह्रास पूर्ववर्ती प्रेमचन्दोत्तर कहानियों से ही शुरू हो गया था। उनके शब्दों में "हिन्दी-कहानियो के विकास के प्रथम चरण से लेकर आज तक की कहानी-प्रगति को देखने से कथा-तत्त्व में यह ह्रास स्पष्ट होता चला गया है...शिल्प-विधि की दृष्टि से कथानक का भौतिक ह्रास कहानी-कला का उत्थान है, जहाँ कहानी अपने कथानक-तत्त्व में बाह्य उपकरणो से आगे बढ़कर आन्तरिक उपकरणों तथा स्थूल से सूक्ष्म तत्त्वो को क्रमशः अपना उपजीव्य बनाती चलती है।"[3] 'नयी कहानी' इसे प्रयोग-रूप मे उपस्थापित करती आत्यन्तिक विकास और निखार देती है। जैसे-जैसे 'नयी कहानी' विकसित होती चलती है वैसे-वैसे यह शिल्प-प्रयोग भी समृद्ध होता चलता है।

'नयी कहानी' ने यह अनुभव किया है कि कथानक कहानी के आन्तरिक रचाव और समवाय में बाधा डालना है तथा उसकी सृष्टि में विकार उत्पन्न करता है। फलतः यह अपने विकास-क्रम में प्रायः सपाट कथानक की संरचना और नख से शिख तक चुस्त-दुरुस्त कथानक की सर्जना—दोनो ही को उपेक्षित-तिरस्कृत करती हुई बढी है। 'नयी कहानी' कथानक-ह्रास के बावजूद कथाकार की सर्जनात्मक प्रतिभा का विकसन-उन्नयन स्वीकारती है, क्योंकि उसकी दृष्टि मे कहानी की मूल शक्ति अनुभूति की सारीय गहनता है, जो आज की

---

१. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ३१।

२. फ्रांसिस विवयान : 'कथा के रचनात्मक शिल्प', भैरवप्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'नयी कहानियाँ' सितम्बर,१९६० में 'पहला पृष्ठ' पर उद्धृत।

३. डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल : 'आधुनिक हिन्दी-कहानी', पृष्ठ ८२।

परिवर्तित परिस्थितियों में सहज प्राप्त है। जिन्दगी अब रेत-कणों की तरह बिखर गयी हो तब उसके सहारे अट्टालिका खड़ी भी कैसे की जा सकती है? साम्प्रतिक जीवन उलझनों और परेशानियों के बीच गुजरने वाली ऐसी जिन्दगी है, जिसमे क्रम और व्यवस्था का सिरा चाह कर भी ढूंढा नही जा सकता। जीवन के इस बिखराव के अनुरूप कथानक का बिखराव भी अत्यन्त प्रकृत है। इसीलिए प्रयाग शुक्ल ने ३१ जनवरी '६५ को पंजाब विश्वविद्यालय में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में आयोजित संगोष्ठी में कहा था कि "आधुनिक बोध का हिन्दी-कहानी पर सीधा असर यह पड़ा है कि उसमें कथानक का ह्रास हुआ है और कथानक का स्थान कथ्य ने ले लिया है।[१]"

ई० एम० फॉर्स्टर ने कहानी (स्टोरी) और कथानक (प्लाट) में अन्तर करते हुए बताया है कि 'राजा मर गये और फिर रानी भी मर गयी'—यह कहानी है। लेकिन 'राजा मर गये और उस दु:ख से रानी मर गयी'—यह कथानक है।[२] इस प्रकार कहानी 'क्या' को उत्तरित करती है, पर कथानक 'क्यों' को उत्तरित करता है। फॉर्स्टर कथानक में कार्य-कारण-शृङ्खला का होना अपेक्षित मानते हैं। कालान्तर में फॉर्स्टर के द्वारा किये गये कहानी (स्टोरी) और कथानक (प्लाट) के विभाजन को सामयिक-मात्र बताया गया। वैसे कहानी के ऊपर कथानक की मान्यता रखना युगीन आवश्यकता की वह अनुसारिता है, जहाँ कथानक के शिल्प का आधार कहानीपन की बुनियादी प्राथमिकता को प्राप्त है। 'नयी कहानी' में इस धारणा से उत्पन्न दाव-पेंच, मोड़ और कुतूहल वाले चक्करदार कथानक का ह्रास हुआ है। इसमें कारण-कार्य-शृङ्खला की सुविन्यस्तता बाधित हुई है।

नामवर सिंह तथाकथित कथानक को पाठक की मस्तिष्कीय उपज मानते हैं। यह कथानक कहानी की सतह पर अन्वेषित है। इसका सम्बन्ध कहानी के विविध अन्तर्वर्ती सवन्ध-सूत्रों से है। उनकी दृष्टि में कथा-गति से पाठकीय मस्तिष्क में उत्पन्न प्रथम तरंग-माला की सुसबद्धता ही कथानक है, जो 'सतह' है, प्रभाव का प्रथम धरातल।[३] रूसी समीक्षक विक्टर श्क्लोवस्की के अनुसार कथानक जीवन तथा मानव-सम्बन्धों के व्यवस्था-क्रम-विषयक लेखक की समझदारी का सूचक है।[४] नामवर सिंह कथानक-ह्रास को कथानक का ह्रास नही

---

१. 'नयी कहानियाँ', अप्रैल १९६५, पृष्ठ १२०-१२१।
२. ई० एम० फॉर्स्टर : 'ऐस्पेक्ट्स ऑव द नॉवेल', पृष्ठ ८२।
३. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ १३४।
४. वही, १३४ पर उद्धृत।

मानकर कथा का ह्रास मानते है। उनके शब्दों में "कथानक की धारणा बदल गयी है'''जीवन का एक लघु प्रसंग, मूड, विचार अथवा विशिष्ट व्यक्ति-चरित्र ही कथानक बन गया है अथवा उसमें कथानक की क्षमता मान ली गयी है।"[1] नामवर सिंह रूसी कहानीकार चेखव द्वारा सूत्रपात की गयी चढ़ाव-उतारहीन सपाट कथानक वाली कहानियों की चर्चा करते हैं, क्योंकि कहानी के भीतर ही कहानी बदल जाती है। उनके अनुसार जैसे गीतात्मकता के ढाँचे मे नये गीतो की सृष्टि होती है वैसे ही कहानीपन के ढाँचे मे 'नयी कहानी' की सर्जना भी। डॉ० नगेन्द्र का विचार है कि "नवीन साहित्यरूपों के उदय तथा साहित्य मे नवीन तत्त्वो के समावेश के फलस्वरूप कथानक ने कठोर परिसीमाओं का बंधन तो तोड़ दिया है, किन्तु अपूर्व विविधता आ जाने पर भी आज के समाख्यान में मनोवैज्ञानिक या तार्किक दृष्टि से कथानक की आधारभूत एकता यथापूर्व अनिवार्य बनी हुई है।"[2] पर 'नयी कहानी' के सन्दर्भ में कथानक की रक्षा से संबद्ध इन सारी मान्यताओं को चरितार्थ नहीं किया जा सकता। 'नयी कहानी' के आरम्भिक काल में पुष्ट कथानक वाली कहानियाँ भी लिखी गयी थीं, जिनमें शिल्प के अन्यान्य प्रयोग किये गये थे। पर अपने विकास-क्रम में 'नयी कहानी' कथानक-ह्रास की ओर उन्मुख होती गयी है। यह ह्रास कथा-सूत्र की विशृङ्खलता के रूप में उपस्थित हुआ है। कथानक-ह्रास को कथा-ह्रास-मात्र कह देने से भी मुक्ति नहीं मिल सकती, क्योंकि कथानक की धारणा तो बदली ही है। जब कथानक को 'कहानी का विष' माना जा रहा है तब कथानक की बदली धारणा में कथानक का ह्रास नहीं तो क्या विकास होगा? और-तो-और स्वतः कथा भी कथानक की परम्परित धारणा से ही तो संबद्ध है। सच तो यह है कि "आधुनिक कहानी ने घटना या अन्तर्कथा या कथानक और अपने सब सहगामी तत्त्वो से मुक्ति ही नहीं पा ली है, बल्कि उसने कहानी की प्रकृति ही बदल डाली है।"[3] इसके मूल मे जीवन-दृष्टि का परिवर्तन है, जिसकी यथार्थता और नवीनता के कारण ही कथानक का ह्रास हुआ है।

कथानक-ह्रास होने के कारण 'नयी कहानी' कहानी न रह कर कभी संस्मरण बनने लगी तो कभी अनुभूति का क्षण, कहीं घनीभूत क्षण की अभिव्यक्ति होने लगी तो कहीं अकहानी। कथानक-ह्रास ने 'नयी कहानी' के

---

१. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी,' पृष्ठ २०-२१।

२. डॉ० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खंड), पृष्ठ २००।

३. 'माध्यम', मार्च १९६६ के पृष्ठ १३ पर उद्धृत।

व्यक्तित्व को लचकीलापन और तरलता दी, जिससे कहानी भविष्य के परिवर्तन का सवहन कर सके। कथानक-ह्रास के शिल्पगत प्रयोग मे रचनाकार की अन्तर्गूढता बात-से-बात निकाल कर कहानी का विन्यास करने लगी। यही अन्तर्गूढता अन्तरग वार्ता (टेबिल टॉक) का रस-बोध तक देती है, भाषिक बारीकी का प्रमाण तक प्रस्तुत करती है और बातचीत की उत्कृष्ट कला का दृष्टात भी बनती है।

कथानक-ह्रास के लक्षित होने का सूत्र है कथा-सूत्र की विशृह्खलता। कथानक का ठोसपन तो मिटा ही है, क्रमबद्ध घटना और सगति-तारतम्य के धागे भी उलझे हैं। जो कथा-सूत्र कथाकार की दृष्टि मे अपेक्षित, अनिवार्य और आवश्यक दीख पडे हैं, उन्हे भी उसने एकसूत्र नही किया है। ऐसी कहानियो में मानस का उद्घाटन और व्यक्तित्व का विश्लेषण हुआ है तथा परिवेश की तद्वत् व्याप्ति भी चित्रित हुई है।

कथानक-ह्रास और कथा-सूत्र के विशृह्खल शिल्प का प्रयोग 'लन्दन की एक रात' (निर्मल वर्मा), 'रात' (कृष्ण बलदेव वैद), 'रीछ' (दूधनाथ सिंह), 'अँधेरे मे सहिजन' (श्रीराम वर्मा), 'सतरें जो डायरी न बन सकीं' (भारत रत्न भार्गव) जैसी अनेकानेक कहानियो मे हुआ है।

'लन्दन की एक रात'[1] मनुष्य के मन के तनाव को व्यक्त करने वाली कहानी है, जिसमे कथानक की परम्परित धारणा को बहुत कसकर झटका लगा है। इसमे अन्तर-राष्ट्रीय सकट और आतक से उत्पन्न भय है। इस एक रात मे कई विशृह्खल रातें है, जो कथानक की सुशृह्खल और सघटनात्मक धारणा को मुँह चिढाती हैं। दृष्टि की नवीनता और नये बदले हुए जीवन-सन्दर्भ इसके मूल मे हैं।

दूधनाथ सिंह की 'रीछ'[2] कहानी भी कथानक-ह्रास का सुन्दर उदाहरण है। इसमे अन्तर्मन्थन अधिक है। एक पति अपने पूर्व प्रणय का वृत्त अपनी पत्नी को कहकर सामान्य (नॉर्मल) होने का प्रयत्न करता है, परन्तु यह संभव नही हो पाता और वह पुरानी स्मृति की यत्रणा से अन्ततः 'रीछ' बन जाता है। कहानी के वार्तालाप के अश कहानी मे न तो कोई सुशृह्खल कथा-सूत्र उभरने देते हैं और न कथानक की सुघडता ही निर्मित कर पाते हैं।

---

१. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १०३ से १४१ तक।
२. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ६ से २६ तक।

श्रीराम वर्मा की 'अंधेरे में सहिजन'[1] कहानी भी कथानक-ह्रास का उत्तम उदाहरण है। 'लन्दन की एक रात' में यदि विदेशी परिवेश में उभरे प्रश्न प्रस्तुत हैं, 'रीछ' मे यदि मानस-संघर्ष, द्वन्द्व और द्विधा वैयक्तिक क्रियाशीलता से संबद्ध हैं तो 'अंधेरे में सहिजन' भारतीय परिवेश से प्राप्त वर्तमान अभिशाप को झेलने वाले एक नवयुवक की नियति और उसके आक्रोश की कहानी है। कहानी में न कोई व्यवस्थित कथा-सूत्र है और न कोई व्यवस्थित कथानक। सारी कहानी विचारों की संकेत-प्रक्रिया में अन्तर्ग्रंथित है। नितान्त वैयक्तिक स्थिति से देश के व्यापक क्षितिज तक में अर्थ उछलते हैं। कथानक का अभाव और कथा-सूत्र की विशृङ्खलता इसकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

'रात'[2] कृष्ण बलदेव वैद की कहानी है। चिन्तन और विचारों के ताने-बाने से बुनी यह स्वैरकल्पनात्मक कहानी कथानक-ह्रास और कथा-सूत्र की विशृङ्खलता के शिल्प-प्रयोग का उदाहरण है।

भारत रत्न भार्गव की 'सतरें, जो डायरी न बन सकी'[3] कथानक-ह्रास के शिल्प-प्रयोग का उदाहरण है। कहानी आठ लघु परिच्छेदों मे बँटी हुई है। पहले परिच्छेद में डायरी मे लिखी जाने वाली वैयक्तिक बातें हैं और कविता की पंक्तियाँ भी—"तेरे इन सूने आकाशी नयनों में
यदि चाहे तो सपनों के इन्द्रधनुष टांक दूं।"
दूसरे परिच्छेद मे अखबारी वर्णनात्मकता-सी बातें हैं। तीसरे और चौथे परिच्छेद में बौद्धिक चिन्तनात्मकता है। किन्तु चौथे में चिन्तन असम्भाव्यता और प्रलाप से मिल गया है। पाँचवें परिच्छेद मे गीत की मोहकता और वैयक्तिक सामानों का हिसाब है। छठे परिच्छेद में अपने-आप से किये गये सवालात हैं। सातवें परिच्छेद में मनोविज्ञान का आत्म-परीक्षण है और आठवां परिच्छेद जिस खत नही लिखने की बात से शुरू हुआ था, उसी पर समाप्त होता है—"नही आज मैं किसी को भी खत नहीं लिखूंगा। य, र, ल, व, श, प, स, ह...।"[4] आठो परिच्छेदों को मिलाने पर न तो कोई कथानक स्पष्ट हो पाता है और न शृङ्खला सूत्र ही उपलब्ध होते हैं। कथानक-ह्रास के इसी स्वरूप को देखते हुए एक ओर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसे व्यक्ति साम्प्रतिक कहानी पर यह

---

१. 'कहानी', अक्तूबर १९६६, पृष्ठ ९-१६।
२. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ३९९-४१६।
३. 'ज्ञानोदय', फरवरी १९६८, पृष्ठ ८१-८५।
४. वही, पृष्ठ ८५।

आरोप करते हैं कि "आज के कहानीकारों से मेरी शिकायत यह है कि वे समस्याओं से टकराकर खुद बिखर जाते हैं, उन्हें सम्हाल नहीं पाते। उनमें 'करैक्टर' का अभाव है।"[1]···तो दूसरी ओर शिवदान सिंह चौहान इस स्थिति पर खेद व्यक्त करते हैं।[2]

सच पूछिए तो कथानक-ह्रास और कथा-सूत्र के विशृङ्खल शिल्प का प्रयोग पाठकों को कथा-पाठ के लिए गोताखोर की शक्ति और सामर्थ्य के साथ आमंत्रित करता है। इस शिल्प-प्रयोग से 'नयी कहानी' को यह शक्ति मिलती है, जिसके विषय में जैनेन्द्र का विचार है कि "नयी कहानी अवगाहन में जाती है···आज सूक्ष्म संवेदनाओं के आकलन का प्रयास अधिक दीखता है, घटना के घटाटोप का आग्रह कम है और यह शुभ लक्षण है।"[3] यह प्रयोग 'नयी कहानी' के विकसित स्वास्थ्य का द्योतक है। बढ़ी चर्बी का ह्रास प्रत्येक रूप में शुभकर होता है, वह चाहे मनुष्य में हो चाहे कहानी में।

चरमोत्कर्ष पर बोध-सूत्रात्मक स्पष्टीकरण के शिल्प का प्रयोग

'नयी कहानी' में चरम-सीमा पर बोध-सूत्र का स्पष्टीकरण एक शिल्प के बतौर किया गया है। यह शिल्प परम्परित कथा-कुतूहल से भिन्न है। कमलेश्वर की 'साँप', नरेश मेहता की 'वह मर्द थी' और 'दूसरे की पत्नी के पत्र' तथा दूधनाथ सिंह की 'कोरस' कहानियाँ इस शिल्प-प्रयोग की द्योतिका हैं।

'साँप' कहानी के आरम्भ में आनन्द को डाकबँगले का चौकीदार बताता है कि यहाँ जंगली जानवर तो नीरव एकान्त डाकबँगले की ओर नहीं आते, पर साँप प्रायः निकलते रहते हैं। आनन्द इन्दु के साथ चट्टान पर बैठ कर पानी की अकुलाहट और फेन की बनती जंजीरें देखता है। उसे पहाड़ी सड़क अजगर की तरह लगती है और उफनती हुई धार तथा भील में उसके गिरने की सिसकारियाँ दोनों ही साँप की तरह। रेशमी साड़ी की सरकन में भी उसे साँप का भ्रम होता है और उसे लगता है कि एक पतला-सा साँप उसे दाँत चुभोकर झाड़ी में विलीन हो गया। घबड़ाया हुआ आनन्द इन्दु से चौकीदार को बुलाने के लिए कहता है, क्योंकि उसे साँप ने काट खाया है और आस-

---

१ डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'एक जलती शाम द्विवेदी जी के साथ', 'धर्मयुग', २३ अक्तूबर १९६६, पृष्ठ ५३।
२. 'आलोचना', अप्रैल-जून १९६८, पृष्ठ ५।
३. जैनेन्द्र : 'कहानी : अनुभव और शिल्प', पृष्ठ ६५।

पास कोई अस्पताल नहीं है। तभी इन्दु उसे करवट से देखती धीरे से मुस्कुरा पड़ती है। 'कमीज में उसके बालों का एक हेयर-पिन उलझा हुआ था।[1]' यहाँ कहानी का रहस्य-सूत्र एक झटके से स्पष्ट हो पड़ता है और कहानी नये कोण में अर्थ-बोध करा जाती है।

नरेश मेहता की 'दूसरे की पत्नी के पत्र' कहानी में श्री सुकान्त अपने मित्र विशन के साथ ठहरा है। कभी विशन विवाहित था और श्री सुकान्त क्वाँरा, पर आज श्री सुकान्त विवाहित है और विशन विधुर। श्री सुकान्त की पत्नी श्री सुकान्त को पत्र लिखती है और श्री सुकान्त के बाहर निकल जाने पर विशन डाकिये से उसका पत्र प्राप्त कर उसे पढ़ लेता है। बाद में विशन इस काम के लिए मनसा पश्चात्ताप करता है। उसका मित्र श्री सुकान्त जाने वाला है। वह श्री सुकान्त को उसकी पत्नी के लिखे तीनों पत्र लौटा देना चाहता है। दोनों अच्छी मित्रता पर बातचीत करते हैं। विशन जब कहता है कि 'मुझे स्वयं लज्जा है...' तभी श्री सुकान्त कहता है—"मुझे अधिक लज्जित न करो। तुम्हारे हृदय की विशालता मैं जानता हूँ। इसके प्रमाण में मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम मुझे क्षमा करोगे, यह मैं जानता हूँ और इसीलिए साहस भी हो रहा है। जो मैं विगत सात वर्षों से कह नहीं पाया, उसे आज कहना चाहूँगा। तुम एक बार काशी आये थे, एक माह के लिए। तब मालती भाभी के पत्रों में से मैंने एक पत्र चुराया था, उसे आज मैं लौटा रहा हूँ। विशन...मैं नीच हूँ...।[2]" इस प्रकार कथान्त में जो रहस्य खुलता है, उसकी कहीं कोई चेतना पहले से पाठक को नहीं रहती। वह यह जानता भी नहीं है कि यहाँ किसी रहस्य का गोपन है, पर कहानी का सही सूत्र —वह सूत्र जिससे कहानी स्पष्ट हो जाती है—इस परिणति पर ही उजागर हो पाता है।

नरेश मेहता की 'वह मर्द थी' कहानी में शादीलाल के होटल में खाने वाले कथानायक को जब यह जानकारी होती है कि वह जिसको मर्द रसोइया समझता है, वह मर्द-रसोइया न होकर औरत-रसोइया है तब उसे आश्चर्य होता है। जब उसे यह भी पता चलता है कि मैंने जिसे औरत नहीं समझा था, वह औरत ही नहीं, पत्नी, माँ सब है तब यह समझ में नहीं आता है कि यह कैसी औरत है जिसके न तो लम्बे बाल हैं और न छातियाँ। पर कहानी के अन्त में शादीलाल जो कहता है उससे इस कहानी का कथा-सूत्र

---

१. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ' पृष्ठ ६१।
२. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १०७।

एक-ब-एक सुलझ जाता है। फिर तो लेखक के लिए स्पष्ट हो जाता है—"मैंने जिसे औरत नही समझा था...छातियाँ कट जाने के बाद...शायद फिर माँ न बन सकी...दूध जो न उतरता होगा...उसमे उसकी इज्जत और छातियाँ लेकर लोगों ने उसे मर्द बना दिया...बिना दूध की छातियों वाली शादीलाल की बीवी...बाबूलाल की माँ...मर्द है...।[1]"

दूधनाथ सिंह की 'कोरस' कहानी भी इस शिल्प-प्रयोग की ज्ञापिका है। इसके प्रारम्भ में 'वे सभी एक लम्बी छाया का पीछा कर रहे थे'[2] से जिस रहस्यात्मकता की जिज्ञासा होती है, वह अखड कौतूहल कथान्त के पूर्व तक चलता रहता है। पर कहानी के चरम पर पहुँचते ही—"मेरी गर्दन एक भयावने फीलपाँव के नीचे दबी हुई थी, जिसकी लम्बी छाया दूर-दूर तक पसरी हुई थी[3]"—से छाया-विषयक सारी रहस्यात्मकता मिट जाती है और गहरे सकेत के सहारे अवबोध के सूत्र भी सर्वथा नये रूप मे स्पष्ट हो पड़ते हैं।

विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प का प्रयोग

विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प-प्रयोग (रैम्बलिंग) में केवल चिन्तन सूत्रित होता है। चिन्तन के उन सूत्रो की कोई सुनिश्चित शृङ्खला नही होती, वे प्रायः बिखरे होते हैं। दूधनाथ सिंह की 'प्रतिनिधि', निर्मल वर्मा की 'डेढ इंच ऊपर', चन्द्रकान्त बक्षी की 'काले ताजमहल', कृष्ण बलदेव वैद की 'रात', रमेश बक्षी की 'प्रार्थना' जैसी कहानियो मे इस शिल्प का प्रयोग हुआ है।

दूधनाथ सिंह की 'प्रतिनिधि' कहानी प्रलापीय सवाद के रूप में लिखी गयी है। दूसरे शब्दो मे अपनी पूर्णता मे यह स्वगत प्रलाप नही होकर सवादात्मक प्रलाप है। कहानी का पहला व्यक्ति एक लम्बा एकालाप करता है। प्रलापीय शिल्प का मूल यही एकालाप है। इस कहानी का कही से भी कोई अंश उठा कर रख दिया जाए फिर भी इसके प्रलापीय शिल्प की सार्थकता मे कोई कमी नही आएगी—

> "आओ, कभी च्यवनप्राश खरीदें, कभी सेन्नीन।"
> "दोनो क्यो ?"
> "आओ, कभी-कभी काम करें, सदा आराम।"

---

१. नरेश मेहता : 'तयापि', पृष्ठ ७२।

२. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ १०६।

३. वही, पृष्ठ ११६।

"न कभी काम, न कभी आराम।"
"हालाँकि यह आश्चर्यजनक है।"
"आश्चर्यजनक तो है।"
"आओ, फल खाएँ और स्वास्थ्य बनाएँ।"
"मुझे कोई उधार नहीं देगा।"
"आओ परम्परा को याद करें।"
"क्या, वह कोई जवान लड़की है?"[1]

\+ + +

"लगता है, इसी ट्रेनिंग में तुम्हारा हुलिया खराब हो गया है?"
"मेरा कोई हुलिया नहीं था।"
"हालाँकि यह आश्चर्यजनक है।"
"आश्चर्यजनक तो है।"[2]

प्रलापीय शिल्प को यहाँ कहानीकार ने व्यग्य से भी शाणित किया है। 'प्रतिनिधि' नेता-वर्ग को प्रतीकित करता है—"क्योंकि तुम कई वादे तोड़ चुके हो।"..."तुम इतनी बार झूठ बोल चुके हो कि तुम्हारे किसी भी कथन पर कोई निर्णय नहीं लिया जा सकता।"[3]

निर्मल वर्मा की 'डेढ़ इंच ऊपर' कहानी का नायक कहता है—"अगर आप चाहें तो इस मेज पर आ सकते हैं। जगह काफी है। आखिर एक आदमी को कितनी जगह चाहिए। नहीं...नहीं...मुझे कोई तकलीफ नहीं होगी। बेशक आप चाहें तो चुप रह सकते हैं। मैं खुद चुप रहना पसन्द करता हूँ... आदमी बात कर सकता है और चुप रह सकता है। एक ही वक़्त में। इसे बहुत कम लोग समझते हैं। मैं वर्षों से यह करता आ रहा हूँ। बेशक आप नहीं...आप अभी जवान हैं...।"[4] यह पूरी कहानी एकालाप शैली में एक ही अनुच्छेद मे आद्यन्त चलती है। यहाँ 'प्रतिनिधि' की तरह कोई अन्य व्यक्ति उत्तर देने के लिए उपस्थित नहीं है, वल्कि मध्यम पुरुष का अनुमान कर कथानायक खुद ही कभी सलाप करता है और कभी एकालाप, जिससे प्रलाप की धारणा तीखी विचारोत्तेजकता के साथ स्पष्ट होती है—"नींद के लिए

---

१. 'कहानी', मार्च १९६६, पृष्ठ १६।
२. वही, पृष्ठ १६।
३. वही, पृष्ठ १३।
४. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ ३३।

छटाँक भर लापरवाही चाहिए, आधा छटाँक थकान।[१]" "आदमी को ज़मीन से करीब डेढ़ इंच ऊपर उठ जाना चाहिए।[२]" "चुनने की खुली छूट से बड़ी पीड़ा कोई दूसरी नही।"[३] ऐसे प्रलापीय वाक्य बाहर से जहाँ अनिन्वित अभिव्यक्ति लगते है भीतर से वही अर्थ-संकेत की सुचिन्तिति का उदाहरण भी बन जाते है। इस कहानी में एक विचार से दूसरे विचार पर जाने के क्रम में सहज तौर पर उत्पन्न हो रहे भटकाव और प्रलापीय शिल्प के क्रम को विपर्यस्त करने वाले अन्तराल (गैप) को भरने के लिए बीच-बीच मे बिन्दुओं का भी प्रयोग हुआ है। कथान्त का यह प्रलाप—"बियर पीने का यह सुख है कि आप एक ही दायरे के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते रहते हैं...राउंड ऐंड राउंड ऐंड राउंड। आप जा रहे हैं ? जरा ठहरिए...मैं सलामी के कुछ टुकड़े अपनी बिल्ली के लिए खरीद लेता हूँ...बेचारी इस समय तक भूखी-प्यासी मेरे इन्तज़ार में बैठी होगी। नही...नही...आपको मेरे साथ आने की जरूरत नही है। मेरा घर ज्यादा दूर नही है और मै पीने की अपनी सीमा जानता हूँ। मैंने आपसे कहा था न...सिर्फ डेढ इंच ऊपर।[४]"...अन्तिम चार शब्दो के वर्तुलायित अर्थ कहानी को कही गहन-गंभीर कर देते हैं।

चन्द्रकान्त बक्षी की 'काले ताजमहल' का 'मैं' साम्यवादी घोषणा-पत्र (कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो) का 'रिलीजन इज द ओप्यम ऑव द पीप्ल' याद करता हुआ 'ओप्यम' का उपयोग करता है। उसका सुव्रतो कभी 'रिकार्ड प्लेयर' के साथ गाता है—'बर्न बर्न बेबी बर्न—बर्न यू मस्ट, बर्न योर बस्ट, बर्न यू फर्स्ट, बर्न योर गट्स।[५]' और जब 'मैं' सुव्रतो को और ज्यादा अफीम देने से चेन को मना करता है तब चेन 'क्यो' की ध्वनि मे उसका कारण पूछता है। किन्तु 'मैं' कहता है—"'साला' शब्द की 'इटीमोलॉजी' किसी ने खोजी है ? मुगलो के समय था या ईस्ट इंडिया कम्पनी के जाने के बाद आया।"[६] इस कहानी में प्रलापीय शिल्प मे एक-दूसरे से परस्पर असबद्ध बातो की कमी नही है।

---

१. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ ३५।
२. वही, पृष्ठ ३६।
३. वही, पृष्ठ ४४।
४. 'नयी कहानियाँ', अक्तूबर '६५, पृष्ठ १२ तथा 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ ४५।
५. 'सारिका', जून १९६६, पृष्ठ २४।
६. वही, पृष्ठ २७।

सोलह बच्चे पैदा करने वाली मुमताज का उल्लेख है। हुमायूँ और अकबर के अफीम पीने का उल्लेख है। औरंगजेब के काला ताज न बना सकने का उल्लेख है और अकबर को मिरगी का दौरा पड़ने का भी। तीतर के झुंड में पचास-साठ मादाओं के बीच एक नर के रहने का उल्लेख है तो रक्त के प्रवाह में बहते मादा कीटाणु की नर कीटाणु से प्रेमिल जिज्ञासा की चर्चा है। चीनी और मोनालिसा का उल्लेख है तो गालियों के कोश बनाने का भी। और अन्त में सुव्रतो कह रहा था, "आइ ऐम द सन ऐंड द फादर ऑव ऐन एमीवा वाला मनुष्य—धर्म और अफीम दोनो का इस्तेमाल कर लेगा और प्रश्न करेगा—सन ऑव द विच, अफीम पिया है कभी पाइप में ?"[1] इस प्रकार प्रस्तुत कहानी आमूल-चूल प्रलाप का दृष्टान्त बन जाती है। इसी कहानी मे कही तीव्र अर्थ के साथ कथाकार का कथ्य भी बोलता है—"जब ताज बन रहा था गुजरात मे हजारो लोग अकाल में मर रहे थे। वह गुजरात की भूख का प्रतीक है। जब अपनी सरकार आएगी तब...तब ताज को हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा राशनिंग ऑफिस बना देंगे।"[2]

इस शिल्प-प्रयोग का एक और उल्लेख, महत्त्वपूर्ण उदाहरण कृष्ण बलदेव वैद की 'रात' है। इस पूरी कहानी में सत्रस्त मानव की द्विधा-विभक्त मानसिकता का भयावह अकेलापन है। प्रलाप इस सत्रस्त और द्विधा-विभक्त मानसिकता के अकेलेपन को और भी गहराने वाला शिल्प बन कर उपस्थित होता है। निम्नलिखित लम्बा उद्धरण प्रलापीय शिल्प में उसकी मनःस्थिति और द्विधा-विभक्ति का स्पष्ट परिचय देता है—"मैं न जाने कब तक इसी तरह। नही। मैं न जाने क्यो कब तक इसी तरह। नही। मैं जाने क्यो कब से किसी तरह। नही। मैं न जाने क्यो इस तरह कब तक किसी से भी। नही। किसी से भी। नही। किसी से भी। नही। क्यो न जाने मैं यहाँ कब से। नही। मैं कहना चाहता हूँ कि। नही। मैं जाने कब से क्या किसी से भी कुछ क्यो नही कह। कुछ नही मैं। नही। मेरा मतलब न जाने क्यो कब कुछ भी कैसे। नही। मैं शायद इसी तरह न जाने कब से यहाँ क्यो क्या नही। नही। मैं किसी से भी कुछ भी कैसे भी न जाने क्यो कभी नही। मैं न जाने क्या किससे क्यो कब से यहाँ अभी तक कही भी नही। मैं न जाने क्यो वहाँ और वहाँ यानी मेरा मतलब न जाने दरअसल किसी भी तरीके से मैं यहाँ। नही। मैं शायद नही। मैं यकीनन

१. 'सारिका,' जून १९६६, पृष्ठ २७।
२. वही, पृष्ठ २७।

नही। मैं गालिबन नही। मैं अगर नहीं। मगर मैं अलबत्ता नहीं। मैं हर्गिज नहीं वर्ना। मैं उधर दरअसल कुछ भी मैं जितनी भी कोशिश क्यों मैं नहीं। दरअसल कुछ भी नही। मैं न जाने क्या शायद कुछ भी नहीं यंमे नही मैं...।[1]" यह स्वगत एकालाप आधुनिक मानव की तनाव-भरी, अनिर्णय-ग्रस्त मानसिकता को जताता है। दरअसल यह सारा-का-सारा प्रलाप मानसिकता के स्तर पर ही है।

रमेश बक्षी की 'प्रार्थना' मे कथानायक की अनुभूति मे "अँधेरा घिरता हैं...मन-ही-मन उलटी गिनती शुरू होती है— सौ, निन्यानवे, अट्ठानवे... छियानबे। कोई हँस देता है—हट बे! तभी एक मयली-सी चलने लगती है। ज्यादा ही होता है तो फिर एक अन्दाज से हाथ बढ़ाता है। कागज फटता है। एक गोली निकलती है। थोड़ा-सा शरीर उठँगता है और एक घूँट पानी के साथ गोली निगल ली जाती है। फिर उसी तरह लेटना, फिर अँगरेजी मे गिनती...हुड्रेड, नाइनटीनाइन, नाइनटीएट, नाइनटीसेविन। जाने फिर कैसे नाइनटीनाइन...फिर कोई हँसता है—फाइन...।[2]" इन पंक्तियों का निश्चित अर्थ है, जो यथार्थ भी है। रात मे नारी-शरीर खोजनेवाला अकेला पुरुष जब नींद भी नही बुला पाता है तब यही बेबसी होती है। कहानीकार ने कथात मे इसको पूरी तरह स्पष्ट कर दिया है। इस कहानी मे मानसिक प्रस्तुतीकरण के कारण ही प्रलापीय शिल्प की रचना हो जाती है। कथा-नायक को कभी जमुहाई से आराम देने का खयाल आता है तो कभी बुखार की गरमी उतरने का बोध होता है और कभी छींक से भी परिणाम-प्राप्ति का स्मरण हो जाता है। और फिर "उफ! चार बज गये। यहाँ गजर भी लगती है। शायद थाने में...हाँ, थाना कही पास ही है..। हो...गा।" अब सोकर ही रहूँगा। अपने से बोला हूँ—स्टॉप।—

अब कोई बात नही सोचनी।...
न—ही। कोई गिनती-विनती नही।...
नही, कोई प्रार्थना नही भाई।...
नहीं—नहीं—नहीं—नहीं...
तुम पाँच बार नही बोले हो।...
तो उससे क्या हो गया, मैं सौ बार बोल सकता हूँ..."[3]

---

१. 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ४१५।
२. 'कहानी', जून १९६८, पृष्ठ ३५।
३. वही, पृष्ठ ३५।

—ये सब आन्तर एकालाप के ही तो उदाहरण हैं, जिसके कथ्य की एकमात्र सार्थकता अन्ततः अनुष्टुप की तरह फूटी इस प्रार्थना में है—"हे ईश्वर, किसी भी शर्त पर मुझे नींद आ जाए। लेकिन केवल एक याचना है कि सवेरे जब जगूं तो मुझे कुछ याद न रहे। केवल यह मालूम हो कि मुझे स्वप्नदोष हो गया है...।"[1]

इस विचारोत्तेजक प्रलापीय शिल्प का 'नयी कहानी' में निरन्तर प्रयोग हो रहा है।

स्वैरकल्पना (फैंटेसी) के शिल्प का प्रयोग

स्वैरकल्पना के शिल्प-प्रयोग का मूल रूप ऐन्द्रजालिक या जादुई दुनिया के कथा-शिल्प से मिलता-जुलता है। स्वैरकल्पना में असम्भाव्य सम्भावनाओं को प्राथमिकता दी जाती है। यह अरस्तू की सम्भाव्य असम्भावनाओं का खंडन करती है। 'नयी कहानी' में इस शिल्प का उद्देश्य सदोष मानव तथा उसके द्वारा रचे जा रहे दोषयुक्त संसार- दोनों के प्रति नया दृष्टिकोण उपस्थित करना है।

स्वैरकल्पना का उत्पादक मनुष्य-मात्र का ऐसा बोध है, जिसमें सहसा यह पता चलता है कि वह पूर्णतः परिवर्तित हो गया है अथवा एक विचित्र परिस्थिति में फँस गया है। नामवर सिंह के शब्दों में "ये कहानियाँ एक ख्वाब सा जगाती हैं और दूसरे ख्वाब में आँखें खोल देती हैं, बल्कि यह एक ऐसा ख्वाब है, जिससे जागने के बाद हर चीज ख्वाब मालूम होती है। एक तरह का पागलपन है यह! दुनिया को बदलने के लिए लेखक अपनी कहानी की दुनिया बदल देता है। दुनिया के नियमों को तोड़ने के लिए लेखक अपनी दुनिया को दूसरे नियमों से बनाता है। जादू की छड़ी से छूकर हर चीज को वह और-का-और बना देता है। अजब नहीं, जो यह जादू की छड़ी पाठक को भी छू जाए। बचपन में इस जादू की छड़ी का असर गहरा होता था लेकिन अब इस असर को नकारना भी बचपना होगा।"[2] वस्तुतः दुनिया को बदल देने के लिए कहानीकार द्वारा कहानी के संसार-परिवर्त्तन का तथ्य ही स्वैरकल्पना के शिल्प की महत्त्वपूर्ण सोद्देश्यता और विशिष्ट उपयोगिता है। कच्छपधर्मी मनुष्य रोज-रोज अपने भीतर ही पैठना, और

---

१. 'कहानी', जून १९६८, पृष्ठ ३७।

२. डॉ० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ९९।

अपनी सीमा में ही संकुचित रहना जानता जाता है। वह मनुष्य क्या हुआ, घोंघा बन गया। स्वैरकल्पना का शिल्प समय के इस सिमटते दायरे को तोड़ने में और मनुष्य को इस सकुचन से बाहर निकालने में कामयाबी देने वाला शिल्प है।

साम्प्रतिक जीवन-बोध को देखते हुए प्रतीकात्मक शिल्प-प्रयोग की अपेक्षा स्वैरकल्पनात्मक शिल्प-प्रयोग आज की कहानी के लिए अत्यधिक संभाव्य है। यह प्रयोग समकालीन कहानीकार के अन्तर्विरोध तथा उसकी दुहरी नकारात्मक स्थिति को एक विशेष स्तर पर तथ्यवादी नुस्खों से बिलगाता है। यही नया कहानीकार ऐन्द्रजालिक वास्तविकता के भीतर कहानियों का सर्जन करता है और कहानी में ही कहानी को कहीं-न-कहीं तोड़ता है, क्योंकि वह किसी-न-किसी स्तर पर अतिरंजना करता ही है। स्वैरकल्पना का शिल्प संवेदना से अधिक जुड़ा है। यह संवेदना ही मानवीय वास्तविकता को अस्तित्ववादी अन्तर्विरोधों में देखती हुई कहानी को नया बनाती है। तब ऐसा लगता है कि जिस भयावह संसार का निर्माण हो रहा है उसमें जासूसी उपन्यासों, कुछ चलचित्रों के टुकड़ों और कल्पना की कतरनों का हाथ है। ऐसी कहानी अनुभव की दुहरी-तिहरी प्रक्रियाओं से विकसित होती चलती है। मुक्तिबोध ने पूर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठापना के आग्रह से लिखा था : "मैं यह चाहता हूँ कि साहित्य में मानव की पूर्ण मूर्ति (वह फिर जैसी भी हो) स्थापित की जाए। तभी हम अपनी झलक उसमें देख सकेंगे। अगर 'नयी कहानी' (या कोई भी कहानी) वैसा नहीं करती तो मेरे ख्याल से यह उचित नहीं है।[1]" स्वैरकल्पनात्मक शिल्प-प्रयोग मानव की पूर्ण मूर्ति प्रस्तुत करने में सहायक होता है। इसी प्रतिष्ठापन-प्रयत्न में यह अपने को ऐन्द्रजालिक किस्सा-कहानियों से विलग करता है। पूर्णता की प्राप्ति के लिए स्वैरकल्पना की भावधाराओं में एकाधिक नये-पुराने अनुभव और अपने-पराये भावों को प्रवाहित करना पड़ता है। इससे स्वैरकल्पनात्मक लोक की अर्थवत्ता बढ़ती है और स्वैरकल्पना नयी दृश्यभूमिका (पर्सपेक्टिव) पा लेती है। फिर तो "इस 'पर्सपेक्टिव' से संयुक्त होकर फैंटेसी एक तेजोवलय में चमकने लगती है। फैंटेसी पूर्णरूप से सार्वजनीन हो जाती है।"[2]

काफ़्का की 'मेटामार्फोसिस' कहानी स्वैरकल्पनात्मक शिल्प का सटीक

---

१. गजानन माधव मुक्तिबोध : 'एक साहित्यिक की डायरी', पृष्ठ १०६।
२. वही, पृष्ठ २६।

उदाहरण है। औचक एक सुबह जब एक आदमी सोकर उठता है तब अपने-आपको भुनगे के रूप मे बदल गया देखता है। हम इस कहानी में व्यंग्य ग्रहण करते हुए पूरी कहानी को यथार्थवादी भाषा में रूपान्तरित कर देते हैं। 'मेटामार्फोसिस' उस संसार की कहानी है, जो व्यावहारिक दुनिया के नियम-कानून से परे है। उसकी नियमावली अपनी है। इतना होते हुए भी उसकी दुनिया हमारी दुनिया से अधिक वास्तविक है। अपनी व्यावहारिक दुनिया के भीतर निहित जब उस असली दुनिया को कथाकार सहसा देखकर व्यक्त कर देता है तब हम अपरिचिति-वश उसे स्वैरकल्पनात्मक कह बैठते हैं।

हिन्दी की 'पुरानी कहानी' में सुदर्शन की 'एथेंस का सत्यार्थी', जयशंकर प्रसाद की 'स्वर्ग के खंडहर में', जैनेन्द्र की 'नीलम देश की राजकन्या', जैसी कहानियाँ स्वैरकल्पनात्मक शिल्प-प्रयोग के दृष्टान्त हैं। मुक्तिबोध की 'क्लाड-ईथरली' और 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' कहानियो में भी स्वैरकल्पना का अत्यन्त सार्थ और सफल प्रयोग हुआ है। 'क्लाड ईथरली' के नायक स्वयमुक्त अनुभव है : 'मुझे शक हुआ कि मैं किसी फंटेसी में रह रहा हूँ।'[1] इस स्वैरकल्पना से व्यंग्य के स्वर उभरते हैं—'भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमरीका है...हिन्दुस्तान भी अमरीका ही है।'[2] यहाँ कहानीकार की कल्पनाएँ—एक रहस्यमय अहाता, एक पागल जन की स्फटिक-सी तेज आँखें, एक विचित्र और आतंकभरा रहस्योद्घाटक गुप्तचर और स्वप्नलोक का अज्ञात शहर हैं। 'ब्रह्म-राक्षस का शिष्य' कला-सर्जक की विदृति-विकलता की सर्वार्थ-गर्भित कथा है, जैसे चेखव की 'घोड़ा' कहानी मानवीय वेदनाभिव्यक्ति की सर्वोत्कृष्ट कहानी है। कहानी में प्रारम्भ से ही स्वैरकाल्पनिकता प्रकट होने लगती है—"जब वह चिड़ियों के घोसलों और बर्रों के छत्तों भरे सूने-ऊँचे सिंहद्वार के बाहर निकला तो एकाएक राह से गुजरते हुए लोग 'भूत भूत' कहकर भाग खड़े हुए।"[3] सचमुच अभिव्यक्ति की विकलता से पीड़ित कलाकार का सारा जीवन एक भुतहे मकान की तरह है और स्वय कलाकार ब्रह्मराक्षस की तरह। मुक्तिबोध की कहानी का ब्रह्मराक्षस अपनी वास्तविकता में एक कलाकार ही है, जिसे सिर्फ अभिव्यक्ति मुक्त कर सकती है। निश्चयतः मुक्तिबोध की स्वैर-कल्पनात्मक कहानियाँ सुदर्शन, प्रसाद और जैनेन्द्र की तत्कोटिक कहानियों से

---

१. गजानन माधव मुक्तिबोध : 'काठ का सपना', पृष्ठ ६।
२. वही, पृष्ठ १०-११।
३. वही, पृष्ठ ५६।

श्रेष्ठ हैं। ध्यातव्य है कि पुरानी कहानियों में यह शिल्प जहाँ विशेषतः व्यक्ति-शिल्प बन कर उभरा है वहाँ 'नयी कहानी' में विशेषतः कथा-शिल्प बन कर।

'नयी कहानी' में स्वैरकल्पनात्मक शिल्प का प्रयोग दो रूपों में हुआ है। प्रथमतः कथा की समग्रता में और द्वितीयतः कथा के विशेष अंश में। पहले प्रकार की स्वैरकल्पना की कहानियों में कमलेश्वर की 'अपने देश के लोग', राजेन्द्र यादव की 'सिंहवाहिनी', श्रीकान्त वर्मा की 'उसका क्रॉस', गंगा प्रसाद विमल की 'प्रेत', चन्द्रकान्त बक्शी की 'रोमियो और जूलियट', हिमांशु जोशी की 'जो घटित हुआ है' जैसी कहानियाँ महत्त्वपूर्ण हैं तो दूसरे प्रकार की आंशिक स्वैरकल्पनात्मक कहानियों में श्रीराम वर्मा की 'अँधेरे में सहिजन' जैसी कहानी।

कमलेश्वर की 'अपने देश के लोग' एक लघु स्वैरकल्पना है, जिसमें व्यंग्य के सर्वातिशायी तीखे स्वर व्यक्त किये गये हैं। इस कहानी में अपने देश के भीतर ही एक दूसरे प्रकार की दुनिया है। कहानी की पूरी पृष्ठभूमि चिकित्सालय की है। विभिन्न अवस्था के विभिन्न रोग वाले विभिन्न व्यक्ति—दीनदयाल, सदानन्द, इब्राहिम, एस० सुब्रमण्यम्, सुब्रतो घोष, सुबोध पकड़ासी-अपनी-अपनी गरदनों में पट्टे लगाये इकट्ठे हैं। उस दुनिया में विचित्र प्रकार की शल्य-चिकित्सा की जा रही है। वहाँ जन-सम्पर्क-अधिकारी भी बटन दाबने से बोलता और बटन दाबते ही चुप हो जाता है। वह सूचना प्रसारित करता है—"भारत के जनतंत्र को स्थापित करने के लिए ऐसे नये आदमियों की ज़रूरत है, जो सिर्फ़ मन लगाकर अपना काम करें...जो सपने न देखा करे, अपनी बुद्धि का ज्यादा इस्तेमाल न करे, खाना-कपड़ा और रहने की जगह न माँगे, बढ़ती हुई कीमतों से परेशान और नाराज़ न हो, प्रदर्शनों और आन्दोलनों में भाग न लें, क्योंकि इससे प्रगति में बाधा पड़ती है। यह विभाग कर्मचारियों के सुधार के लिए खोला गया है ताकि वे मन लगाकर सिर्फ़ काम करें।"[1]

इस कहानी में अधिकाधिक वेतन माँगने वाले और सलाम नहीं ठोकने वाले चालीस वर्षीय दीनदयाल की आत्मा, खोपड़ी, पुतलियों और पेट तक की शल्य-चिकित्सा (ऑपरेशन) होती है। उसकी खोपड़ी से एक डायरी निकलती है, जिसमें ऋण का विवरण, वेतन की बढ़ोत्तरी, बेटे को पढ़ाने के लिए भेजी गयी राशि, सहायता-कोशों में दिये गये चन्दे आदि का उल्लेख है।

---

१. कमलेश्वर : 'अपने देश के लोग', 'ज्ञानोदय', मार्च १९६५, पृष्ठ २१।

उसकी पुतलियों से निकलने वाली चित्रपट्टी (रील) में मकानों की, सुन्दर साड़ियों, कमीजों, पैन्टों, कोटों से भरी चकमक दूकानों की, होटलों की, राशनों की, बच्चों की मुसकुराहटों की, उनकी पोशाकों, दवाओं, फलों, मंदिरों आदि तीर्थस्थानों की छवियाँ मिलती हैं। पेट चीरते ही धुएँ का गुबार निकलता है, बीड़ी के टुकड़े और राशनकार्ड मिलते हैं। सीना चाक करते ही धड़कते दिल की जगह मकड़जाल नजर आता है, जिसमें एक जीवित मकड़ी मिलती है। विदेशी विशेषज्ञों से भरपूर चिकित्सकों के उस समुदाय में एक चिकित्सक दीनदयाल की खोपड़ी में सचिकाओं (फाइलों) का चुना हुआ गट्ठर भर कर कटोरेदार हड्डी चढ़ा देता है, पदाधिकारियों के चित्र लेकर आँखों के कोटर भरता और पुतलियाँ जड़ देता है, पेट में मँहगाई-भत्ता बढ़ने और मूल्यह्रास होने की कतरनें कटिका (आलपिन) से नत्थी कर डाल देता है, पेट की सिलाई कर सीने में दिल की जगह पत्थर का टुकड़ा डाल टाँके लगा देता है और मुँह खोलकर परछाईंनुमा आत्मा को भीतर घुसेड़ देता है; साथ ही ज़बान में भी दो टाँके मार देता है। वह डॉक्टर उसकी पीठ थपथपा कर उसे मेज से उठाता और बैठा देता है। "इस शल्य-चिकित्सा के बाद दीनदयाल चुस्ती से खड़ा हो गया। उसने झुक-झुक कर अपने भद्र अफसरों को सलाम किया और बाहर निकल गया। उसके जाते ही क्लर्क ने आवाज़ लगायी—सदानन्द... उम्र २५ साल...मर्ज...।"[1] इस प्रकार स्वैरकल्पना के शिल्प में रचित यह कहानी अपने देश की समग्र प्रशासकीय व्यवस्था पर करारा तमाचा मारती है। इस स्वैरकल्पनात्मक शिल्प-प्रयोग की बड़ी विशेषता यह है कि अब तक जहाँ स्वैरकल्पना के निर्माण में धार्मिक अथवा लौकिक मिथकों का सहारा लिया जाता था, कमलेश्वर ने वहाँ यांत्रिक-वैज्ञानिक मिथक का व्यवहार किया है।

'सिंहवाहिनी' राजेन्द्र यादव की स्वैरकल्पनात्मक कहानी है। इस कहानी के पहले अपने वक्तव्य में उन्होंने लिखा है : "जब बाहरी और भीतरी किसी भी यथार्थ को अपना विवेक और मन समर्थन न देता हो और सब-कुछ बकवास या ऐब्सर्ड लगता हो उस समय दो ही विकल्प हैं कि या तो भोले बने रह कर हम परम गंभीरता से उसमें रस लेते रहें, उसे तरह-तरह के अर्थ और व्याख्या देते रहें या उससे अलग हटकर उसकी खिल्ली उड़ाएँ—उसे उपहासास्पद रूप में पेश करें, खूबसूरत औरतों के मूँछें बना दें, गधे के शरीर पर आदमी का मुँह

---

१ : कमलेश्वर : 'अपने देश के लोग 'ज्ञानोदय', मार्च १९६५, पृष्ठ २४।

लगा दे, शेर को विनोबा दाढ़ी भेंट कर दें, ।"[1] 'सिंहवाहिनी' को उक्त दूसरी वैकल्पिक प्रयोजनीयता प्रदान करते हुए स्वैरकल्पना मे शिल्पित किया गया है।

यादव की 'सिंहवाहिनी' में उनकी 'अंधा शिल्पी और आँखो वाली राजकुमारी' की तरह ही एक राजकुमारी है, जिसने अपनी सहेलियों और स्वयं राजा के लाख चाहने पर भी शादी नहीं की है। आँखों वाली राजकुमारी ज्ञान की पिपासिता है तो सिंहवाहिनी बहुत विदुषी है। उसकी "एक ही इच्छा थी, ऐसा कुछ किया जाए, जो अद्भुत हो, नया हो और अभी तक किसी ने न किया हो।"[2] लोगो द्वारा बहुत पूछे जाने पर अंततः राजा से वह अपनी इच्छा प्रकट करती है—"शेर पालूँगी'''जिन्दा शेर पालूँगी।"[3]

राजकुमारी शेर पालती है—पहले जालदार घेरे मे, फिर अपने पार्श्ववर्ती कमरे मे। पहले उसकी बदबू उसे सहन नही होती। उसका कच्चा मास खाना उसे प्रिय नही लगता। हाँ, उसके शरीर की बिजली-सी लचक उसे भाती है और कुछ अजूबा करने के चक्कर मे वह उसका विश्वास बनाये रखना चाहती है। आखिर उसके द्वारा रोज देखे जाने के कारण सिंह उससे घुलमिल जाता है और राजकुमारी उसे बगल के कमरे मे ले आती है। इस प्रक्रिया मे राजकुमारी को अपने-आप को मारना पडता है। उसे अपने को शेर के अनुकूल बनाना पड़ता है—"मैं जानती थी कि इसके लिए अपनी रुचि, सस्कार और अहं सभी को मारना होगा, अपने को उसके ही हिसाब से ढालना होगा।'''लेकिन मैंने तय कर लिया था, मैं करूँगी''' ।"[4] और राजकुमारी को काफी सिद्धि-प्रसिद्धि मिलती है। पर दूसरी ओर उसके कमरे के परदे अब रंगीन नही रह जाते। कीमती गलीचे, झाड़-फानूस और फूल-पौधों पर धूल जम जाती है। वह स्वय जब चमड़े के पट्टो मे जकड़ी सोती है तब उसका जोड-जोड दुखने लगता है। जो राजकुमारी एक दिन उस शेर को अपने पर आश्रित समझती थी, उसकी जरूरतो पर मिनट-मिनट पर ध्यान देती थी वही धीरे-धीरे शेर से विमुख होने लगती है। उसका नशा उतरने लगता है। वह बनवास से लौटना चाहने वाले व्यक्ति की तरह अपनी दुनिया मे वापस आना चाहती है। उसके इस प्रकार विमुख होने से शेर उस

---

१. राजेन्द्र यादव : 'सिंहवाहिनी', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ३६५।
२. वही, पृष्ठ ३६७।
३ वही, पृष्ठ ३६७।
४. वही, पृष्ठ ३७३।

बिगड़ना शुरु करता है। कभी वह पहरेदार को घायल करता है तो कभी वह किसी की जान ले लेता है। एक दिन राजकुमारी अपने प्रिय शेर को खूब पीटती है, शिकारी द्वारा उसके दाँत निकलवा लेती है तथा पंजों के नाखून कतरवा देती है। शेर कुत्ते से भी गया-बीता हो जाता है। वह आर्तस्वर में दहाड़ता रहता है। राजकुमारी शेर को साधारण प्राणी नहीं बना पाती है। उसे शेर के साथ अपने-आप का जोड़ा जाना बुरे ढंग से लज्जित करने लगता है और एक दिन वह शेर को गोली मार देती है। वह अपनी सहेली को बुलाकर वही सब कहती है जो एक दिन उसकी सहेली ने उससे कहा था—"शेर पर सवार आदमी से अधिक मजबूर कोई दूसरा नहीं होता। न वह जीता है और न मरता। इस शेर को देखने से पहले ही जब किसी शेर को पालने की बात मेरे दिमाग में आयी थी, सच पूछो तो मैं तभी उस पर सवार हो गयी थी और वही मुझे भटका रहा था।[1]" कहानी की ये अर्थमयी पंक्तियाँ हैं। सहेली ने यह भी बताया था कि सिंह एक दिन अपने अयाल पकड़े व्यक्ति को अन्ततः परास्त कर ही देता है। पर यहाँ राजकुमारी ने ही सिंह को समाप्त कर दिया। अब कुशल कारीगरों द्वारा शेर की खाल में भुस भरवाकर उस राजकुमारी के खूबसूरत कमरे के बीचोबीच खड़ा किया गया है। दर्शकों को यह मृत नहीं प्रतीत होता है। जब कोई उसके विषय में पूछता है तब राजकुमारी सविस्तर सब-कुछ बताती है। अब तो वह "दर्शकों, अतिथियों से छुट्टी पाकर अपनी जिन्दगी में लौट आयी है।[2]"

श्रीकांत वर्मा की 'उसका क्रॉस' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है, जिसकी दुनिया इस दुनिया में रहते हुए भी दूसरी हो गयी है। उसे कमरे से बाहर हर-कहीं ऐसा लगता है कि उसे मारा जा रहा है। कभी उस पर टमाटर और अंडों की बौछार होती है तो कभी उसको पकड़ कर बहुत-बहुत पीटा जाता है। उसे रस्सी से बाँधा जा कर निर्ममता से मारा जाता है। इन बातों के होते रहने की अवधि में जब कभी वह इनका उल्लेख दूसरों से करता है तब लोगों को उसका विश्वास नहीं होता—"वहाँ···उसने सड़क की ओर उँगली से इशारा करते हुए···वे सब"। उन दोनों ने आश्चर्य से सड़क की ओर देखा। मगर वहाँ कुछ न था। भीड़ केवल गुजर रही थी। दूकानदार ने झल्लाकर कहा—'मगर वहाँ तो कुछ भी नहीं।' उसने खुली-खुली आँखों से उन दोनों

---

१. राजेन्द्र यादव 'सिंहवाहिनी', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ३८०।

२. वही, पृष्ठ ३८१।

को देखा। वह सोच नहीं पा रहा था कि वे यह समझ क्यों नहीं रहे हैं कि वे सब उसे टमाटर और अंडों से पीट रहे हैं।"[1] भिगोयी हुई बेंत की मार खाने के बाद जब वह थाना पहुँचता है तब वहाँ भी उसकी बात पर विश्वास नहीं किया जाता। थानेदार उससे सबूत माँगता है, गवाह पूछता है और जब वह इन सब को प्रस्तुत करने मे असमर्थ होता है तब उसे चिकित्सकीय परीक्षा (मेडिकल एक्ज़ामिनेशन) के लिए भेज दिया जाता है। चिकित्सक उसे अपने कमरे में बिल्कुल नगा कर उसकी जाँच करता है। वह चिकित्सक को अपना एक-एक अंग छूकर दिखाते हुए अपनी पीडा बयान कर देना चाहता है। पर चिकित्सक उसे चुप रहने को कहता है। अपने प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मे चिकित्सक बताता है कि शरीर पर चोट का कोई निशान नहीं है। वह थाना से निराश मन निकलता है कि उस पर फिर टमाटरों और सड़े अडों की बौछार होने लगती है। वह चौतरफा बौछार से हार कर फिर भागने लगता है। कहानी समाप्त हो जाती है। इसमे आधुनिक जीवन-प्रणाली और व्यवस्था पर व्यंग्य है। भीड़ किसी की पीडा नही देखती और आदमी अपने मे सिमटा अजनबी बना रहता है—"घबडा कर उसने चिल्लाना शुरू किया—'बचाओ'। मगर उसने देखा कि कोई भी उसकी पुकार नही सुन रहा है। सब लोग बिना उस पर ध्यान दिये अपने रास्ते आ-जा रहे थे।"[2] प्रशासनिक और राजनीतिक व्यवस्था की मार से व्यक्ति तबाह है। और कानून है, जो वास्तव मे किसी त्रस्त व्यक्ति की सहायता नही कर सकता, क्योकि उसे साक्ष्य और प्रमाण चाहिए। बिना इसके वादी की कोई सुनवाई नही हो सकती। इस कहानी के कथानायक ने ठीक ही सब को भूठा, मक्कार और अधा कहा है। अन्तिम व्यंग्य आस्तिकता की भक्ति-शक्ति पर भी है—"पिटते हुए एक बार उसने आकाश की ओर देखा और बुदबदाया, दया करो। मगर उसे लगा, सबसे ज्यादा अडो और टमाटरो की बौछार तो आकाश से ही हो रही है। हार कर वह फिर भागने लगा।"[3]

दूधनाथ सिंह की 'कोरस' कहानी का प्रारम्भ कुछ लोगो द्वारा एक लम्बी छाया का पीछा करने से होता है। इस कहानी में चाँदनी रात में कुत्तो और सुअरों के बीच बसी बच्चो की दुनिया है, झोपड़ियों के बाहर मच पर प्रवचन देता देवता है, जिसको मच से घसीट कर लाया जाता है, फिर उसका

---

१. श्रीकांत वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ४०।
२. वही, पृष्ठ ४६।
३. वही, पृष्ठ ४७।

सिर बूटों से कुचल दिया जाता है। कुचलने पर मालूम होता है कि उसके दिमाग के सारे पुर्जे विदेशों में बने हुए हैं, जिनमें जंग लग चुकी है। कुचलने वाले लोग नेता के साथ-साथ यह माल पाकर बहुत खुश होते हैं। इस देवता के दिमागी पुर्जों की जंग छुड़ाने की कोशिश की जाती है। 'कोरस' में नर-नारियों द्वारा उनकी आँखें खुद निकाल कर हथेली पर रखवा दी जाती हैं। इनको देखकर नेता के साथ वाला पूरा गिरोह चकित रह जाता है। इस कहानी में स्वैरकल्पना वर्णन के अतिरिक्त संवाद में भी है—"तुमलोग अपने बच्चों की अँतड़ियों का क्या करते हो?"

"हमारे पास बच्चे नहीं हैं।"

"फिर वह सुअरबाड़े में कौन बिलबिला रहे हैं?"

"सुअरें ब्या रही होंगी।"

"क्या तुम्हें आदमी और सुअरों में कोई फर्क नहीं जान पड़ता?"

"तुम्हारे लिए क्या फ़र्क पड़ता है?"

"तुमलोगों के बच्चे सुअरों के पेट से पैदा होते हैं?"

"तुमलोग तो यही समझते हो।[1]"

वर्णन तो स्वैरकल्पनात्मक बोध देने के लिए आत्यतिक रूप में समर्थ है ही—"रात काफी गहरा गयी थी और रास्ते के पुराने खंडहरों में बूढ़े उल्लुओं की ऊ—ऊ—उफ् शुरू हो गयी थी। उन्होंने काफी कोशिशें की, लेकिन नाकाम रहे। सामने नदी थी और उसका चौड़ा पाट अँधेरे में भूरे संगमरमर की तरह जमा था। वह लम्बी छाया उन्हें धता बता कर उस संगमरमर पर पाँव रखती उस पार निकल गयी थी।[2]" कहानी में जिस व्यंग्य को स्वैरकल्पनात्मक शिल्प-प्रयोग से उभारा गया है उसका अनुभव-बोध अपने गहरे अहसास के साथ कथांत की इन पंक्तियों से हो जाता है—"सुबह हो गयी थी। मैंने देखा, मेरी गरदन एक भयावने फीलपाँव के नीचे दबी हुई थी, जिसकी लम्बी छाया दूर-दूर तक पसरी हुई थी।"[3] पूरी कहानी में स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के भारतवर्ष की कष्टप्रद और आतंकित करने वाली राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थितियों का उल्लेख है। ये स्थितियाँ भयावने फीलपाँव की तरह जनता के ऊपर सवार हैं। इनका प्रभाव बहुत दूर-दूर तक

---

१. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ११०।
२. वही, पृष्ठ ११३।
३. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ११६।

है। सचमुच ये अजदहे के मानिन्द हो गयी स्थितियाँ हैं। 'फीलपाँव' का प्रयोग कर देश को हुए इस महारोग के अर्थ को भी उजागर किया है। दाबने-चापने वाली यह दुर्वह स्थिति कुरूप तो है ही, रोग भी है, जिसका शल्य-चिकित्सा जैसा कोई इलाज भी नही। कहानी का आरम्भिक वाक्य— "वे सभी एक लम्बी छाया का पीछा कर रहे थे। उन्हे कई वर्ष हो गये थे। उन्होने वर्षों को बड़े जतन से सचित कर रखा था⋯"[1] जैसे आजादी मिलने के बाद के व्यापक समय-प्रसार को रेखाकित करता है और फीलपाँवी दबोच तथा छाया के विरोध मे जगनेवाली शक्तियो को चिन्ति करते हुए राजनीतिक व्यग्य को खूँख्वार बना देता है।

गगा प्रसाद विमल की कहानी 'प्रेत' मे कौतूहल, रहस्य और आतक है। कहानी भूत-प्रेत की नही होकर स्वैरकल्पनात्मक है। 'प्रेत' का नायक मुकुन्दीलाल है। एक सर्द रात में जब वह हमेशा की तरह घर लौटता है तब उसे लगता है कि कही कोई चीख रहा है। उसके रुकने के साथ ही कोई उसकी ओर दौडता, उलटा भागता और जोरो से 'भूत, भूत' चिल्ला उठता है। वह एक औरत होती है। इस घटना के बाद एक दिन उसे एक खत मिलता है, कि तू प्रेत है। वह उस चिट्ठी को नष्ट कर देता है, पर डाकिया दुबारा वही चिट्ठी उसकी पत्नी को दे जाता है। चिट्ठी पर वर्षो पहले की तारीख होती है—बीस साल पहले की डाक-मुहर। मुकुन्दीलाल के दफ्तर मे भी लोग उसको कहते है कि वह भूत की तरह काम करता है। ऐसे वाक्यो के बाद ही मुकुन्दीलाल की वह यात्रा शुरू होती है, जिसमे वह अपने-आप को मुकुन्दीलाल सिद्ध करना चाहता है। इस सदर्भ मे वह भूतो के विषय में भी जानकारी करता है, पुनर्जन्म की कथाएँ पढता है और यह भी जान लेता है कि भूत की पहचान उसके उलटे पाँव से होती है और भूतो की तस्वीरें नही आती। उसे याद आता कि उसकी शादी की तसवीर मे भी उसकी पत्नी की तसवीर तो ठीक थी, पर उसकी तसवीर साफ नही आ सकी थी। अन्त मे वह गोपू बाबू का इन्तजार करता है, जो सही मुकुन्दीलाल के निकटस्थ थे और एकमात्र ऐसे आदमी थे, जो शायद

आपलोग भी यह तलाश कर लीजिए कि आपके पाँचों मे छह उँगलियाँ हैं—इस शक से मुक्त होकर कि आप प्रेत-योनि से नही आये है ।"[1]

चन्द्रकान्त बक्षी की 'रोमियो और जूलियट और...' कल्पना मे आधुनिक वातावरण में रोमियो और जूलियट को चित्रित कर कहानी को नयी अर्थवत्ता दी गयी है । एक चिकित्सक के कमरे से आज के वातावरण में रोमियो और जूलियट दोनो के निकलने और उनमें से एक के अपने सम्भाव्य रोग 'टिटेनस' और दूसरे के 'सायनस' की चर्चा करने के कारण कहानी स्वैरकल्पनात्मक हो गयी है । इस कहानी में रोमियो और जूलियट दोनो ही विवाहित हैं, दोनो को बच्चे भी हैं । यहाँ दोनो के बीच प्रेमातिशायी भावना का अभाव है और दोनो ही के सम्बन्ध नितान्त औपचारिक तथा व्यावहारिक हैं । कहानी के अन्तिमांश से भी स्वैरकल्पना का शिल्प-प्रयोग स्पष्ट हो पड़ता है—"ऑफिसर्स क्वार्टर्स की बजाय उसके पैर अनायास डॉक्टर के क्लीनिक की ओर चल पड़े । याद आया तब वह रुक गया और एक ठहाका मार कर हँस पड़ा ।"[2]

हिमांशु जोशी की कहानी 'जो घटित हुआ है' नौ अध्यायों में विभक्त है । इसमें समकालीन भारतीय जीवन की सारी विसंगतियाँ स्वैरकल्पनात्मक शिल्प मे उपस्थित हैं । इस कहानी का मूल स्वर समकालीन भारतीय राजनीति की लफ्फाजी को नग्न करना है । इसमे कठोर व्यंग्य-भाव है और परोक्षत: आक्रोश का भी ध्वनन है । व्यंग्य के लिए इतिहास के तथ्यों का विपरीत प्रस्तुतीकरण इस कहानी का स्वैरकल्पनात्मक वैशिष्ट्य है..."मुझे अबतक भली-भाँति याद है—पहले और दूसरे—दोनो महायुद्धो मे जीत हिटलर की ही हुई थी । जापान ने दुनिया में सबसे पहले परमाणु बम बनाया था, जिसका प्रयोग लदन और वाशिंगटन में किया था—जिसमे एक करोड़ गरीब गोरे मरे थे । और इतिहास में पहली बार पन्द्रह अगस्त सन् १९४७ को भारत गुलाम बना था, जिसे रूस, अमेरिका, ब्रिटेन, चीन और पाकिस्तान—सबने मिलकर बराबर-बराबर बाँट लिया था ।..."[3] यह स्वैरकल्पनात्मक कथन भारतीय और वैश्विक—विशिष्ट और सामान्य—दोनो प्रकार के जीवन में आयी विसंगति पर गहरा व्यंग्य करता है । कुल मिलाकर आरंभ से अन्त तक जीवन को आक्रान्त कर लेने वाली भयावहता प्रच्छायित है ।

---

१. गंगा प्रसाद विमल : 'प्रेत', 'धर्मयुग', ३१ अगस्त '६६, पृष्ठ १३ ।
२. चन्द्रकान्त बक्षी : 'रोमियो और जूलियट और ..' 'धर्मयुग', १९ अक्तूबर, '६६
३. 'विकल्प', नवम्बर १९६६, पृष्ठ ४८६ ।

अतः स्वैरकल्पना के शिल्प-प्रयोग का उदाहरण श्रीराम वर्मा की 'अँधेरे में सहिजन' कहानी है। कहानी के अन्यपुरुष नायक 'वह' की स्वप्नचित्रात्मकता आश्चर्यपरक है—"उसने देखा : वह कुछ लोगों को छोड़ने आया है। लोग गर्मियाँ बिताने पहाड़ जा रहे हैं। डिब्बे के उस पार इंजन की लाल आग जलती दीख रही है। वह खटमलों को, होटलवाले को, चायवाले को, सड़कों को, विश्वविद्यालय को, पहाड़ जाते लोगों को, भीड़ और ट्रेनों सहित पूरे स्टेशन को और उस 'सड़ी व्यवस्था' को उस आग में एक-एक कर झोंक रहा है और अंत में रोता हुआ बाथरूम में सील मछली के ऊपर बैठा नंगा नहा रहा है—वह उसमें बह रहा है और उस गर्म पानी में पत्थर तैर रहे हैं, एक-एक पत्थर को वह उठाकर फेंकता है और वे फिर पानी में छपाक्-छपाक् गिर रहे हैं। नीचे डूबे हुए पहाड़ हैं, मरी हुई सील है।"[1] इस प्रकार 'अँधेरे में सहिजन' के नायक 'वह' को कहानी में स्तर-स्तर पर नियोजित सांकेतिकता के अतिरिक्त स्वैरकल्पना भी गहरी अर्थवत्ता तथा सार्थकता देती है। साथ ही 'वह' के मन की अतृप्त, भटकती इच्छा, उसका आक्रोशपूर्ण विद्रोह, उसका पश्चात्ताप, राष्ट्रीय व्यवस्था की दुरुपयोगी अव्यवस्था—सब-कुछ को उभारकर प्रस्तुत करने वाला उक्त स्वप्न-चित्र अत्यन्त प्रभविष्णु बन जाता है।

वस्तुतः आज की युगीन विसंगति को स्वरूप देने के लिए, उस पर व्यंग्य करते हुए उसे गहरे रूप में अर्थवान बनाने के लिए 'नयी कहानी' में स्वैरकल्पना के शिल्प-प्रयोग की सार्थकता है।

व्यक्तित्व के दो रूपों में प्रस्तुतीकरण के शिल्प का प्रयोग

'नयी कहानी' में एक ही व्यक्तित्व के द्विधा विभाजन का शिल्पगत प्रयोग भी हुआ है। ऐसे शिल्प के प्रमुख प्रयोक्ता रमेश बक्षी और कृष्ण बलदेव वैद हैं।

रमेश बक्षी अपने कथा-नायक के विषय में 'धर्मयुग' के 'कथा-दशक' में आत्म-कथ्य लिखते हुए द्विधा विभाजन को स्पष्ट करते हैं। उनके बड़के और छुट्टू दोनों एक ही व्यक्ति के दो रूप हैं : दो भिन्न मनःस्थितियाँ। इसीलिए दोनों जुड़वाँ हैं। बक्षी ने 'आत्मकथ्य' में विलग होती इन दो भिन्न मनःस्थितियों को अच्छी तरह अवरेखित किया है—"बड़के को देखकर सोचता हूँ *और पूछ नहीं पाता हूँ कि यह दुहरी जिन्दगी और उसके ढोने की विवशता क्या* है ? वह ब...हाँ खड़ा है : डार्क पेंट और हैंडलूम का मस्त बुशर्ट...एक

१. 'कहानी', अक्तूबर १९६६, पृष्ठ १५।

खूब दुबली ऊँचाई और चेहरे पर अनिश्चय के भाव। वही उत्तर दे सकता है, मैं तो महज नाम हूँ, उसके जीवन का एक पहलू केवल, उसके साथ जन्म लेने का संयोग-मात्र, उसकी दुहरी जिन्दगी का एक प्रतीक भर, आधुनिक मनःस्थितियों पर एक तीखा-तुर्श व्यंग्य।"[1] 'शबरी' एक व्यक्ति द्वारा ढोयी जाने वाली दुहरी जिन्दगी का सुन्दर उदाहरण है। 'शबरी' का छुट्टू 'शबरी' के बड़के का ही अचेतन है। वह अतृप्त-पिपासित व्यक्तित्व, जो नये रूप में सर्जित होकर अपनी सम्पूर्णता प्राप्त करना चाहता है। 'शबरी' के कथा-नायक का व्यक्तित्व इसी अर्थ में दुहरी जिन्दगी ढोने वाला या द्विधा विभाजित कहा जा सकता है। घर-गृहस्थी में बँधे कथा-नायक बड़के का निर्बन्ध-स्वच्छन्द रूप ही छुट्टू है। बड़के भोगा जाता हुआ वर्तमान है और छुट्टू अतीत, जिसे वर्तमान पौन:पुनिक रूप में यत्किंचित् भूल-सुधार करता हुआ पाना चाहता है।

कृष्ण बलदेव वैद का 'मेरा दुश्मन' इसी शिल्प का प्रयोग है। 'मरी हुई मछली' मे वैद ने लिखा है—'उस नर्म-सी आहट पर अपने-आपको उछलता देखकर उसे भ्रम हुआ जैसे वह दो टुकड़ो मे विभक्त हो गया हो।"[2] 'मेरा दुश्मन' में कथा-नायक जिस दूसरे आगन्तुक से वार्त्ता करता है वह कोई अन्य पुरुष न होकर उसी का दूसरा रूप है—दो टुकड़ो मे विभक्त। इसमें व्यक्ति को अन्तर्द्वन्द्व-पूर्ण ढंग से दिखाया गया है—"अब मेरे सामने दो रास्ते हैं। एक यह कि होश आने से पहले मैं उसे जान से मार डालूं। और दूसरा यह कि अपना जरूरी सामान बाँध कर तैयार हो जाऊँ और ज्यूं ही उसे होश आये, हम दोनो फिर उसी रास्ते पर चल दें, जिससे भागकर कुछ बरस पहले मैंने माला की गोद मे पनाह ली थी।"[3] इस प्रकार वैद ने "एक ही व्यक्ति के अन्दर छिपे दूसरे व्यक्ति को मूर्त रूप देकर उसका चित्रण किया है।"[4]

बटरोही की 'सहयात्री' भी व्यक्तित्व के द्विधा प्रस्तुतीकरण के शिल्प का प्रयोग है। 'सहयात्री' मे दोनो रूप कथानायक के ही हैं, एक अतीत-व्यतीत है, दूसरा वर्तमान मे बनता-सँवरता, जिसका उपयोग भविष्य मे होनेवाला है। वर्तमान व्यक्तित्व अतीत-व्यक्तित्व के प्रति उसकी निरुपयोगिता और अना-

---

१. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी' (हिन्द पाकेट बुक्स), पृष्ठ १६। साथ ही द्रष्टव्य : 'धर्मयुग' के 'एक कथा-दशक' का आत्मकथ्य, १६ फरवरी, १९६४।

२. कृष्ण बलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ ७१।

३. वही, पृष्ठ १४०।

४. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' : 'हिन्दी-कहानी : एक अन्तरंग परिचय', पृष्ठ २४४।

वश्यकता को स्पष्ट करता, अपनी अपेक्षाकृत अधिकाधिक शक्ति-सम्पन्नता सिद्ध करता है—"वे लोग तुम्हे भूल जाएँगे। इसलिए नही कि तुम्हारा कोई उपयोग नही रह जाएगा, वल्कि इसीलिए कि तुम्हारे स्थान पर तुमसे यही अधिक शक्तिमान मैं आ जाऊँगा। मेरे जीवन की वह नयी शुरुआत लोगो के सम्मुख होगी। यह शुरुआत तुमसे बिलकुल अलग नये किस्म के आदमी का समर्थन करेगी।"[1]

इस प्रयोग की विशेषता दो ससारो मे विभक्त अनुभव को, जो विभिन्न स्तरो पर एक-दूसरे को काटते और एक-दूसरे का प्रत्याख्यान करते है,उसकी पकड़ की सारी बेकसी को विशेष शिल्पगत धरातल पर चित्रित-वर्णित करने की है।

एक कथान्तर्गत कई कथा-नियोजन के शिल्प का प्रयोग

'नयी कहानी' मे एक कथा के अन्तर्गत कई कथाओ के नियोजन का शिल्प-प्रयोग भी हुआ है। इस शिल्प के प्रयोग दो रूपो मे हुए हैं। कभी-कभी समान वजन की एकाधिक कहानियाँ एक साथ नियोजित की गयी हैं, जिनके सम्मिलित रूप से एक सुनिश्चित प्रभाव उत्पन्न हुआ। यह प्रयोग चर्चित सश्लेष-शिल्प से अपनी अस्मिता मे भिन्न है। सश्लेष मे दो कथाओ की धारें किन्ही स्तरो पर एक-दूसरी को काटती तो किन्ही स्तरो पर एक-दूसरे से मिलती-जुलती चलती हैं। पर विवेच्य शिल्प की सभी कहानियाँ आदि से अन्त तक अपनी ऐकान्तिकता मे पूरी रहती है। इनका सश्लेष यदि सभव है भी तो कथात मे सबके अमूर्त प्रभाव-रूप मे ही। यही कहानी की सोद्देश्यता को बल मिलता है। दूसरे रूप मे शिल्प-प्रयोग मे एक पूरी कहानी मे कई छोटी-छोटी कहानियो को सयोजित किया जाता है। इससे पूरी कहानी का उद्देश्य सार्थ होता है, अर्थ को तीव्रता और प्रखरता मिलती है।

प्रथमकोटिक शिल्प-प्रयोग के उदाहरण कमलेश्वर की 'एक थी विमला' और रमेश बक्षी की 'अलग-अलग कोण' जैसी कहानियाँ हैं। 'एक थी विमला' मे चार अलग-अलग मकानो की कहानियाँ है। पहले मकान की कहानी विमला की है, दूसरे मकान की कहानी कुन्ती की, तीसरे मकान की कहानी लज्जा की और चौथे मकान की कहानी सुनीता की। हर कहानी की समाप्ति एक अन्दाज से की गयी है। अपनी कहानी के अन्त मे कहानीकार विमला को सुशील और समझदार लडकी कहता है, कुन्ती के खुशनुमा (?) दिन के

---

१. 'विश्लव', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ३४८।

पूरी तरह स्पष्ट ही कर दिया है। तीनो कहानियाँ 'एक प्यार करने वाले आदमी' के चिन्तन-क्षेत्र में गड़ी हैं। इन कहानियों की 'विभिन्नि में अनुस्यूति' की यही सार्थकता है।

दूसरी कोटि की कहानी का उदाहरण गुरुबचन सिंह की 'पीटर और बूढ़ा चाँद' कहानी है। इसमें ठाकर बाबू अर्जीनवीस और पीटर की मूलकथा है, जिसके समग्र प्रभाव को दृढ़ाने के लिए बूढ़े स्मिथ, मास्टर गोविन्द और गाडगिल की कहानी लायी जाती है। ठाकर बाबू और पीटर के वातावरण को ये तीनो कहानियाँ गम्भीर रूप में अर्थवान कर देती हैं। कहानी के उपान्त में गुरुबचन सिंह ने लिखा है—"कितना अजीब है पीटर भी। एक बूढ़े बरगद के सिवा उसका अपना कोई साथी नही। उसके पत्तों की सरसराहट का अर्थ यह समझता है शायद। इसीलिए कभी अंधेरे में वह सोया-सोया, लेटा-लेटा, उठकर बैठ जाता है और कुछ फुसफुसाने लगता है। बकने लगता है, जैसे वह कोई पागल हो।"[1] ठाकर बाबू का साथ पीटर को सगापे का निश्चिन्त बोध नहीं दे सकता, क्योंकि कारखाने के सामने के बरगद के पेड़ के तले कई अर्जीनवीस आये और चले गये। उसके इस निहगपन के अहसास को तीनो लघु कथाएँ गहरा देती हैं। सचमुच बूढ़े बरगद के सिवा उसका कोई साथी नहीं। कहानी में तीनो लघु कहानियों के नियोजन का शिल्प-प्रयोग एक ओर ठाकर बाबू की अस्थायिता और पीटर की ऐकान्तिकता को इंगित करता है, दूसरी ओर पीटर के मन में गहन मृत्युबोध को भी दीर्घायित कर देता है।

आवर्त्तक शिल्प का प्रयोग

आवर्तक शिल्प सम्पूर्ण कथा में 'भरत-से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उसे जो गेह'—जैसे गूँज-अनुगूँज उठाने वाले शब्द, वाक्य-खंड या सन्दर्भ के आवर्त्तन का प्रयोग है, जिससे कहानी को विशेषता, व्यंजकता और सार्थकता प्राप्त होती है। यह मूलतः भाषा का 'जेस्चर' है, जिसे शिल्प मे आकृत किया गया है।—'जेस्चर' भाषा की भंगिमा है। वह शाब्दिक भाषा के कभी तले, कभी परे और कभी पार्श्व मे सक्रिय होता है। भाषा शब्दो से बनती है और 'जेस्चर' उसकी गतिमयता से।[2] 'नयी कहानी' के रचनाकारो ने इस भाषाई

१. 'कहानी', अक्तूबर १९६६, पृष्ठ ४८।

२. आर० पी० ब्लैकमूर : लंगुएज एज जेस्चर (जार्ज ऐलेन ऐंड अनविन लि०, लंदन, १९५४), पृष्ठ ३।

गतिमयता को कहानी की मूल संवेदना से ऐसे एकीकृत कर दिया है कि एक नया शिल्प ही साकार हो उठा है। ऐसे शिल्प-प्रयोग कमलेश्वर और शिवप्रसाद सिंह ने किये हैं। कमलेश्वर की 'नागमणि' और शिवप्रसाद सिंह की 'आदिम हथियार' कहानियाँ इस शिल्प-प्रयोग की श्रेष्ठ निदर्शनाएँ हैं।

'नागमणि' में विश्वनाथ को वर्णमाला का पाठ चील की चीख से टूटता-जुड़ता प्रतीत होता है—"अ...आ...इ...ई...क र कर...प र पर...घ र घर। राम खाना खा। राम खाना ला। अब घर चल। राम अब चल।"[१] प्रारम्भ के बाद जब कहानी अपनी त्वरा में आती है तब भी रह-रह कर कदमों से एक आवाज बहुत निकलती है "...अब घर चल...बायें, दायें बायें ...अब घर चल।"[२] थोड़ी दूर बाद फिर पैरों से वही आवाज निकलती है "...अब घर चल...।"[३] कथा के पूर्वमध्यान्त में बस एक आवाज है "...कमरों में गूँजते हुए स्वर हैं...अ...आ...इ...ई...।"[४] कहानी के उत्तरमध्यान्त में विश्वनाथ चाकर को पढ़ाता है—"करो शुरुआत...अ...आ...इ...ई।"[५] फिर तो अ...आ...इ...ई...की आवाज उभरती रही और जब कहानी अन्त करती है तब भी विश्वनाथ के मुँह से अ...आ...इ...ई की हल्की-सी आवाज निकलती है। एवंविध पूरी कहानी 'अ आ इ ई', राम 'अब चल' तथा 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' के आवर्तक शिल्प में ग्रथित है। यहाँ आवर्त्तन की प्रक्रिया प्रत्याह्वान की भी है और प्रकृत विकास की भी, जो कथा की मूल संवेदना को निखारती, सम्प्रेषणीयता और प्रभावान्विति की शर्त तक पूरी करती है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'आदिम हथियार' का आरम्भ इस प्रकार होता है—"अब ?" एक बोला।

"अब ?" सभी बोले।[६]

दो अनुच्छेदों की दूरी तय करने के बाद—"तब ?" एक बोलता।

"तब ?" सभी बोलते।[७]

---

१. धर्मयुग', १७ अगस्त १९६९, पृष्ठ १९।
२. वही, पृष्ठ १९। ३. वही, पृष्ठ १९।
४. वही, पृष्ठ २०।
५. वही, पृष्ठ २१।
६. 'धर्मयुग', १४ सितम्बर १९६९, पृष्ठ १३।
७. वही, पृष्ठ १३।

पूरी तरह स्पष्ट ही कर दिया है। तीनों कहानियाँ 'एक प्यार करने वाले आदमी' के चिन्तन-क्षेत्र में गड़ी हैं। इन कहानियों की 'विभक्ति में अनुस्मृति' की यही सार्थकता है।

दूसरी कोटि की कहानी का उदाहरण गुरुबचन सिंह की 'पीटर और बूढ़ा चाँद' कहानी है। इसमें शकर बाबू अर्डीनवोग और पीटर की मूलकथा है, जिसके समग्र प्रभाव को दृढ़ाने के लिए बूढ़े स्मिथ, मास्टर गोविन्द और गाडगिल की कहानी लायी जाती है। शकर बाबू और पीटर के वातावरण को ये तीनों कहानियाँ गम्भीर रूप में अर्थवान कर देती हैं। कहानी के उपान्त में गुरुबचन सिंह ने लिखा है—"कितना अजीब है पीटर भी। एक बूढ़े बरगद के सिवा उसका अपना कोई साथी नहीं। उसके पत्तों की सरसराहट का अर्थ वह समझता है शायद। इसीलिए कभी अँधेरे में वह सोया-सोया, लेटा-लेटा, उठकर बैठ जाता है और कुछ फुसफुसाने लगता है। बकने लगता है, जैसे वह कोई पागल हो।"[1] शकर बाबू का साथ पीटर को लगाये का निश्चिन्त बोध नहीं दे सकता, क्योंकि कारखाने के सामने के बरगद के पेड़ के तले कई अर्डीनवोग आये और चले गये। उसके इस निहगपन के अहसास को तीनों लघु कथाएँ गहरा देती हैं। सचमुच बूढ़े बरगद के सिवा उसका कोई साथी नहीं। कहानी में तीनों लघु कहानियों के नियोजन का शिल्प-प्रयोग एक ओर शकर बाबू की अस्थायिता और पीटर की ऐकांतिकता को इंगित करता है, दूसरी ओर पीटर के मन में गहन मृत्युबोध को भी दीर्घायित कर देता है।

आवर्त्तक शिल्प का प्रयोग

आवर्तक शिल्प सम्पूर्ण कथा में 'भरत-से सुत पर भी सन्देह, बुलाया तक न उसे जो गेह'–जैसे गूँज-अनुगूँज उठाने वाले शब्द, वाक्य-खंड या सन्दर्भ के आवर्त्तन का प्रयोग है, जिससे कहानी को विशेषता, व्यंजकता और सार्थकता, प्राप्त होती है। यह मूलतः भाषा का 'जेस्चर' है, जिसे शिल्प में आकृत किया गया है।—'जेस्चर' भाषा की भंगिमा है। वह शाब्दिक भाषा के कभी तले, कभी परे और कभी पार्श्व में सक्रिय होता है। भाषा शब्दों से बनती है और 'जेस्चर' उसकी गतिमयता से।[2] 'नयी कहानी' के रचनाकारों ने इस भाषाई

१. 'कहानी', अक्तूबर १९६६, पृष्ठ ४८।

२. आर० पी० ब्लैकमूर : लैंगुएज एज जेस्चर (जार्ज ऐलेन ऐंड अनविन लि०, लंडन, १९५४), पृष्ठ ३।

गतिमयता को कहानी की मूल संवेदना से ऐसे एकीकृत कर दिया है कि एक नया शिल्प ही साकार हो उठा है । ऐसे शिल्प-प्रयोग कमलेश्वर और शिवप्रसाद सिंह ने किये हैं । कमलेश्वर की 'नागमणि' और शिवप्रसाद सिंह की 'आदिम हथियार' कहानियाँ इस शिल्प-प्रयोग की श्रेष्ठ निदर्शनाएँ है ।

'नागमणि' मे विश्वनाथ को वर्णमाला का पाठ चील की चीख से टूटता-जुड़ता प्रतीत होता है—"अ...आ...इ...ई...क र कर...प र पर...घ र घर। राम खाना खा। राम खाना ला। अब घर चल। राम अब चल।"[1] प्रारम्भ के बाद जब कहानी अपनी त्वरा में आती है तब भी रह-रह कर कदमो से एक आवाज बहुत निकलती है "...अब घर चल...बायें, दायें बायें ...अब घर चल।"[2] थोड़ी दूर बाद फिर पैरों से वही आवाज निकलती है "...अब घर चल...।"[3] कथा के पूर्वमध्यान्त में बस एक आवाज है "...कमरो में गूँजते हुए स्वर हैं...अ...आ...इ...ई...।"[4] कहानी के उत्तरमध्यान्त में विश्वनाथ बाकर को पढ़ाता है—"करो शुरुआत...अ...आ...इ...ई।"[5] फिर तो अ...आ...इ...ई...की आवाज उभरती रही और जब कहानी अन्त करती है तब भी विश्वनाथ के मुँह से अ...आ...इ...ई की हल्की-सी आवाज निकलती है। एवंविध पूरी कहानी 'अ आ इ ई', राम 'अब चल' तथा 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' के आवर्त्तक शिल्प में ग्रथित है। यहाँ आवर्त्तन की प्रक्रिया प्रत्याह्वान की भी है और प्रकृत विकास की भी, जो कथा की मूल संवेदना को निखारती, संप्रेषणीयता और प्रभावान्विति की शर्तें तक पूरी करती है।

शिवप्रसाद सिंह की कहानी 'आदिम हथियार' का आरम्भ इस प्रकार होता है—"अब ?" एक बोला।

"अब ?" सभी बोले।[6]

दो अनुच्छेदों की दूरी तय करने के बाद—"तब ?" एक बोलता।

"तब ?" सभी बोलते।[7]

---

१. धर्मयुग', १७ अगस्त १९६६, पृष्ठ १६।
२. वही, पृष्ठ १६। ३. वही, पृष्ठ १६।
४. वही, पृष्ठ २०।
५. वही, पृष्ठ २१।
६. 'धर्मयुग', १४ सितम्बर १९६६, पृष्ठ १३।
७. वही, पृष्ठ १३।

और पहले अध्याय की समाप्ति पर पुनः—"अब ?" एक बोला।
"अब ?" सभी बोले।
"एक दमघोंट सन्नाटा चारों ओर छा गया।"[1] इस प्रकार 'अब' की आवृत्ति से कहानी को आवर्तक शिल्प का चमत्कार दिया गया है, जो नाटकीयता के साथ-साथ विस्मयोत्पादकता की भी सृष्टि करता है तथा वातावरण को अर्थ की सूक्ष्मता से भर देता है। 'अब' का आवर्तन कहानी के समाप्ति पर भी होता है—"अब ?" एक बोला। "अब ?" सभी बोले।[2] इस कहानी के 'अब' की स्थिति कहानी के पृष्ठ पर प्रकाशित चित्र में चित्रित 'अब' की तरह ही अन्तहीन है। 'अब' का आवर्तन जैसे भविष्य-तत्पर क्रियाशीलता की अनवरत पुकार है। 'आदिम हथियार' का कथ्य इस साँचे में बड़ी जोरदार और पुर-असर बनकर उभरा है।

आवर्तक शिल्प के प्रयोग से कहानी को नवीनता मिली है और गहन अर्थवान् स्तर में उतरने की सूक्ष्म सांकेतिकता भी।

गाथा-शिल्प का प्रयोग

गाथा-शिल्प साम्प्रतिक युग-बोध की कहानी को गाथा के रूप-रंग में शिल्पित कर प्रस्तुत करता है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक किसी भी प्रकार की पृष्ठभूमि में उभरती समकालीन कहानी अपने-आपको गाथा के प्राचीन साँचे में विन्यस्त करती है। गाथा-शिल्प में आसन्न अतीत पूर्णभूत बनकर जीता है। उसका कथारस आदिम हो जाता है और सबसे बड़ी बात यह कि बीतते वर्तमान की कहानी को भविष्य के दूरवर्ती छोर तक पहुँच जाने के लिए गाथा के माध्यम उसकी दीर्घजीविता सुनिश्चित हो जाती है। यह सश्लेष से भिन्न शिल्प-प्रयोग है। सश्लेष शिल्प में जहाँ प्राचीन कथा के साथ नयी कथा को जोड़ते हुए अर्थ को नये परिप्रेक्ष्य में शाणित किया जाता है वहाँ गाथा-शिल्प में नयी कथा को पुरानी कथा के व्यापक क्षितिज में समो कर कथ्य को सार्थक दीर्घजीविता दे दी जाती है, जिससे लोक-जीवन तक वर्ण्य की पहुँच कराने और उसके अर्थ-दोहन में सुगमता उपलब्ध की जा सके।

भीष्म साहनी की 'भटकती राख' इस शिल्प-प्रयोग का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'भटकती राख' उस राजा की कहानी है, जिसकी राख झोपड़ियों से रोने

---

१. 'धर्मयुग', १४ सितम्बर १९६९, पृष्ठ १३।
२. वही, पृष्ठ २०।

की आवाज आने पर देश में आँधी और तूफ़ान आने पर बेचैन होती और भटकने लगती है। जब देश में सुख-चैन होता है तब राजा की राख के ज़र्रे चमक उठते हैं मानो राख मुसकुरा उठती है—"दादी माँ कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही, फिर धीरे-से बोली, आज का दिन बड़ा शुभ दिन है। देश मे जब सुख-चैन होता है तो राजा की राख के ज़र्रे चमकने लगते हैं। तब लोग कहते हैं कि राजा की राख मुसकुरा रही है, वह खुश है, राजा चैन से है।" "पर जब देश मे सुख-चैन न हो तो ?" "तो राजा की राख भटकने लगती है। जब देश पर संकट आता है, झोंपड़ों से रोने की आवाज़ें आती हैं और देश में आँधियाँ और तूफ़ान उठते हैं तो राजा की राख बेचैन हो उठती है और लोगों को लगता है जैसे वह साँय-साँय करती गलियों, सड़कों और राहों पर भटक रही है, झोपड़ों से लिपट रही है।"[1] निश्चित रूप में 'भटकती राख' की कहानी लोकदेव जवाहरलाल नेहरू की राख की वसीयत पर आधारित गाथा-शिल्प की कहानी है, जिसका वर्ण्य इस शिल्प मे जीवन्त होकर चमक उठा है।

समीकरण-शिल्प का प्रयोग

समीकरण-शिल्प के नाम करण को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "जीवन में प्रत्येक पहलू एक समस्यात्मक समीकरण है, जिसमे उसका समाधान 'क' (अज्ञात) की भाँति निहित रहता है, उस 'क' की कीमत पा लेना ही समस्या से उभरना (उबरना?) या समीकरण को हल करना है।"[2] इस शिल्प का आधार विज्ञान है, मुख्यतः ज्यामिति तथा अंकगणित, और उसकी सोद्देश्यता सार्थकता के साथ-साथ मौलिक प्रयोग के रूप मे विदेश तक में अपनी अभिनवता के कारण उल्लेख्य होने को है। इस शिल्प के प्रयोक्ता के अनुसार "...प्रयोगों का अपना मूल्य एवं दायित्व भी है। मैं अपने प्रयोगों की नियुक्ति वर्तमान से विद्रोह के लिए नही अपितु उसके समक्ष राहें परोसने के लिए करना चाहता हूँ और यह सामयिक सत्ताधीश तत्वों पर निर्भर करता है कि वे इन राहों को उपयुक्त समझें या नही।"[3]

---

१. भीष्म साहनी : 'भटकती राख', पृष्ठ १४।

२. राजेश कुमार जैन : 'विज्ञान और साहित्य की दो समानान्तर पटरियों पर...', 'ज्ञानोदय', अगस्त १९६६, पृष्ठ ८५।

३. वही, पृष्ठ ८४।

विवेच्य कहानी 'शहर आकाशी' का शीर्षक वृत्त में दिया गया है, जो चित्रात्मक है। कहानी आकाश की तरह निस्सीम शहर अर्थात् महानगर की है। चलचित्र-भवन भीड़ को थूकता है। इसी की एक कणी श्यामला है। वह एक 'रेस्तरां' में जाती है। वहाँ वह कॉफी पीती हुई कई व्यक्तियों द्वारा घूरी जाती है। श्यामला अचल कुमार नामक युवक के आधार पर रेखांकित होकर प्यार का कोण बनाती है। अचल कुमार आज चित्र देखने नहीं आया है। इसलिए श्यामला झुँझलाकर सोचती है कि वह किसी और लड़की की ओर आकृष्ट हो गया है। श्यामला बटुआ (पर्स) खोलती है तो उसे आठ आने-मात्र मिलते हैं। ऐसे समय उसकी मनःस्थिति का विश्लेषण गुणनखंड (फ़ैक्टर) पद्धति से किया गया है। कॉफी के चालीस पैसे चुका देने पर श्यामला के पास सिर्फ दस पैसे बच जाते हैं। इससे वह अपना दिवसाहार (डिनर) नहीं कर सकती। वह अचल को इस स्थिति का 'कारण' समझती है। तभी एक दूसरी मेज से उस पर एक लड़का टकटकी लगाता है। दोनों की दृष्टि टकराती है और कटाव-बिन्दु पर मुसकराहट उभरती है। इससे पारस्परिक उत्तोलन (लिफ्ट) मिलता है और श्यामला अपने चेहरे की उदासी-मायूसी अपने बटुए (पर्स) में ठूँस लेती है। इन दो क्रिया-शक्तियों से श्यामला का बटुआ भारी हो जाता है। वह खुश होती है और अचल के न आने का दुःख भूल जाती है। यह कहानी नारी-पुरुष के संयोग को स्वप्न-जीवी प्रेम (प्लेतानिक लव) की वस्तु न मानकर व्यावहारिक दृष्टि से देखती है। श्यामला की यह कहानी समतल पर व्यंग्य के घूर्णित अर्थ तो देती ही है, साथ ही शिल्प की गाणितिक गलियों की यात्रा से कहानी की परिणति को कथ्यार्थ की सर्वथा नयी विच्छित्ति दे जाती है।

समीकरण-शिल्प का यह प्रयोग गंभीर होने पर सर्जना का साधन बनकर भविष्य में कहानी के लिए अमित संभावनाओं के द्वार खोल सकता है, जहाँ गणित और विज्ञान की अभ्युद्देशात्मक भाषा भी ध्वनि और व्यंजनामयी संवेगात्मक सिद्धि प्राप्त कर प्रेषणीयता (कम्युनिकेबिलिटी) से भर उठेगी।

तांत्रिक शिल्प का प्रयोग

तांत्रिक शिल्प के प्रयोग का कला से अविनाभाव सम्बन्ध है—"साहित्य में किसी ऐसे फॉर्म का आविष्कार जो कला के बिना अधूरा हो।"[1] इसी से

---

१. आबिद सुरती : 'तांत्रिक कहानी : एक कथा प्रयोग', 'सारिका', अप्रैल १९६८, पृष्ठ ४४।

तान्त्रिक कहानियों ने जन्म लिया। तांत्रिक शिल्प का प्रयोग संख्या पर आश्रित है। नौ की सर्वाधिक संख्या के आधार पर ही कहानी में इस शिल्प का प्रयोग
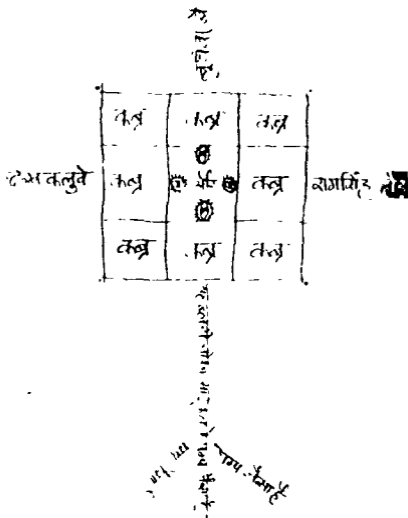
किया गया है। अंक, रेखा और शब्द—तीनों का तालमेल ही इस शिल्प को विन्यास देता है। प्रयोक्ता के अनुसार इस शिल्प की कहानी अन्य शिल्पों

वाले शक्त उपन्यास और समर्थ लघु कहानी से किसी भी रूप में कम महत्त्व नही रखती। आबिद सुरती कहते हैं कि "तांत्रिक फॉर्म मे विचार से अधिक महत्त्व रखता है उसका एप्रोच। आम कहानियों की तरह यह रचना सिर्फ हृदय तक ही नही पहुँचती, पाठक के मानस को भी झकझोर कर रख देती है।[1]" उनकी एकमात्र अशीर्षिका तांत्रिक कहानी में 'कलुवा' देखता है, 'बुधवा' बैठता है, 'रामसिंह' दौड़ता है, पर सबका अन्त कब्र मे ही होता है। कहानी गहरा मृत्युबोध देती है। अन्त मे कहानीकार का यह कथन कि "यह ब्लडी जीवन साइकल के पम्प जैसा है।[2]"—दूर तक अपनी अर्थ-गूंज छोड़ जाता है। 'सायकिल' का 'पम्प' तो सूना-का-सूना है, जिससे हवा आती और चली जाती है।

तांत्रिक कहानी का शिल्प समीकरण शिल्प की तरह ही है। दोनो अत्यन्त आरम्भिक स्थिति मे है। अतः ये प्रयोग अभी उपलब्धि नही बन सके हैं। समीकरण शिल्प का आधार वैज्ञानिक है—वर्तमान और भविष्य से जुडा शिल्प, पर तांत्रिक शिल्प का आधार तात्रिक है—अतीत और विगत का शिल्प। चित्रकला की रेखाओं की सहायता दोनो ही प्रयोगो को सम्प्राप्त है। हाँ, तान्त्रिक शिल्प की कहानी मे जो सख्या-निर्भरता है, वह गणित की है। ऐसी स्थिति में तात्रिक शिल्प के बीते पृष्ठाधार और समीकरण शिल्प के भविष्य-गामी प्रसार को देखते हुए तान्त्रिक शिल्प के विकास की संभावना और उसकी उपलब्धि प्रायः निःशेष लगती है। ऐसे प्रयोक्ताओ को या तो तान्त्रिक शिल्प को समीकरण शिल्प मे ही विलयित कर साहित्य और विज्ञान की समानान्तर पटरियों पर अपने प्रयोग को कथ्य की अनुकूल प्रेषणीयता देनी चाहिए अथवा इस शिल्प को और दूसरे वैशिष्ट्यो से परिपूर्ण कर शिल्पित करना चाहिए।

एकाध को छोड़कर 'नयी कहानी' के सारे शिल्प-प्रयोगों के मूल मे वस्तु के अनुभव की वास्तविकता और 'जीवन का शिल्प' है।[3] शिल्प के ये प्रयोग सर्जनात्मकता की विकलता से प्रेरित है। इनमे वस्तु की विच्छिन्नता, अर्थस्वा-सिकता, चमत्कार की प्रदर्शनप्रियता और ऊहापोह से भरी कृत्रिम मनोवैज्ञा-

---

१. आबिद सुरती : 'तांत्रिक कहानी : एक कथा प्रयोग', 'सारिका', अप्रैल १६६८, पृष्ठ ४४।

२. 'सारिका', अप्रैल १६६८, पृष्ठ ४४।

३. सर हर्बर्ट रीड : द फ़ार्म ग्रॅव फ़ीलिंग (न्यूयार्क, १६५६), पृष्ठ ६।

अध्याय ६

'नयी कहानी' : भाषागत प्रयोग

'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग की पृष्ठभूमि

'नयी कहानी' का परम्पराजीवी नही होना ही उसकी भाषा को भी प्रयोगधर्मा बनाता है। यह भाषा ठंडी और जमी हुई नही होकर ताप और त्वरा से भरी है। यहाँ भाषा के प्रयोग अपने तेवर में सम्प्रयोग और प्रचलन—दोनो ही के प्रयोग है। सम्प्रयोग मे यह भाषा कथाकारो की अस्मिता की जीवंत छाप छोडने वाली है।

प्रचलन मे "भाषागत प्रयोग की बात बहुत साफ है।. .कोई भी जीवित भाषा प्रयोग की ही वस्तु होती है। वह देश, काल और समाज की परिधि में सदा प्रभावित होती है और प्रभावित करती है। वह प्रतिक्षण बदलती है और उस अभिव्यक्ति को निकट-से-निकट पाने का प्रयत्न करती है, जिसे वह पूरी तरह कभी प्राप्त नही कर सकती, परन्तु कुछ-न-कुछ प्राप्त करती ही चलती है। इस पैमाने पर कोई भी प्रयोग अपूर्ण हो सकता है, पर असफल कदापि नही।[1]" 'नयी कहानी' की भाषा सम्प्रयोग और प्रचलन-प्रयोग के दोनो ही रूपो के जरिये अभिव्यक्ति को कथ्य की अन्तरगता मे पाने की सफल छटपटाहट लिये है। इसीलिए वह अपूर्ण और असफल नही है।

'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग का फलक (कैनवस) बहुत व्यापक है। इसमे एक ओर परम्परागत प्रौढ़ता से परिचित होकर हिन्दी-भाषा के समृद्ध भविष्य के लिए किये गये नये प्रयोग है, दूसरी ओर परम्परा से हट कर देश के समग्र भौगोलिक विस्तार को स्वायत्त करते हुए पजाबी, नागपुरी, महाराष्ट्री, बँगला, कश्मीरी आदि भाषाओं से प्रभावित होने वाले नये प्रयोग है।

---

१. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ ५९।

एक ओर नवीन व्याकरण गढ़ने का प्रयास है तो दूसरी ओर गहन व्यंजना-शक्ति का विकास। इसके भाषिक प्रयोग बड़ी सूक्ष्मता के प्रयोग हैं। इस दृष्टि से 'नयी कहानी' में गद्य के विभिन्न तेवर, भावभंगियों और मुद्राओं के विशिष्ट क्षण तथा अकथित होने के अवश वैवश्य तक को सार्थ भाषा मिली है। विधा-भाषा की दृष्टि से यह अभिव्यक्ति-क्षमता का अब तक अन्यतम उदाहरण है। यहाँ 'गति में आकार गढ़ने' की प्रयासिका भाषा—समग्र औपचारिकता और प्रतिबद्धता की केंचुल उतार फेंकने वाली 'आदिम मनुष्य की भाषा'—है।

'नयी कहानी' के भाषिक प्रयोग विविधोन्मुख हैं। यह भाषा निश्चित रूप में एकरस भाषा नहीं है। इसकी विविध छवियाँ हैं, विविध रंग है, विविध मुद्राएँ हैं, विविध भंगियाँ हैं, विविध संकेत हैं और विविध स्वराएँ है। इसके भाषिक प्रयोग में "एक ओर अमरकान्त का ठेठ गद्य है, दूसरी ओर मन्नू भंडारी का व्याकरण-सम्मत विशेषणहीन गद्य, तीसरी ओर कमलेश्वर का भावुक-संवेदनशील गद्य है, चौथी ओर राजेन्द्र यादव का प्रयोग-बहुल कलात्मक गद्य, पाँचवीं ओर निर्मल वर्मा का लम्बे-लम्बे विशेषणों से भरा गद्य है, छठी ओर शिवप्रसाद सिंह का सटीक, शब्दपूर्ण, बिम्बोपमान-मूलक अर्थप्रधान गद्य, सातवीं ओर नरेश मेहता का अभिनव भाषिक प्रयोग-पूर्ण गद्य है, आठवीं ओर रमेश बक्षी का शैली की विच्छित्ति से भरा गद्य, नवीं ओर 'रेणु' का सूक्ष्म, ध्वन्यात्मक, अभिव्यक्तिक्षम आंचलिक गद्य है तो दसवीं ओर मोहन राकेश का गतिशील समर्थ गद्य।"[1]

'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग हिन्दी और हिन्दुस्तानी के झमेले से निकल कर देश को भावात्मक एकता देने वाले समर्थ भावमय प्रयोग है। इसीलिए यहाँ उत्तर से दक्षिण भारत तक और पूर्व से पश्चिम भारत तक हिन्दी की प्रचलित सभी शैलियों के प्रयोग हुए हैं। साथ ही प्रायः सभी नये कथाकारों की कहानियों में पचास प्रतिशत हिन्दी के तो दस-बीस हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के, फिर विंशति-अधिक अंचल की या क्षेत्र की भाषाओं के अथवा अंगरेजी के शब्द आये हैं। इतना ही नहीं, यहाँ सामान्य व्यवहार के कुछ अन्तर-राष्ट्रीय शब्दों के भी अनिवार्य प्रयोग हुए हैं। पर इन सबका अन्तर्ग्रथन एकीय है। इस दृष्टि से "हिन्दी की 'नयी कहानी' के लेखकों की

---

१. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी' की भाषा', 'ज्ञानोदय', मई, १९६६, पृष्ठ ६३।

भाषा का यह सबसे बड़ा गुण है कि उसमे कोई विभाजक रेखा या रंगीन खंडो का स्वरूप-विधान हम नही पाते है।"[1] यह भाषा कथाकारो की निजी अस्मिता को सुरक्षित रखती हुई यथार्थ के बीच से उभरती और यथार्थ का एक-एक रेशा उजागर कर देती है। परिणामस्वरूप इसमे भाषा का भावी रूप स्फुट होता लगता है। इसीलिए "आधुनिक जन-जीवन के सक्रान्त काल-खंड का कोई रूप हमारे सामने अगर आज से सदियो बाद यथारूप और जीवित मिलेगा तो इन कथाकारो की कृतियो की भाषा मे।"[2] 'नयी कहानी' ने भाषिक रचनात्मकता की वास्तविक आवश्यकता को पहचाना है। इसने भीतरी दुनिया और कहानी की भाषिक सीमा के बीच सन्तुलन स्थापित किया है तथा रचनाकार की निजी दुनिया और बहिर्गत परिस्थितियो के बीच सामजस्य—"कुछ ऐसा सामंजस्य जिसके द्वारा कहानी की भाषा की इन अनिवार्य अपेक्षाओ से रचनाकार की भीतरी दुनिया को सच्ची 'वहन' मिल सके।[3]"

'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग मूलतः 'नयी कहानी' की बदली हुई सवेदना के परिणाम हैं। सवेदना ने कहानी के विषय, चरित्र और वर्णन बदल दिये हैं। फलत. वर्णन का माध्यम भाषा भी बदल गयी है। भाषिक परिवर्तन मूलत. चरित्र और चरित्र-रचना के मूल्यगत परिवर्तन से ही संबद्ध है। पुरानी कहानी के चरित्र बासी है। अत. उसकी भाषा भी चुकी हुई और बासी है। यह चरित्र-परिवर्तन सदैव नयी सवेदना से होता है। सवेदना जो कहानीकार के व्यक्तित्व, युग-बोध और पाठकीय स्तर से सिरज पाती है। स्पष्ट है कि 'नयी कहानी' की भाषा को परिवर्तित नयी सवेदना ने ही प्रयोग के रास्ते सुझाये हैं। इस भाषा मे प्रेरणा और भाव दोनो ही का नयापन है। कहानी को नयी सवेदना मे कथाकारो के लिए आत्मान्वेषण की सवेदना बड़ी महत्त्वपूर्ण रही है, जिसका प्रभाव भाषा पर पडा है। इस भाषा ने अनुभूति की गहनता उजागर की है और अभिनव भाषिक अर्थवत्ता सर्जित की है। यहाँ गद्य को वाछित स्थल पर काव्य की लय भी मिली है। ये अकृत्रिम भाषिक

---

१. सूर्यदेव शास्त्री : 'हिन्दी कहानी : भाषावैज्ञानिक की बराज में', 'ज्ञानोदय', दिसम्बर १९६४, पृष्ठ १६०।
२. वही, पृष्ठ १६१।
३. प्रभात कुमार त्रिपाठी : 'आज की कहानी : भाषा-सन्दर्भ', 'नयी कहानियाँ', फरवरी १९६८, पृष्ठ १२०।

प्रयोग हैं, जिन्हें बदले हुए समर्थ संवेदन ने प्राणवत्ता, अर्थनिष्ठता, उद्देश्य-पूर्णता, विषयानुकूलता तथा पारदर्शी सांकेतिकता उपलब्ध करायी है।

'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग परिवेश और ऐतिहासिकता के भाषिक प्रयोग हैं। पूर्ववर्ती कहानियों की भाषा में ऐतिहासिकता का यह परिवेश प्राप्त नहीं होता। वस्तुतः "अगोचर वास्तविकताओं का आश्रय लेकर ज़िंदगी मूर्त्त करने वाली भाषा का परिवेश की ऐतिहासिकता से कितना अलगाव हो सकता है, यह सोचने की बात है। यह भाषा केवल बहुत सीधी, सपाट, संवेदनशून्य, वर्णनात्मक, मन्तव्यच्युत और आत्मसिद्ध ही हो सकती थी तथा वर्णित सत्य का कोई सन्दर्भ भी हो सकता था—यह मानने का कारण था ही नहीं। उस भाषा के पीछे उस भाषा से सलग्न या उस भाषा के लक्ष्य पर किसी गहरे सत्य के उद्‌घाटन की उद्‌भावना प्रायः अकल्पनीय थी।[1]" 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग कहानी की मूल समस्या से सबद्ध हैं। ये प्रयोग प्रामाणिक यथार्थ को भाषा के माध्यम व्यक्त करने के प्रयोग हैं। यहाँ भाषा को रचना के व्यक्तित्व से इस प्रकार मिलाया गया है कि सम्पूर्ण संक्रमण-शीलता सार्थक रूप में व्यक्त हो जाती है।

'नयी कहानी' की यह भी स्थापना है कि शब्दों को नये सन्दर्भ में नवीन बनाया जा सकता है। नयी दृष्टि शब्दों को नये सन्दर्भ में नयी अर्थ-प्रतिष्ठा देकर ढाल देती है। 'नयी कहानी' ने भाषा की वास्तविक सभावना को शब्दों में न देखकर उनके कोशगत अर्थ से कहीं व्यापक अर्थ निर्दिष्ट करने वाले अन्वय में देखा है, जो वैयाकरण और भाषाशास्त्री भी शब्द को नहीं दे पाते हैं। मोहन राकेश के अनुसार "यह अन्वय मिलता है वर्षों के ऐतिहासिक प्रयोग से और उस प्रयोग की अनुभूति की विशिष्टता से दिये जाने वाले सस्कार से।" "शब्दों को एक कृत्रिम अर्थवत्ता देने के बजाय भाषा की ऐतिहासिक अर्थवत्ता की खोज करना और (निजी) अनुभूति की विशिष्टता से उसे एक नया संस्कार देना—यह इस पीढ़ी के सभी लेखकों का साझा प्रयत्न रहा है।[2]" निश्चित रूप में भाषा की यह खोज पुराने कहानीकार नहीं कर सके थे।

यह भाषा-प्रयोग अभिव्यक्ति की संभावना के चुक जाने के अहसास के

---

१. हृषीकेश : 'परिवेश की ऐतिहासिकता की भाषा', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ १५७।

२. मोहन राकेश : 'बकलमखुद' : 'नयी कहानियाँ', जुलाई १९६३, पृष्ठ ६४।

बाद नये माध्यम की तलाश का प्रयोग है; क्योंकि एक भाषा है, जो निरंतर मरती जा रही है। यह अर्थ खो रही है। नये कहानीकार इस भाषा को श्री-सम्पन्न बना रहे हैं। यदि इस मरती हुई भाषा को नहीं पहचाना जाएगा तो भाषा तो मरती ही जाएगी और उस भाषा में 'प्रेमिका को बुलाने मे बिल्ली चली आएगी'।[1]

समर्थ भाषा मे बाह्य जगत् की वास्तविकता के अतिरिक्त आंतर जगत् के अनुभूत अर्थों का व्यंजन होता है। महाभारत के शान्तिपर्व में सुलभा और जनक का संवाद भाषा-विचार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। वहाँ सुलभा ने राजर्षि जनक से कहा है—हे राजन्। भाषा शत-प्रतिशत शुद्ध और अट्ठारहो गुणोपेत होनी चाहिए। भाषा मे उसकी सबसे बड़ी शक्ति—अर्थगाभीर्य चाहिए। 'नयी कहानी' की भाषा शत-प्रतिशत शुद्धता और अट्ठारहो गुणो का तो निषेध करती, पर गहन अर्थवती सोद्देश्यता का समर्थन करती है। नये कहानीकार को भाषा की इस गहराई का पता है। इसीलिए उनकी कहानियो मे भाषा-प्रयोग उनकी प्रतिभा की सारी सर्जनात्मकता के साथ सही दिशा में हुए हैं। नया कहानीकार जानता है कि "सीखी हुई भाषा और अभिव्यक्त होती भाषा मे ज़मीन-आसमान का अन्तर है। भाषा बाग मे फूल, सड़क पर मोटर, कमरे मे कुर्सी की तरह सजावट की चीज़ नही है।"[2] इसका उपयोग ही सर्वोपरि है। पुरानी भाषा से आज की सघनता और जटिलता को व्यक्त नहीं किया जा सकता। केवल मुहावरेदार भाषा एक दूरी पैदा कर देती है और सलाप की चित्रपट-सी भाषा चापलूसी लगती है। ऐसे में दिशा देने का दायित्व खाली जगह की भाषा को ही है, जिसकी तलाश "व्यक्ति की भीतरी बदली हुई—बदलती हुई दुनिया, उस दुनिया की यंत्रणा और उस दुनिया के सन्त्रास के लिए है।"[3]

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद बदले हुए सामाजिक, राजनीतिक परिवेश और उसके आसंग मे भाषिक परिवर्त्तन भी अनिवार्य बन गया था। राजनीतिक परिवर्त्तन और हलचलो का तो 'नयी कहानी' की भाषा-रचना की पृष्ठभूमि मे बहुत बड़ा योगदान है। यदि यह कहा जाए कि 'नयी कहानी' की भाषा स्वतंत्र भारत के नये परिवेश से अनुशासित और अननुशासित दोनो ही है तो

---

१. 'ज्ञानोदय', फरवरी १९६६, पृष्ठ १२०।
२. विपिन कुमार अग्रवाल : 'ज्ञानोदय', मई १९६६, पृष्ठ १३७।
३. प्रभात कुमार त्रिपाठी : 'कथामंच' : 'ज्ञानोदय', मई '६६, पृष्ठ १४६।

कोई अत्युक्ति न होगी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में दो प्रकार के विचार उभरे थे। पहला विचार निर्माण-परक था और दूसरा सहज उन्मुक्ति-परक। एक ओर देश में निर्माण का नया वातावरण आरंभ होने लगा था, दूसरी ओर लोग अपने चिन्तन और विचारों के व्यंजन में पूर्वापेक्षया अधिकाधिक उन्मुक्त होने लगे थे। पंचवर्षीय योजनाओं और विविध ग्राम्य, नागर, राजकीय निर्माण-कार्यों की वृत्ति से प्रभावित होने की वैचारिक पृष्ठभूमि ने 'नयी कहानी' की भाषा को एक ओर निर्मिति के कौशल से युक्त बनाया, जिसमें प्रगति और विकसनशीलता स्पष्ट हुई तो दूसरी ओर मनन-चिन्तन की निर्बन्ध-उन्मुक्त वैचारिक पृष्ठभूमि ने इस भाषा को अत्यन्त बेबाक किस्म की भाषिक संघटना भी दी। यही वैचारिक पृष्ठभूमि वह मूल कारण है, जिससे भाषिक स्तर पर नये कहानीकारों की प्रयोगशीलता की चिन्ता-दिशा द्विविध हो गयी, पर यह विकास-धारा निर्माण-परकता से उन्मुक्ति-परकता की ओर अग्रसर रही। "एक प्रकार के नये लेखकों ने पहले की कहानी की कृत्रिम भाषा के विरुद्ध अधिक सीधी यथातथ्यात्मक भाषा चुनी—जो चीज़ों को उनके सही नामों से सम्बोधित करने या पुकारने में समर्थ थी—तो दूसरे प्रकार के लेखकों ने कृत्रिम भाषा के ही सहारे एक नयी भाषा बुनने की कोशिश की, जिसमें चीजों को बराबर दूसरे नामों में पुकारना (इतने दूसरे नामों से कि चमत्कार जान पड़े) जरूरी होता है।"[1] इन दोनों ही प्रकार के प्रयोगों ने 'नयी कहानी' की भाषा को पूर्वापेक्षया आगे बढ़ाया।

'नयी कहानी' के प्रक्रियाई विकास में जो दूसरा भाषागत परिवर्तन दीख पड़ा, उसके मूल में भारतीय जन-मानस की नयी चिन्तनात्मक पृष्ठभूमि थी। १९६२ के सामान्य निर्वाचन में डॉ० राममनोहर लोहिया संसद्-सदस्य निर्वाचित होकर दिल्ली गये। उन्होंने भारतीय जन-मानस की परिवर्तित होती स्वच्छन्द अभिव्यक्ति का पहला अभूतपूर्व उदाहरण अपने वक्तव्य में प्रस्तुत किया। यह बदलता हुआ अभिव्यक्ति-प्रकार पूर्व-चर्चित निर्बन्ध, उन्मुक्त अभिव्यंजन-प्रणाली का काष्ठागत विकास था। डॉ० लोहिया ने संसद् में जो भाषण किया उसकी बेलौस, खरी और बेबाक अभिव्यक्ति ने जवाहरलाल नेहरू को तिलमिला दिया। उस घटना का उल्लेख स्वयं राममनोहर लोहिया ने किया है—"प्रधानमंत्री खुद बोले—यह क्या बात है? जो लोग बाज़ार में

---

१. डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव : 'नयी कहानी : प्रयोग की सार्थकता' 'कल्पना', नवलेखन अंक, अग०-सित० '६६, पृष्ठ १५६।

बोलते है वे यहाँ आ गये है। हमने कहा कि यही तो हमारी तारीफ है कि जो हम बाजार में बोलते हैं वही हम यहाँ बोलते है। तुम्हारे जैसे हम बेईमान नही है, दो जीभ वाले। और बाजार की बोली तो बड़ी सभ्य बोली होती है—सच्ची, सीधी और ईमानदार। जो आदमी बाजार की निन्दा करे, समझ लेना, उस आदमी मे कहीं-न-कहीं खराबी है। बाजार, खेत, दूकान, मैदान, कारखाना इन्ही की बदौलत हिन्दुस्तान मे, दुनिया मे अच्छा इन्तजाम होता है, शान्ति होती है, बदलाव होता है।"[1] इसलिए जब डॉ० शिवप्रसाद सिंह युवा-लेखन *की भाषिक पृष्ठभूमि मे इस बेलौस भाषा के भारतीय संसद् पर पहले-पहल* होने वाले वार का उल्लेख करते है, तब एक प्रामाणिक और तात्त्विक बात कहते हैं। लोहिया ने भारतीय जन-मानस की परिवर्तित मन:स्थिति की मर्यादा-शून्य और चाकचिक्यहीन जिस अकृत्रिम भाषा को लाग-लपेट के सारे आवरणो को चीड-फाड कर व्यक्त किया था, 'नयी कहानी' के विकास की प्रक्रिया मे वही अपने पूरे अस्तित्व और वजूद के साथ उभर कर प्रत्यक्ष तथा आसनस्थ हुई।

'नयी कहानी' का भाषिक प्रयोग ठडा और अनगढ गद्य का प्रयोग है। यह जबर्दस्त सयम का प्रयोग है, जहाँ भावुक, ललित, काव्यमय और परम्परित रूढ लाक्षणिकताएँ टूटी हैं, भाषा का शब्द-भडार और अभिव्यजना-शक्ति समृद्ध हुई है, बुनावट, ग्रथन (टेक्स्चर), वाक्य-विन्यास आदि का पुराना रूप बिलकुल छूट गया है तथा समंजस-सवेदना-प्रेरित यथातथ्य, लचीली, सूक्ष्म और प्रभविष्णु भाषा आयी है। 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग पाठक को कहानी के रचनात्मक क्षितिज मे निर्बाध प्रवेश कराते हैं। ये दैनिक बोल-चाल की भाषा के सर्जनात्मक प्रयोग हैं। फलतः सम्प्रेष्य हैं। अभिधा यहाँ अत्यन्त उच्चावच हो उठी है। किन्तु अभिधा के साथ-साथ यह नवीन लाक्षणिक विस्तार, इगितिमूला व्यजना और भाषा की सतह की पर्त मे पड़ी मूक स्वन की गूँज-अनुगूँज का भी प्रयोग है। 'नयी कहानी' की भाषा सिमेंटी दीवार को पूर्णतः तोड़ती है। यह भाषा 'वह मुझसे प्रेम करती है' के रूप-बध को छोडकर 'वह मुझसे फँसी है' तथा 'साहब मेरा कुछ बिगाड नहीं सकता' का गठन तोडकर 'मा'ब मेरा कुछ उखाड नही सकता' तक की रूप-गुण-यात्रा तय करती है। इन सबसे हिन्दी गद्य को विविधता, शक्ति, लचकीलापन, ताजगी, मार्जन,

---

१. डॉ० राममनोहर लोहिया : 'सरकारी मठी और कुजात गांधीवादी', पृष्ठ ८।

अर्थगर्भिति तथा ऊर्जायुक्त सर्जनात्मकता प्राप्त हुई है।

ऐसी सम्पन्न भाषा से युक्त 'नयी कहानी' पर आक्षेप करते हुए डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है कि "नये कहानीकार और गीतकारों की कई मौलिक वृत्तियाँ एक-जैसी हैं।" अन्ततः यह कि दोनो की ही भाषा-प्रयोग-विधि एक जैसी है।[1]" फिर उन्होंने 'नयी कहानी' की भाषा में सर्जनात्मक रूप का अभाव बताते हुए लिखा है कि "शिष्ट साहित्य भाषा के सृजनात्मक रूप का प्रयोग करता है। इस सृजनात्मक रूप में लेखक प्रतीक और बिम्ब-विधान के माध्यम से अपनी बात कहता है।..."[2] और उन्होने यह सिद्ध करना चाहा है कि 'नयी कहानी' में ऐसी सर्जनात्मकता का अभाव है। पर सच्ची बात यह है कि 'नयी कहानी' की भाषा की तुलना गीत या नवगीत की भाषा से की ही नही जा सकती। दोनो में स्पष्ट विधागत और समृद्धिगत अन्तर हैं। गीत या नवगीत में जो भाषा प्रयुक्त होती है उसमें शब्द ग्राम्य वातावरण से विविधतः नही उठाये जाते। उनका क्षेत्र बडा संकुचित होता है। स्पष्टतः वे शब्द रूमानी वातावरण के होते हैं। 'नयी कहानी' में भाषा का यह केन्द्रण नही है। वह तो इसके विरोध की भाषा है। दूसरे, गीत में सामान्यतः ग्राम्य शब्द पात्रों के मुँह से नही उचरवाये जाते हैं। यह उसकी एक बड़ी विवशता और असमर्थता है। 'नयी कहानी' की भाषा में ग्राम्य शब्दों का प्रयोग पात्र करते हैं। यह भाषा पात्रों का स्वरूप और कथा की पृष्ठभूमि तो प्रस्तुत करती ही है, साथ ही ठीक-ठीक भाव के सम्प्रेषण के लिए ठीक-ठीक अर्थ-बोध के लिए ठीक-ठीक शब्द का इस्तेमाल भी करती है; ऐसे शब्दो का इस्तेमाल, जो मार्जित हिन्दी के कोश में निश्चयतः नही हैं गीत मे इसका भी अभाव है। तीसरे, 'नयी कहानी' की भाषा में न केवल ग्राम्य परिवेश के शब्द आये हैं, बल्कि नागर परिवेश के शब्द भी। अतः एक ओर यदि ग्राम्य प्रयोग की ताजगी-सादगी है तो दूसरी ओर नागर प्रयोग की सरलता-स्वाभाविकता भी। चौथे, गीत भले ही केवल सादगी को लक्ष्य बना कर चलता हो, पर 'नयी कहानी' की भाषा का वही लक्ष्य हो, ऐसा नहीं है। पाँचवें, चतुर्वेदी जी का आग्रह जिस प्रतीक और बिम्ब-विधान पर है वह प्रतीक और बिम्ब-नियोजन भी 'नयी कहानी' की भाषा में हुआ है, यद्यपि सर्जनात्मक गद्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता होते हुए भी यह अनिवार्य विशेषता नही है। स्पष्ट है कि 'नयी कहानी' की

१. डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : 'भाषा और संवेदना', पृष्ठ ७५।
२. वही, पृष्ठ ७५-७६।

भाषा तथाकथित रूप में 'भोथरी' न होकर कही शाणित भाषा है ।

पहले की कथा-भाषा की अपेक्षा 'नयी कहानी' की बदली हुई भाषा और उसके प्रयोग की मीमासा के लिए गहरी और सूक्ष्म विश्लेषणा अपेक्षित है—"कहानी की भाषा पिछले पन्द्रह वर्षों में जिस ढग और ढब से बदलती रही है, उसे पूरी तरह समझने के लिए काफी सूक्ष्म स्तर के अध्ययन की आवश्यकता है ।"[1] पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग के चार भिन्न आदर्श स्थिर किये हैं : १—अँगरेज़ी-प्रभावित नागर गद्य, २—ग्राम्यांचल-प्रभावित गद्य, ३—प्रयोग-शिल्पीय गद्य और ४—मार्जित गद्य ।[2] 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग को भाषावैज्ञानिक व्याकरणिक और साहित्यिक—तीनो ही धरातल पर समझा जा सकता है । प्रकटत. विलग लगने वाले ये तीनो ही आधार वस्तुत. विलग न होकर किसी स्तर-विशेष पर परस्पर जुड़े हैं । "मार्के की बात यह है कि साहित्य में भाषा का अगी विवेचन उसका विशुद्ध साहित्यिक विवेचन ही है तथा अगरूप विवेचन भाषिकीय और व्याकरणिक ।"[3] प्रस्तुत मीमासा में भाषा-प्रयोग की अध्ययन-यात्रा अंगरूप विवेचन से अगीरूप विवेचन के गन्तव्य तक पहुँचकर उसकी उपलब्धि को रेखांकित करने की है । 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग का अध्ययन-विवेचन ध्वनिगत प्रयोग, शब्दगत प्रयोग, पदगत प्रयोग, वाक्यगत प्रयोग, शैलीगत प्रयोग और अर्थगत प्रयोग जैसे छह शीर्षको के अन्तर्गत विचार्य है ।

ध्वनिगत प्रयोग

'नयी कहानी' के ध्वनिगत प्रयोग भाषावैज्ञानिक और साहित्यिक—दो दृष्टियो से विवेच्य हैं । भाषावैज्ञानिक रूप में प्रथमत स्वरागम, स्वरलोप, *स्वर-विपर्यय और स्वर-विकृति के, द्वितीयतः व्यजनागम, व्यजन-लोप, व्यजन-*विपर्यय और व्यजन-विकृति के, तृतीयतः अकारण ही मुख-सौकर्यवश अनुनासिकता के और चतुर्थतः तारता (पिच), तीव्रता (इटेंसिटी) तथा भेदकता (टिम्बर) के प्रयोग हुए हैं ।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'कल्पना', अप्रैल १९६६, पृष्ठ ६२ ।

२. 'ज्ञानोदय,' मई १९६६, पृष्ठ ६३ ।

३. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी' की भाषा', 'कल्पना,' अगस्त-सितम्बर १९६६ (नवलेखन विशेषांक), पृष्ठ १७५ और १७६ ।

'नयी कहानी' की भाषा में हिन्दी के पूर्वी-पश्चिमी—दोनो ही रूपों तथा अनेक विभाषाओं के शब्द-रूपों का व्यवहार होने के कारण हिन्दी का निष्ठित-मार्जित रूप ज्यो-का-त्यों नही रह सका है। पंजाबी, बँगला, अँगरेजी आदि भाषा के शब्द-प्रयोगो की प्रचुरता ने भी हिन्दी के शब्दों को अपने-अपने सस्कार से प्रभावित किया है। ऐसे ही भाषिक व्यवहार मे 'नयी कहानी' की भाषा में प्रभूत ध्वनिगत प्रयोग हुए हैं।

'नयी कहानी' के ध्वनिगत प्रयोग में स्वरागम के आदि, मध्य और अन्त तीनो ही रूप प्राप्त हैं। आदि स्वरागम मे कही ह्रस्व 'इ' का आगम हुआ है तो कही ह्रस्व 'इ' एक और 'इ' के आगमवश 'ई' में परिवर्तित हो गया है। कही 'क्या' शब्द के 'क' और 'या' को वियुक्त कर पहले की तरह 'इ' का आगम करते हुए 'किया'[1] का प्रयोग कियागया है तो कही 'नही' के 'ह' व्यंजन का लोप करते हुए 'ए' का पूर्णतः आगम कर 'नेइ'[2] किया गया है। कही अँगरेजी का 'ड्रामा' 'इ' के स्वरागम से 'डिरामा'[3] हो गया है तो कहीं 'ब्लेक' 'बिलेक'।[3] 'हरख' के लिए 'हिरख',[4] 'घत' के लिए 'घेत',[6] पहले के लिए 'पेले',[7] 'बहन जी' के लिए 'बेणजी',[8] स्पिरिट' के लिए 'इसपिरिट'[9] तथा 'स्टेशन' तथा 'इसटीसन'[10] जैसे शब्दों के ध्वनि-प्रयोग आदि स्वरागम के ही उदाहरण हैं। 'इतना' का 'ईतना' प्रयोग मे भी आदि स्वरागम ही है।

मध्य स्वरागम के उदाहरण 'नमस्कार' के लिए 'नोमोस्कार',[11] 'कम' के लिए 'कोम',[12] 'एकदम' के लिए 'एकदोम',[13] बलभद्र के लिए 'बलभादर',[14]

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५४।
२. वही, पृष्ठ ६७।
३. वही, पृष्ठ ४६।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ १६३।
५. मोहन राकेश : 'नये बादल', पृष्ठ १४१।
६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४०।
७. नरेश मेहता : 'तथापि' पृष्ठ १८।
८. वही, पृष्ठ १८।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ८८।
१०. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४७।
११. वही, पृष्ठ ४७।
१२. वही, पृष्ठ ४७। १३ : वही, पृष्ठ ४८। १४ : वही, पृष्ठ १३।

भाषा तथाकथित रूप में 'भोथरी' न होकर कही शाणित भाषा है ।

पहले की कथा-भाषा की अपेक्षा 'नयी कहानी' की बदली हुई भाषा और उसके प्रयोग की मीमासा के लिए गहरी और सूक्ष्म विश्लेषणा अपेक्षित है— "कहानी की भाषा पिछले पन्द्रह वर्षों में जिस ढंग और ढब से बदलती रही है, उसे पूरी तरह समझने के लिए काफी सूक्ष्म स्तर के अध्ययन की आवश्यकता है।"[1] पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग के चार भिन्न आदर्श स्थिर किये हैं : १—अँगरेज़ी-प्रभावित नागर गद्य, २—ग्राम्याचल-प्रभावित गद्य, ३—प्रयोग-शिल्पीय गद्य और ४—मार्जित गद्य ।[2] 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग को भाषावैज्ञानिक व्याकरणिक और साहित्यिक—तीनो ही धरातल पर समझा जा सकता है । प्रकटत. विलग लगने वाले ये तीनो ही आधार वस्तुत. विलग न होकर किसी स्तर-विशेष पर परस्पर जुडे हैं । "मार्के की बात यह है कि साहित्य मे भाषा का अगी विवेचन उसका विशुद्ध साहित्यिक विवेचन ही है तथा अगरूप विवेचन भाषिकीय और व्याकरणिक ।"[3] प्रस्तुत मीमासा मे भाषा-प्रयोग की अध्ययन-यात्रा अंगरूप विवेचन से अगीरूप विवेचन के गन्तव्य तक पहुँचकर उसकी उपलब्धि को रेखांकित करने की है । 'नयी कहानी' के भाषागत प्रयोग का अध्ययन-विवेचन ध्वनिगत प्रयोग, शब्दगत प्रयोग, पदगत प्रयोग, वाक्यगत प्रयोग, शैलीगत प्रयोग और अर्थगत प्रयोग जैसे छह शीर्षको के अन्तर्गत विचार्य है ।

ध्वनिगत प्रयोग

'नयी कहानी' के ध्वनिगत प्रयोग भाषावैज्ञानिक और साहित्यिक—दो दृष्टियों से विवेच्य हैं । भाषावैज्ञानिक रूप मे प्रथमत' स्वरागम, स्वरलोप, स्वर-विपर्यय और स्वर-विकृति के, द्वितीयतः व्यजनागम, व्यजन-लोप, व्यजन-विपर्यय और व्यजन-विकृति के, तृतीयतः अकारण ही मुख-सौकर्यवश अनुनासिकता के और चतुर्थत. तारता (पिच), तीव्रता (इटेंसिटी) तथा भेदकता (टिम्बर) के प्रयोग हुए हैं ।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'कल्पना', अप्रैल १९६६, पृष्ठ ६२ ।
२. 'ज्ञानोदय,' मई १९६६, पृष्ठ ६३ ।
३. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी' की भाषा', 'कल्पना,' अगस्त-सितम्बर १९६६ (नवलेखन विशेषांक), पृष्ठ १७५ और १७६ ।

'नयी कहानी' की भाषा में हिन्दी के पूर्वी-पश्चिमी—दोनो ही रूपों तथा अनेक विभाषाओं के शब्द-रूपो का व्यवहार होने के कारण हिन्दी का निष्ठित-मार्जित रूप ज्यो-का-त्यों नहीं रह सका है। पंजाबी, बँगला, अँगरेजी आदि भाषा के शब्द-प्रयोगों की प्रचुरता ने भी हिन्दी के शब्दों को अपने-अपने सस्कार से प्रभावित किया है। ऐसे ही भाषिक व्यवहार से 'नयी कहानी' की भाषा में प्रभूत ध्वनिगत प्रयोग हुए है।

'नयी कहानी' के ध्वनिगत प्रयोग में स्वरागम के आदि, मध्य और अन्त तीनो ही रूप प्राप्त हैं। आदि स्वरागम में कही ह्रस्व 'इ' का आगम हुआ है तो कही ह्रस्व 'इ' एक और 'इ' के आगमवश 'ई' में परिवर्तित हो गया है। कही 'क्या' शब्द के 'क' और 'या' को वियुक्त कर पहले की तरह 'इ' का आगम करते हुए 'किया'[1] का प्रयोग कियागया है तो कही 'नही' के 'ह' व्यंजन का लोप करते हुए 'ए' का पूर्णतः आगम कर 'नेइ'[2] किया गया है। कही अँगरेजी का 'ड्रामा' 'इ' के स्वरागम से 'डिरामा'[3] हो गया है तो कही 'ब्लेक' 'बिलेक'।[3] 'हरख' के लिए 'हिरख',[4] 'घत' के लिए 'घेत',[6] पहले के लिए 'पेले',[7] 'बहन जी' के लिए 'बेणजी',[8] स्पिरिट' के लिए 'इसपिरिट'[9] तथा 'स्टेशन' तथा 'इसटीसन'[10] जैसे शब्दों के ध्वनि-प्रयोग आदि स्वरागम के ही उदाहरण हैं। 'इतना' का 'ईतना' प्रयोग मे भी आदि स्वरागम ही है।

मध्य स्वरागम के उदाहरण 'नमस्कार' के लिए 'नोमोस्कार',[11] 'कम' के लिए 'कोम',[12] 'एकदम' के लिए 'एकदोम',[13] बलभद्र के लिए 'बलभादर',[14]

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५४।
२. वही, पृष्ठ ६७।
३. वही, पृष्ठ ४६।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ १६३।
५. मोहन राकेश : 'नये बादल', पृष्ठ १४१।
६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४६।
७. नरेश मेहता : 'तथापि' पृष्ठ १८।
८. वही, पृष्ठ १८।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ८८।
१०. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४७।
११. वही, पृष्ठ ४७।
१२. वही, पृष्ठ ४७। १३ : वही, पृष्ठ ४८। १४ : वही, पृष्ठ १३।

'कचहरी' के लिए 'कचेरी',[1] 'होटल' के लिए 'होटिल',[2] 'अपना' के लिए 'अपाना',[3] 'सब्र' के लिए 'सबुर',[4] 'मुल्क' के लिए 'मुलुक',[5] 'अकल' के लिए 'अक्किल',[6] 'सरस्वती' के लिए 'सरोसती',[7] जैसे शब्दों के ध्वनि-प्रयोग हैं। यहाँ 'नमस्कार' मे 'न' और 'म' के बाद, 'कम' मे 'क' के बाद, 'एकदम' मे 'एकद' के बाद 'ओ' स्वर था; 'बलभद्र' मे 'बलभ' के बाद 'आ' था, 'कचहरी' में 'कच्' के बाद 'ए' का, 'होटल' में 'हो' के बाद 'इ' था, 'अपना' में 'अप' के बाद 'आ' का, 'सब्र' मे 'सब्' के बाद तथा 'मुल्क' में 'मुल्' के बाद 'उ' का, 'अक्ल' मे 'अक्' के बाद 'इ' का और 'सरस्वती' मे 'सर' के बाद 'ओ' का मध्यागम हुआ है।

अन्त्य स्वरागम का प्रयोग 'मत' के लिए 'मति',[8] 'बारह' के लिए 'बारो',[9] 'द्वार' के लिए 'द्वारे',[10] 'आग' के लिए 'आगि'[11] जैसे शब्दों में 'इ', 'ओ', 'ए' और 'इ' के अन्त्यागमवश हुआ है।

'नयी कहानी' की भाषा मे प्रायः आदि-स्वरलोप के उदाहरण प्राप्त होते हैं। 'थिर' के लिए 'थर',[12] 'हिसाब' के लिए 'हसाब',[13] 'पैसेंजर' के लिए 'पसिंजर',[14] 'गुम्बज' के लिए 'गम्बज',[15] 'खूबसूरत' के लिए 'खपसूरत'[16] जैसे प्रयुक्त शब्दों मे ध्वनि के आदि स्वर-लोपी प्रयोग ही हुए हैं।

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४६।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १५।
३. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ३२।
४. वही, पृष्ठ ६७। ५ : वही, पृष्ठ १२३।
६. वही, पृष्ठ १२२। ७ : वही, पृष्ठ १२२।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२७।
९. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४७।
१०. वही, पृष्ठ–११७।
११. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ६।
१२. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ २०।
१३. वही, पृष्ठ ६५।
१४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४८।
१५. सुरेश सिन्हा : 'कई आवाज़ों के बीच', पृष्ठ १३।
१६. वही, पृष्ठ ७१

इस भाषा में स्वरों का विपर्यय भी है। स्वर-विपर्यय में एक स्वर अपने स्थान को छोड़कर किसी अन्य व्यंजन के साथ जुड़ जाता है। 'हमारे' के लिए 'हामरे'[१], 'हमारा' के लिए 'हामरा'[२], 'कहेगा' के लिए 'केगा'[३], 'सुमिरन' के लिए 'सिमरन'[४], 'सिनेमा' के लिए 'सलीमा'[५], जैसे ध्वनि-प्रयोग स्वर-विपर्यय के उदाहरण हैं। 'हामरे' में 'हमारे' के 'म' के बाद आने वाला 'आ' स्वर विपर्यस्त होकर 'ह' के बाद आ गया है। 'हामरा' में भी यही हुआ है। 'कहेगा' में 'ह' से जुड़ा 'ए' विपर्यस्तः 'क' से जुड़ गया है तथा 'ह' का लोप हो गया है। 'सिमरन' में 'सुमिरन' के 'स' से जुड़े 'उ' स्वर का लोप हुआ है तथा 'म' से लगा 'इ' स्वर विपर्यस्त रूप में 'स' से संयुक्त हो गया है। 'सलीमा' में 'सिनेमा' का 'इ' स्वर विपर्यस्त होकर अपने रूप को दीर्घ (ई) कर 'ल' से मिल गया है।

'नयी कहानी' के ध्वनिगत प्रयोग में स्वर-विकृति के भी उदाहरण उपलब्ध हैं। स्वर-विकृति में प्रायः एक स्वर का दूसरे स्वर में परिवर्तन हो जाता है। 'चुप' के लिए 'चौप'[६], 'बायकाट' के लिए 'बैकाट'[७], 'मैनेजर' के लिए 'मनीजर'[८], 'अस्पताल' के लिए 'इसपताल'[९], 'रेलवे' के लिए 'रैलवई'[१०], 'फिर' के लिए 'फेर'[११], 'पैसा' के लिए 'पइसा'[१२], जैसे प्रयोग इस प्रयोग की सुन्दर निदर्शनाएँ हैं। 'नयी कहानी' की भाषा में स्वर-विकृति के उदाहरण स्वरागम, स्वर-लोप तथा स्वर-विपर्यय की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। स्वर-विकृति के उदाहरण बँगला और पंजाबी के प्रभाववश तो आये ही हैं, मार्जित

---

१. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ ७८।
२. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ५.।
३. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १७।
४. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ४०।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १६।
६. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ २३
७. वही, पृष्ठ ८५।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १२।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२६।
१०. वही, पृष्ठ ६८।
११. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १४।
१२. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ५१।

हिन्दी तथा तत्सम अँगरेजी शब्दों के आंचलिक और गँवई रूप में प्रयुक्त होने के कारण भी विकसित हुए हैं।

'नयी कहानी' की भाषा में स्वरागम की तरह व्यंजनागम के प्रयोग में 'ओटे' की जगह 'ओटले'[1], 'जगन्नाथी' की जगह 'जगरनाथी'[2], 'वेला' की जगह 'विरियाँ'[3], 'समाप्त' के लिए 'समापत्तन'[4], 'सर्टीफिकेट' के लिए 'सार्टिकफिटिक'[5], 'वज्र' के लिए 'बज्जर'[6], 'मंगटीका' के लिए 'मगटिक्का'[7], 'बजा दिया' के लिए 'बजाय दिया'[8], 'चीज' के लिए 'चिजवा,'[9] जैसे प्रयोग हुए हैं। यहाँ 'ओटले', 'विरियाँ', 'समापत्तन', 'मगटिक्का', 'चिजवा' तथा 'बजाय दिया' में अन्त्य व्यंजनागम और 'जगरनाथी', 'बज्जर' तथा 'सार्टिकफिटिक' में मध्य व्यंजनागम के ध्वनि-प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

व्यंजन-लोप में एक या एकाधिक व्यंजनों का लोप हो जाता है। कभी पूर्ण व्यंजन का लोप होता है तो कभी संयुक्त व्यंजन का। 'नयी कहानी' में 'विश्वनाथ' के लिए 'बिश्नाथ'[10], 'वैद्यनाथ' के लिए 'बैदनाथ'[11], 'प्लेटफार्म' के लिए 'लाटफारम'[12], 'स्थान' के लिए 'थान'[13], 'साहब' के लिए 'साब'[14], 'चहारदीवारी' के लिए 'छाल्दीवारी'[15], 'हेलीकाप्टर' के लिए 'हलीकापट'[16],

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५०।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ २७।
३. वही, पृष्ठ ६८।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४४।
५. वही, पृष्ठ ४७।
६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२६।
७. वही, पृष्ठ १६४।
८. वही, पृष्ठ १७२।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७।
१०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ४६।
११. वही, पृष्ठ ४६।
१२. वही, पृष्ठ १४६।
१३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ २०।
१४. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ९२
१५. वही, पृष्ठ ७५।
१६. वही, पृष्ठ ७०।

जैसे व्यंजन-लोप के ध्वनि-प्रयोग हुए हैं। उपर्युक्त दृष्टान्तों में 'लाटफारम', 'थान' और 'छालदीवारी' में आदि व्यंजन का, 'विश्नाथ', 'वैदनाथ' और 'साव' में मध्य व्यंजन का तथा 'हलीकापट' मे अन्त्य व्यजन का लोप हुआ है।

विपर्यय का अर्थ है उलट जाना। उच्चारण में व्यंजनों का क्रम उलट जाना ही व्यंजन-विपर्यय है। व्यंजन-विपर्यय कभी बोलने की शीघ्रतावश होता है तो कभी भ्रान्त श्रवणवश अथवा अनुकरण की अपूर्णता-वश। इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी है। कभी-कभी मन वागिन्द्रिय की उच्चारण-प्रक्रिया से पूर्व ही अगली ध्वनि पर चला जाता है, जिससे पहली ध्वनि पीछे पड़ जाती है और बाद की ध्वनि पहले मुखर हो उठती है। 'नयी कहानी' में 'रिक्शागाड़ी' की जगह 'रिस्कागाड़ी'[1] तथा 'अकचकाया' की जगह 'अचकचाया'[2] जैसे व्यजन-विपर्यय के ध्वनि-प्रयोग हुए हैं।

व्यजन-विकृति का अर्थ एक व्यंजन का दूसरे व्यंजन में रूपान्तरण है। व्यंजन-विकृति दो प्रकारों की होती है। कही वर्ण अपना उच्चारण-स्थान बदल लेता है और कही वह पूर्णतः अपने को दूसरे वर्ण मे परिवर्तित कर देता है। 'नयी कहानी' में पहली कोटि की व्यंजन-विकृति के उदाहरण 'मरन'[3], 'कारन'[4], 'लास'[5] जैसे शब्द हैं, जो 'मरण', 'कारण' और 'लाश' के लिए प्रयुक्त हैं। इनमें 'ण' व्यंजन-ध्वनि 'न' मे तथा 'श' व्यंजन-ध्वनि 'स' में विकृत हो गयी है। दूसरी कोटि की व्यंजन-विकृति के उदाहरण 'रिहर्सल'[6], के लिए 'लिहरसल' 'कलेजा' के लिए 'करेजा'[7], 'कागज' के लिए 'कागत'[8], 'सनम' के लिए 'सलम'[9], 'सिनेमा' के लिए 'सलीमा'[10], 'मुनीम' के लिए 'मुड़ीम'[11],

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७।
२. वही, पृष्ठ ४२।
३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ६७।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ४४।
५. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ७२।
६. वही, पृष्ठ १२०।
७. वही, पृष्ठ ६६।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ४५।
९. वही, पृष्ठ ८७।
१०. वही, पृष्ठ ८७।
११. वही, पृष्ठ ११३।

'चाय' के लिए 'चाह'[1], 'इनाम' के लिए 'इलाम'[2], 'शायद' के लिए 'शायत'[3], 'सरकस' के लिए 'सरकल'[4], 'नीलकंठ' के लिए 'लीलकंठ'[5], 'टिकट' के लिए 'टिकस'[6], 'खूबसूरत' के लिए 'खपसूरत'[7], 'जवाहर लाल' के लिए 'जमाहिर लाल'[8], 'हँसते' के लिए 'हँछते'[9], 'ऐसे' के लिए 'ऐछे'[10] जैसे ध्वनि-प्रयोग हैं। ध्वनि के ये समग्र प्रयोग 'नयी कहानी' की भाषा को दैनिक बोलचाल और जन-जीवन से जोड़ते तथा यथार्थ का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'नयी कहानी' की भाषा मे ध्वनि के तीनो भौतिक गुण—तारता, तीव्रता और भेदकता के प्रयोग हुए हैं। तारता का सम्बन्ध ध्वनि की कम्पनावृत्ति से होता है। गीत गाने के सदर्भ में जिसे 'रेघाना' कहते हैं, वह एक ही ध्वनि की कम्पनावृत्ति है। बलवारी भगत की गान-प्रक्रिया मे—'जागिये ब्रजराज कुँअर'''कमल-कुसुम फू-ऊ ले।[11] अथवा भृंगलता भू-ऊ ले।[12] अथवा 'बोलत वनरा—आ ई'''राँभति गो खरिकन में बछरा हित धा—आ ई[13] में स्वर-ध्वनि की कम्पनावृत्तिवश तारता है। यह तारता हिरामन के गले में पैदा होने वाली कँपकँपी से उभरने वाले गीत—

"हूँ-ऊँ-ऊँ-रे डाइनियाँ मइयो मोरी-ई-ई,

नोनवाँ चटाई काहे नाहि मारलि सौरी घर-अ-अ ॥[14]" के 'ऊ', 'ई' और 'अ' की आवृत्ति मे द्रष्टव्य है। कम्पन की ऐसी आवृत्ति 'चोर' को

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : ठुमरी', पृष्ठ ११४।
२. वही, पृष्ठ १३८।
३. मोहन राकेश : 'नये बादल', पृष्ठ १४५।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १६।
५. वही, पृष्ठ २०।
६. वही, पृष्ठ १८२।
७. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ७१।
८. वही, पृष्ठ ७१।
९. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ १७६।
१०. वही, पृष्ठ १७८।
११. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ३८।
१२. वही, पृष्ठ ३८।
१३. वही, पृष्ठ ३८।
१४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३५।

'चो-ओ-र'[1] पुकारने में भी हुई है। यहाँ 'ओ' में तारता ही है, तीव्रता नहीं, क्योंकि 'अ' पर उसका अवरोध हो जाता है।

तीव्रता का अर्थ ध्वनि का जोर है। इसका सबन्ध कम्पन के विस्तार से है। यह कम्पन-विस्तार जिस अनुपात में फैलता है तीव्रता भी उसी अनुपात में बढ़ती है। ध्वनि के दोनों गुण तारता और तीव्रता परस्पर पूर्णतः विलग हैं। तारता में ध्वनि की आवृत्ति ध्यातव्य है। फलतः इसका स्थान गीतों के गायन मे अधिक है। पर तीव्रता में ध्वनि का कम्पन-विस्तार द्रष्टव्य है। अतः इसका प्रयोग पुकार के शब्दों, सम्बोधनों में होता है। 'नयी कहानी' में तीव्रता के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। पुकार की 'रे मो-ह्-ना-रे-हे'[2], हथिया नक्षत्र की आगमनी गाने वाली पुरवैया हवा की हिएएएए हो ओ ओ ओ ओ',[3] कौवे की 'काँ आँ आँ आँ'[4] तथा बूढ़ी की आवाज 'वह ऊ ऊ ऊ'[5] में ध्वनि की यही तीव्रता है। उक्त सारी ध्वनियाँ प्लुत की हैं, जिनसे तीव्रता पुष्ट और प्रभाव-सम्पन्न होती है।

'नयी कहानी' की भाषा मे भेदकता के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। भेदकता का अर्थ विभिन्न ध्वनियो के वैभिन्न्यान्तर का स्पष्टीकरण है। यह कथाकारों की सूक्ष्म दृष्टि की परिचायिका है। देवेन्द्र नाथ शर्मा के शब्दो में "वीणा या सितार तबले या मृदग, लकड़ी या लोहे की ध्वनि मे जो अन्तर है, उसका पार्थक्य भेदकता की सहायता से ही जाना जा सकता है।"[6] 'नयी कहानी' की भाषा मे मनुष्य की विभिन्न मुद्राओं मे मुखर ध्वनियों, विभिन्न पशुओं की विभिन्न ध्वनियो, विभिन्न पक्षियो की विभिन्न ध्वनियो तथा विभिन्न पदार्थो-यत्रो की विभिन्न कामो मे उपयोग आने वाली विभिन्न ध्वनियो को बड़ी बारीक भेदकता के साथ उजागर किया गया है।

'नयी कहानी' में शुद्ध साहित्यिक रूप मे विविध ध्वनियों का सूक्ष्म, सटीक तथा सार्थक चित्रण किया गया है। पदार्थो में वाद्य-यन्त्र तथा विविध कार्यों में प्रयोग में आने वाले उपकरण और यातायात के साधनों की ध्वनियों

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ८१।
२. वही, पृष्ठ २२।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ७१।
४. वही, पृष्ठ ११७।
५. वही, पृष्ठ १०७।
६. देवेन्द्र नाथ शर्मा : 'भाषाविज्ञान की भूमिका', पृष्ठ २०७।

का सूक्ष्म, सटीक, अस्तित्वधर्मी और सार्थक चित्रण हुआ है। 'नयी कहानी' में वाद्य-यंत्रों में मृदंग की ध्वनि 'धा-तिंग, धा-तिंग'[1], नगाड़े की ध्वनि 'घन-घन-घन घड़ाम'[2] के प्रयोग हुए हैं तो घटी की 'टुनुर-टुनुर'[3] कर्णप्रिय ध्वनि, भाथी की 'सोय-सोंय'[4] विकृत ध्वनि, फाल पीटने की 'ठाँ-ठाँ-ठुन्न'[5], ध्वनि, कठौते के पानी मे डाले गये फाल की 'छुं-छुं-छूं-ऊँ - गुडर्रर'[6] ध्वनि, निहाई पर रखे जाने वाले फाल की 'ठनाग-ठनाग-ठनाग'[7] ध्वनि, मशीन वाली धौंकनी की 'फू-ऊ-ऊ घर्र-र-र'[8] ध्वनि, हथौड़े की 'ए-ठाय। ए-ठाय। ए-ठाय'[9], ध्वनि तथा हथौड़े के चूक जाने की 'ए-ठर्रक'[10] ध्वनि के भी प्रयोग हुए हैं। कही आटे की चक्की की 'पुक्-पुक्'[11] ध्वनि है तो कहीं 'झूठे फायर' की 'ट् ट्ठाँय'[12] *ध्वनि और कही 'प्रेस टेलीग्राम' 'ट्रा-ट्रा-टक्का-टक्का-ट्रक-ट्रा'*[13] *की ध्वनि।* इस भाषा में यातायात के साधनो मे हवाई जहाज की 'गो-ओ-ओ-ओ'[14] ध्वनि, जहाज के भोंपे की 'भो-ओं-ओं'[15] ध्वनि, गाडी के खुलने की 'छि-ई-ई-छक्क'[16] तथा घटही गाड़ी की 'सी-ई-ई-ई'[17] ध्वनि तक ध्वनित की गयी है। एक ओर व्यापारी नाव में ऊँट के चढाये जाने की 'उई···र···र···र छप्···

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १०।
२. वही, पृष्ठ १४६।
३. वह, पृष्ठ १५६।
४. वही, पृष्ठ १०।
५. वही, पृष्ठ ६१।
६. वही, पृष्ठ ६१।
७. वही, पृष्ठ ६८।
८. वही, पृष्ठ १०६।
९. वही, पृष्ठ १०६।
१०. वही, पृष्ठ १०६।
११. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ ५८।
१२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ३८।
१३. वही, पृष्ठ ७४।
१४. वही, पृष्ठ ७२।
१५. वही, पृष्ठ ५१।
१६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १४६
१७. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४६।

छप्'[1] ध्वनि, बैलों की 'हुँक-हुँक'[2] ध्वनि, बकरे की 'बो-बो'[3] ध्वनि, गाय की 'उ-याँ-याँ'[4] ध्वनि, कुत्ते की 'बुफ-बुफ'[5] तथा 'कूँ-कूँ'[6] ध्वनि, भालू के नाच की थब्बड-थब्बड'[7] गति-ध्वनि, पाडे के नथुने की 'फोंस-फोंस'[8] सुर-ध्वनि के प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर चील की टिहकारी की 'टि···ई···टि···हि...क'[9] ध्वनि, चिड़ियों के उडने की 'फुर्र र र र र र'[10] ध्वनि, कौवे की 'काँ-आँ-आँ-आँ'[11] कह-का-काँ-आँ-आँ-काँ-याँ-याँ-कु-र्-का-कॅका-केका'[12] ध्वनि, तीसरी ओर बाढ के पानी की 'छह-छह'[13] ध्वनि कोसी मैया के नाचने की 'छम्मक-कटछम, छम्मक-कट-छम'[14] ध्वनि, चौथी ओर आदमी के उत्साह की 'ले-ले-ले-ए-हे-य'[15] ध्वनि, आदमी के नाचने की 'किड-किड-किर्री'[16] ध्वनि, मनुष्य की नापसंदगी की 'ऊँ-हूँ-हूँ-हूँ'[17] ध्वनि, पागल के खाने की 'चापुड-चापुड'[18] ध्वनि, आदमी के पीने की 'गटर-गटर'[19] ध्वनि, हँसने की 'हँ-ह-ह,'[20] ध्वनि, प्यारा

---

१. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया' (द्वितीय संस्करण, ६६), पृष्ठ ३१।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ १२५।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७६।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ६५।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४३।
६. वही, पृष्ठ ५८।
७. वही, पृष्ठ ५५।
८. वही, पृष्ठ ३१।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२।
१०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १५।
११. वही, पृष्ठ ११८।
१२. वही पृष्ठ ११३।
१३. वही, पृष्ठ ७२।
१४. वही, पृष्ठ ७४।
१५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ १३१।
१६. वही, पृष्ठ १४४।
१७. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १०६।
१८. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ १२५।
१९. वही, पृष्ठ ८७।
२०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १५

लगने की 'घः घः'[1] ध्वनि, उबकाई आने की 'उयेह्'[2] ध्वनि, खुशामद की 'हें-हें'[3] ध्वनि, मना करने की 'सि सि'[4] ध्वनि, पक्षी उड़ाने की 'हा-स्-स'[4] ध्वनि, लुटेरे-लठैतों की 'हो-हो-हो-हो'[5] की सम्मिलित जयध्वनि, मारने की 'तड-तड़ाक-तड़-तड़ाक्'[6] ध्वनि और पाँचवी ओर बच्चे की 'डा-आ-डी-ई। धी-धी-ए-ए'[8] की लार के साथ निकलने वाली ध्वनि और बच्चे के पेट पर ओठ रखकर उसे खेलाने के क्रम में 'ब-ब-ब-बा'[9] उचारने वाली ध्वनि के प्रयोग हुए हैं।

'नयी कहानी' में ध्वनियों के ऐसे भाषिक प्रयोग से उनकी निरर्थकता को सार्थकता मिली है। इनमें से अधिकांश ध्वनियाँ प्रायः हिन्दी भाषा में अबतक मूर्त्त नहीं हो पायी थी। इनके प्रयोग से विभिन्न ध्वनियों की सूक्ष्म भेदकता तो निर्दिष्ट होती ही है, साथ ही ध्वनि उत्पन्न होने के समय की पृष्ठभूमि, मनःस्थिति आदि का भी सम्यक् परिचय प्राप्त होता है।

इस भाषा में अनुकरणमूलक क्रियाओं और क्रिया-विशेषणों के प्रयोग में भी ध्वनिगत वैशिष्ट्य लक्षित होता है। सच तो यह है कि अनुकरणमूलक शब्द ध्वनि-सादृश्य के आधार पर ही निर्मित होते हैं। इन शब्दों की ध्वनियों से अर्थबोध को गहरी उद्भिवित प्राप्त होती है। 'नयी कहानी' में विविध रूपों में प्रयुक्त ध्वनियाँ अपना अनूठा श्रौत बिम्ब भी निर्मित करती हैं। ये ध्वनियाँ साधारण शब्दों की अपेक्षा एक-एक रेशे को उजागर करने में समर्थ हैं। 'नयी कहानी' के ऐसे भाषिक प्रयोग पात्र और कथाकार दोनों ही की भाषा में मिलते हैं।

इन सबसे इतर 'नयी कहानी' की भाषा में अकारण अनुनासिक ध्वनि के भी प्रयोग हुए हैं। इनका महत्त्व भाषावैज्ञानिक और साहित्यिक दोनों ही

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ २५।
२ वही, पृष्ठ १०६।
३. वही, पृष्ठ १४४-१४५।
४. वही, पृष्ठ १४३।
५ वही, पृष्ठ २७।
६. वही, पृष्ठ ३६।
७. वही, पृष्ठ ६८।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ३०।
९. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ २०।

दृष्टियों से है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से इन ध्वनिगत प्रयोगों के मूल में मुख-सुख का सिद्धान्त है और साहित्यिक दृष्टि से व्यक्त चरित्र की विशेषता का उपस्थापन। 'दतुअन' के लिए 'दँतुअन'[1], 'बिरिया' के लिए 'बिरियाँ'[2], 'मनुआ' के लिए 'मनुआँ'[3], 'लहसनवा' के लिए 'लहसनवाँ'[4], 'उपन्यास' के लिए 'उपनियाँस'[5], 'प्लौटिंग' के लिए 'प्लौंटिंग'[6], 'साभी' के लिए 'साँभी'[7], जैसे व्यवहृत शब्द अकारण अनुनासिक ध्वनि-प्रयोग के दृष्टान्त हैं। यह अनुनासिकता अ, आ, इ, ओ जैसे स्वरों में तो आयी ही है, 'नयी कहानी' में एक स्थल पर उद्धृत गीत-विशेष में भी व्याप गयी है—

"हँर कलीं में मों रहीं हैं भौंरें का मँधुर गाँन
आँज मैं जगाँ रहाँ हूँ सुँप्त ताँन गुँप्त गाँन
गुन गुन गुन मँधुर मँधुर
अँमर मेंरें गीत सुनो
सँमर कों हों जाँओ तैंयार दँश के जँवान।"[8]

इस गीत मे अनुनासिकता का व्यवहार प्रयोगात्मक है, जिससे गीत के अतिशय सगीत-धर्म के प्रति व्यंग्य व्यक्त होता है।

शब्दगत प्रयोग

जब हम यह कहते हैं कि "भाषा में हुआ परिवर्त्तन जनता की जरूरतों और आदतों में आये परिवर्त्तन को सूचित करता है"[9] तब हमारा प्रयोजन भाषा की शब्द-सम्पत्ति में हुए परिवर्तनों मे ही होता है। 'नयी कहानी' के कहानीकारो ने यथार्थ के बहुत निकट जाकर बड़े साहस के साथ व्यक्ति और लोक

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ५१।
२. वही, पृष्ठ ६८।
३. वही, पृष्ठ १२३।
४. वही, पृष्ठ १३६।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १३६।
६. वही, पृष्ठ १४०।
७. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ २१।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १४६।
९. चार्ल्स मोरगेन : 'द राइटर एँड हिज वर्ल्ड' (मैकमिलन एँड कम्पनी, लंडन, १९६१) पृष्ठ ५७।

दोनों ही स्तरों पर शब्दों के ऐसे परिवर्तित रूपों को प्रयोग के धरातल पर प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रयोग के स्तरों से अपूर्व सामर्थ्य वाले शब्दों का भी उद्धार किया है; साथ ही सन्दर्भ और कथ्य के अनुरूप शक्ति-भर औचित्य का निर्वाह करते हुए शब्द प्रयोग किये हैं।

'नयी कहानी' में शब्दगत प्रयोग पर १—भाषावैज्ञानिक, २—व्याकरणिक और ३—साहित्यिक दृष्टि से विचार किया जा सकता है। भाषावैज्ञानिक दृष्टि के अन्तर्गत एक ओर 'नयी कहानी' में 'तद्भव' शब्दों और '[illegible]' के शब्दों के प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर अंग्रेजी शब्दों, मिश्र अंग्रेजी शब्दों, हिन्दीतर भारतीय भाषाओं के शब्दों, मिश्र हिन्दी शब्दों तथा आंचलिक शब्दों के। व्याकरणिक दृष्टि से 'नयी कहानी' के शब्द-प्रयोग प्रधान शब्द-भेद, सहायक शब्द-भेद और विस्मयादिबोधक शब्द-भेद के अन्तर्गत सीमाबद्ध हैं। प्रधान शब्द-भेद के अन्तर्गत विशेषण के समासमूलक प्रयोग, विशेषण-प्रयोग, क्रिया-प्रयोग और क्रिया-विशेषण-प्रयोग द्रष्टव्य हैं तो सहायक शब्द-भेद के अन्तर्गत कारक, उपसर्ग और निपात के प्रयोग तथा विस्मयादिबोधक के अन्तर्गत विभिन्न मनोभाव-द्योतक शब्दों के प्रयोग। साहित्यिक दृष्टि से मूर्त-अमूर्त शब्दों के प्रयोग, हलवाई, बढ़ई, सुनार आदि के विशेष वृत्तिगत शब्दों के प्रयोग, कहानीकारों के व्यक्तिगत और सम्मोही (पेटरिट, शब्दों के प्रयोग, अपशब्दों के प्रयोग, अभिजात शब्दों के प्रयोग और अन्ततः देशगीय—पात्रीय शब्दों के प्रयोग विचार्य हैं।

कटवाँ शब्द-प्रयोग का अर्थ अपने-आप में पूर्ण शब्द को काट-छाँटकर छोटा बनाना है। इस प्रयोग-विधि में शब्दों के किनारे तराश कर उन्हें संक्षिप्त किया जाता है। भाईदयाल जैन के शब्दों में "...शब्द-शरीर के लिए शब्दों को काटकर छोटे शब्द बनाना एक उपविधि या सहायक विधि है। ऐसे शब्दों को कटवाँ (क्लिप्ट) शब्द कहते हैं। जैसे—रामचन्द्र को राम, मोटरकार को मोटर या कार कहना।"[1] कटवाँ शब्दों के मूल में दो उद्देश्य कार्यरत होते हैं। प्रथमतः तो ऐसे प्रयोग से अंश से ही पूर्ण का ज्ञान हो जाता है। द्वितीयतः इसमें प्रयास-लाघव सक्रिय रहता है। 'नयी कहानी' की भाषा में कटवाँ शब्दों के प्रयोग के उदाहरण निम्नलिखित वाक्यों में द्रष्टव्य हैं—

१—आपको 'एक्जाम्स' ही बताएंगे, कौन किसके सिर से फाँद जाता है।[2]

---

१. भाईदयाल जैन : 'हिन्दी शब्द रचना', पृष्ठ १८०।
२. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ २७।

२—'नोट्स' कालेज में लेती आइए, वहीं ले लूँगा ।[1]

३—तुम्हें 'फोन' नहीं करना चाहिए था ।[2]

४—'टाई' की नॉट ठीक करते हुए कुन्दन आदेश देता जा रहा था ।[3]

उपर्युक्त वाक्यों में 'एक्जाम्स', 'नोट्स', 'फोन' और 'टाई' क्रमशः एक्जामिनेशन, क्लासनोट्स, टेलीफोन और नेक्टाई के लिए प्रयुक्त हैं । कटवाँ शब्दों के प्रयोग के प्रचुर उदाहरण अँगरेजी शब्द-प्रयोग में ही प्राप्त है ।

'नयी कहानी' की भाषा में ओम् शैली के शब्दों के भी प्रभूत प्रयोग हुए है । ओम् शैली के शब्द सांकेतिक होते हैं । अँगरेजी में ऐसे शब्दो को 'एब्रीविएशन' कहते हैं । संस्कृत में भी इस विधि से भी शब्द बनते रहे हैं । इसीलिए भाईदयाल जैन का विचार है कि "यह विधि उतनी ही पुरानी है, जितना पुराना 'ॐ' (ओम्) शब्द है ।"[4] इस सांकेतिकता से पाँच-सात शब्दों को संक्षेप में एक शब्द के द्वारा अभिव्यक्त कर दिया जाता है । धीरे-धीरे संकेत ही रूढ़ हो जाता है और उसके पूरे अर्थ का परिचय कम होने लगता है । इस दृष्टि से अँगरेजी मे इन्हें 'एक्रोस्टिक वर्ड् स' भी कहते हैं । 'नयी कहानी' में इस शैली के अँगरेजी शब्दों का भी अधिकाधिक व्यवहार हुआ है । इस शैली में हिन्दी शब्द प्राय: नाम के लिए प्रयुक्त हुए हैं—

१—सु० को इसीलिए मुझसे शिकायत है ।[5]

२—सु० मा० की याद आती है ।[6]

३—और इतरा कर कहती है—मा० जी ।[7]

४—वैसे बी० जितनी सहज कोई नही ।[8]

५—रा० को गीत लिखने की तकनीक समझायी थी ।[9]

---

१. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ २७ ।
२. कृष्ण बलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ ५६ ।
३. मन्नू भंडारी : 'एक प्लेट सैलाब', पृष्ठ ६ ।
४. भाईदयाल जैन : 'हिन्दी शब्द-रचना', पृष्ठ १८३ ।
५. भारत रत्न भार्गव : 'सतरें जो डायरी न बन सकीं', 'ज्ञानोदय', फरवरी '६६ पृष्ठ ८१ ।
६. वही, पृष्ठ ८२ ।
७. वही, पृष्ठ ८२ ।
८. वही, पृष्ठ ८२ ।
९. वही, पृष्ठ ८४ ।

६—बुआ ने मेरे हाथ से रोल न० लेकर बताया था।[1]

७—रिटायर होने आये, पर बाबूजी अभी एल० डी० सी० है।[2]

८—एन० ने अच्छा ही किया जो पी० को छूट कर दिया।[3]

९—दोषी एस० है। उसे ऐसा काम नही करना चाहिए था कि एन० के बाहर जाने पर पी० से आँखें लड़ा बैठे और एन० का पारा ऐसा चढ़ा दे कि वह पी० को मौत के घाट उतार दे।[4]

१०—मि० सेन हकला-से गये।[5]

११—डी० एम० को फोन कर दो।[6]

१२—पी० ए० ने पढना शुरू किया।[7]

१३—पाँच हजार ई० पू० से लेकर अब तक...।[8]

१४—जी नही, ख।[9]

१५—बदलू पाण्डेय ने उसे बी० डी० ओ० से मिलवा दिया।[10]

इन उदाहरणो के अतिरिक्त 'एफ० ए०'[11], 'एम० ए०'[12], 'एम० बी०बी० एस०'[13] और 'ओ०के०'[14] जैसे ओम् शैली केशब्दो के प्रयोग भी 'नयी कहानी' की भाषा मे हुए है। ऐसे शब्दो के प्रयोग से प्रचलित यथार्थ भाषा का पुट, तथा अकृत्रिम और सजीव शब्द-सौन्दर्य 'नयी कहानी' की भाषा को प्राप्त हुआ है। ये प्रयोग इस भाषा की अद्यतनता (अप-टु-डेटनेस) के पुष्ट प्रमाण हैं। नयी

---

१ ओंकारनाथ श्रीवास्तव : 'काल सुन्दरी', पृष्ठ १३७।

२. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ५०।

३. वही, पृष्ठ ११४।

४. वही, पृष्ठ ११४।

५. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ३६।

६. वही, पृष्ठ ८७।

७. वही, पृष्ठ ८४।

८. कृष्ण बलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ ११२।

९. डॉ० बच्चन सिंह : 'मेहरायो पुल', 'सारिका', अप्रैल '६८, पृष्ठ ४३।

१०. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ८१।

११ ओंकार नाथ श्रीवास्तव : 'कालसुन्दरी', पृष्ठ २८।

१२. वही, पृष्ठ २८।

१३. वही, पृष्ठ २६।

१४. कृष्ण बलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ ११२।

कहानी' की भाषा स्वप्नजीवी अतीत के प्रति सम्मोह नहीं रख कर वर्तमान की जीवंतता से भविष्य का पंथ प्रशस्त करती है।

अँग्रेजी शब्दों के प्रयोग में 'कंटोनमेंट', 'कॉरीडोर'[2], 'क्लोज-अप'[3], 'नम्बर'[4], 'जोकर'[5], ब्लॉक'[6], 'नाइट रजिस्टर'[7], 'मैडम'[8], 'हिल स्टेशन'[9] 'स्नोफॉल'[10], 'रेलिंग'[11], 'लॉन'[12], 'टैरेस'[13], 'परकोलेटर'[14], 'पैरेम्बुलेटर'[15], 'पिकनिक'[16], 'बार'[17], 'बॉलरूम'[18], 'हैडलाइट'[19], 'आर्मचेयर'[20], 'लॉस'[21], 'शेड'[22], 'प्रेयर हाल'[23], 'कैंडलब्रियम'[24], 'प्रेयरबुक'[25], 'हिम्न बुक'[26],

---

१. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १७४।
२. वही, पृष्ठ १६५।
३. वही, पृष्ठ १६६।
४. वही, पृष्ठ १६६।
५. वही, पृष्ठ १६६।
६. वही, पृष्ठ १६६।
७. वही, पृष्ठ १६६।
८. वही, पृष्ठ १६७।
९. वही, पृष्ठ १६७।
१०. वही, पृष्ठ १६७।
११. वही, पृष्ठ १६७।
१२. वही, पृष्ठ १६७।
१३. वही, पृष्ठ १६७।
१४. वही, पृष्ठ १६८।
१५. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ ६।
१६. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १६९।
१७. वही, पृष्ठ १६९।
१८. वही, पृष्ठ १६९।
१९. वही, पृष्ठ १६९।
२०. वही, पृष्ठ १७०।
२१. वही, पृष्ठ १७०।
२२. वही, पृष्ठ १७४।
२३. वही, पृष्ठ १७४।
२४. वही, पृष्ठ १७७।
२५. वही, पृष्ठ १७७।
२६. वही, पृष्ठ १७७।

'स्टूल'[१], 'लंच'[२], 'किचिन'[३], 'सिमेट्री'[४], 'कॉफी हाउस'[५], 'पर्स'[६], 'को-एजुकेशन'[७], 'स्ट्रीट'[८], 'प्रोग्राम'[९], 'फंड'[१०], 'लाइट'[११], 'काउंटरमैन'[१२], 'बुश्शर्ट',[१३] 'सेफ्टीपिन'[१४], 'ग्लासटैंक'[१५], 'ममी'[१६], आइसबर्ग'[१७], 'कोरस'[१८], 'टैरीलिन'[१९], 'डेकोरान'[२०], 'फंड'[२१], 'डिमोक्रेसी'[२२], 'आर्टिस्ट'[२३], 'पिल्स'[२४], 'रॉड'[२५], 'रॉलिंग शटर्स'[२६], 'नेपाकिन'[२७], 'वेटर'[२८], 'बेड'[२९], 'नोट्स'[३०],

---

१. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १७७ ।
२. वही, पृष्ठ १७७ ।
३ वही, पृष्ठ १७६ ।
४. वही, पृष्ठ १७६ ।
५. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश, पृष्ठ ५४ ।
६. सुधा अरोड़ा : 'बगैर तराशे हुए', पृष्ठ १४ ।
७ वही, पृष्ठ १५ ।
८. वही, पृष्ठ ८२ ।
९. वही, पृष्ठ ८२ ।
१०. वही, पृष्ठ ८३ ।
११. वही, पृष्ठ ८३ ।
१२. वही, पृष्ठ १७५ ।
१३. वही, पृष्ठ १७४ ।
१४. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ६६ ।
१५ वही, पृष्ठ ६
१६. वही, पृष्ठ १३ ।
१७. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ८६ ।
१८. वही, पृष्ठ १०६ ।
१९. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ३९ ।
२० वही, पृष्ठ ३९ ।
२१. वही, पृष्ठ ३९ ।
२२. वही, पृष्ठ ३८ ।
२३. वही, पृष्ठ ३६ ।
२४. वही, पृष्ठ ३६ ।
२५ वही, पृष्ठ २६ ।
२६. वही, पृष्ठ २६ ।
२७. वही, पृष्ठ २४ ।
२८. वही, पृष्ठ २४ ।
२९. वही, पृष्ठ २४ ।
३०. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ११ ।

'प्लेयर'[1], 'स्लाइड'[2], 'पोज़'[3], 'स्कार्फ'[4], जैसे शब्दों के प्रयोग हुए हैं। यहाँ ऐसे शब्द-प्रयोग विषय-निर्वाह (थीम), भाव-रंगण (मूड्स) के व्यंजन और प्रयोगकर्त्ता के संस्कार—तीनो ही दृष्टियों से औचित्यपूर्ण है। पर इनका अतिरेक विविध-क्षेत्रीय पाठकों को खलता भी है।

इस भाषा में अँग्रेजी शब्दो के विकृत प्रयोग भी हुए हैं। ऐसे अँग्रेजी शब्द, जो जन-जीवन में अत्यन्त प्रचलित हो गये हैं, दैनिक उपयोग से बहिष्कृत नही किये जा सकते। देहात की अपढ़-अशिक्षित तथा अँगरेजी से सर्वथा अपरिचित जनता ने भी दैनिक बोल-चाल मे अँग्रेजी शब्दों का व्यवहार किया है। पर ये शब्द उनके द्वारा प्रयुक्त होकर अपने मूल तत्सम रूप से सर्वथा विकृत हो गये हैं। इस दृष्टि से 'नयी कहानी' में 'फिलिंग इस्टार'[5], 'डरामा'[6], 'टी साट'[7], 'पाट'[8], 'टिसन'[9], 'डलेवरी'[10], 'बालिस्टर'[11], 'लौन सलीमा'[12], 'टसलेसन'[13], 'नौमेल'[14], (पुरस्कार), 'जकसेन'[15], 'औट'[16], 'परमानंटी'[17], 'इस्पेसल'[18], जैसे विकृत शब्दो के प्रयोग हुए हैं।

---

१. डॉ० सुरेश सिन्हा : *'कई आवाजों के बीच'*, पृष्ठ २६।
२. वही, पृष्ठ २२।
३. वही, पृष्ठ २२।
४. वही, पृष्ठ २२।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७
६. वही, पृष्ठ ९३।
७. वही, पृष्ठ ९३।
८. वही, पृष्ठ ९३।
९. वही, पृष्ठ १०२।
१०. वही, पृष्ठ १०४।
११. वही, पृष्ठ १०६।
१२. वही, पृष्ठ १२५।
१३. वही, पृष्ठ १४३।
१४. वही, पृष्ठ १४३।
१५. वही, पृष्ठ १६७
१६. वही, पृष्ठ १०१
१७. वही, पृष्ठ ४४।
१८. वही, पृष्ठ ४५।

'रामनगर' के लिए 'नामलगर'[1], 'लापता' के लिए 'लापता'[2], 'इनाम' के लिए 'इलाम'[3], 'नाटक' (नौटंकी) के लिए 'नौटंगी'[4], 'फक्त' के लिए 'फक्कत'[5], तथा 'संक्रान्ति' के लिए 'सँकरात'[6], जैसे शब्दों के प्रयोग विकृत शब्दप्रयोग के प्रचुर प्रमाण है।

आंचलिक शब्दों में 'खोंचा'[7], 'बागड़'[8], 'सगड़'[9], 'खरँहिया'[10], 'पटपटांग'[11], 'टप्पर'[12], 'वटगमनी'[13], 'भुच्च'[14], 'घैलसार'[15], 'सुखौता'[16], 'परबी'[17], 'अगरजानी'[18], 'घरढुक्का'[19], 'घसका'[20], 'फुर-हरी'[21], 'किल्लाठोंग'[22], 'चुक्की-मुक्की'[23], 'कन्नारोहट'[24], 'पनसाह'[25],

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', १३१।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १०१।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३८।
४. वही, पृष्ठ १३६।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १०४।
६. वही, पृष्ठ १४६।
७. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ११३।
८. वही, पृष्ठ १५२।
९. वही, पृष्ठ ११४।
१०. वही, पृष्ठ ११५।
११. वही, पृष्ठ पृष्ठ १२२।
१२. वही, पृष्ठ १२२।
१३. वही, पृष्ठ १२३।
१४. वही, पृष्ठ १२८।
१५. वही, पृष्ठ १६२।
१६. वही, पृष्ठ १७६।
१७. वही, पृष्ठ १७३।
१८. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ५६।
१९. वही पृष्ठ १००।
२०. वही, पृष्ठ १००।
२१. वही, पृष्ठ १६।
२२. वही, पृष्ठ ५५।
२३. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'ठुमरी', पृष्ठ ११२।
२४. वही, पृष्ठ १६४।
२५. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १५०।

कदमकुट्टी'[1], 'उकासी'[2], 'ओढ़गिरी'[3] आदि शब्दों के सुन्दर, सटीक और महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुए हैं। हिन्दी शब्दों में इनके पर्याय ढूंढकर ठीक-ठीक इन्हीं अर्थों को उद्रिक्त कर देना घोर असंभव व्यापार है। ऐसे आचलिक शब्दों की ध्वनि भी कही अपने ओज, कही अपने प्रसार और कही अपने वक्र-उच्चार के कारण अर्थवत्ता में सहायक हो गयी है। सन्दर्भगत सौन्दर्य की सर्जना और अभीष्ट की सिद्धि के अतिरिक्त हिन्दी गद्य के निर्माण के लिए भी ऐसे शब्द-प्रयोगों का महत्त्व है।

कुछ मिलाकर 'नयी कहानी' में हुए ऐसे शब्दों के प्रयोग कहानी के विविधोन्मुख आयाम और व्यापक फलक के सूचक हैं। बडी बात यह है कि नये कहानीकारों ने इन विविध प्रकार के शब्दों का कहानी में प्रयोग करते हुए हिन्दी की आत्मा और प्रकृति के साथ इनका तारतम्य बनाये रखा है।

शब्दगत प्रयोग का व्याकरणिक अध्ययन

'नयी कहानी' में विशेषण का संज्ञामूलक प्रयोग कर संज्ञा-शब्दों का कोश-विस्तार किया गया है। ध्यान देने की पहली बात यह है कि यहाँ विशेषण से संज्ञा न बनाकर विशेषण को ही संज्ञापरक अस्तित्व दे दिया गया है। यथा— 'कैसे दोनो में प्रगाढ़ आया ?'[4] यहाँ 'प्रगाढ़' की जगह 'प्रगाढ़ता' का प्रयोग होना चाहिए, पर ऐसा न कर 'प्रगाढ़ता' का भाव-सम्प्रेषण 'प्रगाढ़' से ही कर लिया गया है। शायद 'प्रगाढ़' का वजनी उच्चार अर्थ-व्यंजन में भी अपेक्षया वजनी सिद्ध हुआ हो। ऐसे प्रयोग राजेन्द्र यादव की कहानियो में भी द्रष्टव्य हैं। यथा—'वीभत्स और भयानक का भी अपना एक सम्मोहन होता है...।'[5] यहाँ 'वीभत्सता' और 'भयानकता' का प्रयोग न कर 'वीभत्स' और 'भयानक' से ही काम चला लिया गया है। ध्यान देने की दूसरी बात यह है कि कही विशेष्य अथवा संज्ञा को छोड़कर विशेषण-मात्र का प्रयोग किया गयाहै। यथा— 'एक बार कल्याणी उसके बारे में विषम सोच चुकी थी।'[6] × × × 'उसे

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १२३।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. शैलेश मटियानी : 'प्रेतमुक्ति', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३६५।
४. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ३१।
५. राजेन्द्र यादव : 'टूटना और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ १०।
६. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ३२।

'रामनगर' के लिए 'नामलगर'[१], 'लापता' के लिए 'लापत्ता'[२], 'इनाम' के लिए 'इलाम'[३], 'नाटक' (नौटकी) के लिए 'नौटगी'[४], 'फकत' के लिए 'फक्कत'[५], तथा 'संक्रान्ति' के लिए 'सँकरात'[६], जैसे शब्दों के प्रयोग विकृत शब्दप्रयोग के प्रचुर प्रमाण हैं।

आचलिक शब्दों में 'खोंचा'[७], 'बागड़'[८], 'सग्गड़'[९], 'खरैहिया'[१०], 'पटपटाग'[११], 'टप्पर'[१२], 'वटगमनी'[१३], 'भुच्च'[१४], 'घैलसार'[१५], 'मुखौता'[१६], 'परखी'[१७], 'अगरजानी'[१८], 'घरढुक्का'[१९], 'धसका'[२०], 'फुरहरी'[२१], 'किल्लाठोंग'[२२], 'चुक्की-मुक्की'[२३], 'कशारोहट'[२४], 'पनसाह'[२५],

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', १३१।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १०१।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३९।
४. वही, पृष्ठ १३६।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १०४।
६. वही, पृष्ठ १४६।
७. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ११३।
८. वही, पृष्ठ १५२।
९. वही, पृष्ठ ११४।
१०. वही, पृष्ठ ११५।
११. वही, पृष्ठ पृष्ठ १२२।
१२. वही, पृष्ठ १२२।
१३. वही, पृष्ठ १२३।
१४. वही, पृष्ठ १२८।
१५. वही, पृष्ठ १६२।
१६. वही, पृष्ठ १७६।
१७. वही, पृष्ठ १७३।
१८. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ५६।
१९. वही पृष्ठ १००।
२०. वही, पृष्ठ १००।
२१. वही, पृष्ठ १६।
२२. वही, पृष्ठ ५५।
२३. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'ठुमरी', पृष्ठ ११२।
२४. वही, पृष्ठ १६४।
२५. फणीश्वर नाथ 'रेणु', : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १५०।

कदमकुट्टी'[1], 'उकासो'[2], 'ओढ़गिरी'[3] आदि शब्दों के सुन्दर, सटीक और महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुए हैं। हिन्दी शब्दों में इनके पर्याय ढूँढकर ठीक-ठीक इन्हीं अर्थों को उद्रिक्त कर देना घोर असंभव व्यापार है। ऐसे आंचलिक शब्दों की ध्वनि भी कहीं अपने ओज, कहीं अपने प्रसार और कहीं अपने वक्र-उच्चार के कारण अर्थवत्ता में सहायक हो गयी है। सन्दर्भगत सौन्दर्य की सर्जना और अभीप्ट की सिद्धि के अतिरिक्त हिन्दी गद्य के निर्माण के लिए भी ऐसे शब्द-प्रयोगों का महत्त्व है।

कुछ मिलाकर 'नयी कहानी' में हुए ऐसे शब्दों के प्रयोग कहानी के विविधोन्मुख आयाम और व्यापक फलक के सूचक हैं। बड़ी बात यह है कि नये कहानीकारों ने इन विविध प्रकार के शब्दों का कहानी में प्रयोग करते हुए हिन्दी की आत्मा और प्रकृति के साथ इनका तारतम्य बनाये रखा है।

शब्दगत प्रयोग का व्याकरणिक अध्ययन

'नयी कहानी' में विशेषण का संज्ञामूलक प्रयोग कर संज्ञा-शब्दों का कोश-विस्तार किया गया है। ध्यान देने की पहली बात यह है कि यहाँ विशेषण से संज्ञा न बनाकर विशेषण को ही संज्ञापरक अस्तित्व दे दिया गया है। यथा—'कैसे दोनों में प्रगाढ़ आया ?'[4] यहाँ 'प्रगाढ़' की जगह 'प्रगाढ़ता' का प्रयोग होना चाहिए, पर ऐसा न कर 'प्रगाढ़ता' का भाव-सम्प्रेषण 'प्रगाढ़' से ही कर लिया गया है। शायद 'प्रगाढ़' का वज़नी उच्चार अर्थ-व्यंजन में भी अपेक्षया वज़नी सिद्ध हुआ हो। ऐसे प्रयोग राजेन्द्र यादव की कहानियों में भी द्रष्टव्य हैं। यथा—'वीभत्स और भयानक का भी अपना एक सम्मोहन होता है...।'[5] यहाँ 'वीभत्सता' और 'भयानकता' का प्रयोग न कर 'वीभत्स' और 'भयानक' से ही काम चला लिया गया है। ध्यान देने की दूसरी बात यह है कि कहीं विशेष्य अथवा संज्ञा को छोड़कर विशेषण-मात्र का प्रयोग किया गया है। यथा—'एक बार कल्याणी उसके बारे में विषम सोच चुकी थी।'[6] × × × 'उसे

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १२३।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. शैलेश मटियानी : 'प्रेतमुक्ति', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३६५।
४. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ३१।
५. राजेन्द्र यादव : 'टूटना और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ १०।
६. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ३२।

मरमराती-सी चीख'[1] आदि विशेषण ऐसे ही हैं। उक्त प्रयोगों में कहीं-कहीं विशेषण का घनत्वपूर्ण विधान भी हुआ है।

'नयी कहानी' विशेषण को अधिक से अधिक तीव्र और सटीक रूप में प्रभविष्णु बनाती है। इसके-लिए इस भाषा में विशेषणों के विशेषण भी प्रयुक्त हुए हैं। ऐसे स्थलो पर एक विशेषण नो सामान्य होता है, परन्तु दूसरा विशेषण विशिष्ट। यह विशिष्ट विशेषण चित्र-बोध कराने में समर्थ होता है। जैसे—'कुट-कुट काटने वाला कीचड'[2], 'कनकन ठडा पानी'[3], 'नीले चक आसमान'[4], 'भक् सफेद रग'[4], 'आलू की टिकिया लाल सुर्ख'[5] आदि। उपर्युक्त उदाहरणों में 'काटने वाला', 'ठडा', 'नीले', 'सफेद, और 'लाल' जैसे विशेषण सामान्य हैं तो 'कुटकुट', 'कनकन', 'चक', 'भक्' और 'सुर्ख' जैसे विशेषण विशिष्ट।

विशेषणों के द्वारा 'नयी कहानी' की भाषा मे सफल बिम्ब-नियोजन भी किया गया है। ये बिम्ब चाक्षुष और श्रौत दोनो ही प्रकार के हैं। यथा—'चारो ओर दूर-दूर तक भूरी-सूखी मिट्टी के ऊँचे-नीचे टीलों और ढूहों के बीच बेरो की झाड़ियाँ थीं, छोटी-छोटी चट्टानो के बीच सूखी घास उग आयी थी, सड़ते हुए पीले पत्तो से एक अजीब नशीली-सी बोझिल-कसैली गध आ रही थी, धूप की मैली तहों पर बिखरी-बिखरी-सी हवा थी।'[7] उक्त वाक्य में आठबार विशेषण का प्रयोगहुआ है, जहाँ अर्थ का उद्रेक पूरी तरह बिम्ब के स्तर पर है।

'नयी कहानी' मे अँगरेजी के सज्ञा-शब्दो मे हिन्दी प्रत्यय का प्रयोग कर विशेषण बनाये गये हैं तो बँगला प्रभाव वाले विशेषण भी चलाये गये हैं। इस भाषा में एक ओर तत्सम शब्द-बहुल लम्बे विशेषणो का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर आवृत्तिपरक विशेषणो का भी। अपने व्याकरण मे दूसरी भाषा के शब्दों को ढाल लेना भाषिक उपलब्धि का परिचायक है। 'फ्रेम' से 'फ्रेमित'[8],

---

१. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ५३।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १०८।
३. वही, पृष्ठ १०८।
४. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी' (हिन्द पाकेट बुक्स), पृष्ठ १७ और २३।
५. वही, पृष्ठ २०।
६. नरेश मेहता : 'तथापि' पृष्ठ १५।
७. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ६६।
८. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ २६।

'कावेट' से 'कावेंटीय'[1], 'चाकलेट' से 'चाकलेटी'[2], 'क्लासिक' के 'क्लासिकीय'[3], जैसे अँगरेजी के संज्ञा शब्दों से हिन्दी प्रत्यय द्वारा निर्मित होने के उदाहरण हैं। बंगला-प्रभावित विशेषण के दृष्टान्त 'सोनालीधूप'[4] आदि हैं। कुछ विशेषण तत्सम-इतर शब्दो में भी 'इत' प्रत्यय लगाकर बनाये गये है। जैसे—'नक्काशित'[5], 'झकझोरित'[6] आदि। लम्बे तत्सम विशेषण का उदाहरण 'प्रलम्बित चीड़ वन'[7] तथा आवृत्तिपरक विशेषण का उदाहरण 'लाल-लाल लपट'[8] आदि हैं। इन सब प्रयोगों से हिन्दी गद्य की शक्ति का विकास हुआ है।

क्रिया-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में क्रिया-प्रयोग छह रूपों मे प्राप्त होते हैं। 'नयी कहानी' का गद्य प्रथमतः अनुकरणात्मक क्रिया, द्वितीयतः एकमेव सटीक क्रिया, तृतीयतः विशेषण से बनी क्रिया, चतुर्थतः संज्ञा-निर्मित क्रिया, पंचमतः बिना सहायिका क्रिया के केवल प्रधान क्रिया और षष्ठतः अनवरत क्रिया के प्रयोग द्वारा उत्कृष्ट हुआ है।

अनुकरणात्मक क्रिया अर्थ को अपनी ध्वनि से भी अभिव्यक्त करती है। अर्थ-विवृति की दिशा मे ऐसे क्रियापद अद्‌भुत ढंग से सटीक होते हैं। 'घुघुआती रही'[9], 'कचपचा उठा'[10], 'कलकला उठीं'[11], 'टनटना रहा है'[12], 'टलमला रहे हैं'[13], 'छनछना उठा'[14], 'पटपदा उठी थी'[15], 'सिरसिरा रही

---

१. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ६८।
२. सुरेश सिनहा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ११।
३. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ५६।
४. वही, पृष्ठ ११।
५. वही, पृष्ठ ७५।
६. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ११४।
७. वही, पृष्ठ ८।
८. वही, पृष्ठ ६२।
९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' 'ठुमरी', पृष्ठ २७।
१०. वही, पृष्ठ ३२।
११. वही, पृष्ठ ४३।
१२. वही, पृष्ठ ५६।
१३. वही, पृष्ठ ५१।
१४. वही, पृष्ठ ६०।
१५. वही, पृष्ठ ११५।

जगह 'जड़िया नहीं जाइएगा'[1] जैसे क्रिया-प्रयोग विशेषणों से क्रिया बनाये जाने के सुन्दर और समर्थ उदाहरण हैं।

'नयी कहानी' की भाषा में विशेषणों की तरह ही संज्ञा-शब्दों का भी क्रियात्मक प्रयोग हुआ है। 'प्रवाह' से 'प्रवाहेगी'[2], 'विश्वास' से 'विश्वासते'[3], 'अध्यापन' से 'अध्यापता'[4], 'तांबा' से 'तंबिया[5] रहा था', 'पंख' से 'पँखिया रही थी'[6] आदि प्रयोग इस कोटि के आकर्षक उदाहरण हैं।

'नयी कहानी' के गद्य में सहायक क्रिया का लोप करते हुए प्रधान क्रिया को पूर्णता देने के प्रयोग प्राप्त होते हैं। सहायक क्रिया के बिना प्रधान क्रिया के ऐसे पूर्ण प्रयोग हिन्दी के प्राचीन गद्य में भी मिलते हैं। काव्यग्रन्थ की टीकाओं में भी ऐसे प्रयोग उपलब्ध हैं। नये कहानीकारों ने ऐसे प्रयोगों की छिन्न परम्परा को नये रूप में आरम्भ कर हिन्दी को विधागत और भाषागत दोनों ही दृष्टियों से सम्पन्न किया है। आचार्य शिवपूजन सहाय ने तुलसी द्वारा प्रयुक्त ऐसी ही क्रियाओं का उल्लेख करते हुए लिखा था कि "तुलसी-प्रयुक्त क्रियाओं के निम्नांकित उदाहरणों से प्रेरणा लेकर हिन्दी के कथाकार, निबंधकार, कवि तथा नाटककार यदि आगे बढ़ने का उपक्रम करें तो हिन्दी का कोई अपकार न होगा।"[7] स्मरणीय है कि ऐसे क्रिया-प्रयोग संस्कृत, अपभ्रंश, ब्रजभाषा आदि में अत्यन्त प्रचलित थे, परन्तु खड़ी बोली के परवर्ती गद्य में इनका सहसा लोप हो उठा। फलतः आये दिनों 'होना', 'करना' जैसी क्रियाओं के साथ ऐसी क्रियाओं का संयुक्त उपयोग करना पड़ता है। डॉ० हीरालाल जैन के शब्दों में "ऐसे उदाहरण अनन्त हैं। यह मुझे भाषा में उन्नति की जगह अवनति का लक्षण दिखता है। क्रियाओं का क्षेत्र घटना नहीं, बढ़ना चाहिए था। मेरी समझ में ऐसे क्रियापदों का प्रयोग हिन्दी में प्रारम्भना

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ११३।
२. वही, पृष्ठ ७५।
३. वही, पृष्ठ ८२।
४. वही, पृष्ठ ११३।
५. वही, पृष्ठ ११४।
६. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ १४।
७. आचार्य शिवपूजन सहाय : 'तुलसी-प्रयुक्त क्रियाएँ', 'परिषद्-पत्रिका', वर्ष १, अंक १, अप्रील १९६१, पृष्ठ १३-१४।

चाहिए।"[1] नये कहानीकारों मे नरेश मेहता, ओंकार नाथ श्रीवास्तव, सुरेश सिन्हा आदि ने क्रिया के ऐसे प्रयोग किये हैं। 'सम्पनती'[2], 'निषेधती'[3], 'सहनता'[4], 'उत्पनी'[5], 'स्वीकारा'[5], 'प्रवेशेगा'[6], 'अन्दाज ही नही सकता'[7] जैसे शब्द इस क्रिया-प्रयोग के सुन्दर दृष्टान्त हैं। हिन्दी-साहित्य की अन्यान्य विधाओं में ऐसे समर्थ क्रिया-प्रयोग प्रायः नही के बराबर हुए हैं। स्वयं तुलसी ने जिस काव्य-विधा में 'सन्मानी', 'निर्मई', 'प्रबोधा', 'दृढाई' जैसे शब्द-प्रयोग किये थे, वह काव्य-विधा भी ऐसे समृद्ध प्रयोग को जारी रखने में पिछड़ गयी।

'नयी कहानी' के गद्य मे कहीं-कहीं क्रिया का अनवरत प्रयोग भी हुआ है। इससे चित्रात्मक सौन्दर्य के सर्जन और भाव-आस्फालन के मूर्तन में सहायता पहुँची है। यथा—"खेलते वक्त जब वह हिलती-मुड़ती, तनती या झपटती तो खूबसूरती पैदा करती।"[8]

क्रियाविशेषण-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में क्रियाविशेषण के अनुकरणमूलक प्रयोग अवरेखित करने योग्य हैं। 'वैसी भचर-भचर मत बको'[10], 'गड़गड़ा कर नीचे की ओर उतरी'[11], 'अभी घुच-घुच कर उठेंगे'[12], 'पटापट पीटता जा रहा है'[13], 'बपबप जलता रहना है',[14] 'गुजुर-गुजुर उसको हेर रही है'[15], 'बत्ती भक-भक

---

१ डॉ० हीरालाल जैन (सम्पादक) : 'सावयधम्मदोहा', पृष्ठ २६।
२. नरेश मेहता : 'तथापि', पष्ठ ४८।
३. वही, पृष्ठ ५०।
४. वही, पृष्ठ ४८।
५. वही, पृष्ठ ४८।
६. वही, पृष्ठ ११५।
७ डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ३६।
८ ओंकार नाथ श्रीवास्तव : 'काल सुन्दरी', पृष्ठ १४।
९. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ ७।
१०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३४।
११. वही, पृष्ठ १३३।
१२ वही, पृष्ठ १४३।
१३ वही, पृष्ठ १४४।
१४ वही, पृष्ठ १४७।
१५ वही, पृष्ठ १०८।

कर जलती है'[1], 'फुच्च-फुच्च कर हँसते क्यों हैं'[2], 'सन्न-सन्न बोलता था पंच-लैट'[3], 'गाड़ियाँ एक साथ 'कचकचा कर रुक गयी'[4], 'झुर-झुर गिरता रहता है पानी'[5], 'थसथसा कर थक गये'[6] आदि वाक्यांशों मे रेखांकित शब्द क्रिया-विशेषण हैं । इन अनुकरणमूलक क्रियाविशेषणों के अर्थ किसी अन्य पर्याय से व्यक्त नहीं किये जा सकते ।

सहायक शब्द-भेद

कारक-प्रयोग

'नयी कहानी' के कारक-प्रयोगों में भी नवीनता है । यह नवीनता दो रूपों मे आनीत है । कहीं कारक-विभक्ति का लोप कर देने से नवीनता आयी है और कहीं कारक-विभक्ति का अनावश्यक प्रयोग कर देने से। लोप के उदाहरण प्रायः कर्म, संबन्ध और अधिकरण विभक्तियों के हैं—

(१) कर्म विभक्ति का लोप—

(क) प्रसन्न जल भरी आँखों से विपिन ने पारुल देखी थी और संतोष की भाईं वाले नयनों से पारुल ने विपिन निहारा था ।[7]

(ख) निशा लेते हुए राघव ने कहा...।[8]

(२) संबन्ध विभक्ति का लोप

(क) पारुल-नयन रँगे हुए सहसा क्षण भर कहीं खो गये ।[9]

(ख) आज उपरान्त मौर्य सम्राट् महाराज अशोक प्रियदर्शी अशोक कहे जाएँगे ।[10]

(ग) नगर-ओर का आकाश अभी भी आलोकित है ।[11]

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' 'ठुमरी', पृष्ठ १५३ ।
२. वही, पृष्ठ ३१ ।
३. वही, पृष्ठ ८६ ।
४. वही, पृष्ठ ११३ ।
५. वही, पृष्ठ ४२ ।
६. वही, पृष्ठ १२४ ।
७. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १२० ।
८. वही, पृष्ठ २५ ।
९. वही, पृष्ठ ११५ ।
१०. वही, पृष्ठ ७६ ।
११. वही, पृष्ठ ७७ ।

(३) अधिकरण विभक्ति का लोप

(क) इसीलिए अवकाश वेला पढ़ता हूँ ।[1]

(ख) पल्ले बन्द कर टूटे-सी बिस्तरे लौटी ।[2]

(ग) उस कस्बे निवासती थी ।[3]

(घ) द्वारे आये सौभाग्य को भी लौटाना ही होगा ।[4]

(ङ) दरवाजे कुड़म-कुड़म-कुम झम-झम हो रहा था ।[5]

इन प्रयोगो मे अधिकरण विभक्ति के लोप में पूर्ण उपलब्धि प्राप्त हुई है। कर्म विभक्ति के लोप के उदाहरण प्राय. सजीव कर्म के है। भाषिक दृष्टि से व्याकरण की अवहेलना करने वाले ये प्रयोग उचित नही है, किन्तु साहित्यिक संस्पर्श ऐसे प्रयोग में अपने पूरे परिमाण में ललित बन कर निखर उठा है। संबन्ध विभक्ति का लोप भी थोड़ी देर के लिए भ्रम मे डालने वाला है, क्योंकि दोनो पद सामासिकता की साकाक्ष अर्हता वाले नही हैं। यहाँ कर्त्ता की भी स्पष्ट पहचान नही हो पाती है।

कारक विभक्ति के अनावश्यक प्रयोग मे कर्त्ता का 'ने' चिह्न द्रष्टव्य है। इस पर पजाबी 'ने' प्रयोग की स्पष्ट छाप है। जैसे—'तभी किसी ने भीड़ मे चिल्लाया'[6], 'तभी राघव ने प्रवेशा (पैठा)'[7], 'उसने किसी बात के लिए अवतक सरला से कभी झूठ नही बोला था'।[8]

उपसर्ग-प्रयोग

उपसर्ग शब्द के पूर्व जुड़कर उसे अभिनव विच्छित्ति देता हुआ विशेषार्थ से मण्डित करता है। 'नयी कहानी' की भाषा मे उपसर्गों के अनेकशः प्रयोग हुए हैं। सस्कृत के परम्परा-प्रथित उपसर्ग अति, अ, अधि, अनु, अप, अभि, अव, आ, उप, दुर्, नि, निर्, परि, प्र, प्रति, वि, सम, सु तथा अन्; हिन्दी के

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १०० ।
२. वही, पृष्ठ ६६-१२२ ।
३. वही, पृष्ठ ४८ ।
४. वही, पृष्ठ ११७ ।
५. ओंकार नाथ श्रीवास्तव : 'काल सुन्दरी', पृष्ठ ७६ ।
६. वही, पृष्ठ २७ ।
७. वही, पृष्ठ ३६ ।
८. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ६८ ।

व्यवहृत उपसर्ग उ, अ, अन, अध, दु, नि, भर, कु, सु, औ तथा उर्दू के चलित उपसर्ग अल, खुश, गैर, दर, ना, ब, बद, बर, बा, बे, ला, हम, कम आदि हैं।[1]

'नयी कहानी' की भाषा में इन उपसर्गों के प्रयोग के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं। संस्कृत उपसर्गों के प्रयोग क्रमशः 'अत्याचार'[2], 'अस्वीकार'[3], 'अधिकार'[4], 'अनुसंमान'[5], 'अपमान'[6], 'अभिगमन'[7], 'अवकाश'[8], 'आकर्षण'[9], 'उद्घाटित'[10], 'उपवस्त्र'[11], 'दुराचारी'[12], 'निरभ्र'[13], 'निर्वसन'[14], 'परिपार्श्व'[15], 'प्रयोग'[16], 'प्रतिगति'[17], 'विगत'[18], 'संतरित'[19], 'सुपरिचित'[20],

---

१. द्रष्टव्य : (क) डॉ० ज० म० दीमशित्स : 'हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा', पृष्ठ २४२।
(ख) आचार्य कि० वा० वाजपेयी : 'हिन्दी शब्दानुशासन', पृष्ठ २५८।
(ग) डॉ० वा० न० प्रसाद : 'आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना' (अष्टम संस्करण), पृष्ठ ५९-६२।
२. हिमांशु जोशी : 'जो घटित हुआ है', विकल्प', नव० '६८, पृ० ४८६।
३. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ८३।
४. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ८७।
५. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ७६।
६. वही, पृष्ठ ८०।
७. वही, पृष्ठ ८४।
८. वही, पृष्ठ ९६।
९. वही, पृष्ठ ११७।
१०. वही, पृष्ठ ५३।
११. वही, पृष्ठ ४७।
१२. विश्वेश्वर : 'दुराचारी', 'कहानी', अक्तूबर १९६९, पृष्ठ १७।
१३. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला, पृष्ठ ९९।
१४. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १४।
१५. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ११।
१६. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ८७।
१७. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १२६।
१८. वही, पृष्ठ ११८।
१९. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ११३।
२०. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १११।

तथा 'अनागत'[1], में हुए हैं तो हिन्दी उपसर्गों के प्रयोग 'उघड़ी'[2], 'अथाह'[3], 'अनमुस्कुराते'[4], 'अधकही'[5], 'डुबकी'[6], 'निकम्मे'[7], 'भरपेट'[8], 'कुलच्छनी'[9], 'सुघड़'[10], और 'औसर'[11] जैसे शब्दों में और उर्दू उपसर्गों के प्रयोग 'खुशखबरी'[12], 'गैरजिम्मेदार'[13], 'दरअसल'[14], 'नामुमकिन'[15], 'बखुद'[16], 'बदबू'[17], 'बरखिलाफ'[18], 'नागवार'[19], 'बेबुनियाद'[20], 'लापरवाही'[21], 'हमउम्र'[22] जैसे शब्दो में।

संस्कृत, हिन्दी और उर्दू—तीनो ही उपसर्गों का अपनी शब्द-संरचना में प्रयोग करने वाली 'नयी कहानी' की यह भाषा सन्दर्भ और प्रयोग के प्रति महत्त्वपूर्ण, संकीर्णतामुक्त तथा विषय के विस्तार के अनुरूप नित नवीन और

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ११८।
२. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ६३।
३. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ १७८।
४. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ ६२।
५. शिवप्रसाद सिंह : 'नन्हों', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३४७।
६. कृष्णा सोबती : 'बादलों के घेरे,' 'एक दुनिया समानान्तर,' पृष्ठ १२४।
७. शिवप्रसाद सिंह : 'आरपार की माला', पृष्ठ ११६।
८. ज्ञानरंजन : 'रचना-प्रक्रिया', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ २२६।
९. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ११६।
१०. कृष्णा सोबती : 'बादलों के घेरे,' 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १२४।
११. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ७४।
१२. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया' (दूसरा संस्करण),
१३. भूपनाथ सिंह : 'सपाट चेहरेवाला आदमी', पृष्ठ १०८।
१४. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १८।
१५. वही, पृष्ठ ७२।
१६. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी', (हि० पा० बु०), पृष्ठ ४८।
१७. शेखर जोशी : 'बदबू', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ ३५७।
१८. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी', (हि० पा० बु०), पृष्ठ ४८।
१९. शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदा सराय', पृष्ठ ५४।
२०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १८०।
२१. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ५५।
२२. वही, पृष्ठ १०।

विविधोन्मुखी है। इन उपसर्गों से कहीं अर्थ में तीव्रता, कहीं सर्वथा प्रतिकूलता और कहीं इतर विशेषता व्यापारित हुई है।

निपात प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा हिन्दी के गतिशील प्रवाह का उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण निपातो के नानाविध नियोजन की भाषा है। इस भाषा के शब्दों में निपातो का प्रयोग इसके दैनिक व्यवहार की भाषा होने की सूचना देता है। निपात हिन्दी के लिए बहुत बड़ी शक्ति है। अँगरेजी में इसे 'पार्टिकल' कहते हैं। यह ऐसा सहायक शब्द-भेद है, जिसके अपने शब्द-संबन्धी वस्तुपरक अर्थ नही होते। निपातो का प्रयोग निश्चित शब्द-समुदाय या पूरे वाक्य को अतिरिक्त भावार्थ प्रदान करने के लिए होता है।[1] शब्दों को अपने साहचर्य से निपातो द्वारा प्रदत्त अर्थवत्ता के आधार पर निपातों को स्वीकारार्थक, नकारार्थक, निषेधात्मक, प्रश्नात्मक, विस्मयात्मक, बलात्मक, सीमातक, तुलनात्मक, अवधारणात्मक तथा आदरात्मक वर्गों में विभक्त किया जाता है। 'नयी कहानी' की भाषा में इन सभी निपातों के उदाहरण सुलभ हैं।

१. स्वीकारार्थक—जी हाँ, जी, हाँ।

(क) "जी हाँ..." जयन्त ने गद्‌गद होकर कहा आपको एकबार हमलोग बुलाएँगे।"[2]

(ख) "जी...जी", मैंने बताया न, बहुत पसन्द तो नहीं है।"[3]

(ग) "हाँ", खुकी, खुकी नही, नमस्कार वाली एलोकेशी हँसती हुई कहती है, मुझ-जैसे ही खट्टे हैं।"[4]

२. नकारार्थक—नही जी, नहीं, जी नही, ना।

(क) "नही जी! क्यों बड़के ?"[5]

(ख) "नही, नही बुआ।"[6]

(ग) "जी नही, यही ड्राइंगरूम में है।"[7]

---

१. डॉ० ज० मा० वोलशिल्स : 'हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा', पृष्ठ २१४।
२. राजेन्द्र यादव : 'टूटना और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ १४७।
३. वही, पृष्ठ १४७।
४. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी' (हि० पा० बु०), पृष्ठ ३६।
५. वही, पृष्ठ ३७।
६. कृष्णा सोबती : 'बादलों के घेरे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १३२।
७. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला' पृष्ठ ८।

(घ) "ना बाबा। यहाँ बहाव बहुत तेज है, बह जाने का डर है।"[1]

३. निषेधात्मक—मत।

(क) "माना। मेहरबान दिखाना हो तो मत चलो।"[2]

४. प्रश्नात्मक—क्या, न।

(क) "क्या हमलोग अपना जीवन नये सिरे से आरम्भ नहीं कर सकते?"[3]

(ख) मैंने आपसे कहा था न......सिर्फ डेढ़ इंच ऊपर......"[4]

५. विस्मयात्मक—काश, कैसा, क्या।

(क) "मैं प्रायः सोचा करता, काश मेरा भाग्योदय हो जाए और मुझे ऐसे शहर की शरण मिले, जिसका क्षेत्रफल बड़ा हो और जहाँ जनसंख्या उफन रही हो।"[5]

(ख) "एक दिन ट्रेन में न सोकर देखिए—कैसा अच्छा लगता है...अँधेरी रात, ट्रेन की छुक्-छुक्—।"[6]

(ग) "ऐसी भी क्या तन्दुरुस्ती कि आदमी कभी बीमार ही न पड़े।"[7]

उपर्युक्त पाँच प्रकार के निपातों में पहले चार प्रकार के निपात प्रायः संलाप की भाषा को मर्मस्पर्शिता तथा तेजस्विता देते हैं। पाँचवें प्रकार के निपात स्वालाप की प्रक्रिया में मनोभावों के सटीक अभिव्यंजन के लिए उत्कृष्ट और समर्थ सिद्ध होते हैं।

६. बलात्मक—तो, ही, भी, सिर्फ केवल।

(क) "आप तो बहुत कमाती हैं। फिर उन्हें आप ही अपने साथ क्यों नहीं रखती?"[8]

(ख) "सो तो है ही।"[9]

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ८८।
२. ओंकार नाथ श्रीवास्तव : 'कालसुन्दरी', पृष्ठ १०६।
३. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १०४।
४. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ ४५।
५. ज्ञानरंजन : 'रचना प्रक्रिया', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ १२६।
६. सुधा अरोड़ा : 'बगैर तराशे हुए', पृष्ठ ८।
७. महीप सिंह : 'घिराव' (प्रथम संस्करण), पृष्ठ १५।
८. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ५९।
९. वही, पृष्ठ ६०।

(ग) "कह रही हूँ—हमने भी शहर देखे हैं, लेकिन हम कोई रंडी थोड़े ही हैं।"[1]

(घ) "इतिहास सिर्फ इतिहास होता है—झूठ या सच नहीं होता।"[2]

(ङ) "केवल बरसात का संगीत, भक्कड़ और दरवाजे के पल्लों के खुलने-मूँदने का स्वर और सन्नाटा।"[3]

७. सीमान्तक—तक, भर।

(क) "उन सबके पार मालती को वह अकेली सपाट सड़क मीलों तक दिखाई दे रही थी, जो उसे उसके घर तक पहुँचा कर खत्म हो जाएगी।"[4]

(ख) "फिर क्षण भर तक सोचता रहा।"[5]

८. तुलनात्मक—सा, से, सी, तरह, मानो, गोया।

(क) "फोड़ों को पके आम-सा दाब देता था, खाल को आलू-सा छील देता था...।"[6]

(ख) "फूल की पँखुरी-से पतले-पतले होठ...।"[7]

(ग) "सूखे फूलों-सी पुराने प्रेम-पत्रों के पीले पड़े कागज-सी कुछ स्मृतियाँ लिये हुए चली जाएगी।"[8]

(घ) "गाड़ी अनेक गोल, वर्तुल, स्याह, चक्राकार पहियों के सहारे रेंगती, साँप की तरह मलखाती चली गयी है।"[9]

(ङ) "सावित्तरी की मरदानी चाल, कंकड़ की ऊँची-नीची सड़क पर पड़ने वाले उसके जमे हुए कदम, जिनसे मानो उभरे कंकड़ दब रहे हों...।"[10]

---

१. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ १२०।

२. वही, पृष्ठ ११६।

३. शानी : 'बबूल की छाँव' (प्र० सं०), पृष्ठ १४७।

४. रामकुमार : 'समुद्र', पृष्ठ १०६।

५. वही, पृष्ठ १२७।

६. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ' (राजेन्द्र यादव), पृष्ठ २५।

७. वही, पृष्ठ ३३।

८. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ २३।

९. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ७६।

१०. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया' (दूसरा संस्करण), पृष्ठ ५०।

(च) "पतले-पतले हाथ-पैर गोया मिट्टी के लोदे में बांस के टोटे गाड़े गये हों।"[1]

ध्यान देने योग्य है कि आठवें प्रकार का निपात 'नयी कहानी' की भाषा में सर्वाधिक प्रयुक्त हुआ है।

९. अवधारणात्मक—ठीक, करीब।

(क) "ठीक उसी समय दो पेड़ों के बीच से आसमान के एक छोटे-से नक्काशीदार टुकड़े के बीच दीखा—डूबते सूरज का किरणहीन लाल-लाल गोला।"[2]

(ख) "करीब तीन हजार आदमी शरीक हुए।"[3]

१०. आदरात्मक—जी।

(क) "जी, मैं क्या कह सकता हूँ?"[4]

निपातो के प्रयोग ने 'नयी कहानी' की भाषा को कथ्य से व्यक्तीकरण के धरातल तक व्यापकता तथा उद्गारो के अभिव्यंजन में तनाव-लगाव, निश्चयात्मकता, केन्द्रण, सकेतन आदि विविध कोणो वाली सार्थकता दी है। यहाँ निपात-प्रयोग कृत्रिम और ढीले-ढाले नही होकर कसे हुए हैं।

विस्मयादि बोधक शब्द-भेद

विस्मयादि बोधक शब्द मनोभावो को व्यक्त करते हैं। इसीलिए इन शब्दो का न तो कोई वस्तुपरक अर्थ होता है, न इनके लिंग, वचन, कारक, पुरुष, काल, प्रकार, विधि, वाच्य ही होते हैं। न इनका कोई प्रत्यय होता है, न ये वाक्यांश होते हैं और न उच्चारण-सन्दर्भ मे ये विशेष ध्वनि के आश्रित ही होते हैं।[5] जहाँ-कहीं ऐसे शब्दो की वस्तुपरक अर्थवत्ता होती भी है वहाँ अभिव्यंजन में इस अर्थ के परे मनोभावों की विवृति ही अभीष्ट होती है। ये शब्द कहीं आश्चर्य, खीझ और व्यंग्य को जताते हैं, तो कहीं प्रशंसा और घबड़ाहट को व्यक्त करते हैं और कहीं ऊब या परेशानी, खेद और शोक, भूल, घृणा, धिक्कार, आह्लाद, उमग, संकोच आदि को प्रकट करते हैं। इन शब्दो से कभी अप-

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आरपार की माला', पृष्ठ ११६।

२. भूपनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ १३४।

३. गिरिराज किशोर : 'समीकरण', 'विकल्प', नवम्बर '६८, पृष्ठ २५३।

४. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ४२।

५. डॉ० ज० म० दीमशित्स : 'हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा', पृष्ठ ३२५।

सारण की, कभी सह-सम्पादनाह्वान की, कभी प्रदान की और कभी सम्बोधन की अभिव्यंजना होती है।

विस्मयादिबोधक शब्द लोक-जीवन के सन्निकट होते हैं। संलाप की भाषा में इनका बहुत महत्त्व है। निबंध, आलोचना की भाषा में ऐसे शब्द प्रायः नहीं होते, किन्तु उपन्यास, कहानी और नाटक की भाषा में इनकी अधिकाधिक अपेक्षा होती है। प्रायः भाषा जहाँ तड़फड़ाने लगती है और उसे सटीक शब्द नहीं मिल पाते[1] वहाँ अनायास ही ऐसे शब्द व्यवहार में आ जाते हैं। 'नयी कहानी' की भाषा में ऐसे शब्दों के सुन्दर प्रयोग हुए हैं—

१. आश्चर्य—"एँ'...जैसे वह चौंक गया।"[2]

२. खीझ—"लो, यह तुम्हारी खुर्र-खुर्र फिर शुरू हो गयी न।"[3]

३. व्यंग्य—"बाब्बा, कोई नींद है तुम्हारी।"[4]

४. प्रशंसा—"वाह पट्ठे, उसने कहा था।"[5]

५. घबड़ाहट—"बाप रे। आज कितने कागज उन्होंने भिजवा दिये थे।"[6]

६. ऊब या परेशानी—"उफ। आधी रात में भी ये कारों वाले ऐसी जोर से हार्न देते हैं कि तीसरे मुहल्ले में आदमी जग जाए।"[7]

७. खेद और शोक—"लेकिन अगर ऐसा है या हुआ तो...मैं...तो मैं पता नहीं...ओफ...। तुमने मुझे कितना छोटा और अपाहिज कर दिया है।"[8]

८. भूल—"सीढ़ियों पर चढ़ते हुए शिवजी भाई ने अपनी जेबें टटोली।'ओह', अनायास मुँह से निकला।"[9]

---

१. "हमारे शब्दों में कितनी हीनता है, कितना अभाव है। वे अबतक न विचारों को सही रूप में प्रकट कर पाते हैं, न भावनाओं को।"
—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी : 'मैं कैसे लिखता हूँ', 'ज्ञानोदय', अगस्त '५७।

२. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ६६।

३. राजेन्द्र यादव : 'छोटे-छोटे ताजमहल', पृष्ठ २२।

४. वही, पृष्ठ ९।

५. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ ६२।

६. राजेन्द्र यादव : 'छोटे-छोटे ताजमहल', पृष्ठ १०।

७. वही, पृष्ठ ११।

८. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ २२।

९. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ३७।

९. घृणा या धिक्कार—"क्या तुम इस तरह किसी और के साथ...ठीक इसी तरह... ? छिः।"[1]

१०. आह्लाद—(क) "रुको तो। अरे यह तो वही तिल है। उंगलियाँ काँप जाती हैं।"[2]

(ख) "लालमोहर ने कंधा सूंघकर आँखें मूंद ली। मुंह से अस्फुट शब्द निकला—एह।"[3]

११. उमंग—"इस्स ! कथा सुनने का बड़ा शौक है आपको।"[4]

१२. संकोच—"धत्त। मैं क्यों जाऊँ ?"[5]

१३. अपसारण—"हट्ट। अब दौर्रा ही मारने लगा।"[6]

१४. सहसम्भावनाह्वान्—"चलिए, एक कोकाकोला पी लेते हैं।"[7]

१५. प्रदान—"लो, सुनो।"[8]

१६. सम्बोधन—"अमाँ प्रशान्त, आज आफिस जाओगे न. .।"[9]

ऐसे विस्मयादिबोधक शब्दों के प्रयोग से कहीं-कहीं पूरे-के-पूरे वाक्य का अर्थ ही ग्रहण हो गया है। ये जितने छोटे-से-छोटे वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं प्रभाव देने में उतने ही समर्थ होते हैं। 'नयी कहानी' की भाषा की धुली-पुँछी चादर पर इनका महत्त्व उपयोगवश उभरने वाली सलवटों का है।

शब्दगत प्रयोग का साहित्यिक अध्ययन

मूर्त-अमूर्त शब्द-प्रयोग

डेविड डेचेज ने लिखा है कि गद्य-लेखक के लिए "समय एक मित्र है, क्योंकि यहाँ सारे खंड प्रायः सामयिक क्रम में सँवारे जाते हैं और वे सामान्यतः

---

१. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ १७।
२. मार्कण्डेय : 'दूध और दवा', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २५३।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३७,
४. वही, पृष्ठ १२२।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १४।
६. राजेन्द्र यादव : 'टूटना. ', पृष्ठ ३२।
७. वही, पृष्ठ ८२।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १३०।
९. राजेन्द्र यादव : 'टूटना'. .', पृष्ठ ५६।

एक-दूसरे के अनुवर्ती होने के मार्ग से विलग होकर ही अपना महत्त्व प्राप्त करते हैं; जबकि गीति-कवियों के लिए समय एक शत्रु है, क्योंकि उसे काव्य-गत प्रभाव-सृष्टि के लिए अपने शब्दों को अतीत, वर्त्तमान और भविष्य—तीनों ही के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ में व्यवस्थित करना पड़ता है।"[1] कहानी में मूर्त्त-अमूर्त्त शब्द-प्रयोग का औचित्य डैचेज के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है। स्पष्ट है कि कहानी की भाषा अपनी प्रायोगिक प्रचुरता में कभी अमूर्त्त शब्द-प्रयोग की भाषा नहीं हो सकती। सामयिक समबद्धता मूर्त्त शब्द की माँग करती है और त्रैकालिक प्रभाव-सृष्टि अमूर्त्त शब्दों की। दूसरे, कविता जहाँ केन्द्रित में प्रभाव सृष्टि करती है कहानी वहाँ प्रसरित में।

'नयी कहानी' की भाषा में यद्यपि मूर्त्त और अमूर्त्त—दोनों ही प्रकार के शब्द-प्रयोग हुए हैं तथापि इनमें मूर्त्त शब्द-प्रयोग की संख्या अधिक है। जहाँ-कहीं अमूर्त्त शब्दों के प्रयोग हुए हैं, उन्हें भी विशेषण या क्रिया की मूर्त्तता अथवा रूपकात्मक मूर्त्तता के परिणामस्वरूप अधिकाधिक मूर्त्त कर दिया गया है। इस सन्दर्भ में 'स्मृति' जैसे अमूर्त्त शब्द का प्रयोग करते हुए उस पर 'उद्भ्रान्त पाखी' का आरोपण और 'सन्नाटा' जैसे अमूर्त्त शब्द के पहले 'काँपता-सा' विशेषण लगा कर उसका मूर्त्तन[2] द्रष्टव्य है। हाँ, सामान्यतः दैनिक उपयोग में प्रचलित अमूर्त्त शब्दों के प्रयोग हुए हैं, जो व्यवहार-सिद्ध हैं।

'नयी कहानी' में मूर्त्त शब्दों के प्रयोग दो रूपों में हुए हैं। एक तो सामान्य वर्णन-प्रणाली के लिए, दूसरे, बिम्ब-प्रतीकात्मक प्रणाली के लिए। पहले प्रकार का मूर्त्त शब्द-प्रयोग यथार्थ निरीक्षण का परिणाम है, पर दूसरे प्रकार का शब्द-प्रयोग श्रेष्ठ प्रातिभ उन्मेष का।[3] 'गोला गह्वर,' धोखा मैना[4] जैसे विशेषणमूलक शब्द ; फेंक-फेंक कर[5], धो-धो कर,[6] उठा-उठा कर[7] जैसे पूर्व-

---

१. डेविड डैचेज : "ए स्टडी ऑव लिटरेचर' (१९६८ संस्करण), पृष्ठ ४६।
२. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १०२।
३. वही, पृष्ठ ५८।
४. मारजोरी बुल्टन : 'द एनेटोमी ऑव पोयट्री,' पृष्ठ १०७।
५. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ८९।
६. वही, पृष्ठ ८६।
७. वही, पृष्ठ ८६।
८. वही, पृष्ठ ९२।
९. वही, पृष्ठ ९२।

कालिक क्रियामूलक शब्द; धक्क से[1], पिच् से[2], हुर्र से[3], टाँय से[4], जैसे क्रिया-विशेषणमूलक शब्द; 'घटनी'[5], 'दौरी'[6], 'सोटा'[7], 'टिपटी'[8], 'पूपन'[9], 'बीया'[10] जैसे संज्ञामूलक शब्द वर्णनात्मक मूर्त गद्य के उदाहरण हैं। बिम्बीय प्रतीकात्मकता वाले मूर्त शब्द-प्रयोग में बिलखते हुए नये-नये जन्मे बच्चे[11], बटुरे रहने वाले गोल-गोल गूलर[12], कूद जाने की अदा में खड़ा सवंगी जवान[13], टुकुर-टुकुर देखते बया के बच्चे[14] आदि के उपमानमूलक उदाहरण प्रातिभ-उन्मेष से भरी भाषा के प्रमाण हैं।

विशिष्ट वृत्तिगत शब्द-प्रयोग

नये कहानीकारों ने हलवाई, बढ़ई, लुहार, गाड़ीवान, रेलवे कार्यालय में काम करने वाले खलासी, मजदूर तम्बूवाले, बाजे वाले, साइकिल-मिस्त्री आदि की विशिष्ट शब्दावली के प्रयोग किये हैं। इन प्रयोगों में इन लोगों द्वारा प्रतिदिन व्यवहृत होने वाले शब्द हैं, जिनका बहुत गहरा सम्बन्ध इनकी वृत्ति से है। ऐसे स्थलों पर सामान्य शब्द अपनी सामान्य-व्यापक अर्थवत्ता त्याग कर, विशिष्ट-सीमित अर्थवत्ता ग्रहण कर लेते हैं। इस भाषा में हलवाई की 'छेने'[15], 'गुल्ले'[16], 'माँडा जाना'[17], 'चासनी के तार'[18] जैसी शब्दावली,

---

१. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ १०१।
२. वही, पृष्ठ ९८।
३. वही, पृष्ठ ९६।
४. वही, पृष्ठ ९१।
५. वही, पृष्ठ ९५।
६. वही, पृष्ठ ९२।
७. वही, पृष्ठ ९३।
८. वही, पृष्ठ ९३।
९. वही, पृष्ठ ९५।
१०. वही, पृष्ठ ९९।
११. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ८९।
१२. वही, पृष्ठ ९१।
१३. वही, पृष्ठ ९३।
१४. वही, पृष्ठ ९२।
१५. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५५।
१६. वही, पृष्ठ ५५।
१७. वही, पृष्ठ ५५।
१८. वही, पृष्ठ ५५।

बढ़ई-लुहार की 'आडा'[1], 'हरेस'[2], 'रुखान'[3], 'धौंकनी'[4] जैसी शब्दावली, गाड़ीवान की 'टिकठी', 'बेलाग'[5], 'दुलकी चाल'[6], 'धुरी'[7], 'लदनी'[8], 'अगुआ'[9], 'पिछुआ'[10], 'दुआली'[12] जैसी शब्दावली, रेलवे के खलासी-मजदूर की 'थुरू पास'[13], 'बायलर'[14], 'डिसटेन सिगल'[15] जैसी शब्दावली, तम्बूवाले और बाजे वाले की 'बयान'[16], 'साई'[17], 'सट्टा'[18], 'कोनिश'[19] और साइकिल मिस्त्री की 'ढिबरी कसने'[20] जैसी शब्दावली प्रभूततः प्रयुक्त हुई है।

वैयक्तिक शब्द-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में शब्दों के तीन प्रकार के वैयक्तिक प्रयोग प्राप्त होते हैं। पहले प्रकार का वैयक्तिक प्रयोग तकिया कलाम का है, दूसरे प्रकार का चमत्कारमूलक और तीसरे प्रकार का विशिष्ट आग्रही और विशिष्ट व्यामोही शब्दों का, जो खास-खास कथाकार की कहानियों में अपनी अनेकशः

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ६२।
२. वही, पृष्ठ ६२।
३. वही, पृष्ठ ६२।
४. वही, पृष्ठ ६२।
५. वही, पृष्ठ ११४।
६. वही, पृष्ठ ११४।
७. वही, पृष्ठ ११४।
८. वही, पृष्ठ ११४।
९. वही, पृष्ठ ११५।
१०. वही, पृष्ठ ११०।
११. वही, पृष्ठ ११५।
१२. वही, पृष्ठ १४४।
१३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ४७।
१४. वही, पृष्ठ ४५।
१५ वही, पृष्ठ ४९।
१६. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ ५।
१७. वही, पृष्ठ ५७।
१८. वही, पृष्ठ ५७।
१९ वही, पृष्ठ ५७।
२०. प्रयाग शुक्ल : 'अकेली आकृतियाँ', पृष्ठ १६२।

आवृत्तियों में प्राप्त है। तकिया कलाम के प्रयोग लेखकीय प्रयोग नहीं होकर पात्रीय प्रयोग हैं। इसमें पात्रों के बोलने की सूक्ष्मता, दृढ़ता, दुर्बलता, अभ्यस्तता, शक्यता, अशक्यता आदि अवरेखित हुई है। कथाकारों ने इसके सहारे पात्रों की निरर्थ शब्दावली में भी साकेतिक अर्थ भरा है और वक्ता-चरित्र को प्रभावी दिशा में कई रूपों में उजागर किया है। 'रेणु' द्वारा प्रयुक्त 'हिस्स'[1], 'इस्स'[2], 'ए-ह'[3], 'धेत्त'[4], 'मुदा', 'ओ-ओ'[5], अमरकान्त द्वारा प्रयुक्त 'हाय दैया'[6], राजेन्द्र यादव द्वारा प्रयुक्त 'हरिओम'[7], 'याह-याह'[8], 'ऊसी ऊसी'[9], 'हैऽऽ'[10], मोहन राकेश द्वारा प्रयुक्त 'अम[11].. अ...' आदि तकिया कलाम के सुन्दर उदाहरण हैं। इस भाषा में शब्दों के चमत्कारमूलक वैयक्तिक प्रयोग के उदाहरण कहीं ओठों को गोल बनाकर किये गये 'पू'[13] कहीं रोमन अंक 'आठ' के आकार के ढीले जूड़े[1], कहीं परीक्षा-कक्ष में निरीक्षक की चहलकदमी के बन रहे अँगरेजी 'एस'[15] और कहीं निश्चित संज्ञा के गोपनार्थ 'अयि'[16] के हैं। नये कथाकारों के विशिष्ट आग्रही और विशिष्ट व्यामोही शब्दों में रमेश बक्षी के 'बुशर्ट'[17], सुरेश सिन्हा के 'पिताश्री'[18], कमलेश्वर के 'सैलाव'[19], मन्नू

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ११५।
२. वही, पृष्ठ १२२, १२६, १३८।
३. वही, पृष्ठ १३७।
४. वही, पृष्ठ ४७।
५. वही, पृष्ठ ४६।
६. वही, पृष्ठ १०४।
७. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ ७८।
८. राजेन्द्र यादव : 'टूटना', पृष्ठ १६०।
९. राजेन्द्र यादव : 'टूटना', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २९८।
१० वही, पृष्ठ २९७, २९८, २९९।
११. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ५५-६५ तक।
१२. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ ८४-८५ तक।
१३. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ९३।
१४. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ?४।
१५. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ८७, ८९, ९०, ९४।
१६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७६।
१७. द्रष्टव्य : रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ'।
१८. द्रष्टव्य : सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच'।
१९. द्रष्टव्य : कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएं'।

भंडारी के 'सच्ची'[1], निर्मल वर्मा के 'वियर'[2] और 'कार्डो'[3] जैसे शब्द हैं। ऐसे शब्दों का कोई स्वरूप-निर्धारण नहीं होता। ये मूर्त अथवा अमूर्त, वस्तु-उत्पादन-परक, स्थान-परक, भावना-परक आदि भी हो सकते हैं।

अपशब्द-प्रयोग

अपशब्द सामान्यतः अश्राव्य होते हैं। अंगरेजी में ऐसे शब्दों का प्रयोग ही 'ब्लेसफेमी' है। वहाँ इसे 'इन्जूरियस स्पीकिंग'[4] माना गया है। यह अपशब्द 'नयी कहानी' की भाषा में निन्दा के स्तर-मात्र पर न होकर घोर और अश्लील-तम गाली के प्रायोगिक स्तर तक पर है। यहाँ इसका प्रयोग आत्यंतिक रूप में महत्त्वपूर्ण है। एक ओर यह कथ्य को यथार्थ बनाता है, दूसरी ओर अभीष्ट-प्रतिपादन को तीव्रता देता है। 'नयी कहानी' में कहीं अपशब्दों को विंदु-चिह्नों से संकेतित कर दिया गया है, कहीं अभिलग्नक (एपॉस्ट्रॉफी कॉमा) लगाकर उसका प्रयोग किया गया है, कहीं तकिया कलाम का प्रयोग कर उसे प्रतीकित किया गया है और कहीं अपशब्दों का बिना किसी छिपाव के स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

विन्दु-चिह्न (डॉट्स) लगाकर अपशब्दो का प्रयोग नागर और ग्राम्य कथा-कार दोनो ही की कहानियों मे हुआ है। इसके मूल में भद्रता का निर्वाह है और है ऐसे शब्दों के उच्चारण में निहित संकोचशीलता। जैसे मा दर...।'[5] + + 'उस डायरेक्टर की माँ की...।'[6] + + 'वह प्रत्येक शब्द पर विशेष बल देकर हाथ और उँगलियों से भाव बतलाकर कहने लगी कि वह पाट के खेत में जाकर क्या देखेगी, अपना...?'[7] + + 'ये देखो, इधर...इसमें तेल लगावेगा आकर तुम्हारा और हमारा बाप-माँ, मौसा-मौसी सब।'[8] उक्त प्रयोगों में विन्दु-चिह्नों का प्रयोग लैंगिक अथवा यौन-क्रिया पर आधारित गालियो के लिए हुआ है।

---

१. द्रष्टव्य : 'मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ'।
२. द्रष्टव्य : निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी'।
३. वही।
४. रॉबर्ट लिडेल : 'सम प्रिंसिपुल्स ऑव फिक्शन', (पुनःप्रकाशित '५६), पृष्ठ ९६।
५. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ५२।
६. वही, पृष्ठ ४६।
७. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ७४।
८. वही, पृष्ठ १२७।

अभिलग्नक (एपॉस्ट्रॉफी कॉमा) लगाकर अपशब्दों के प्रयोग के उदाहरण —'अबे तुम मुझे', 'तिया समझते हो'[1] और 'उसकी ओर देखकर फूहड़-सी गाली दी, 'तिया की घोडी, तुम नाही समझोगे ।'[2] जैसे वाक्य हैं ।

कही-कही अपशब्दो का द्योतक कोई-कोई तकियाकलाम ही हो गया है । इससे अपशब्दो के प्रकटतः गोपन और सकेतत. द्योतन को बल मिला है। 'रेणु' का वाक्य —"रतनी ने बेलाग, बेलौस एक अश्लील बात अंधेरे मे आग की गोली की तरह उगल दी—देखकर आपका 'अथि' और मेरा 'अथि' उखाड लेगा ?"[3] ...इस प्रकार के प्रयोग का सुन्दर उदाहरण है ।

स्पष्ट तौर पर हुए अपशब्दो के प्रयोग के उदाहरण 'साला', 'चोट्टा', 'छिनार'[4], 'हरजाई'[5], 'सतबेटा विऔनी', 'मुंहझौंसा', 'ससुरी'[10], 'पतल-जीवी'[11], भाईखौकी'[12], 'पुतखौकी का भतार'[13], 'लुक्कड'[14], 'मेहरमच्छा'[15], 'कुत्ते की जानी'[16], 'चौपट'[17], 'कुलच्छन'[18], 'बहिरबड'[19], 'चूल्हेभाड़ मे

---

१. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ५२ ।
२. वही, पृष्ठ ५६ ।
३ फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १८० ।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ९ ।
५. वही, पृष्ठ २७ ।
६. वही, पृष्ठ ४३ ।
७. वही, पृष्ठ ४३ ।
८. वही, पृष्ठ ४३ ।
९ वही, पृष्ठ ५९ ।
१०. वही, पृष्ठ ६० ।
११. वही, पृष्ठ ६५ ।
१२. वही, पृष्ठ १५७ ।
१३ वही, पृष्ठ १५८ ।
१४ वही, पृष्ठ १०१ ।
१५. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ५६ ।
१६ वही, पृष्ठ [illegible]८ ।
१७ वही, पृष्ठ ६[illegible] ।
१८ वही, पृष्ठ ६[illegible] ।
१९ वही, पृष्ठ ६६ ।

जाए'[1], 'भकचोन्हर'[2], 'हरामी'[3], 'सूअर का पिल्ला'[4], आदि शब्द है। ऐसे प्रयोग के दूसरे प्रकार के उदाहरण आक्रोशपूर्ण अपशब्दो के हैं। ये यौन-क्रियाओं पर आधारित हैं। इन्होंने अश्लीलता का सीमान्त छू दिया है। आज लम्बी-लम्बी डिग्रियाँ लेने के बाद बैंक, एल० आई० सी०, सचिवालय, प्राइवेट फर्म आदि में किरानी की जिन्दगी जीने के लिए बाध्य नवयुवक आम तौर पर ऐसी भाषा का व्यवहार करते हैं। कृष्णा सोबती की 'यारों की यार' कहानी के अपशब्द-प्रयोग—'बहनचोद', 'चुदक्कड़'[5], 'चूतिया नन्दन'[6], 'हगता है साले—हगता है'[7],—ऐसे ही हैं। ये अपशब्द प्रयोग दिखावटीपन और नकलीपन के विरुद्ध हुए जिन्दा, बाजारू प्रयोग है। अपशब्दों के ये प्रयोग जैसे कहते हैं—"तुम जिन्हें फूहड, भदेस, बाजारू और फोहश कहते रहे हो, हम उन्ही को तुम्हारी सजी-सजायी बैठकों में लाकर, उन्ही शब्दों के साथ उठ-बैठ कर तुम्हारी नकाबें फाड़ेंगे, खिल्ली और नींद उड़ाएँगे।"[8]

अभिजात शब्द-प्रयोग

'नयी कहानी' में कुछ कथाकारों ने अभिजात शब्दों के प्रयोग किये है। अभिजात शब्द के प्रयोक्ताओं में नरेश मेहता, श्रीराम वर्मा, सुरेश सिन्हा आदि के नाम लिये जा सकते हैं। नरेश मेहता 'सुकान्त' को इसी प्रवृत्ति के अन्तर्गत "श्री सुकान्त"[10] कहते हैं। सुरेश सिन्हा 'पिता' और 'पिताजी' को एक विशिष्ट अभिजातबोध के साथ 'पिताश्री'[11] लिखते हैं। श्रीराम वर्मा नितान्त—

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ १०२।
२. वही, पृष्ठ ११६।
३. वही, पृष्ठ १४६
४. वही, पृष्ठ ५४
५. 'नयी कहानियाँ', जनवरी ६७, पृष्ठ ३३।
६. वही, पृष्ठ ३५।
७. वही, पृष्ठ ३०।
८. वही, पृष्ठ १३।
९. राजेन्द्र यादव : 'कहानी : स्वरूप और संवेदना', पृष्ठ ११५।
१०. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ६५।
११. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ५१।

'मौन'[1] और 'अनालोक'[2] जैसे शब्दो का प्रयोग करते हैं। ऐसे अभिजात शब्दो के प्रयोग वही हुए है, जहाँ का परिवेश पूर्णतः अभिजात है। इसलिए वहाँ 'रात्रि का मरुस्थल'[3] पार होता है, 'वेणी' लगायी जाती है, 'शेष जीवन के यान्त्रिक' मिलते हैं। 'आत्मस्थ तिरस्करिणी'[6], 'प्रति अनावृत्त'[7], 'प्रतिगति'[8],'प्रतिनियति'[9], 'सेतुहीन'[10], 'ज्वार का आत्ममुखी वेग'[11], 'दिग्व्यापी'[12], 'निरन्तर विराम-सा'[13] जैसे शब्द अभिजात शब्द-प्रयोग के उदाहरण है।

लेखकीय-पात्रीय शब्द-प्रयोग

किसी भी भाषा के कहानी-साहित्य के शब्द-प्रयोग मे पात्रीय और लेखकीय शब्दों का प्रायोगिक अनुशासन आत्यतिक रूप में महत्त्वपूर्ण हैं। पात्रीय भाषा में क्षेत्रीय, व्याकरण-च्युत, अपभ्रष्ट शब्द-प्रयोगो की अधिकाधिक गुंजाइश होती है, पर लेखकीय भाषा व्याकरणिक दृष्टि से एक सम्भव सीमा तक शुद्धि से मर्यादित और अनुशासित होती है। कहानी-लेखक को अपने गद्य में इस ओर प्रत्येक दृष्टि से ध्यान रखना पडता है। 'नयी कहानी' की भाषा के शब्द-प्रयोग मे सबसे खलने वाली बात पात्रीय भाषा में पच सकने वाले अव्याकरणिक *शब्द-प्रयोगो का लेखकीय भाषा मे सस्थित होना है। नरेश मेहता ने बत्ती के*

---

१. श्रीराम वर्मा : 'अँधेरे में सहिजन', 'कहानी', अक्तूबर १६६६, पृष्ठ १०।
२. वही, पृष्ठ ६।
३. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ५१।
४. वही, पृष्ठ १५५।
५. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १०३।
६. वही, पृष्ठ ११५।
७. वही, पृष्ठ ११६।
८. वही, पृष्ठ १२६।
९. वही, पृष्ठ १२६।
१०. वही, पृष्ठ १२६।
११. वही, पृष्ठ १२५।
१२. श्रीराम वर्मा : 'अँधेरे में सहिजन', 'कहानी', अक्तूबर १६६६, पृष्ठ १०।
१३. वही, पृष्ठ १०।

युभने के अर्थ में 'बुता'[1] शब्द का प्रयोग किया है। कमलेश्वर ने 'प्रत्येक',[2] 'हरेक'[3] और 'हर'[4] के साथ बहुवचन-परक विशेष्य और क्रिया का; निर्मल वर्मा और नरेश मेहता ने 'बावजूद'[5] के बाद 'भी' का; निर्मल वर्मा ने 'वापस लौटना'[6] शब्द का तथा सुरेश सिन्हा ने 'अपनी निजी व्यवस्था'[7] का एक साथ व्यवहार लेखकीय भाषा में किया है। 'रेणु' भी ऐसे दोष से मुक्त नहीं हैं। उन्होंने लेखकीय भाषा में अव्याकरणिक प्रयोग तो नहीं, पर भ्रष्ट शब्दों के प्रयोग किये हैं। 'प्रवेश' के लिए 'परवेश'[8] तथा 'परवेस'[9], 'यदा-यदा हि...' के लिए 'जदा-जदा हि...',[10] 'प्रेम' के लिए 'परेम',[11] 'मर्म' के लिए 'मरम'[12]—जैसे प्रयोग लेखकीय भाषा में बिना एकोद्धरण-चिह्न के किये गये हैं। कुछ कथाकारों ने लेखकीय भाषा में बंगला शब्दों का यथावत् व्यवहार किया है, जिससे हिन्दी की अर्थवत्ता क्षीण हुई है। जैसे—'वह आसन्न रह गयी'[13] तथा 'उस मीनार को और भी नितान्त बना दिया था'[14]। यहाँ 'आसन्न' का अर्थ 'सन्न हो जाना' और 'नितान्त' का अर्थ 'एकान्त' है। इस दृष्टि से 'नयी कहानी' में कहीं-कहीं भाषा के पूर्ण मार्जन का अभाव खलता है, जबकि कहानी के भाषा-सर्जन और भाषा अध्ययन की प्राथमिक महत्त्वपूर्ण मान्यता लेखकीय और पात्रीय-भाषा-वैभिन्न्य पर ध्यान रखना है। लेखक की भाषा सामान्यतः निष्ठित-मार्जित होती

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १२३।
२. 'कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ' : (सं० राजेन्द्र यादव), पृष्ठ ६३।
३. वही, पृष्ठ ६३।
४. वही, पृष्ठ ६३।
५. (क) 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १६६।
   (ख) 'तथापि', पृष्ठ २७।
६. 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १८१।
७. 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ३८।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३।
९. वही, पृष्ठ १७।
१०. वही, पृष्ठ १३।
११. वही, पृष्ठ १७।
१२. वही, पृष्ठ ६८।
१३. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५५।
१४. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ १०७।

है और पात्रों की भाषा यथार्थतः दैनिक जीवन में प्रयुक्त, फलतः व्याकरण-हीन और अस्पष्ट भी। कथा-भाषा में ये दोनों पहलू मिलकर ही किसी कथाकार को सर्जनात्मक भाषा की सामर्थ्य प्रदान करते हैं।

कहानी के लेखक के लिए ठीक-ठीक शब्दों का प्रयोग करना, ठीक-ठीक कथ्य को ठीक-ठीक शब्दों द्वारा गठित वाक्यों और सन्दर्भों के सर्जन से उजागर कर देना उसकी साधना की सिद्धि पर निर्भर है। इसके लिए उसे यथार्थ जीवन के संलाप से भी पूरी तरह परिचित होना अपेक्षित है। क्योंकि कहानी के लिए संलाप एक खूबसूरत गठन भर नहीं है, बल्कि यह कहानी के कथित होने का अपने-आप में सही माध्यम है।[1] संलाप एक प्रतिवेदन नहीं होकर आसवन (डिस्टिलेशन) है। इसे चीजों के तत्त्व के अन्तःप्रवेश का साधन कहा जा सकता है।[2] यहाँ कहानीकार को तत्त्व से गठन तक—दोनों के संतुलन पर ध्यान देना पड़ता है।

शब्द कभी बड़ी सुविधा से भाव-व्यंजन के लिए हस्तामलक नहीं होते। कथाकारों को सम्प्रेषण के स्तर पर शब्दों का सही-सही अन्वेषी होना पड़ता है; क्योंकि शब्द दबाव पड़ने और कसाव होने पर तनते, दरकते और कभी-कभी टूटते हैं। वे अयथार्थ होने पर फिसलते, सरकते, फुसलते और नष्ट होते हैं, अपनी उपयुक्त जगह पर रह नहीं पाते।[3] यहाँ उसे बहुत सँभलना और सँभालना पड़ता है, ताकि सही ज़िंदगी को चित्रित करते समय कहीं पुराने घिसे शब्द अपना नकार स्पष्ट करते हुए असहयोग न कर दें, कि शब्द पकड़ में आ जाएँ तो संवेदना के रोमिल पंख 'गिलटाह' न होने लगें कि संवेदना की आत्म-डुबकी लेते समय प्राप्य मिल भी जाए तो उसके सम्प्रेषण का माध्यम किसी अंश में निरर्थ न होने लगे। वस्तुतः नया कहानीकार शाब्दिक स्तर पर भाषिक प्राप्ति के लिए कठिनतम यातना को आमन्त्रित कर झेलता और भोगता है।

---

१. रॉबर्ट लिड्डेल : 'सम प्रिंसिपुल्स ऑव फिक्शन', पृष्ठ ७१।

२. चार्ल्स मोरगेन : 'द राइटर एँड हिज़ वर्ल्ड', पृष्ठ ११५।

३. "वर्ड्स स्ट्रेन
क्रैक एँड समटाइम्स, ब्रेक अंडर द बर्डेन
अंडर द टेंसन, स्लिप, स्लाइड, पेरिश,
डिके विद इम्प्रेसिजन, विल नॉट स्टे इन प्लेस
विल नाट स्टे स्टिल।"
—'सम प्रिंसिपुल्स ऑव फिक्शन' के पृष्ठ ७६ पर उद्धृत।

उसकी भाषिक रचना-प्रक्रिया का मानस-संसार सचमुच एक 'बंगाटेल' है, "जिसमें बेकार गयी गोलियों का दर्द नम्बर जीतने वाली गोलियों से बड़ा है।"[1] 'नयी कहानी' ने कथाकारों के शब्द-प्रयोग के इन सारे खतरों को झेला, फिर उन्हें पीछे भी ठेला है। 'नयी कहानी' के शब्दगत प्रयोग इस दृष्टि से पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सटीक साहित्य-गर्भिति से भरे हुए हैं।

पदगत प्रयोग

'शब्द' प्रातिपदिक-विभक्तिहीन शब्द है और 'पद' विभक्तियुक्त शब्द। दोनो का भेदक-तत्त्व विभक्ति है।[2] 'नयी कहानी' के पदगत प्रयोग के अन्तर्गत विभक्ति के आधार पर जुड़े शब्द, सन्धि, समास तथा 'और' संयोजक से हीन युग्म शब्द विचार्य हैं। सन्धि में दो वर्ण मिलते हैं, जो प्रायः दो भिन्न शब्दों के अधीन होते हैं। इन दोनो शब्दों को वियुक्त कर अर्थ के स्पष्टीकरण में प्रायः विभक्ति लगानी पड़ती है। समास मे दो भिन्न शब्द जुड़ कर एक पद बनाते हैं। यहाँ भी अर्थ-मोचन अथवा समास-विग्रह मे विभक्ति के प्रयोग होते हैं। युग्म शब्दों के बीच संयोजक-'और' का अभाव होता है तथा योजक का चिह्न (-) लगा होता है। इस प्रकार ऐसे शब्द 'और' के प्रति साकांक्ष होते हैं। हिन्दी में इन्हें भी पदान्तर्गत रखना समीचीन है।

विभक्ति के आधार पर जुड़े पद-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में पद-रूपों के प्रयोग मे स्वच्छन्दता आचरित हुई है। विभक्ति के आधार पर जुड़े हुए शब्दो के उदाहरण प्रतिप्यार[3], हैरानीजनक[4], हमदर्दीहीनता[5], लड़कीहीनता[6], पानीहीन[7], जैसे प्रयोग हैं। ये पद तत्सम और तद्भव शब्दो के मेल से बने हैं। हिन्दी की सरलता, उदारहृदयता, विश्लेपणधर्मिता के उदाहरण हैं ये।

---

१. राजेन्द्र यादव : 'कहानी : स्वरूप और संवेदना', पृष्ठ ११६।
२. देवेन्द्रनाथ शर्मा : 'भाषा-विज्ञान की भूमिका', पृष्ठ २१६।
३. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ ४।
४. वही, पृष्ठ ३४।
५. वही, पृष्ठ ३७।
६. वही, पृष्ठ ३६।
७. वही, पृष्ठ ४३।

स्वच्छन्द सामासिक पद-प्रयोग

इस भाषा में कुछ समस्त पद मुख-सुख के कारण अपने उच्चरित रूप में ही व्यवहृत हुए हैं। जैसे 'चायबगान' के लिए 'चावगान'[1] और 'मुँहअँधेरे' के लिए 'मुँहँधेरे'[2] के प्रयोग। पद-संकोचन की यह प्रवृत्ति जनजीवन के प्रयोग पर आधारित है।

स्वच्छन्द संधि के पद-प्रयोग

'नयी कहानी' मे स्वच्छन्द सधि का नव्य निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। नकेन के 'प्रपद्यवाद' में भी बहुत-पहले कुछ इस प्रकार के प्रयोग हुए थे। वहाँ 'और' तथा 'उसे' को 'औरसे' लिखा गया था। 'नयी कहानी' में 'हम ही' को 'हम्ही'[3] तथा 'हिम आँधियों' को 'हिमाँधियों'[4] लिखा गया है। ये उदाहरण 'प्रपद्यवाद' की अपेक्षा अधिक प्रकृत तथा अकृत्रिम हैं।

'और' संयोजक-विहीन पद-प्रयोग

'नयी कहानी' में शब्द-युग्म रूपी प्रभूत पद-प्रयोग हुए हैं। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ 'रेणु' जैसे कहानीकारो ने वाक्य-वाक्य को ऐसे पद-प्रयोग से भर दिया है। राजेन्द्र यादव द्वारा प्रयुक्त 'जान-पहचान'[5] 'छोटा-बड़ा'[6], 'घुटी-घुटी'[7], 'प्यार-व्यार'[8], 'गीली-गीली'[9], 'पास-पास'[10], 'आगे-आगे'[11], 'किनारे-किनारे'[12], 'बहक-भटक'[13], 'कहा-सुनी'[14], 'हिसाब-

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ८।
२. वही, पृष्ठ ३१।
३. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ४०
४. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ३।
५. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ४०।
६. वही, पृष्ठ ४०।
७. वही, पृष्ठ ४०।
८. वही, पृष्ठ ४०।
९. वही, पृष्ठ ३८।
१०. वही, पृष्ठ ३७।
११. वही, पृष्ठ ४१।
१२. वही, पृष्ठ ३७।
१३. वही, पृष्ठ ३४।
१४. वही, पृष्ठ ३३।

किताब'[1], 'खाने-रहने'[2], 'साफ-सफेद'[3], 'आगे-पीछे'[4], 'लेक-वेक'[5], टूटा-फूटा'[6], 'वाही-तवाही'[7], 'डील-डौल'[8], 'चोटी-चोटी'[9], 'शोर-शराबा'[10], 'उतरते-चढ़ते'[11], खिलाइए-पिलाइए'[12], 'अरथी-वरथी'[13] जैसे पद, कमलेश्वर द्वारा प्रयुक्त 'खोयी-खोयी'[14], 'अंग-प्रत्यंग'[15], 'रन्ध्र-रन्ध्र'[16], 'पोर-पोर'[17], 'जोड़-जोड़'[18], 'रोम-रोम'[19], 'टुकड़े-टुकड़े'[20], 'अकुला-अकुला'[21], 'मोटे-मोटे'[22], 'उजड़ी-उजड़ी'[23] जैसे पद तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' द्वारा प्रयुक्त 'मुंडन-छेदन'[24], 'वासी-टटका'[25], 'बर्तन-बासन'[26], 'झोली-गठरी'[27], 'इल्ली-

---

१. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ३३।
२. वही, पृष्ठ ३३।
३. वही, पृष्ठ ३१।
४. वही, पृष्ठ २१।
५. वही, पृष्ठ २१।
६. राजेन्द्र यादव : 'टूटना और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ ५४।
७. राजेन्द्र यादव : 'छोटे-छोटे ताजमहल', पृष्ठ ५६।
८. वही, पृष्ठ ६१।
९. वही, पृष्ठ ६१।
१०. वही, पृष्ठ ५७।
११. वही, पृष्ठ ५५।
१२. वही, पृष्ठ ५०।
१३. वही, पृष्ठ ५०।
१४. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ ४६।
१५. वही, पृष्ठ ४६।
१६. वही, पृष्ठ ४७।
१७. वही, पृष्ठ ४७।
१८. वही, पृष्ठ ४७।
१९. वही, पृष्ठ ४७।
२०. वही, पृष्ठ ४७।
२१. वही, पृष्ठ ११०।
२२. वही, पृष्ठ ११०।
२३. वही, पृष्ठ ९८।
२४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ११।
२५. वही, पृष्ठ १४।
२६. वही, पृष्ठ २५।
२७. वही, पृष्ठ २५।

स्वच्छन्द सामासिक पद-प्रयोग

इस भाषा में कुछ समस्त पद मुख-सुख के कारण अपने उच्चरित रूप में ही व्यवहृत हुए हैं। जैसे 'चायबगान' के लिए 'चावगान'[1] और 'मुँहअँधेरे' के लिए 'मुँहँधेरे'[2] के प्रयोग। पद-संकोचन की यह प्रवृत्ति जनजीवन के प्रयोग पर आधारित है।

स्वच्छन्द संधि के पद-प्रयोग

'नयी कहानी' में स्वच्छन्द संधि का नव्य निदर्शन प्रस्तुत किया गया है। नकेन के 'प्रपद्यवाद' में भी बहुत-पहले कुछ इस प्रकार के प्रयोग हुए थे। वहाँ 'और' तथा 'उसे' को 'औरुसे' लिखा गया था। 'नयी कहानी' में 'हम ही' को 'हम्ही'[3] तथा 'हिम आँधियो' को 'हिमाँधियों'[4] लिखा गया है। ये उदाहरण 'प्रपद्यवाद' की अपेक्षा अधिक प्रकृत तथा अकृत्रिम हैं।

'और' संयोजक-विहीन पद-प्रयोग

'नयी कहानी' में शब्द-युग्म रूपी प्रभूत पद-प्रयोग हुए हैं। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, फणीश्वरनाथ 'रेणु' जैसे कहानीकारों ने वाक्य-वाक्य को ऐसे पद-प्रयोग से भर दिया है। राजेन्द्र यादव द्वारा प्रयुक्त 'जान-पहचान'[5] 'छोटा-बड़ा'[6], 'घुटी-घुटी'[7], 'प्यार-व्यार'[8], 'गीली-गीली'[9], 'पास-पास'[10], 'आगे-आगे'[11], 'किनारे-किनारे'[12], 'बहक-भटक'[13], 'कहा-सुनी'[14], 'हिसाब-

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ८।
२. वही, पृष्ठ ३१।
३. डॉ० सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ ४०
४. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ३।
५. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ४०।
६. वही, पृष्ठ ४०।
७. वही, पृष्ठ ४०।
८. वही, पृष्ठ ४०।
९. वही, पृष्ठ ३८।
१०. वही, पृष्ठ ३७।
११. वही, पृष्ठ ४१।
१२. वही, पृष्ठ ३७।
१३. वही, पृष्ठ ३४।
१४. वही, पृष्ठ ३३।

किताब'[1], 'खाने-रहने'[2], 'साफ-सफेद'[3], 'आगे-पीछे'[4], 'लेक-चेक'[5], टूटा-फूटा'[6], 'वाही-तबाही'[7], 'डील-डौल'[8], 'बोटी-बोटी'[9], 'शोर-शराबा'[10], 'उतरते-चढ़ते'[11], खिलाइए-पिलाइए'[12], 'अरथी-वरथी'[13] जैसे पद, कमलेश्वर द्वारा प्रयुक्त 'खोयी-खोयी'[14], 'अंग-प्रत्यंग'[15], 'रन्ध्र-रन्ध्र'[16], 'पोर-पोर'[17], 'जोड़-जोड़'[18], 'रोम-रोम'[19], 'टुकड़े-टुकड़े'[20], 'अकुला-अकुला'[21], 'मोटे-मोटे'[22], 'उजड़ी-उजड़ी'[23] जैसे पद-तथा फणीश्वर नाथ 'रेणु' द्वारा प्रयुक्त 'मुंडन-छेदन'[24], 'बासी-टटका'[25], 'बर्तन-बासन'[26], 'झोली-गठरी'[27], 'इल्ली-

---

१. राजेन्द्र यादव : 'किनारे से किनारे तक', पृष्ठ ३३।
२. वही, पृष्ठ ३३।
३. वही, पृष्ठ ३१।
४. वही, पृष्ठ २१।
५. वही, पृष्ठ २१।
६. राजेन्द्र यादव : 'टूटना और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ ५४।
७. राजेन्द्र यादव : 'छोटे-छोटे ताजमहल', पृष्ठ ५६।
८. वही, पृष्ठ ६१।
९. वही, पृष्ठ ६१।
१०. वही, पृष्ठ ५७।
११. वही, पृष्ठ ५५।
१२. वही, पृष्ठ ५०।
१३. वही, पृष्ठ ५०।
१४. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ ४६।
१५. वही, पृष्ठ ४६।
१६. वही, पृष्ठ ४७।
१७. वही, पृष्ठ ४७।
१८. वही, पृष्ठ ४७।
१९. वही, पृष्ठ ४७।
२०. वही, पृष्ठ ४७।
२१. वही, पृष्ठ ११०।
२२. वही, पृष्ठ ११०।
२३. वही, पृष्ठ ९८।
२४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ११।
२५. वही, पृष्ठ १४।
२६. वही, पृष्ठ २५।
२७. वही, पृष्ठ २५।

डिल्ली'[1], 'देह-जाँगर'[2], 'चोर-चुहार'[3], 'आय-माय'[4], 'दिसा-टट्टी'[5], 'तैम-टेम'[6], 'दियाद-गोतिया'[7], 'बारी कुमारी'[8], 'औन-पौन'[9], 'तली-बघारी'[10], 'सूँघ-साँघ'[11], 'टटकी-टटकी'[12], 'छू-छा'[13] जैसे पद इस प्रयोग के सुन्दर उदाहरण हैं। ऐसे प्रयोग अन्यान्य कहानीकारों की भाषा में भी प्राप्त हैं। ऐसे पद-प्रयोग में कहीं एक ही शब्द की आवृत्ति हुई है तो कहीं उस शब्द के साथ निरर्थ-विकृत शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, कहीं भिन्न- दूसरे अर्थ देने वाले शब्द जुड़े हैं तो कहीं पूर्व शब्द का ही पर्याय पर-स्थान पर आ बैठा है और कहीं दोनों शब्दों की एकता क्रियात्मक अन्तर से स्पष्ट हुई है।

इस प्रकार 'नयी कहानी' की भाषा के पदगत प्रयोग अपने उक्त चारों प्रकारों के माध्यम कहानी की उस सर्ववर्गात्मक पदवत्ता की पुष्टि करते हैं, जो पदावली अशास्त्रीयता का उन्मुक्त आचरण करती, विदग्धता के विविध प्रकारों से विविध रूपों में विविध उद्देश्यों के लिए भाषा को विविध मोड़ देती है।[14]

---

१. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ २६।
२. वही, पृष्ठ ३२।
३. वही, पृष्ठ ३६।
४. वही, पृष्ठ ३६।
५. वही, पृष्ठ ४०।
६. वही, पृष्ठ ८६।
७. वही, पृष्ठ १२१।
८. वही, पृष्ठ १३१।
९. वही, पृष्ठ १५२।
१० वही, पृष्ठ ५५।
११ वही, पृष्ठ ६७।
१२. वही, पृष्ठ ६६।
१३ वही, पृष्ठ ८५।
१४. 'फिक्शन इज इन फैक्ट, अ ब्लेंकेट टर्म ह्विच कवर्स मेनी डिफरेंट काइंड्स ऑव रिक्स, मेनी डिफरेंट वेज ऑव हैंडलिंग नैरेटिव इन लैंग्वेज, फॉर मेनी डिफरेंट पर्पजेज।"
—विट इंग्वेज : 'द क्रिटिसिज्म ऑव फिक्शन', 'लिटरेरी एसेज', पृष्ठ १८८।

वाक्यगत-प्रयोग

वाक्य-प्रयोग के अध्ययन के बिना किसी भी प्रकार की भाषिक मीमासा अपूर्ण है। 'नयी कहानी' में वाक्य-प्रयोग गठन, रचाव, मौलिकता, प्रभाव आदि दृष्टियों से विचारणीय है। यह एक ओर अँगरेजी विन्यास से प्रभावित है, दूसरी ओर शब्दों और वाक्यखडो की आवृत्तिवश गद्यराग से भरा-पूरा, एक ओर प्रभविष्णु लोकोक्तियों और नव्य मुहावरों से नियोजित है, दूसरी ओर मौलिक और अनुभूत सूक्तियों से सयोजित, एक ओर विन्दु-चिह्न से सजे खडित वाक्य से विशेषीकृत है, दूसरी ओर कोष्ठक-प्रयोग से अभिनवीकृत, एक ओर मिथकीय पदावली की सरचना से सज्जित है, दूसरी ओर क्रिया के पूर्ववर्त्ती और कारक-विभक्ति, सज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण, पूर्वकालिक क्रिया जैसे वाक्याश के परवर्त्ती प्रयोग से वेष्ठित। ऐसा कही शैली की दृष्टि से किया गया है तो कही कथ्य पर बल देने के लिए; कही संलापगत वाक्य के प्रकृत रूप की रक्षा के लिए तो कही अँगरेज़ी वाक्य-गठन के अनुकरण के लिए। पात्रीय भाषा में कही अँगरेज़ी के वाक्यों के प्रयोग तो कही बगला, मराठी, पंजाबी जैसे प्रान्तीय भाषा के वाक्यों के प्रयोग, कही गँवई बोली के वाक्यों के प्रयोग यो कही बच्चो के तोतले वाक्यो के प्रयोग, कही देहात में औरतो के बीच बोले जाने वाली विशिष्ट वाक्यों के प्रयोग तो कही विशिष्ट कथन-भगी से बोले गये वाक्यों के प्रयोग और निक्षिप्त वाक्यो में गीत-लोकगीत की छोटी कड़ी से लम्बी कड़ियो तक के प्रयोग हुए हैं।

'नयी कहानी' का वाक्य-गठन लघु से विस्तृत-शृंखलित तक है। वह क्रियाहीन है और क्रियापूर्ण भी, विशेषण से सर्वथा वियुक्त है और युक्त भी। यहाँ कथ्य की तीव्रता को ध्यान में रखते हुए कर्तृवाच्य से कर्मवाच्य तक व्यवहृत है। किसी सर्वनाम के लिए कभी गंभीर और कभी व्यंग्यात्मक सकेत के रूप में व्यक्तिवाचक संज्ञा का भी व्यवहार है। पात्रीय वाक्यो में यति-गति का भी सम्यक् निर्वाह है। इस कथा-भाषा में विन्दुक (डॉट्स), एकोद्धरणी (इन्वर्टेड कॉमा) और विरामाकन (पंक्चुएशन) के भी सर्वथा अभिनव प्रयोग हुए हैं, जो महत्वपूर्ण हैं।

अँगरेज़ी विन्यास से प्रभावित प्रयोग

'नयी कहानी' के वाक्य-गठन पर अँगरेज़ी की वाक्य-संघटना का प्रभाव पडा है। 'अमरूल वहाने' की जगह 'लँगडे बहाने'[1], 'यात्रा के लिए जाने का

१. कृष्ण बलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ १२६।

निर्णय किया' की जगह 'यात्रा पर जाने का निर्णय लिया'[1], 'तू जिन्दगी को बहुत ही बहुत गम्भीरता से सोचता है' की जगह 'तू जिन्दगी को बहुत ही बहुत गम्भीरता से लेता है'[2], 'नोटिस (ध्यान) ही न दें' की जगह 'नोटिस ही न ले'[3], 'छात्रों को वापस नहीं लिया जाता' की जगह 'छात्रों को वापस नहीं लिया जाता'[4], 'ड्रॉप कर रहे हो' की जगह 'ड्रॉप ले रहे हो'[5], 'आँख की किरकिरी हो उठा था' की जगह 'गन्दी मक्खी हो उठा था'[6], 'नयी आदत लग गयी' की जगह 'नयी आदत ने जन्म लिया'[7] आदि वाक्यों के प्रयोग अँगरेजी के प्रभाववश हुए हैं। दो वाक्यों को मिलाने में 'जिसका' की जगह 'कि इसका' का प्रयोग भी 'नयी कहानी' में अँगरेजी के प्रभाव का ही परिणाम है—"औद्योगिक शान्ति का भी ऐतिहासिक महत्त्व उसके निकट था कि उसका प्रभाव मानवीय सम्बन्धों पर अवश्य हुआ।"[8] ऐसे उदाहरणों के अतिरिक्त उसने 'अपने आपको माहेश्वरी से कहते अनुभव किया' की जगह 'उसने अपने-आपको माहेश्वरी से कहते पाया'[9] और 'वह चाहती थी कि मैं मनायी जाऊँ' की जगह 'वह मनवाया जाना चाहती थी'[10] के वाक्यगत प्रयोग भी पूर्णतः अँगरेजी से प्रभावित हैं। इनके अतिरिक्त 'नयी कहानी' में मिश्र वाक्यों के अधिकाधिक प्रयोग में 'डायरेक्ट नैरेशन' की जगह 'इनडायरेक्ट नैरेशन' के प्रयोग हुए हैं। इतना ही नहीं, प्रधान वाक्यों के बाद वाक्यांशों के प्रयोग में भी अँगरेजी प्रभाव परिलक्षित होता है। 'हवा छत पर चलती है' जैसे सरल वाक्य को 'द विण्ड ब्लोज ऑन द रूफ' के आधार पर 'हवा चलती है छत पर'[11] लिखा गया है।

---

१. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ११६।
२. राजेन्द्र यादव : टूटना. ', पृष्ठ ४६।
३. सुरेश सिन्हा : 'कई आवाजों के बीच', पृष्ठ २८।
४. वही, पृष्ठ १६८।
५. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ६१।
६. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ८१।
७. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ६६।
८. नरेश मेहता 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ६५।
९. राजेन्द्र यादव : 'टूटना . ', पृष्ठ ७५।
१०. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ २५।
११. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ५५।

गद्यराग के प्रयोग

राग आकर्षण का नाम है। फलतः गद्य का निजी आकर्षण गद्यराग है।[1] 'नयी कहानी' में शब्दों और वाक्यांशों की आवृत्ति से गद्यराग का सर्जन किया गया है। संप्रेषण के क्रम में गद्य में जोर डालने तथा तीव्र भावात्मकता उत्पन्न करने के लिए आवृत्ति बहुत-बहुत प्राकृतिक है।[2] ये आवृत्तियाँ कई प्रकार की हैं। निर्मल वर्मा जैसे कहानीकार मे आवृत्ति विशेष सांकेतिक लयात्मकता उत्पन्न करती है, जिसके नौ प्रकार हैं—

१–सामान्य आवृत्ति (पैलीलॉजिया)—"लाल-लाल-से गढ़े, छोटे-छोटे चाँद से गढ़े।"[3]

२–अंतायावृत्ति (एनेडिप्लोसिस)—"फिर चुनचुनाता-सा दर्द, दर्द को काटती एक साँस, साँस पर मरती हुई एक निहायत बेचैन सिसकी और सिसकी को रास्ते में ही तोड़ती वह चीख।"[4]

३–आद्यावृत्ति (एनेफोरा)—"जैसे मैं एक बहुत पेचीदा रहस्यमय ढङ्ग से उस पर आश्रित होऊँ, जैसे उसके जाने भर से ही कुछ खो दूँगा''' जैसे उसका यहाँ रहना खुद मेरे रहने से जुड़ा है।"[5]

४–आन्तिक आवृत्ति (एपिस्ट्रॉफे)—"शम्मी भाई को नहीं मालूम कि वह उनके हाथ को देख रही है, हवा मे उडती हुई उनकी टाई, उनकी भिप-भिपाती आँखों को देख रही है।"[6]

५–तीव्र भाविक आवृत्ति—"वह रोएगी, बिलकुल रोएगी।"[7]

६–विविध व्याकरणिक आवृत्ति (पोलियोपटोटन)—"हम सबके हाथो में एक-एक थैला था, जिसमे हमने रात की ड्यूटी के कपड़े, खाने का सामान बाँध रखा था। हममें से किसी के लिए यह विश्वास करना कठिन था कि हमें अगले ट्यूब से वापस लौट जाना होगा।"[8]

---

१. डॉ० व्रजवासी लाल श्रीवास्तव : 'हिन्दी गद्य का राग', हिन्दी 'अनुशीलन', अक्तूबर-दिसम्बर ६१, पृष्ठ २६।
२. मारजोरी बुल्टन : 'द एनेटोमी ऑव प्रोज', पृष्ठ १६४।
३. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ६८।
४. वही, पृष्ठ १८।
५. वही, पृष्ठ ८२।
६. वही, पृष्ठ ६८।
७. वही, पृष्ठ ६६।
८. वही, पृष्ठ १०५।

७–पूर्व-मध्यावृत्ति (इपेनडीस)– "एक पत्र, एक नाई की दूकान और दो जनरल स्टोर।"[1]

८–पूर्व-पर-आवृत्ति (इपेनलेप्सिस)–"क्या याद आ गया था—वह मुझ पर झुक आया जैसे अभी गले पर लटक जाएगा—बताओ, क्या याद आ गया था?

९–मिश्र आवृत्ति–"यह क्या कुछ है जो हमें चलाये चलता है, हम रुकते है तो भी अपने बहाव मे यह हमें घसीट लिये जाता है? लतिका मे आगे कुछ नही कहा गया, जैसे जो वह कहना चाह रही है वह कह नही पा रही है, जैसे अँधेरे मे कुछ खो गया है, जो मिल नहीं पा रहा है और शायद कभी मिल नहीं पाएगा?"[3]

ऐसी कई आवृत्तियाँ अन्यान्य कथाकारो की भाषा में भी हुई है, किन्तु इनका अनुपात निर्मल वर्मा मे अधिकाधिक है। 'नयी कहानी' मे नानाविध आवृत्तियो से प्राप्त लयवत्ता की यह अभूतपूर्व सर्जना सगीत के रागधर्म और अर्थधर्म दोनो ही दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है।

मोहन राकेश, कमलेश्वर, शिवप्रसाद सिंह, उषा प्रियवदा आदि कथाकारो ने गद्यराग के सुन्दर और सुष्ठु प्रयोग किये है। नरेश मेहता ने आन्तिकावृत्ति के माध्यम गद्यराग का मनोरम सर्जन किया है—"और अब लोग घुटनो पर झुक-झुक कर हँस रहे थे, पेट पकड़-पकड़ कर हँस रहे थे, पैर पटक-पटक कर हँस रहे थे और घूम-घूम कर हँस रहे थे।"[4] अतायावृत्ति का एक चमत्कारी उदाहरण रमेश बक्षी की कहानी मे भी प्राप्त है—" यह तसवीर, इस तसवीर मे बनी लड़की, लड़की की चमकती आँखें, आँखों मे बहता प्यार, प्यार मे लहराता सौन्दर्य, सौन्दर्य की गलबाँही मे उसकी हमसाथिन जवानी...।"[5] ऐसा ही एक उदाहरण आद्यावृत्ति का है–"कभी मोगरे की कलियो का हार उसे पहना देता, कभी किस्म-किस्म के फूल लाकर उसे सजा देता, कभी चदन जलाकर उसके धुएँ की लकीर को उस लड़की के पास पहुँचते देखता...।"[6]

---

१ निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ : १४२।
२. वही, पृष्ठ ११६।
३. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १७१।
४ नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १६।
५. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ७।
६. वही, पृष्ठ ७।

और शुद्ध मध्यावृत्ति का भी—"अलकें हैं कि जरा सी हवा मे तूफान मचाएँ, पलकें हैं कि ठहरती ही नही, पल्ला है कि हर बार खिसक जाता, रिबिन है कि पछी के लम्बे-लम्बे पंख...।"[1]

आवृत्ति के अन्यान्य रूपो मे हुए चमत्कारी प्रयोग ने भी 'नयी कहानी' मे गद्यराग का अनूठा सर्जन किया है। इस रूप में कही गद्यराग की विकारी आवृत्ति है—"कभी कोई अपनी जरूरत से बुलवा लेता और कभी बेजरूरत भी;"[2] तो कही द्विआवृत्ति—"घडी हथेली पर रखती तो जजीर हथेली के उस पार झूल जाती।"[3] कही त्रि-आवृत्ति है—"ये कुछ बोलती क्यों नहीं, देर मे आने पर डाँटती क्यों नहीं, कुछ पूछती क्यों नहीं?"[4] तो कही चतुर्यावृत्ति—"जब वापस आता तो धूप चढ आयी होती, दोपहरी तपती होती और माँ पहिया पर सूत रखे हाँफते-हाँफते सूटती होती, बालो की लटें रूखी-सी झूलती होती;"[5] कही पचावृत्ति है—"पर कही कुछ था जो उसे बुलाता था, ढाढ़स बँधा देता था, उसकी आँखों मे पानी का सैलाब लाता था और सोख लेता था;"[6] तो कही षष्ठावृत्ति—"एक बेहद उदास शहर है, उस शहर में स्कूल है, रेलवे स्टेशन है, और अस्पताल भी है। माँ दूध का प्याला लिये बैठी हैं, और बाप फाइलें रखे सिरहाने सो रहा है;"[7] कही सप्तावृत्ति है—और तब चन्दर ने पहली बार उसे बिलकुल अपने पास महसूस किया था और उसके माथे पर रंग से बिन्दी बना दी थी और कई क्षणो तक मुग्ध-सा देखता रह गया था और अनजाने ही उसने होठ इन्दिरा के माथे पर रख दिये थे। इन्दिरा की पलकें झप गयी थी और रोम-रोम मे गध फूट उठी थी। उसकी उँगलियाँ चन्दर की बाँहों पर थरथराने लगी थी और माथे पर आया पसीना उसके होठो ने सोख लिया था। रेशमी रोएँ पसीने से चिपक गये थे और उन उन्माद के क्षणों मे दोनो ने ही प्रतिज्ञा की थी···;"[8] तो कही विरोधी पदो

---

१. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ९७।
२. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ १।
३. वही, पृष्ठ ३।
४. वही, पृष्ठ ३।
५. वही, पृष्ठ ४।
६. वही, पृष्ठ १३।
७. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएं, पृष्ठ १२२।
८. वही, पृष्ठ ८९।

की आवृत्ति, *'इस हाथ ले, उस हाथ दे;'*[1] कहीं *समध्वन्यात्मक पदावृति है*--'माँ कोठरी से निकलती, आसन बिछाती और खाना परोसकर देवा को आवाज देती ;'[2] तो कही विशेष पदावृत्ति"...इसीलिए सोचता हूँ **जैसा वहाँ, तैसा यहाँ** ;'[3] कही अनावृत्ति मे आवृत्ति है "...साँई की कोठरी पनाहगाह भी है और शिकारगाह भी ;"[4] तो कही--'थी--था, था--थी' की लयात्मक आवृत्ति, "ममी साडी बदल कर आयी, तो उनके तन से गध फूट रही थी... पर उनके कधे पर सिर रखते संकोच हो रहा था। तब एक क्षण के लिए उसने महसूस किया था कि वह गध पिछले दो-तीन दिन से घर भर में समायी हुई थी।"[5]

लोकोक्ति-प्रयोग

नये कथाकारो ने लोकोक्तियो का व्यवहार कहानी की पृष्ठभूमि के अनुकूल किया है। ये लोकोक्तियाँ बडी जीवन्त और स्वाभाविक हैं '"'खायेंगे गेहूँ, नही रहेगे एहूँ ',[6] 'नानी के आगे ननिहाल का बखान।',[7] देसी चिरई, मरहठी बोली',[8] 'मरा हाथी भी एक लाख का',[9] 'कथरी के नीचे दुशाले का सपना',[10] 'जोरू, जमीन, जोर के, नही तो किसी और के'।[11]ऐसी लोकोक्तियों *से भाषा को ताजगी मिली है, एक खास अन्दाज मिला है, साथ ही लोक-जीवन* की वार्त्ता और वर्णनात्मकता भी समर्थित हुई है।

मुहावरों के प्रयोग

'नयी कहानी' यद्यपि मुहावरो के प्रति बहुत आग्रहशील नही है, तथापि

---

१ कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ १।
२. वही, पृष्ठ ३।
३ वही, पृष्ठ ७
४. वही, पृष्ठ ४४।
५. कमलेश्वर : 'मांस का दरिया', पृष्ठ १६।
६. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १४६।
७. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ १०६।
८. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'आरपार की माला', पृष्ठ ५३।
९. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ १२४।
१०. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १५७।
११. वही, पृष्ठ १५८।

काफी ताजे मुहावरे इस भाषा मे प्रयुक्त हुए है। इन मुहावरो ने हिन्दी गद्य की लक्षणा-शक्ति को पूर्वापेक्षया अधिक समृद्ध किया है। 'ठेंगा दिखाना',[1] 'लटक जाना',[2] 'चूना पोतना',[3] 'बबूल का लासा होना',[4] 'दो जौ आगे होना',[5] 'भूसा बना देना',[6] 'पेट मे आरियाँ चलना',[7] 'गूलर का फूल बनना'[8] आदि सैकडो मुहावरे अपनी व्यापक अर्थवत्ता के साथ 'नयी कहानी' की भाषा मे प्रयुक्त हुए है।

सूक्ति-प्रयोग

'नयी कहानी' के वाक्यगत प्रयोग सूक्ति की मर्मस्पर्शिता, सूक्ष्मता और अनुभूत सत्यता से भी सम्पन्न है। यह भाषा पाठक को मीमासा के लिए पल भर रोकती है। छोटी-छोटी सूक्तियाँ कहानी के भाषा-प्रवाह मे छोटी-छोटी भँवर जैसी हैं। लोकोक्ति और मुहावरो की भाँति सूक्ति का सम्बन्ध भी कहानी की पूर्वपरम्परा से जुडा है, किन्तु इन सूक्तियो की विशेषता विविध-स्तरीय अनुभूतियो का व्यक्तीकरण है—

१—'हम अनागत होकर ही रह सकते है, विगत कदापि नहीं। और वर्तमान तो असगति की खोखल है, निष्प्रयोजनहीन।'[9]

२—'अपनी मौलिकता सबसे बडी निधि है।'[10]

३—'जो फलीभूत नही हो पाया, वह कुछ भी नही है।'[11]

४—'औलाद आदमी को खा जाती है।'[12]

---

१. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ ७६।
२. वही, पृष्ठ ७६।
३. वही, पृष्ठ ७७।
४. वही, पृष्ठ ७७।
५. वही, पृष्ठ ६८।
६. वही, पृष्ठ १३१।
७. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १७।
८. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार हैं', पृष्ठ २२३।
९. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ १२५।
१०. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया' (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ११९।
११. वही, पृष्ठ १२७।
१२. वही, पृष्ठ ३८।

५—'दूसरो की ज्यादती सब याद रखते हैं और अपनी तो कोई बात ही नही जैसे।'[1]

६—'जी सकना तो स्वार्थ नही, जीवित रह सकने के लिए की गयी कोई भी कोशिश, कोई भी तरीका स्वार्थ की कोटि मे नही रखा जा सकता। वह तो एक विवश आवश्यकता है। विवशता की सिद्धि चाहे स्वार्थ हो, पर आवश्यकता की सिद्धि ही अधिकार है।'[2]

७—'जुल्म का प्रतिरोध विध्वस से ही हो पाता है।'[3]

८—'मनुष्य की सामर्थ्य पर अविश्वास हो जाने के बाद उसकी किसी बात मे रस नही रह जाता।'[4]

९—'जो बिगाडता है, वह सच नही हो सकता और झूठ अगर किसी को बनाता है, तो बुरा क्या है ..यह तो बनने-बिगड़ने पर है।'[5]

१०—'कह दिये जाने पर न तो व्यक्ति, न फूल—किसी मे भी गध नही रह जाती'।[6]

११—'पुरुष मन जीता है, किन्तु नारी को तो तन जीना होता है।'[7]

१२—'सहजता से तो दुर्भाग्य ही मिलता है, सौभाग्य के लिए क्या कुछ न करना होता है।'[8]

१३—'पाश्चाताप को मैं मानसिक एव धार्मिक कमजोरी समझता हूँ।'[9]

१४—'सम्भवतः कोई भी सब-कुछ प्राप्त नही कर सकता है। हमें चुनना होता है। यह हम पर निर्भर करता है कि हम क्या चुनते हैं।'[10]

१५—'अच्छा मित्र पाना अच्छी पत्नी पाने से भी बडा सौभाग्य है।'[11]

---

१. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया' (द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २१०।
२. वही, पृष्ठ १५५।
३. वही, पृष्ठ १५५।
४. वही, पृष्ठ २२७।
५. वही, पृष्ठ २१६।
६. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ८।
७. वही, पृष्ठ १२४।
८. वही, पृष्ठ ११७।
९. वही, पृष्ठ १०१।
१०. वही, पृष्ठ ७६।
११. वही, पृष्ठ १०६।

१६—'अकेला तो वह होता है, जो अकेलेपन को महसूस करे ।'[1]

१७—'आदर्श की आवाज ऊपर की सतह से ही सुनायी जा सकती है ।'[2]

१८—'दिलखोल गप तो गाँव की बोली में ही की जा सकती है ।'[3]

१९—'जनता तो नेता की थाली में रखा बैंगन है। जिधर नेता झुके उधर ही जनता लुढ़क पड़े ।'[4]

२०—'रोशनी किसी की बपौती नहीं होती ।'[5]

खंडित वाक्य-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में टूटे हुए वाक्यों के प्रयोग भी हुए हैं, जिनसे वक्ता की खडित मनःस्थिति, पूर्ण कथ्य को विवृत करने की अशक्ति, मानसिक उहापोह और द्विधा के कारण उसके व्यंजन की असमर्थता आदि उद्घाटित हुई है। इस प्रकार इस भाषा में खडित वाक्यों के साभिप्राय प्रयोग हुए है— "मैं कहता हूँ...मैं...व्यवस्था...पंच ..हत्या...मे इनके लिए...मैं...।"[6] यहाँ अनिश्चय की स्थिति है, अनिर्णय का अहसास है, खुद में कहीं संयत और पुष्ट न हो सकने की बाध्यता है, जो वाणी की ऐसी पंगुता मे भी उभर आयी है।

कोष्ठक-प्रयोग

'नयी कहानी' के वाक्यों में कथ्य के प्रमुख और गौण अश को तद्वत् निरूपित करने के लिए एक विचार के अभिव्यक्त होते-न-होते छूटते-छूटते दूसरे विचार के कभी पूरक रूप मे और कभी शंकास्पद रूप में प्रकट हो पड़ने आदि के लिए कोष्ठकों के प्रयोग हुए हैं। भाषिक प्रयोग की इस बारीकी के अभाव में कथ्य की ऐसी सावधान पहचान नहीं हो सकती—

(१) "बेकली वहीं जाने (या न जाने) से, किसी से मिलने (या न मिलने) से दिन भर मुँह लटकाये भटकते रहने (या रात भर करवटें बदलते रहने)

---

१. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ५४।
२. मोहन राकेश : 'सुहागिनें' (हि० पा० बुक्स), पृष्ठ १३।
३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १५८।
४. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ १६५।
५. वही, पृष्ठ १३५।
६. दूधनाथ सिंह : 'सपाट चेहरे वाला आदमी', पृष्ठ १०६।

से, (हँसने हँसाने या हिनहिनाने) से कदापि दूर नहीं होती।"[1]

(२) "उठकर दरवाजा बन्द कर दूँ (आज इतवार है)"[2]

(३) "एक चुल्लू भर पानी मँगवाओ (या स्वयं ही ले आओ) और उसमें डूब मरो।"[3]

कोष्ठक-प्रयोग अभिव्यक्त हो चुकी भाषा के साथ मन के भीतर बनती, अकुलाती भाषा की दूरी भी स्पष्ट कर देता है।

मिथकीय वाक्य-प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा मे मिथकीय वाक्यों के भी प्रयोग हुए है। पौराणिक मिथक मे महावीर जी के समुद्र मे कूदने का[4] तथा सनीचरी देवी ('जबतक बरन की बहू को कोढ़ न फूटेगा, वह दाढ़ी न मुडायेगा। इसी काम के लिए वह सनीचरी देवी पर रोज जल भी चढाता है')[4] का उल्लेख; सामाजिक मिथक मे कौए के सर पर बैठने ('कौआ का सर पर बैठना बहुत अनसुभ माना जाता है। उससे मउअत आ जाती है।.. यह मउअत वाली बात किसी सगे-सम्बन्धी के यहाँ लिख देने से मउअत टल जाती है')[6] का उल्लेख, राजनीतिक मिथक मे गाँधी जी के व्यक्तित्व में जादू ('गान्दी महातमा को सरकार सब जेहल मे डाल देती है। तो एक दिन क्या होता है कि सभी सिपाही-प्यादा के होते हुए भी गान्दी महातमा जेहल से निकल आते हैं और सबकी आँख पर पट्टी बँधी रह जाती है')[7] का उल्लेख; तथा पारिवारिक मिथक मे लुकाठी खेलने पर चारपाई पर पेशाब करने ('रानी महराजी बोल पडी—ना, छोटे, लुकाठी ना खेलो। नही तो चारपाई पर मूतोगे')[8] का उल्लेख हुआ है।

---

१. कृष्णबलदेव वैद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ १०६।
२. वही, पृष्ठ १०७।
३. वही, पृष्ठ १०७।
४. अमरकान्त : 'जिन्दगी और जोंक', पृष्ठ १३५।
५. वही, पृष्ठ १३२
६. वही, पृष्ठ १४३।
७. वही, पृष्ठ १३५।
८. ओंकारनाथ श्रीवास्तव : 'काल-सुन्दरी', पृष्ठ ४०।

क्रिया का पूर्ववर्ती तथा कारकादि का परवर्ती प्रयोग

'नयी कहानी' मे कही कथ्य पर वल देने के लिए और कही शैली-चमत्कार के लिए वाक्यों में क्रिया के पूर्व-प्रयोग और कारक-चिह्नों के पर प्रयोग प्रचुरता से हुए हैं। रमेश वक्षी की प्रारम्भिक कहानियो मे ऐसे प्रचुर प्रयोग प्राप्त हैं। 'नयी कहानी' में अधिकाधिक कथाकारों ने अपनी कहानियों मे ऐसे वाक्यों के प्रयोग किये हैं—

१. कर्ता

(क) ऐसी बुरी बातें क्यों सोची मैंने ?[१]

(ख) वहाँ से विदा करा लिया मैंने ?[२]

२. कर्म

(क) मैं जानती हूँ इस माली को।[३]

(ख) सिपाही भेजकर जेल ही भेज दें तुमको।[४]

३. करण

(क) वड़ी आस वँध रही है उनसे।[५]

(ख) झेला ही जाता नही मुझसे।[६]

४. सम्प्रदान

(क) जरा ओड़िया चाहिए ओसावन के लिए।[७]

(ख) नकद दो दर्जन गालियाँ निकाल ली थीं हलक तक, तावड़तोड़ दाग देने को।[८]

५. अपादान

(क) लाल मोहर की गाड़ी पर ही आयी है मेले मे।[९]

(ख) गीता आयी है ससुराल से।[१०]

---

१. रमेश वक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ११२

२. वही, पृष्ठ ३१।

३. वही, पृष्ठ १७६।

४. वही, पृष्ठ ८।

५. वही, पृष्ठ १६६।

६. वही, पृष्ठ २४।

७. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १४६।

८. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ६०।

९. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ १४८।

१०. वही, पृष्ठ ५२।

६. सम्बन्ध

(क) खुलवां दें कंगन-स्टोर हरी चूड़ियों का ।[1]

(ख) बासा है सहुआइन का ।[2]

७. अधिकरण

(क) कमाल का घुंधरालापन था उसके बालों में ।[3]

(ख) डोमन की मां रोती रही मध्यम सुर में ।[4]

८. सम्बोधन

(क) यह बात झूठ है न जीजी ।[5]

(ख) बहुत दिनों की लालसा मन की पूरन करो, ठाकुर ।[6]

कारक-चिह्नों के अतिरिक्त सर्वनाम, निपात, संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा पूर्वकालिक क्रिया के पर-प्रयोग भी हुए है—

१. सर्वनाम

(क) भीड़-भाड़ है यह ।[7]

(ख) झगड़ा मत कीजिये कोई ।[8]

२. निपात

(क) ऐश-ट्रे नहीं थी दूर तक ।[9]

(ख) वह रोज काम करती है सुबह से शाम तक ।[10]

३. संज्ञा

(क) दिखा है तो एक मिड्ल स्कूल ।[11]

---

१. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ६६ ।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ४२ ।
३. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ७१ ।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ४४ ।
५. 'ज्ञानोदय' (जनवरी '५६) में प्रकाशित रमेश बक्षी की 'इंग्लिशतानी राजा और हिन्दुस्तानी जोजा' कहानी : पृष्ठ ५७ ।
६. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ २६ ।
७. रमेश बक्षी : 'बाजार', 'नयी कहानियाँ' (जून '६५), पृष्ठ १८-१६ ।
८. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ ३६ ।
९. रमेश बक्षी : 'रात' : 'नयी कहानियाँ' (अक्टूबर '६६), पृष्ठ ४७ ।
१०. कमलेश्वर : राजा निरबंसिया', पृष्ठ १६८ ।
११. रमेश बक्षी : 'दुहरी जिन्दगी' (हि०पा०बुक्स), पृष्ठ ५१ ।

(ख) तो मैं झाँकने न जाती इस मुए के घर ।[1]

४. विशेषण

(क) यह आदमी भले ही घोड़ा हाँकता है । है बड़ा दूरदर्शी ।[2]

(ख) ये गुड़िया की बनारसी साड़ी है सितारेदार ।[3]

५. क्रियाविशेषण

(क) सिघाय का दिल ठंडा होने लगता है धीरे-धीरे ।[4]

(ख) काहे को चिपटे हो बुरी तरह ?[5]

६. पूर्वकालिक क्रिया

(क) राह सूँघते, नदी-नाला पार करते, भागे पूँछ उठाकर ।[6]

(ख) आया मिक्कू को लेकर जाने कब निकल गयी, 'प्रैम' में डालकर ।[7]

कथा कहने की शैली की दृष्टि से गीतिमय होने के अन्दाज में भी क्रिया के पूर्व-प्रयोग किये किये गये हैं—"बड़े ऊँचे थे उसके बोल । बड़ा भारी था उसका मोल । न थे उसमे गिन्नी-अशर्फी । न थे रुपये गोल-गोल ।"[8] कहीं-कहीं संलाप की स्वाभाविकता के आग्रहवश क्रिया का पूर्व-प्रयोग किया गया है— 'मैं आता हूँ तुरत'[9] और कहीं-कहीं अँगरेजी प्रभाववश—"हवा चलती है छत पर ।"[10]

नागर कथाकारों ने पात्रों की भाषा मे अँगरेजी वाक्यों का धड़ल्ले से प्रयोग किया है । नरेश मेहता, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, रमेश बक्षी आदि कथाकारो की भाषा ऐसे प्रयोगों से भरी-पटी है । हरिशंकर परसाई और शरद जोशी जैसे व्यग्य-लेखक की रचनाओं में भी पात्र अँगरेजी बोलते देखे जाते हैं । अँगरेजी वाक्यो के प्रयोग के उदाहरण एकवाक्य के प्रयोग

१. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ ४२ ।
२. रमेश बक्षी : 'बाजार' : 'नयी कहानियाँ' (जून '६५), पृष्ठ २३ ।
३. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया, पृष्ठ ५१ ।
४. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी, पृष्ठ १०८ ।
५. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ २०० ।
६. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ ११४ ।
७. राजेन्द्र यादव : 'टूटना' और अन्य कहानियाँ', पृष्ठ ८६ ।
८. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कहानियाँ', पृष्ठ ४५ ।
९. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२५ ।
१०. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ५५ ।

से तीन-तीन, चार-चार वाक्यों के शृङ्खलित प्रयोग तक प्राप्त हैं—

१—'ह्वाट ए हारिबल डिसक्शन वाज देयर ?'[1]

२—'ए लाग ऐन्ड टीडियस एकेडेमिक डिसकशन फॉर ए नॉन-एकेडेमिक सबजेक्ट।'[2]

३—'डोंट वादर, शिशिर ! लेट द क्रूड बी देनर, द जेनुइन विल शाइन।'[3]

४—'अदरवाइज टु मी मास्टर्स आर मास्टर्स।। यू आर देयर टु सरेन्डर ओनली।'[4]

५—'सम ऑव अँवर कलीग्ज रिपीटेडली एडवाइज्ड अस, हृल नाट टु हैव एनी सच अण्डरटेकिंग—आइ मीन—इन कोलेबोरेशन विद इण्डियन बिजिनेस फोक। दे आर नॉट एपोज्ड टु बी फेयर-माइन्डेड...।'[5]

६—'वाट डू यू वान्ट ? वाट डू यू वान्ट ?'[6]

७—'ओह, आइ हाउ विश फॉर एनेदर वार...एनेदर ऐन्ड देन एनेदर।'[7]

८—'आइ डोन्ट लाइक सिविल वार।'[8]

९—'यू सिटिंग स्वाइन।'[9]

१०—'शी मे बी सम ग्रास।'[10]

११—'आई नो सच गर्ल्स।'[11]

१२—'इट इज टु, वन, फाइव, थ्री—राजीव, हियर।'[12]

१३—'आइ एम आलसो ए सन आफ ए टापर।'[13]

---

१. नरेश मेहता : 'एक समर्पित महिला', पृष्ठ ६।
२. वही, पृष्ठ ७।
३ वही, पृष्ठ ७।
४. वही, पृष्ठ १०।
५ राजेन्द्र यादव : 'टूटना' : 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २९८।
६. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', : 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १८६।
७ निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ ११०।
८. वही, पृष्ठ ११।
९ वही, पृष्ठ १३२।
१० रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ १२४।
११. वही, पृष्ठ १२४।
१२. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ३१।
१३. वही, पृष्ठ ३१।

१४—'बट पापा हैज डेवलप्ड इन्फीरियारिटी ।'[1]
१५—'ही इज वेरी पर्टीकुलर एबाउट ऑल दैट ।'[2]
१६—'आई आलवेज थॉट द बाय हैट सुइसाइडल टेंडेंसीज ।'[3]
१७—'आई सी ।'[4]
१८—'ही मेट इट ।'[5]
१९—'आइ एम सॉरी ।'[6]
२०—'दिस इज माइ फ्रेन्ड्स फेवरिट ।'[7]
२१—'बट इट इज इन्टायरली बिट्वीन यू ऐन्ड मी ।'[8]

इन प्रयोगों में हल्के-फुल्के वाक्य तो ठीक हैं, पर लम्बे शृङ्खलित वाक्य अर्थ को पूर्णतः सम्प्रेषणीय नही बना पाते हैं। अनवरत अधिकाधिक अँगरेजी वाक्यों के प्रयोग से 'नयी कहानी' की भाषा सामान्य पाठक के दायरे से बाहर हो गयी है। कहानी की भाषा में अँगरेजी शब्दों के प्रयोग तो एक सीमा में स्वीकार्य हैं, पर अधिकाधिक अँगरेजी वाक्यों के व्यवहार से भाषा मे चिप्पी ही लग जाती है। पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' ने बहुत उचित लिखा है कि "अँगरेजी ने हिन्दी को मूलतः शब्द-भाडार और वाक्य-गठन के रूप मे प्रभावित किया है, न कि हिन्दी की प्रकृति को ज्यो-के-त्यों अँगरेजी वाक्य देकर।"[9] अत. ऐसे लम्बे अँगरेजी वाक्यों के यदि हिन्दी-अनुवाद कहानी मे दिये जाएँ, तो इससे पात्रौचित्य की अरक्षा नही होती, साथ ही सामान्य हिन्दी-पाठक के अर्थ-बोध की कठिनाई भी दूर हो जाती है।

इस भाषा में प्रान्तीय भाषा के वाक्यो के भी प्रयोग हुए हैं। ऐसी प्रान्तीय भाषाएँ प्रायः बंगला, मराठी और पंजाबी हैं।

---

१. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ३१।
२. वही, पृष्ठ ३१।
३. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ १७।
४. वही, पृष्ठ १०४।
५. वही, पृष्ठ १०४।
६. वही, पृष्ठ ६१।
७. वही, पृष्ठ २६।
८. वही, पृष्ठ २५।
९. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु' : 'नयी कहानी की भाषा' : 'कल्पना' (नव-लेखन विशेषांक—१, अगस्त-सितम्बर, १९६९), पृष्ठ १९१।

बंगला वाक्यों के प्रयोग

नरेश मेहता, रमेश बक्षी, 'रेणु' आदि ने बंगला वाक्यों के प्रयोग किये हैं जैसे :—

१—'कोथाय होली तुमि ?'[1]

२—'हतभागी बोलछे जे तोमरा सगे कखनो कथा बोलबो ना ।'[2]

३—'नीटू, आमी हतभागिनी । आमी की मागिवो ।'[3]

४—'दुर्गा केमोन बोलचीश ? ओके भगवान वाचओ दिए न ।'[4]

५—'खुकी, तुमि बोका ।'[5]

६—'कोत्थे, दादा ?'[6]

७—'आजि फुटल तोमार ओई गुलबाकावली ।'[7]

८—'मानुषेर मन जेन सरषेर पुटली ।'[8]

मराठी वाक्यों के प्रयोग

मराठी वाक्यों के प्रयोग रमेश बक्षी के कथा-पात्रों ने किये हैं—

१—'ही आहे वाग्याची भाजी, ही बटाटची, हा आहेतवर्ण ही चटनी, हा मीठ ही पोली ।'[9]

२—'थंडी फाफ आहेत । हे घ्या ।'[10]

३—'वाग्याची भाजी पाहिजे ।'[11]

पंजाबी वाक्यों के प्रयोग

मोहन राकेश, कमलेश्वर, नरेश मेहता—जैसे कथाकारों के पात्र पजावी भी बोलते है । यथा—

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ५७ ।
२. वही पृष्ठ ५५ ।
३ वही, पृष्ठ ५२ ।
४ वही, पृष्ठ ५० ।
५. रमेश बक्षी : 'शवरी' : 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २८७ ।
६ वही, पृष्ठ २८७ ।
७. वही, पृष्ठ २६० ।
८. फणीश्वर नाथ 'रेणु' 'टुमरी', पृष्ठ १८५ ।
६. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ १३० ।
१०. वही, पृष्ठ १३१ ।
११. वही पृष्ठ १३५ ।

१—'छको जी बादशाओ। मैनू ता कम्म ए अजे।'[1]

२—'ए रवाडा पुत्तर मैनू पुच्छ रया-सी के ओ कुडी किद्दर गयी? अजे जम्मया हुगा नई...'[2]

३—'ओए सरदार, तेरे वाप दे वी कम आ जासी।[3]

४—'रब्ब दी मर्जी।'[4]

५—'सत्त नाम सिरी वाह गुरु।'[5]

गँवई बोली के वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' में अँगरेजी और प्रान्तीय भाषा के अतिरिक्त पात्रीय भाषा मे गँवई बोली के भी प्रयोग हुए हैं—

१—'अबहिन बित्तौ भर के नाही ना, पतुरियन के गाना गावैं लगें।'[6]

२—'हँसौआ करत हो, महराज।'[7]

३—'बब्बू ई का कियो?'[8]

४—'तू रंचौ फिकिर जिन करो, हम कउने दिन काम अइबै।'[9]

५—'एक तो अइसैं हाथ गोड नाहिनी, फिर अब ई सब कइसे सम्हरिहैं रे बप्पा?'[10]

६—'ऊ न होवैं देव हम सत्यानासीं, गाँठ बाँधि ले। ओ का दिखाय के भीख माँगे के पहिले हम नदी कुइया में डूबि मरिबै, समझेव की नाही।'[11]

७—'ओ मा कौनो सुर्खाब का पर लगल है क्या, आएँ?'[12]

---

१. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ११४।

२. वही, पृष्ठ १४।

३. वही, पृष्ठ १६।

४. कमलेश्वर : 'राजा निरबंसिया', पृष्ठ १४७।

५. मोहन राकेश : 'सुहागिनें' (हिन्द पाकेट बुक्स), पृष्ठ ३६।

६. धर्मवीर भारती : 'गुलकी बन्नो' : 'एक दुनिया सामानान्तर', पृष्ठ १५६।

७. ओंकारनाथ श्रीवास्तव : 'कालसुन्दरी', पृष्ठ १४।

८. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'कर्मनाशा की हार', पृष्ठ ४२।

९. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १४१।

१०. वही, पृष्ठ १४१।

११. वही, पृष्ठ १४१।

१२. वही, पृष्ठ ४३।

८—'बहोरी बैठकवा माँ अकेल सोवत बाय, बहुक पैर छुइ आव। सुभ खातिर कुछ मूड देल...'[1]

९—'दहिजरा के पूत काही के। निवुहर के कोठियाँ जाओ। नंग-धिड़ग हमरे दुआरे पर आय खडा हो थिन। यहाँ जनो इनके छत्तीसी बैठी बाय।'[2]

१२—'जिन्दगी लुहेडई मा बीति गै, मुला मेहरी के मुँह देसै का बदा न भै। तो ही पचन ई गाव लै डुबायो।'[3]

अन्यान्य नये कथाकारों की भाषा मे भी ऐसे ही प्रयोग हुए हैं।

बच्चों के तोतले वाक्यों के प्रयोग

बच्चो के तोतले वाक्यो के प्रयोग 'निशाजी' और 'एक और जिन्दगी' कहानियो में बडे आकर्षक बन पड़े हैं। 'निशाजी' मे--'आइये, धपेद तुआ है हमाले पाछ', 'बिल्ली कात खायेगी, पापाजी', 'पापाजी यहाँ बत्ते तो हैं नही, हम किछके छात खेले', 'खलगोछ नही देखा ? इत्ते बले हो गये औल खलगोछ नही देखा ?' 'ये खलगोछ भौत छैतान हैं', 'पापा जी के आपिछ'[9] जैसे वाक्यो के प्रयोग हुए हैं; तो 'एक और जिन्दगी' में—'पापा, मैं आइछ-क्लीम जलूल खाऊँगा'[10], 'ममी तो एछे ही अच्छा लदता है'[11], 'मम्मी तहती है, अच्छे बच्चे जोल छे नही हछते'[12], 'पापा का घल अच्छा नही है ममी', 'हमाले वाला घल अच्छा है। पापा के घल में तो कुछ भी छामान नही है...'[13]

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल : 'सुने अंगन रस बरसै' (प्रथम संस्करण-१९६०), पृष्ठ ६।
२. वही, पृष्ठ ७८।
३. वही, पृष्ठ ८१।
४. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ३२।
५. वही, पृष्ठ ३०।
६. वही, पृष्ठ ३१।
७. वही, पृष्ठ ३५।
८. वही, पृष्ठ ३५।
९. वही, पृष्ठ ३६।
१०. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ १७८।
११. वही, पृष्ठ १७८।
१२. वही, पृष्ठ १७९।
१३. वही, पृष्ठ १९४।

'नही तुप करूँगा, नही करूँगा तुप'[1]—पापा का घल गन्दा, पापा का घल यू'[2] जैसे वाक्यों के प्रयोग।

औरतों के बीच बोले जाने वाले विशिष्ट कूट वाक्यों के प्रयोग

इस भाषा में देहातों मे औरतो के बीच बोली जाने वाली सांकेतिक वाक्यावली—'चि गो, चि घ चि न'[3] जैसे प्रयोग हुए हैं तो देहाती गिनती की पदावली—'दो कम दो बीसी आम' जैसे प्रयोग भी।

विशिष्ट कथन-भंगी से बोले गये वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा मे एक ओर विशिष्ट कथन-भगी के मुंह से ओंठो को एक ओर मोड़ कर ऐंठती हुई बोली के—*'अर-रें-हॉं-हॉं बी-र-र-ज्जू की मैं...या के आगे नाथ और पीछे पगहिया ना हो तब्ब ना-आ-आ—'*[4] जैसे वाक्य के प्रयोग हुए हैं तो दूसरी ओर रस्सी के गोल में उछल-उछल कर अपने को पैठाती-निकालती और गिनती करती लड़की की पदावली के—*'एक्दो, तिन्चार, पाच्छे, सात्ताठ, नौदस्स, ग्यारे, बारे'*[5] जैसे प्रयोग और तीसरी ओर बच्चे को खेलाने वाली वाक्यावली के—*'या-या-या-या-या-या-या-या'*[6] तथा *'व-व-व-वा-वा'*[7] जैसे प्रयोग।

लोकगीतों की निक्षिप्त पंक्तियों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा गीतो की निक्षिप्त पंक्तियों से भी समृद्ध हुई है। इस दृष्टि से इस भाषा में बीच-बीच में कहीं लोकगीत और कही कलागीत की वाक्यावलियाँ व्यवहृत हुई हैं। लोकगीतों की निक्षिप्त पंक्तियों के उदाहरण 'नयी कहानी' में प्रभूततः प्राप्त हैं—

---

१. मोहन राकेश : 'एक और जिन्दगी', पृष्ठ १६४।
२. वही, पृष्ठ १६४-१६५।
३. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : ठुमरी', पृष्ठ ८७।
४. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ६३।
५. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १५२।
६. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ १५५।
७. वही, पृष्ठ १७ :
८. वही, पृष्ठ २०।

१—'हूं ऊं ऊ रे डाइनिया मइयो मोरी ई ई, नोनवा चटाई काहे नाहीं मारलि सारी घर अ अ। एही दिनवा खातिर छिनरो धिआ तेहू पोसलि कि नेनू दूध उटगन।'[1]

२—'हे अ अ अ सावना भादवा केर उमडल नदिया गे मइयो ओ ओ, मइयो गे रैनि भयावनि हे– ए-ए-ए, तडका तड़के-घड़के करेज-आ-आ मोरा कि हमहूँ जे बारी नान्ही रे-ए-ए ..।'[2]

३—'हाँ...रे, हल जोते हलवाहा भइया रे...
खुरपी रे चलावे. .म-ज-दू-र
एहि पथे धानी मोरा हे रूसलि .।'[3]

४—'चढत मास बड़ लागै रे निनिया,
ननदी पडू तेरो पाय
तेरे विरन की काली जुलुफिया
कहि दो विदेस न जाय।'

५—'ऊस॰ गोडि-गोडि बोउलू ककडवा' नही जानू तीत न मीठ
नगर गाँव बेटी तोर वर हेरू
ना जानू करम तोहार।
का करे नउरा रे, का करे बरिया
का करे बभना के पूत
हमरे करमुवा मा एहि लिखा भइया रे
सो कइसे मिटि जाय।'[4]

६—'अँचरन सुरुज मनइबै, तबै गुरुबाबा के पइबै
मेरे गुरुबाबा के छोटे-छोटे गोडवा चरनन माथा नवइबै
तबै गुरुबाबा बे पइबै।'[5]

कला-गीतों की निक्षिप्त पंक्तियों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में कला-गीतो की—

---

१. फणीश्वरनाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १३०।
२. वही, पृष्ठ २६।
३ वही, पृष्ठ १२।
४. लक्ष्मीनारायण लाल : सूने आँगन रस बरसे', पृष्ठ ६२।
५. वही, पृष्ठ ८४-८५।
६. वही, पृष्ठ ६६।

१— 'सेलन में दो कारो गुमइयाँ,'[1]

२— 'बूझत स्याम कौन तू गोरी,'[2]

३— 'इश्क पर जोर नहीं यह वह आतिश गालिब,'[3]

४— 'यह चमनजार, यह जमना का किनारा, यह महल
यह मुनक्कश दरो-दीवार, यह महराब, यह ताक।'[4]

५— 'जागिए ब्रजराज कुअँर कमल कुसुम फूले,'[5]

६— 'श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन......'[6]

७— 'जउ तुम बाँधे मोह-फाँस हम प्रेम बँधन तुम बाँधे।
अपने छूटन की जतन करहु हम छूटे तुम अराधे।
जो तुम गिरिधर तउ हम मोरा,
जो तुम चंदा हम भये हैं चकोरा,
माधव तुम तोरहु तो हम नाही तोरहि
तुमसो तोरि कवन मो जोरहि।'[7]

जैसी अनेकानेक पंक्तियाँ भी अपने संदर्भ में प्रयुक्त हुई हैं। बड़ी बात यह है कि इन लोकगीतों और कलागीतों की वाक्यावलियों ने परिवेशोचित, सार्थक और उपयुक्त भाषा अर्जित की है। ऐसी वाक्यावलियों में कथ्य का पूर्ण सन्दर्भ सतेज हो उठा है।

लघु वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' में लघु वाक्यों के प्रयोग के भी उदाहरण प्राप्त होते हैं। मन्नू भंडारी के—"परसों मुझे कलकत्ता जाना है। सच, बड़ा डर लग रहा है। कैसे क्या होगा?"[8] जैसे वाक्य तथा कृष्णबलदेव वैद के—"पैरों ने परदेश से लौट कर क्या देखा। पैरों से एक भेंट। पैरों के पर। पैरों की पीडा। पैरों की पूजा।

---

१. लक्ष्मीनारायण लाल : 'सूने अंगन रस बरसे', पृष्ठ १४१।
२. वही, पृष्ठ १४१।
३. वही, पृष्ठ १४२।
४. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ १४४।
५. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ३६।
६. ओंकारनाथ श्रीवास्तव : 'कालसुन्दरी,, पृष्ठ १५।
७. डॉ॰ शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ २१।
८. मन्नू भंडारी : 'यही सच है', पृष्ठ १५५।

पैरों पर पहरे—"[1] जैसे वाक्य ऐसे प्रयोग के सुन्दर दृष्टान्त हैं।

विस्तृत वाक्यों के प्रयोग

इस भाषा मे विस्तृत वाक्यो के भी प्रयोग हुए हैं। कथ्य के अनुरूप, अभिव्यंजना के सुलझाव और मन:स्थिति के ज्यों-के-त्यो द्योतन के अनुरूप वाक्य अपने लघु रूप की तरह ही विस्तृत रूप मे भी प्रयुक्त हुए हैं। नये कहानीकारों की भाषा मे किसी एक के प्रति कोई जड़ आग्रह नही है। विस्तृत वाक्यो के प्रयोग निर्मल वर्मा की कहानियों मे देखें जा सकते है—(१) वह पी नही रहा है और मैं चुप बैठी हूँ और मुझे लगा कि मुझे कुरसी से उठ जाना चाहिए और अपने कमरे में चला जाना चाहिए, फिर भी मैं बैठी रही और मैं कुछ भी नही सोच रही थी—और मुझे जरा अजीब-सा लगा था कि *मीनू अपने कमरे मे सो रही है और इतनी रात गये मैं केशी के कमरे में बैठी* हूँ और दूसरे कमरे मे धौल है, जो कल सुबह मुझे अपने बिस्तर के पास देखकर हैरान हो जाएगी और मुझे धीरे-धीरे बहुत देर ढेर-सी खुशी हो रही है कि कल शाम को मैं वापस अपने होस्टल लौट जाऊँगी...वहाँ मिसेज ट्रेरी है, मेरा अकेला कमरा है...निखिल है...ये सब इस बगले की परिधि से बाहर हैं... वे मेरा अतीत नही जानते और मुझसे कभी कोई ऐसा प्रश्न नही पूछते, जिसका कोई उत्तर नही है...मेरे पास नही हैं।"[2] (२) "उसके नोट्स माचिस की जलती तीली की तरह हवा के छोटे-से घेरे मे ही मिमट गये थे, जब जरा भी ऊपर उठते थे तो लगता था जैसे तीली से हाथो का घेरा हट गया हो और वह नगी होकर अँधेरे कमरे मे फड़फड़ा रही थी।"[3] ऐसे विस्तृत वाक्य कथ्य की अखडता को दर्शाते, उसके समग्र सम्प्रेषण को एक अनुस्यूति देते हैं।

क्रियापूर्ण वाक्यों के प्रयोग

नये कहानीकारों के वाक्य-प्रयोग कहीं एक-पर-एक तावड़तोड़ क्रियान्वयन से परिपूर्ण हैं तो कहीं क्रिया से सर्वथा अलग-थलग, वियुक्त! क्रियापूर्ण वाक्यों का एक सुन्दर उदाहरण भीष्म साहनी के निम्नलिखित कथा-गद्य मे द्रष्टव्य

---

१. कृष्ण बलदेव वैद : 'रात', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ४०३।
२. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ २०
३. वही, पृष्ठ १४३।

है—"खड़े-खड़े त्रिलोकी बाबू की आँखों के सामने दुनिया बदल गयी। धूप खिल उठी, आकाश खिल उठा, सड़क पर आते-जाते लोगों की चहल-पहल में मेले का-सा समाँ बँध गया। लोग कहते हैं इन्सान हवा में उड़ नहीं सकता, पर बाबू त्रिलोकीनाथ को पंख लग गए। जब लौटकर दफ्तर की ओर आया तो सचमुच मन हवा में तैर रहा था।"[1] इस सन्दर्भ में नौ बार क्रिया का प्रयोग हुआ है। यहाँ कथ्य के व्यक्तीकरण का मेरुदंड क्रिया ही है।

क्रियाहीन वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा शब्दचित्रात्मक (स्केची) रूप में क्रियाविहीन भी है। ऐसे स्थलों में क्रिया-प्रयोग के बिना भी कथ्य पूरा हो जाता है और अर्थ निष्पन्न हो पड़ता है। मोहन राकेश के ये दो वाक्य ऐसे ही भाषिक प्रयोग को अवरेखित करते हैं—"हाथ पर रखा खून का एक लोंदा...सूखे और चिपके हुए गुलाब की तरह। फुटपाथ पर औंधे पीपे से गिरा गाढ़ा कोलतार...सर्दी से ठिठुरा और सहमा हुआ।"[2] यहाँ एक ओर 'रखना', 'ठिठुरना' और 'सहमना' जैसे क्रियारूप परिवर्तित होकर विशेषणात्मक हो गये हैं, दूसरी ओर 'है' जैसी क्रिया का लोप हो गया है।

विशेषणयुक्त वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' में विशेषणयुक्त वाक्यों के प्रयोग भी प्राप्त हैं। कहानीकारों ने ऐसा वाक्य-विधान कर उसमें चित्रात्मकता का गुण भर दिया है—(१) "...काटेज के कोने पर मुड़ते हुए एक पीला पल्ला काँपती शाख की तरह लहराया और ओझल हो गया। मन की अन्ध गुहाओं में जैसे पीली-पीली प्रकाशवान धूप भर गयी हो, आँखों के सामने अमलतास के लाखों गुच्छ लहरा रहे हों...पीली-पीली घास हवा में लहरा रही थी। वृक्षों के लाखों-लाख पत्ते पीले हो रहे थे, सुनहली इमारतें जगमग हो रही थीं और ऊपर पीले आसमान का शामियाना तना था।"[3] (२) "जब दोनों 'बूफे' से बाहर आये, अँधेरे पर एक फीका-सा आलोक छितर आया था, एक भूरे रंग का उजला...शहर की रोशनियों में वह दब जाता है, लेकिन बाहर खुले उपनगर

---

१. भीष्म साहनी : 'भटकती राख', पृष्ठ ८४।
२. मोहन राकेश : 'फौलाद का आकाश', पृष्ठ ११३।
३. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ ६२।

के इलाके मे आते ही उसकी चमकीली परते हवा मे खुलने लगती हैं।"[1]

विशेषण-वियुक्त वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा मे विशेषण-वियुक्त वाक्यों के प्रयोग के उदाहरण—"कभी रात को सोये तो किसी आवाज ने दिल पर दस्तक देकर जगाया नही, यह पूछने के लिए कि मधुसूदन, तुम्हे जिन्दगी मे पछतावा तो किसी बात का नही कि जिन्दगी मे तुम कुछ कर नही पाए .."[2] जैसे गद्य-सन्दर्भ है। ऐसी वाक्यावली सपाट भाषा पैदा करती है।

विविध वाच्यों वाले वाक्यों के प्रयोग

'नयी कहानी' मे कर्तृवाच्य के अधिकाधिक वाक्य प्रयोग, कर्मवाच्य के उससे कम प्रयोग और भाववाच्य के सबसे कम प्रयोग प्राप्त होते हैं। दैनिक बोलचाल मे भी हम प्रायः वाच्यो का प्रयोग इसी क्रम में किया करते हैं। कर्तृवाच्य- "उसने कमीज के निचले हिस्से से बगलों का पसीना पोछ लिया।"[3] कर्मवाच्य..."घर का आखिरी सामान नीचे पहुँचाया जा रहा है।"[4] भाववाच्य—"कोई हो तो आए।"

सर्वनाम के लिए व्यक्तिवाचक संज्ञा के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा मे सर्वनाम के लिए स्थल-विशेषो पर व्यक्तिवाचक सज्ञा के प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। श्रीकात वर्मा की कहानी 'साथ' मे 'रति' जैसे सज्ञा-शब्द के लिए सर्वनाम का प्रायः व्यवहार नही होता। फलतः इस पूरी कहानी मे ७० बार से ऊपर 'रति' शब्द के प्रयोग हुए है। सर्वनाम के लिए गभीर रूप मे व्यक्तिवाचक सज्ञा के प्रयोग का उदाहरण 'परिणय' कहानी का यह गद्य-सन्दर्भ है—"ऊर्मि उठ खड़ी हुई थी और जाने को उद्यत थी। क्या एक दिन इसीलिए आयी थी। उसने सोचा था ऊर्मि उसमें बसने के

---

१. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों मे', पृष्ठ ६८।
२. भीष्मसाहनी : 'भटकती राख', पृष्ठ १४०।
३. मोहन राकेश : 'ठहरा हुआ चाकू', '१९६६ की श्रेष्ठ कहानियाँ' (सं० महेन्द्र कुलश्रेष्ठ), पृष्ठ २३।
४. मोहन राकेश : 'सुहागिनें' (पाकिट बुक), पृष्ठ ९२
५. वही, पृष्ठ ४३।

लिए आयी है। नहीं, ऊर्मि उसमें बस चुकी है और अब वह उसमे से नही जा सकती। वह ऊर्मि के सामने खड़ा हुआ था। वह उसे नही जाने देगा। वह जाकर भी नही जा सकती। तुम मुझे रोकोगे ? ऊर्मि उससे आँख मिलाकर कहना चाहती थी। उसे लगा ऊर्मि की आँखो में बल है, मगर उसकी अपनी आखों में उससे अधिक बल है और ऊर्मि नही जा सकती।"[1] व्यग्य के रूप में व्यक्तिवाचक संज्ञा के प्रयोग के उदाहरण 'मायी' कहानी में मिलते हैं—"मगर फिर उसे महसूस हुआ था कि जब उसने रति को चुना था तब वह सही थी; चुने जाने के बाद उस रति की केंचुल छोड़कर एक और रति निकल आयी थी।"[2] शुरू में उसे रति के इस दौरे से भय होता और वह रति के सामने अपने अस्त्र डाल देता। मगर अब वह अभ्यस्त हो चुका था और वह रति को हर तरह आमादा होने देता।"[3]

यति-गति के प्रयोग

'नयी कहानी' के वाक्यों मे यति बिन्दुक, विरामांकन तथा वाक्यखंडों के प्रयोग पर निर्भर है और गति संयोजक शब्द, शब्दावृत्ति तथा अर्थावृत्ति से उत्पन्न लय, विरामांकन और कथ्य-प्रवाह के प्रयोग पर। विरामांकन तथा वाक्यखंडों पर आधारित यति का प्रयोग—"बसें जूँ-जूँ करती आती हैं—एक क्षण ठिठकती हैं—एक ओर से सवारियों को उगलती हैं और दूसरी ओर से निगलकर आगे बढ जाती हैं"[4]—मे है और गति का प्रयोग—"आप पूछेंगी कि यह कैसे—तो यह ऐसे कि पहला घूँट एक सतह तैयार करता है, दूसरा घूँट उस पर एक मंजिल है, तीसरी घूँट दूसरी मंजिल, चौथा घूँट जो अभी मैंने आपके सामने पिया था, तीसरी मंजिल—"[5] मे है।

बिन्दुक (डाट्स) के प्रयोग

'नयी कहानी' मे बिन्दुक का प्रयोग वाक्यों में एक ओर स्वाभाविक मौन का परिचायक है, दूसरी ओर जान-बूझकर किये गये गोपनादि का। यह आज की अधूरी अनियत जिन्दगी की तद्वत्ता का भी सूचक है। अनिश्चिति,

---

१. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ ११०-१११।
२. वही, पृष्ठ ६०।
३. वही, पृष्ठ ६२।
४. कमलेश्वर : 'खोयी हुई दिशाएँ', पृष्ठ ३०।
५. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों मे', पृष्ठ ११७।

अव्यवस्था और भटकाव ठीक-ठीक यहाँ रूपायित हो जाते हैं।[१] वास्तविकता तो यह है कि लगातार धारा-प्रवाह अपने को विवृत कर सकने के लिए, कथ्य को उन्मुक्ति-व्यक्ति देने के लिए मनुष्य को जिस भाषा की अपेक्षा होती है, वह सुलभ नही हो पाती। हिन्दी, अग्रेजी, बगला जैसी किसी भी भाषा की शक्ति यहाँ चुक जाती है। कहानीकार को लगता है कि "हमारी भाषा हमारे चुम्बनो की तरह स्पष्ट, कपडो की तरह चुस्त हो। वह भाषा ऐसी हो, जिसमें अभिव्यक्ति के लिए शब्दो का सहारा न ढूँढना पड़े, भाव स्वतः अकित होते चले जाएँ···।"[२] इस स्थिति का अनुभव आज प्रायः हर सफल कहानीकार को होता है। शिवप्रसाद सिंह को भी हमेशा यह लगता है कि "जिस ढग और गति से मेरे दिमाग मे भावो की भीड अकुला रही है, व्यक्त होने के लिए, उस ढग और गति से मेरी लेखनी साथ नही दे पाती। इस शशामृगीय प्रक्रिया मे बीच के एकाध वाक्य या शब्द जरूर गोल हो जाते हैं। और लेखनी अपनी मजबूरी के शिनाख्त के रूप मे लुप्त वाक्य या शब्द के लिए 'डाट्स' छोड़ देती है।"[३] 'नयी कहानी' के वाक्यो मे बिन्दुक (डाट्स)-प्रयोग भाषा-प्राप्ति की ऐसी ही असमर्थता मे हुए हैं—"एक आवाज है...आवाज भी नही, केवल एक प्रवाह है, जो टूट रहा है, जितना टूट रहा है, उतना ही ऊपर उठ रहा है··· हवा से भी पतली एक चमकीली भाई·· धीमे, बहुत धीमे, एक उखडी, बहकी हुई साँस की मानिन्द मेरे पास चली आती है।"[४]

एकोद्धरणी (इंवर्टेड कामा) के प्रयोग

इस कहानी की भाषा मे 'एकोद्धरणी' के प्रयोग कही तो कथाकार की निजी भाषा मे अगरेजी शब्दो की प्रयुक्ति के लिए और कही ग्राम्य शब्दों की

---

१ (क) "तुम्हारे विचारों में तरतीब नहीं। खतों में देखा है मैंने—पांच लाइनें लिखती हो, पच्चीस डाट्स देती हो।"

—सुधा अरोड़ा : 'बगैर तराशे हुए', पृष्ठ १६।

(ख) "हमारी जिन्दगी तो अनिश्चित, अव्यवस्थित, भटकने वाली है। हमें यह डाट्स और डैशेज वाली अधूरी, अनियमित जिन्दगी ही पसन्द है।—वही, पृष्ठ ८०।

२. वही, पृष्ठ ७१।

३ शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', 'कुछ न होने का कुछ', पृष्ठ १६।

४. निर्मल वर्मा : 'पिछली गर्मियों में', पृष्ठ २२।

प्रयुक्ति के लिए हुए है। दूसरे, हिन्दी के शब्दों को विशेष सन्दर्भ में विशेष दबाव से प्रस्तुत करने के लिए तथा अर्थाधिाय के द्योतन के लिए भी 'एको-द्धरणी' के प्रयोग हुए हैं। यह दूसरे प्रकार का प्रयोग हिन्दी गद्य के लिए नया है, जिससे गद्य को शक्ति मिली है। कृष्णबलदेव वैद, सुधा अरोड़ा, शिवप्रसाद सिंह जैसे कहानीकारों की भाषा में 'एकोद्धरणी' के प्रयोग अंग्रेजी शब्द, शब्दावली के लिए द्रष्टव्य हैं—

१—'मिन्नियां ने 'स्विच' की ओर हाथ बढ़ाया।'[1]

२—'एक बार रात को बहुत देर से लौटने पर उस 'फ्यूनरल होम' का चौपाट खुला दरवाजा देखकर बहुत डर गया था।'[2]

३—'कई बार यह बड़ी निराश हो जाती और 'स्पैसमिडन' की बारह गोलियों पर लाल घेरे में लिखे 'पायजन' को अजीब निगाहों से देखती।'[3]

४—'इंटरव्यू' का नाम सुनकर अजिया हँस पड़ती हैं।'[4]

ग्राम्य शब्दों के 'एकोद्धरणी' में प्रयोग फणीश्वर नाथ 'रेणु' तथा शिवप्रसाद सिंह जैसे कथाकारों ने किये हैं—

१—'कोई 'लखना' इसके पुट्ठे पर हाथ रखकर परीक्षा करेगा।'[5]

२—'परिवार वालों ने अपने 'बथान' के इतिहास पर आँसू बहाया।'[6]

३—'बात गाली-गलौज से शुरू होकर 'लाठी-लठौवल' और 'छुरेबाजी' तक बढ़ गयी।'[7]

४—'गड़हिया में लड़के 'टड़ेरी' लगा रहे थे।'[8]

हिन्दी शब्दों को 'एकोद्धरणी' में विशेष केन्द्रण और ध्यानाकर्षण देते हुए प्रायः सभी नये कहानीकारों ने प्रयुक्त किया है। इस सन्दर्भ में राजेन्द्र यादव और प्रयाग शुक्ल के प्रयोग द्रष्टव्य है।

---

१. कृष्ण बलदेव वेद : 'मेरा दुश्मन', पृष्ठ ५३।
२. वही, पृष्ठ ३२।
३. सुधा अरोड़ा : 'बगैर तराशे हुए', पृष्ठ ८६।
४. शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १०६।
५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ २८।
६. वही, पृष्ठ २६।
७. वही, पृष्ठ ७७।
८. शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ ११६।

१—'इस खेल में बात-चीत या 'इस तरह' की घनिष्ठता नही होती ।'[1]

२—'सचमुच 'इन्ही' के बीच से तो हम 'सुखी' और 'सुरक्षित' कोनो में पहुँचते हैं ।'[2]

३—'वह जैसे अपने 'शब्दो' के साथ फिर उनके बीच 'घूमने' लगता है ।'[3]

विरामांकन (पंक्चुएशन) के स्वच्छन्द प्रयोग

'नयी कहानी' में लघु-लघु वाक्याशो अथवा एक ही शब्द के बाद पूर्ण विराम का प्रयोग विरामाकन (पक्चुएशन) की विशेषता है । जब दृष्टि सही रूप मे व्यक्त न हो पाने वाले वक्तव्य से सश्लिष्ट हो जाती है तब अभिव्यक्ति के 'कृत-अश' पर ध्यान देना सभव नही हो पाता है ।[4] इसी विवशता या साभिप्रायता मे विरामाकन के स्वच्छन्द प्रयोग होते हैं । 'नयी कहानी' में पहले शिवप्रसाद सिंह ने विरामाकन के स्वच्छन्द प्रयोग शुरू किये थे, जो बाद में कृष्ण बलदेव वैद, महेन्द्र भल्ला आदि की कहानियो की भाषा मे बहुतायत से प्रयुक्त हुए—

१—'अभी-अभी सूरज निकला था । ताजा, लाल-लाल । नये-नये जन्मे बच्चे की तरह निकलता हुआ ।'[5]

२—'यानी मौत । या बेहोशी । भूत रहित । निर्दोष । मुक्त । नींद ।'[6]

३—'शाम । ठढी । बर्फ का सिल । उस पर हवा ।'[7]

इस प्रकार वाक्यगत प्रयोग का अध्ययन 'नयी कहानी' की भाषिक विकास-यात्रा को स्पष्ट करता उसकी सम्प्राप्ति और सार्थकता को महत्वपूर्ण ढग से अवरेखित करता है ।

---

१. राजेन्द्र यादव : 'टूटना ..', पृष्ठ ११८

२. प्रयाग शुक्ल : 'अकेली आकृतियाँ', पृष्ठ १० ।

३. वही, पृष्ठ ३२ ।

४ शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', 'कुछ न होने का कुछ', पृष्ठ १८ ।

५ शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ८६ ।

६. कृष्णबलदेव वैद : 'रात', 'विकल्प', नवम्बर १९६८, पृष्ठ ४०६ ।

७ महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ १५ ।

शैलीगत प्रयोग

ली की निर्वचनात्मक पृष्ठभूमि

'शैली' शब्द अँगरेजी 'स्टाइल' का हिन्दी रूपान्तर है।[1] 'स्टाइल' लैटिन षा के 'स्टीलस' से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ लौह-लेखनी है।[2] पुरा रोमन ल में लोहे की लेखनी से ही मोमदार कागज और मोमचढी पट्टियों पर खने का काम होता था। बाद मे यह शब्द अभिव्यक्ति का प्रतीक हो गया[3] और लिखने की विशिष्ट शैली या 'आत्माभिव्यक्ति की पद्धति' के लिए यवहृत होने लगा।

शैली भाषा में शब्दो, बिम्बो, वाक्यो, मुहावरो, लोकोक्तियों, सूक्तियों, लंकारों, अनुच्छेदो आदि के सकलन-प्रबन्धन से सबद्ध है। शैली "अनुभूत विषय-वस्तु को सजाने के उन तरीकों का नाम है, जो उस विषय-वस्तु की भिव्यक्ति को सुन्दर एव प्रभावपूर्ण बनाते हैं।"[4] बाबू श्यामसुन्दर दास के मतानुसार "शैली का अर्थ है रूप-सौन्दर्य, रूप-चमत्कार अथवा रचना-चमत्कार। वाह्य दृष्टि से किसी कवि या लेखक की शब्द-योजना, वाक्याशों का प्रयोग, वाक्यो की बनावट और उसकी ध्वनि आदि का नाम ही शैली है।"[6] प० करुणापति त्रिपाठी के शब्दो में "जब कोई विषय आकर्षक, रमणीय और प्रभावोत्पादक रीति से अभिव्यक्त किया जाता है तब उसे हम साहित्य-जगत् मे शैली कहने लगते हैं।"[7] प० सीताराम चतुर्वेदी इसे 'शब्दों की कलात्मक योजना'[8] और डा० रामअवध द्विवेदी 'विशिष्ट अर्थ मे गद्य-लेखन के

---

१. डा० नगेन्द्र : 'हिन्दी काव्यालंकार सूत्र', 'भूमिका', पृष्ठ ५५।
२ जे० टी० शिप्ले : 'द डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर', पृष्ठ ५३४।
३ द पेन, स्क्रैचिंग ऑन द वॉक्स ऑर पेपर, हैज बिकम द सिम्बल ऑव ऑल देट इज एक्सप्रेसिव, ऑल दैट इज इनटिमेट, इन हियुमन नेचर नॅट ऑनली आर्म्स ऍड आर्ट्स, बट मॅन हिमसेल्फ हैज यिल्डेड टु इट।
—वाल्टर रेले : 'स्टाइल', पृष्ठ २।
४. एफ० आर० लूकस : 'स्टाइल', पृष्ठ १६।
५. सं० धीरेन्द्र वर्मा : 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग १, पृष्ठ ७७३।
६. बाबू श्यामसुन्दर दास : 'साहित्यालोचन' (१३वीं आवृत्ति) पृष्ठ २३०।
७. पंडित करुणापति त्रिपाठी : 'शैली', पृष्ठ २२।
८. पंडित सीताराम चतुर्वेदी : संस्तव, 'शैली' (पं० करुणापति त्रिपाठी), पृष्ठ ४।

कलात्मक गुणों का द्योतक'[1] मानते हैं।

पाश्चात्य आचार्यों में आर० ए० स्काट जेम्स ने 'शैली' को साधारणतः 'लेखन-विधि'[2] कहा है। वाल्टर पेटर ने इसे 'भाषा में अन्तर्दृष्टि का सर्वोत्कृष्ट सामजस्य'[3] माना है। मिडिल्टन मर्री ने इसे 'व्यक्ति की अनुभूति के ढंग की सीधी अभिव्यक्ति'[4] बताया है। डैविड डैचेज ने इसे 'भाषा का विशिष्ट सचालन करने वाला, कला को सप्रेषण-मात्र से विलगाने वाला, प्रतिपत्ति और अन्तर्बुद्धि दोनों ही को एक साथ प्रस्तुत करने वाला'[5] तथा 'भाषा के युक्ति कौशल और प्रबन्धन के द्वारा अर्थ के प्रतीकात्मक प्रसार ('प्रतीक' विविध कोटिक हैं और 'प्रतीक' की परिभाषाएँ भी विविध हैं, किन्तु यहाँ 'प्रतीक' का अर्थ साधारण रूप में ऐसा अभिव्यंजन-मात्र है, जो जितना कहता उससे कहीं अधिक सुझाता और सम्मोहित करता है) को सधारण करने वाला'[6] कहा है। थामस डी० क्वेंसी के अनुसार "शैली" अपने आधुनिक अर्थ में रचना का सिद्धान्त, वाक्य-गठन की कला और उनका सश्लिष्टतः प्रस्तुतीकरण है।'[7] इस सन्दर्भ में वाल्टर पेटर द्वारा वाक्य-रचना-विषयक व्यक्त विचार द्रष्टव्य है—"एक वाक्य आता है, जो गूढ और विवादयुक्त है, उसमें विषय का दर्प है, उसका अनुगमन करता हुआ दूसरा वाक्य आता है, जिसमें हलका उल्लास और कसाव है, बच्चे की माग की अभिव्यक्ति की तरह सुनिश्चित। फिर एक ऐसा वाक्य हो सकता है, जिसमें उच्चावच विषय को सीमित परिधि में बाँधने के लिए बहुत प्रयत्न, बहुत समजन मिलता है। उस वाक्य की गभीरता को विराम देता हुआ फिर एक ऐसा वाक्य आता है, जो प्रत्येक शब्द की ईमानदारी को लेकर प्रकट हुआ है।"[8] शैली इसी विविध रसमयता से सार्थक होती है।

---

१. डा० रामअवध द्विवेदी : 'साहित्यरूप', पृष्ठ १६६।
२. आर० ए० स्काट जेम्स : 'द मेकिंग ग्रॅव लिटरेचर', पृष्ठ ३०२।
३ डा० रामअवध द्विवेदी के 'साहित्यरूप' के पृष्ठ १७१ पर उद्धृत।
४. मिडिल्टन मर्री : 'द प्रोबलम ग्रॅव स्टाइल', पृष्ठ १६।
५ डैविड डैचेज : 'ए स्टडी ग्रॅव लिटरेचर', पृष्ठ ४३।
६. वही, पृष्ठ ४४।
७. थामस डी० क्वेंसी : 'स्टाइल एँड रेटोरिक', पृष्ठ २१८।
८. डा० नगेन्द्र लिखित 'पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा' के पृष्ठ २१६ पर उद्धृत।

वस्तुतः 'शैली' भाषा का विशिष्ट गठन है। वह रचना का अतिरिक्त अलंकरण नहीं है'[1], अपितु रचना का लावण्य है। वह शब्द, पद, वाक्य, अर्थ सबके रहते हुए भी सबसे कुछ अधिक और उत्तम है, अमूर्त प्रभाव-सा है, *बहुत-कुछ गौरांगी के रूप-लावण्य की तरह --'यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्त विभाति* लावण्यमिवांगनासु।'

कहानी और शैली

कहानी की शैली के लिए प्राथमिक आवश्यकता उस संवेदना की है, जिससे वर्ण्य के साथ पाठक को एकतान ले चला जा सके ;[2] क्योंकि शैली की "उर्वर धारा में कहानी-कला के कमनीय कुसुम खिलते हैं। शैली के शीशे में ही कलाकार के भाव अपना स्वरूप देखते हैं।"[3] कहानी में कलापक्ष के अन्तर्गत शैली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकृत है। यह "कहानी-कला की वह रीति है, जो इसके अन्य तत्त्वों का अपने विधान में उपयोग करती है।"[4] कहानी में शैलीकरण ही संग्रह और प्रबन्ध के द्वारा सामान्य बातचीत तक को संवाद की महत्त्वपूर्ण कला में परिवर्तित कर देता है। यह एक सच्ची साहित्यिक कलात्मकता है।[5] शैली का सम्बन्ध वस्तुतः कहानी के किसी एक तत्त्व से न होकर सब तत्त्वों से रहता है। शैली का प्रभाव उसके सभी अंगों पर पड़ता है। "कला की प्रेषणीयता या दूसरों को प्रभावित करने की शक्ति शैली पर ही निर्भर रहती है।"[6] शैली की दृष्टि से कहानी पर विचार करते हुए प्रायः उसकी ऐतिहासिक शैली, आत्मकथ्यात्मक शैली, वर्णनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, नाटकीय शैली और डायरी शैली का उल्लेख किया जाता है।"[7] शैली की दृष्टि से कहानी निरन्तर विश्व-स्तर पर स्थूल से सूक्ष्म की आग्रही होती जा रही है।[8]

---

१ आर्थर सिवलटर-कोच : 'आन द आर्ट ऑव राइटिंग', पृष्ठ २०३।
२. डेविड डेचेज : 'ए स्टडी ऑव लिटरेचर', पृष्ठ ५२।
३ गंगाप्रसाद पाण्डेय : 'निबन्धिनी', पृष्ठ ३५।
४ डा० लक्ष्मीनारायण लाल : 'हिन्दी साहित्य कोश' (सं० धीरेन्द्र वर्मा) खण्ड–१, पृष्ठ २२१।
५. रावर्ट लिड्डेल : 'सम प्रिंसिपुल्स ऑव फिक्शन', पृष्ठ ७७।
६. बाबू गुलाब राय : 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', पृष्ठ २१७।
७. द्रष्टव्य : 'हिन्दी साहित्य कोश' (सं धीरेन्द्र वर्मा), पृष्ठ २२१, २२२।
८. डा० नगेन्द्र : 'मानविकी पारिभाषिक कोश' (साहित्य-खंड), पृष्ठ - ३५।

'नयी कहानी' के शैलीगत प्रयोग

'नयी कहानी' ने शैली की सजग चेतना को उस सीमा तक अस्वीकार किया है, जिस सीमा तक वह (सजग चेतना) आरोपित और कृत्रिम है, क्योंकि इन कहानीकारों के लिए भाषा-शैली का अस्तित्व अलग न होकर कथ्य से जुड़ा है, दोनों अंगांगिभावेन संपृक्त है। इसीलिए यहाँ ठेठ तद्भवगर्भिता, सिद्धोक्ति-पूर्ण, संस्कृतनिष्ठ साहित्यिक और मिश्र शैली; चमत्कारात्मक, सांकेतिक, समर्थनात्मक और प्रतीकात्मक शैली, ऐतिहासिक, उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष, अन्य पुरुष, वर्णनात्मक, पत्रात्मक, संस्मरणात्मक, नाटकीय और डायरी शैली, उदात्त, उर्जस्वी, मसृण और प्रगल्भ शैली; विनोदात्मक, व्यंग्यात्मक, दार्शनिक, तर्कप्रमुख और आवेगात्मक शैली, सरस, गुम्फित, उक्ति-प्रधान, सज्जित तथा गूढ़ शैली का यहाँ कोई निजी अस्तित्व नहीं है। 'नयी कहानी' में अब तक प्रचलित सभी प्रकार की शैलियों के दर्शन हो जाते हैं, परन्तु 'नयी कहानी' की कथ्य-चेतना की पकड़ से शैलीहीन रूप में। 'नयी कहानी' का एक-एक कहानीकार कई-कई शैलियों में जीवन्त रूप में लिखता रहा है, जहाँ इसकी कथा-भाषा अपनी शैली स्वयं गढ़ती चली है। यहाँ शैली का प्रदर्शनात्मक आग्रह खंडित हुआ है, जिससे कथ्य दब जाया करता है। अतः 'नयी कहानी' शैली-निरूपण से अर्थ नहीं देकर अर्थ से ही शैली निरूपित करने वाली कहानी है। 'नयी कहानी' की शैली एकरस नहीं है। विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न स्थितियों में व्यक्त विभिन्न कथ्यों के आधार पर यह विभिन्नरस है। पर इसकी विभिन्नता में भी अभिन्नता है। यह प्रेमचन्द की सहज-सरल शैली, प्रसाद की काव्य-ललित शैली, उग्र की आवेगिक शैली, जैनेन्द्र की गूढ़ दार्शनिक शैली, अज्ञेय की प्रबुद्ध साहित्यिक शैली की तरह अनेकानेक कथाकारों की निजी शैली की कहानी होकर भी विखंडित नहीं है।

'नयी कहानी' का शैलीगत प्रयोग विलीन शैली का प्रयोग है, जिसे शैली-हीन उपन्यासकार ट्रूमैन कपोट 'वेरी डिफिकल्ट, वेरी ऐडमिरेबिल ऐंड आलवेज वेरी पापुलर' मानता है।[1] यह विलीन शैली कहानी में व्यक्त हो रहे विचारों और कथ्य-वक्तव्यों के अनुरूप प्रस्फुट होती है। यह कहानी के जीवित रूप में पाठक के सामने आ खड़े होने की शैली है। यहाँ शैली की कोई पृथकता नहीं है। यह कहानी के व्यक्तित्व का अविभाज्य अंग बन गयी है।[2] वह रूपायन से

---

१. राजेन्द्र यादव : 'कहानी : स्वरूप संवेदना', पृष्ठ १५१ पर उद्धृत।

२. "कहानी बिना विचार के व्यक्ति-सम्पन्न हो भी नहीं सकती थी और उसका

परे अनुभव-क्षम है। अब वह आँख नहीं है, दृष्टि हो गयी है। विलीन शैली नास्ति-भाव का भ्रम उत्पन्न करने वाली शैली है। यह एकदम लीन यानी 'निर्गुण-निराकार शैली'[1] है। इसमें जीवन की सघन आसक्ति है। यह बहुत-बड़े अन्तर्ग्रंथन की प्रक्रिया से गुजरी हुई है। यह कहानी के पहले से मान्य दो आयामों के अतिरिक्त उसका तीसरा आयाम है। इसीलिए "जहाँ पहले शैली विचारों को अतिरंजित, भावुकतामय और सतही बनाती थी, वहीं वह अब कहानी के विचार-कण को साफ करके उसकी अपनी चमक का आभास देने का कार्य पूरा करती है। वह चमकाने का कार्य नहीं करती, कण की चमक के रास्ते व्यवधानों को स्पष्ट करती है।"[2] यह शृंगार और अलंकरणहीन शैली शकुन्तला की वन्य चारुता से होड़ लेती है। वस्तुतः "नयी कहानी ने जिस शैली को जन्म दिया, वह कथ्य-सापेक्ष्य विलीन शैली है—यानी उसे विलीन ही माना जा सकता है, जो कि कथ्य के कण मे ऊर्जा की तरह विद्यमान है और कथ्य के कद और सदृष्टि (विजन) के अनुसार अपना प्रसार ग्रहण करती है, जो संश्लिष्ट कथा-खंडों में सघन और सूक्ष्म होती जा रही है, जो कथ्य के अनुभव को वहन करती है और कहानी को समग्रता में प्रस्तुत करती है—यानी उसे सम्पूर्ण उपस्थिति बना देती है।"[3]

विलीन शैली का यह प्रयोग, जिसमें केवल गति स्पष्ट नहीं होती, अपितु कहानी के तीसरे आयाम वाली व्याप्ति की अनुभूति भी प्रगाढ़ होती है, निम्न-लिखित कथा-उद्धरणों मे प्राप्त होता है—

१—"जब तक बिस्तर लगे, हल्की बूंदाबांदी होनी लगी थी। सर्दी और भी बढ़ गयी थी। थोड़ी देर मे बच्चे भी सो गये थे। किशन और शान्ता भी लालटेन बुझाकर सो गये थे। मुरारी बाबू और गौरी अपने वाले कमरे में लेटे हुए थे। लालटेन धीमी-धीमी जल रही थी ..अँधेरे मे मकान हमेशा की तरह धसकता जा रहा था, पर उस क्षण लालटेन की परिचित गंध के साथ ही वह गंध भी थी, जो कभी-कभी पूरी तरह छा लिया करती थी। पूरा घर खामोश

यह व्यक्तित्व ही उसकी यह शैली है।"

—कमलेश्वर : 'नयी कहानी की भूमिका', पृष्ठ १९२।

१. वही, पृष्ठ १९४।

२. वही, पृष्ठ १९३-१९४।

३. वही, पृष्ठ १९८।

था। तभी गौरी ने धीरे से पूछा था, कोई तकलीफ तो नहीं हुई...?[1]"

२—"उसने उलटकर देखा, बोरे भी नहीं, बाँस भी नहीं, बाघ भी नहीं ..परी ..देवी ..मीता...हीरादेवी...महुआ घटवारिन—कोई नहीं। मरे हुए मुहूर्तों की गूंगी आवाजें मुखर होना चाहती हैं। हिरामन के होंठ हिल रहे हैं। शायद वह तीसरी कसम खा रहा है—कम्पनी की औरत की लदनी...।"[2]

३—"नदी मे नावें थी, स्टीमर थे। उन सबसे अलग एक पुल था, जिस पर तिलक था। तिलक को लगा कि वह पुल उसके पैरो में बुरी तरह सट गया है, अब वह चल नहीं पाएगा। वह पुल की छोटी रेलिंग पर पीठ टिका-कर बैठ गया, जैसे वह कोई चेतन प्राणी न होकर उस पुल का ही एक हिस्सा है, जो पानी कम होने पर इस पार से उस पार जाने वालों के लिए नदी की धार पर बिछा दिया जाता है और फिर बरसात के आने पर बीच मे तोड़ दिया जाता है।"[3]

४—"पर मैं रोऊँगी नहीं। यह कैसी अपूर्व शान्ति मेरे ऊपर छा गयी है, यह कैसी परितृप्ति का बोध। मैं किताब हाथ मे लिये उजली धूप मे बैठी हूँ। उसका समर्पण का पृष्ठ मेरे सामने खुला है—'टु डेट अदर वन (उस दूसरी को)' अक्षर कहते हैं। और एक मृदु दृष्टि बार-बार मुझसे कह रही है तुम, नीलांजना, तुम ही तो थी वह दूसरी।"

५—"खुले बालो मे फटी आँखो की गौरा, कमरे मे घिर आये इन बादलों मे बिभास रही थी। कमरे मे टहलते बादल निशा के बिस्तर पर, खिलौनो की आलमारी पर, तैलचित्र पर, एक्वेरियम की मछलियो के चारो ओर स्वेच्छा-चारी थे।

तो क्या .

तो क्या निशा अब...

कमरे के ये जनवरी के टहलते बादल, गीले बादल, मेरी स्नायुओ मे, चेतना मे भी सायास घिर रहे हैं या अनायास ही यह सब घट चुका है ?"[5]

६— (क) "कुछ देर वह खिडकी की सिल पर सिर रखे चारपाई पर बैठी

---

१. कमलेश्वर : 'मांस का दरिया', पृष्ठ ६७।
२. फणीश्वर नाथ रेणु : 'ठुमरी,' पृष्ठ १५०।
३. शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ १४।
४. उषा प्रियंवदा : 'एक कोई दूसरा', पृष्ठ ४०।
५. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४३।

उद्धरण तीन में सेतु-रूप में अपनी प्रतीति करने, उद्धरण चार में मृदु दृष्टि के 'तुम ही तो थी वह दूसरी' कहने, उद्धरण पाँच में कमरे में घिरे बादलों में गोरा के विभासने, उद्धरण छह के 'क' में सुशील की सामीप्य-कल्पना में 'उसके' भटकने, 'ख' में 'उसके अजुध्या' को देखकर 'अपने अभाव' के सलने और 'ग' में 'उसकी' अपूर्त सन्तान-तृष्णा के परिणाम-स्वरूप 'उसके' बच्चे को चूमने तथा उद्धरण सात में नारियों के चूल्हा फूंकते रहने और उनकी आँखों के खराब नहीं होने के कथ्य उभरे हैं। इन उद्धरणों में शैली वय्य से सर्वत्र तदावृत है। वह आत्मनिष्ठा में कहीं अस्तित्वमयी नहीं है। इसीलिए वह निर्गुण-निराकारिता और विलीनता का प्रयोग है। यह प्रयोग ही 'नयी कहानी' के अलग-अलग कहानीकार की कहानियों की विभिन्नता को अभिन्नता में बदल देता है, जो इसका बहुत बड़ा वैशिष्ट्य है।

अर्थगत प्रयोग

अर्थ भाषा का प्राण है। यह संकेत और प्रतीति दो रूपों में उपपन्न होता है।[1] लेखक, जो अपनी रचना में नयी वस्तुओं, नयी अनुभूतियों, नये पहलुओं को आत्मसात् और अभिव्यक्त करने के लिए हमेशा संघर्षशील रहता है, वह सब अर्थ के निष्पादन के लिए ही। अर्थ की सटीकता, तीव्रता, प्रखरता, गहरी उद्दिक्ति और व्याप्ति-प्रसरिति ही कथा-भाषा की सही सोद्देश्यता है, सन्दर्भित शब्द से व्यापक कथा-भूमि तक। पर भाषा के इस गुणात्मक प्रयोग के लिए रूपात्मक सिद्धि अपेक्षित है, क्योंकि "सच्चा रचनात्मक लेखक पोखरे में डाले जाने वाले पत्थर की तरह हमारे मस्तिष्क के प्रति शब्दों को अर्पित करता है और अर्थ के अनवरत फैलते दायरे हमारे अनुभव के खजाने के चारों ओर चक्कर मारते तथा उन्हें वलयित करते हैं।"[2] इसीसे नया कहानीकार कभी घटना को तो कभी अनुभव को, कभी मुँह से निकले सामान्य-से-

---

१. "अयमस्य पदस्यार्थ इति केचित् स तेन वा।
यो्ऽर्थः प्रतीयते यस्मात् स तस्यार्थ इति स्मृतिः॥"
जयन्त : 'न्याय मंजरी', पृष्ठ २६६।
डा० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य : 'अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन,' पृष्ठ ७७ पर उद्धृत।

२. डेविड डेचेज : 'ए स्टडी अव लिटरेचर' (१९६८ में प्रकाशित), पृष्ठ ४२।

१—"और सोचने लगा, क्या वह बिना किसी भूमिका के उमा को बता दे। फिर उसने सोचा, इसमे भूमिका क्या है ? उमा खुद वह भूमिका है ?"[1]

२—"हम अपने उत्तरदायित्व से प्रेम करते हैं। अब वह उत्तरदायित्व भी नही रहा। अब वह किसी के प्रति उत्तरदायी नही ..।"[2]

३—"फिर वही प्रतीक्षा, वही अन्तहीन प्रतीक्षा। वह अब बिल्कुल ही प्रतीक्षा नही करना चाहता था, क्योकि उसे लगता था यदि अब जरा भी प्रतीक्षा करनी पडी तो वह शशि से घृणा करने लगेगा।"[3]

४—"उसने भागना शुरू किया और भीड़ मे घुस गया। मगर इस बार भीड़ मे भी उन्होने उसे नही छोड़ा।"[4]

५—"उस आदमी ने उसे उठाया और कहा, क्या बात है ? उसने उस आदमी की आँखो को देखा.. ।"[5]

६—"यहाँ बैठने वाले मुफ्तखोर होते हैं। और मुफ्तखोरो से उसे जन्म-जात चिढ थी।"[6]

ऊपर उद्धरण-सख्या एक के दूसरे वाक्य मे उसने सोचा के बाद 'इसका क्या, वह तो उमा खुद है' लिखा जा सकता था। उद्धरण दो मे दूसरे 'उत्तर-दायित्व' को बिना दिये भी काम चल सकता था। उद्धरण तीन मे दूसरे वाक्य के प्रारम्भ मे 'जो' लगाकर उस वाक्य की पहली 'प्रतीक्षा' को हटा दिया जा सकता था और दूसरी 'प्रतीक्षा' की जगह पर 'यह' सर्वनाम का प्रयोग किया जा सकता था। उद्धरण चार मे दूसरे 'भीड़ में' की जगह 'वहाँ' का प्रयोग हो सकता था। उद्धरण पाँच मे दूसरी बार प्रयुक्त 'उस आदमी' के लिए 'उसकी' और उद्धरण छह मे दूसरी बार प्रयुक्त 'मुफ्तखोरो' के लिए 'उनसे' का व्यवहार किया जा सकता था, परन्तु कहानीकार ने ऐसा नही किया। उसने जिन शब्दो का आवृत्तिपरक प्रयोग किया है उनसे अर्थ-सकल्पन की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया स्पष्ट होती है। ऐसे अर्थगत प्रयोगो में पाठकीय मनोविज्ञान की परिचिति स्पष्ट है।

---

१. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ १८।
२. वही, पृष्ठ २७।
३. वही, पृष्ठ २७।
४. वही, पृष्ठ ४७।
५. वही, पृष्ठ ४७।
६. वही, पृष्ठ १२५।

अर्थ के पचित प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में अर्थ के अत्यन्त पचित (डायजेस्टेड) प्रयोग हुए हैं। ध्यातव्य है कि गद्य-सन्दर्भ की मीमांसा मे हमे प्रयुक्त शब्दों की बिल्कुल उपयुक्त अर्थच्छायाओ का ध्यान रखना और यह विचार करना पडता है कि लेखक ने इस दृष्टि से सर्वोत्तम शब्द का व्यवहार किया है अथवा चलते ढग से उसका उपयोग कर लिया है।[1] विचारने का मुद्दा यह है कि लेखक जो भी व्यक्त करना चाहता है उन सबके लिए केवल एक-एक शब्द उपयुक्त और सटीक होता है, एक क्रिया, जो प्राण फूंक सकती है, एकमात्र विशेषण, जो अर्ह हो सकता है। इसलिए लेखक जब तक उस विशेष शब्द को प्राप्त नही कर ले तबतक उसे उस क्रिया या विशेषण को सदैव तलाशना चाहिए।[2] इस प्रक्रिया मे 'नयी कहानी' ने लघु-लघु शब्द मे अर्थ-प्रसार को इस तरह कैद कर लिया है, जिससे वह लघु शब्द ही विशेष अर्थप्रसार के लिए अत्यधिक उपयुक्त हो गया है। ऐसे प्रयोग तीन दिशाओं में हुए हैं। कही शब्द को अर्थ की यह सटीकता ठेठ देहाती शब्दो से मिली है तो कही अँगरेजी के शब्दो से और कही हिन्दी के अपने प्रयोग से।

देहाती शब्दो से निष्ठित अर्थ को व्यक्त करने के उदाहरण द्रष्टव्य है--

१—रतनी का 'अथि' भी नही उखाड़ सकते।'[3]

२—भैंस 'उठ' गयी है।'[4]

३—'डैमफैंटलैट' किया।'[5]

४—'अकाशी' लग गयी।'[6]

अँगरेजी प्रभाववश ऐसे प्रयोग के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं—

१—एकदम 'बैडरूम सीन' था।'[7]

२—'आउट ऑव फोकस' तसवीर।'[8]

---

१. मारजोरी बुल्टन : 'द एनेटामी ऑव प्रोज', पृष्ठ १६।

२. राबर्ट लिड्डेल लिखित 'सम प्रिंसपुल्स ऑव फिक्शन' के पृष्ठ ४७ पर उद्धृत।

३. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १७६।

४. वही, पृष्ठ १०९।

५. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ १२१।

६. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ ११।

७. राजेन्द्र यादव : 'टूटना..', पृष्ठ ८०।

८. वही, पृष्ठ ८४।

३—'उन्नाव रंग के सामने यह रंग 'एक्स' यानी अवकाशप्राप्त-सा नहीं लगता ?'[1]

हिन्दी के अपने प्रयोगों के भी सटीक उदाहरण 'नयी कहानी' की भाषा में प्राप्त हैं—

१—उसका 'तीन मिनट' नहीं उतरा ।'[2]

२—बीच-बीच में कई बार उसने अपने 'उन' का भी उल्लेख किया ।'[3]

३—लेकिन...ऐन मौके पर 'लेकिन' लग गया ।'[4]

उपर्युक्त प्रयोगों में 'अधि', 'उठना', 'अकाशी लगना', 'डैमर्फटलैंट करना', 'वंडरूम सीन', 'आउट अॅव फोकस होना', 'एक्स लगना', 'तीन मिनट नहीं उतरना', 'उन' तथा 'लेकिन लगना' का उल्लेख करने के लिए प्रयुक्त शब्दों से अधिक सटीक अर्थवान् शब्द हिन्दी को प्राप्त नहीं हैं। 'नयी कहानी' की भाषा ने एक ओर तो ऐसे अर्थवाही शब्दों की अस्पृश्यता का समुद्धार किया है, दूसरी ओर कम-से-कम शब्दों में अर्थ को तीर की अनी की तरह शाणित, नुकीला और 'पोयटेड' कर दिया है, क्योंकि नये कहानीकारों ने किसी शब्द का व्यवहार उस शब्द की उत्पत्ति और प्रयुक्ति के सिद्धान्त के प्रति पांडित्याग्रही होकर नहीं किया है, प्रत्युत उसका प्रयोग लोक-स्वीकृत अर्थ की परिसीमाओं में किया है। यह प्रयोग प्रत्येक शब्द की साभिप्राय अभिव्यक्ति की अपेक्षित परिमिति से सचालित है । पाणिनि ने भी अर्थ के विषय में लोक-व्यवहार को सर्वश्रेष्ठ माना है– 'प्रधानप्रत्ययार्थवचनमर्थस्याऽन्यप्रमाणत्वात् ।[6]

एक शब्द की एकाधिक अर्थ-विच्छित्तियों के प्रयोग

'नयी कहानी' की भाषा में अर्थ के प्रति बड़ी सचेष्टता है। इसीलिए इस भाषा में यदि कहीं एक लघु शब्द 'क्यों' का प्रयोग होता है तो प्रयोक्ता उसकी सारी व्यंजना को हस्तामलक कर पाठक को दे देना चाहता है—"क्यों; इस

---

१. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ६२ ।
२. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'आदिम रात्रि की महक', पृष्ठ १२० ।
३. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ६१ ।
४. फणीश्वर नाथ 'रेणु' : 'ठुमरी', पृष्ठ ८६ ।
५. हर्बर्ट रीड : 'इंग्लिश प्रोज स्टाइल', पृष्ठ ५ ।
६. पाणिनि : 'अष्टाध्यायी', १।२।५६ ।

'क्यों' के कई मतलब थे। एक तो सीधा कि क्यों कैसा रहा ? दूसरा कि क्या मैं किशोरी से बेहतर कर पाया हूँ ?"[1]

अर्थ की उपयुक्तता के प्रयोग

अर्थ के प्रति इस सावधान भाषा मे एक अभिव्यक्ति को छोड़कर दूसरी अधिक उपयुक्त अभिव्यक्ति प्राप्त करने के लिए स्वाभाविक विकलता है—"सीता भी ठीक लगी। बल्कि पसद आ रही थी। पसद क्या महसूस हो रहा था कि ठीक है।"[2] यहाँ समुचित अर्थ-प्रकाश मे भाव को उजागर कर देने के लिए भाषा चक्कर मार रही है। इसीलिए 'नयी कहानी' की भाषा मे 'भी' जैसे निपात का प्रयोग भी अकारण और अर्थशून्य नही है--"लीजिए, आप भी लीजिए, अपना 'भी' मुझे चुभ गया...लेने के बाद उसने महरी की विनीत दृष्टि से नही, मुझे लगा औरत की नजर ने देखा।"[3]

एक ही शब्द की आवृत्ति से भिन्न अर्थों के प्रयोग

इस भाषा में एक ही स्थल पर एक ही शब्द के कई बार प्रयोग कर कई अर्थों को उजागर किया गया है। जैसे—"पुरुष फुटपाथ पर एक जगह रुका। ...दालसेव बेचने वाले लड़के से कहा, चार जगह दो।[4]" यहाँ पहली 'जगह' जमीन की जगह से दूसरी 'जगह' मे आते-आते सहसा कागज की चार पुड़िया का अर्थ देने लगी है। बड़ी बात यह है कि ऐसा यमक के चमत्कार के लिए नहीं हुआ है। भाषा में यह अर्थवत्ता ज्ञान की बोझिल और पुस्तकीय भाषा के सहारे न आकर जीवन के मुहावरे को लोकव्यवहार से उठाने के कारण आयी है। 'नयी कहानी' की भाषा ने अर्थ-सर्जन की ऐसी कई मान्यताएँ पूरी की हैं।

पंक्ति-विशेष से कहानी के समग्र को अर्थान्वित करने के प्रयोग

'नयी कहानी' में अर्थ-सकल्पन का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रकार कहानी के समग्र को अर्थान्वित करता है। नया कहानीकार "जीवन की छोटी-से-छोटी घटना मे अर्थ के स्तर-स्तर उद्घाटित करता हुआ उसकी व्याप्ति को मानवीय सत्य

---

१. महेन्द्र भल्ला : 'एक पति के नोट्स', पृष्ठ ७६।
२. वही, पृष्ठ ५७।
३. वही, पृष्ठ ८४।
४. श्रीकान्त वर्मा : 'झाड़ी', पृष्ठ २१।

की सीमा तक पहुँचा देता है।"[1] इस रूप मे पहला अर्थगत प्रयोग नयी कहानी में संकेत के सहारे हुआ है। संकेत भी द्विकोटिक है। पहले प्रकार का संकेत सन्दर्भगत है और दूसरे प्रकार का परिवेशचित्रणात्मक। सन्दर्भगत संकेत सम्पूर्ण कहानी की किसी विशेष पंक्ति मे गूढार्थ भर कर उसकी समग्रता पर आलोक विकीर्ण करने का है। ऐसी विशेष पंक्ति कहानी के मध्य अथवा अंत किसी भी स्थल पर रहती है। ऐसा अर्थोद्रेक कभी तो एक पंक्तिमात्र से निष्पन्न हो जाता है, पर कभी-कभी अर्थ की सम्पन्नता के लिए दो तीन पंक्तियो की गुम्फित लड़ियाँ भी द्रष्टव्य होती हैं। कही-कही तो एक विशेष पंक्ति ही सम्पूर्ण कहानी में कई बार अर्थ की गूँज-अनुगूँज उठाती आवृत्त होने लगती है। कमलेश्वर की प्रसिद्ध कहानी 'नागमणि' मे 'राम अब घर चल'[2] वाक्य इसी रूप मे अर्थवान् है। सम्पूर्ण देश के स्वतंत्र भारतीय परिवेश मे लौटने की विकलता और लौटने पर प्राप्त विराट् शून्यता, निष्फलता जैसे इस वाक्य से जगह-जगह अर्थमयी होती चलती है। 'राम अब घर चल' हिन्दी-भाषा के प्रश्न को भी उसी रूप मे अर्थवान् करता है।

निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी का 'हम कहाँ जाएँगे'[3] वाक्य ऐसा ही अर्थ व्यक्त करता है। इसकी प्रश्नवाचकता केवल कहानी के सन्दर्भ मे सीमित न होकर कही अधिक विस्तृत है। इसका अर्थ अपनी व्यापकता मे अपरिचिति की अनुभूति देता मानव की अनिश्चित नियति को संकेतित करता है। यह वाक्य अपनी अर्थवत्ता मे कहानी के पात्रों और उसके देश-काल से कही ऊपर उठकर राष्ट्रसीमा का भी अतिक्रमण करता अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर मानवता के भविष्य तक का प्रश्न हो जाता है। यहाँ अर्थ-नियोजन कहानी के मध्य मे हुआ है।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'जिन्दगी और गुलाब के फूल' में भी अर्थ का नियोजन ऐसा ही है। कहानी के उत्तरार्द्ध की पंक्ति—"प्यार से बड़ी एक और आग होती है भूख की, पेट की वह आग धीरे-धीरे सब-कुछ लील लेती है"[4]—सम्पूर्ण कहानी को अर्थ से आच्छन्न कर देती है। सुबोध की माँ सुबोध को अशेष स्नेह देने वाली माँ थी। मगर जब सुबोध नौकरी छोड़ देता है तब

१. डा० नामवर सिंह : 'कहानी : नयी कहानी', पृष्ठ ३४।
२. कमलेश्वर : 'नागमणि', 'धर्मयुग', 'स्वाधीनता विशेषांक'६६ पृष्ठ १६।
३. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', पृष्ठ १५७।
४. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १६३।

वस्तुतः माँ का प्यार उस पर कम होने लगता है। यहाँ पेट की आग ही तो घरेलू व्यवस्था और रोटी की आग है, जो मातृ-प्रेम तक को लील लेती है। दूसरी ओर शोभा है, जो सुबोध से प्रेम करती है। दोनो के विवाह की बातें भी चल चुकी हैं, पर सुबोध के नौकरी छोड़ देने मे शोभा के पिता उसका सम्बन्ध अन्यत्र निश्चित कर लेते हैं। यहाँ भी भूख-रोटी की आग मे शोभा और सुबोध का प्रेम लील लिया जाता है। तीसरी ओर स्वय स्वाभिमानी सुबोध है, जिसने स्वाभिमान की रक्षा के लिए नौकरी छोड़ दी है। उसका स्वाभिमान और कुछ नही, अपने प्रति उसके प्यार का ही प्रतीक है। किन्तु जब सुबोध को पेट की आग सताने लगती है तब वह अपने 'अह' के लिए सँजोकर रखा सारा प्यार भूल जाता है। वह घर के लिए साग-सब्जी लाने और बहन की सहेलियों को पहुँचाने का काम ही नही करता, बल्कि उपेक्षित भाव से अलग तिपाई पर निकाल कर रखे गये भोजन को लालचियो की तरह बड़े-बड़े कौर से निगलने वाला[1] बनकर रह जाता है। इस प्रकार चर्चित एक पंक्ति पूरी कहानी को अर्थवान् बना देती है।

शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हो' कहानी के मध्य की पक्तियाँ—"काँच की चूड़ियाँ भी किस्मत का अजीब खेल खेला करती हैं। नन्हों जब इन्हें पहनना नही चाहती थी तब तो ये जबर्दस्ती उसके हाथ में पिन्हायी गयी और अब जब वह इन्हें उतारना नही चाहती तो लोगों ने जबर्दस्ती हाथो से उतरवा दिया" —आत्यन्तिक रूप मे अर्थ-सम्भारमयी हैं। ये पक्तियाँ नन्हो के चरित्र को और पूरी कहानी को अर्थान्विति के सूत्र देती हैं। नन्हो के हृदय मे यदि कही रामसुभग के प्रति राग है तो कही वह रामसुभग की होकर रहने की स्थिति में भी नही है। उसके चूड़ी नही पहनने के समय—अस्वीकार की पहले वाली स्थिति के समय—ही 'सुभग' के प्रति उसकी रागात्मकता स्पष्ट होती है, पर चूडी नही उतारना चाहने के समय तक तो रामसुभग को वह सामाजिक रूप में अपनाने की दिशा में कभी को नकार चुकी होती है। इसी दिशा में चमटोली की शादी से लौटने पर वह रामसुभग को डाँटती है—"खबरदार फिर कभी आँख दिखाया तो..."[2] और अन्तत. उसका रूमाल भी उसे वापस कर देती है। नियति की स्थिति दिखाने के साथ-साथ नन्हों का चरित्र स्पष्ट करने और

१. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १६७।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ २०।
३. वही, पृष्ठ २२।

कहानी को पारदर्शी बोध देने की दृष्टि से ये पंक्तियाँ बहुत अर्थमयी हैं, जहाँ चूड़ियों के पहनने और न पहनने का अर्थ-सन्दर्भ पुरानी कहानियों की तरह असामयिक और सामयिक वैवाहिक स्थिति भर स्पष्ट कर दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता।

मोहन राकेश की 'सुहागिनें' में मनोरमा की यह प्रतीति--"न जाने क्यों उसे लगा कि सड़क पर कंकड़-पत्थर पहले से कहीं ज्यादा हैं और गोस सड़क न जाने कितनी बड़ी हो गयी है"[1]—केवल मार्ग-विषयक बोध नहीं देती, प्रत्युत पहले की अपेक्षा उसके जीवन-पथ के कहीं अधिक व्यवधानों, कठिनाइयों से भर उठने और कहीं अधिक दीर्घ हो जाने का बोध कराती है। इस प्रकार अर्थ एक तेजोवलय में चमक उठता है। इसकी युक्तियुक्तता उस सन्दर्भ से भी पुष्ट होती है, जिसमें उसे सुशील का पत्र प्राप्त हुआ है।

शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हो' कहानी के अन्त का—"नन्हो ने किवाड़ तो बन्द कर लिया, पर साँकल न चढ़ा सकी"[2]--वाक्य पदार्थगत दृष्टिमात्र से अर्थवान् नहीं है, अपितु मानसिक दृष्टि से भी अर्थपूर्ण है। वहाँ मकान के किवाड़ और साँकल के अर्थ के अतिरिक्त हृदय के बन्द हुए पट, पर उसकी न लग सकी अर्गला के अर्थ भी अभीष्ट हो जाते हैं।

निर्मल वर्मा की 'लन्दन की एक रात' की आखिरी पंक्ति—"और मुझे लगा, जैसे मुद्दत से मैंने सिगरेट नहीं पी"[3]—सिगरेट के अर्थ को ही नहीं, बल्कि यौन-असंतुष्टि के अर्थ को भी व्यक्त कर देती है। इस दूसरे अर्थ के औचित्य की पूरी गुंजायश ऊपर की सन्दर्भगत पंक्तियों और पूरी कथा-भूमि में निहित है।

परिवेश-चित्रण से सिद्ध अर्थ-प्रयोग

'नयी कहानी' में परिवेश-चित्रण के सहारे अर्थ दो रूपों में निष्पन्न हुए हैं। प्रथमतः अर्थ का चित्रण प्रकृति-चित्रण के माध्यम हुआ है तथा द्वितीयतः वस्तु-चित्रण के माध्यम।

---

१. मोहन राकेश : 'सुहागिनें' (पाकिट बुक्स), पृष्ठ ७४।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है,' पृष्ठ २६।
३. निर्मल वर्मा : 'जलती झाड़ी', पृष्ठ १४१।

(क) प्रकृति-चित्रण से नूतन अर्थोद्रेक के प्रयोग

'नयी कहानी' में प्रकृति का चित्रण पात्रों की मानसिक स्थिति से घुला-मिला है। यहाँ प्रकृति के रूप-रंगो की निःशब्द चित्रणा (स्टिल फोटोग्राफी) भर नहीं है। निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, शिवप्रसाद सिंह जैसे कहानीकारों की कहानियों में ऐसे अर्थ-प्रयोग प्राप्त होते है।

निर्मल वर्मा की 'परिन्दे' कहानी में बादलो के चित्र हैं—"आज दिन भर बादल छाये रहे, लेकिन खुलकर बारिश नही हुई।"[1] और फिर अन्त में—"जब वह बाहर कारीडोर में आयी बारिश की बौछार तेजी से पड़ने लगी थी।"[2] यहाँ बादलों की आच्छन्नता और अवृष्टि लतिका के मन की घुमडन को स्पष्ट करती है। पर जब लतिका जूली का नीला लिफाफा उसके सोते समय उसके तकिये के नीचे दाब आती है तब उसकी घुमडन मिट-सी जाती है। किन्तु कहानीकार उसकी घुमड़न के मिटने की बात नही कर बादलों के बरसकर हलका हो जाने की बात करता है। इसीसे उसकी मनःस्थिति सकेतित हो जाती है।

नरेश मेहता की 'निशाऊजी' कहानी मे गौरा के मुख पर उभरने वाली भावनाओं को स्पष्टतः नही कह प्रकृति-चित्र का ही सकेत प्रस्तुत किया गया है, जिससे बाह्य और मानस दोनो ससार एकरूप हो गये हैं—"क्या कहूँ कि उस गौरामुख पर क्या हुआ? हवा तेज हो आयी थी। बादल एक-दूसरे से गुंथते हुए, घुलते हुए नीचे उतर कर घाटियाँ भरने लगे थे। अब तो वे लम्बे फैलते एक-एक देवदार के ऊपर से होते बढ आये हैं। लाल-पीली छतों से तैरते मकानो, बारजों, बालकनियो और खिड़कियो में भी घुसने लगे हैं। बस, जहाँ निशा का पलग था उसी खिड़की के बन्द शीशो के पार टहलने लगे हैं। उन झाँकते बादलों की गीली भाप कैसे शीशो पर झलक आयी है।"[3] यहाँ गौरा की घनीभूत पीडा को अत्यन्त कलात्मक ढंग से अर्थ-सकेत दिया गया है। झाँकते बादलों की गीली भाप के शीशो पर झलक उठने की तरह ही गौरा का मुख अश्रु-भीगा हो उठा है। यहाँ बादलो की सारी प्रक्रियाई चित्रात्मकता गौरा की मानसिक हलचल सूचित करने वाली बन गयी है।

शिवप्रसाद सिंह की 'सुबह के बादल' कहानी मे पडित घूरेलाल के यहाँ

---

१. निर्मल वर्मा : 'परिन्दे', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ १६१।

२. वही, पृष्ठ १६२।

३. नरेश मेहता : 'तथापि', पृष्ठ ४२।

दीनू के जाते समय की के पक्तियाँ—"बादल घने होते जा रहे थे, हवा बिलकुल बन्द थी...बडा उदास मौसम था, गलियाँ बिलकुल सुनसान थी "[1] एक साथ बाह्य-आन्तर दोनो ही अर्थ उजागर कर देती हैं। इनका अर्थ-सकेत ऋतु के साथ-साथ दीनू की मानसिक स्थिति की ओर भी है। दीनू : गहराता दु ख, आश्वासन का अभाव, मायूस मन, दिल की उचाट गैल ! यहाँ अर्थ 'पिंच' करता है।

. शिवप्रसाद सिंह की दूसरी कहानी 'नन्हो' मे कलसी के नीचे जो के अँखुआने का वर्णन—"चबूतरे के पास कलसी के नीचे, पानी गिरने से जमीन नम हो गयी थी, जो के बीज गिरे थे जाने कबके, इकट्ठे एक मे सटे हुए उजले-हरे अँखुवे फूटे थे"[2]—केवल प्रकृति के पक्ष में अपना अर्थ नही देता, प्रत्युत नन्हो सहुआइन के मन के भीतर भी कही ऐसे प्रस्फुट हो रहे अकुर को सकेतित कर देता है। यहाँ बाहरी अर्थ भीतरी अर्थ से एकाकार होता हुआ उसे स्पष्ट करने लगता है।

(ख) वस्तु-चित्रण से नूतन अर्थोद्रेक के प्रयोग

वस्तुगत चित्रण के माध्यम अर्थोद्रेक का प्रयोग शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हों', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' तथा उषा प्रियवदा की 'वापसी' जैसी कहानियो में हुआ है।

'नन्हों' का गद्य-सन्दर्भ—"कई महीने बीत गये, बरसात आयी और गयी। पानी सूख गया, बादलो का घिरना बन्द हो गया। बौछारो से टूटी-जर्जर दीवारो के घाव भर गये, नयी मिट्टी से सज-सँवर कर वे पहले जैसी ही प्रसन्न मालूम होती। ऐसा लगता, जैसे इन पर कभी बौछार की चोट पडी ही न हो, कभी इनके तन पर ठेस लगी ही न हो"[3]—केवल मकान की दीवार के सम्बन्ध मे सार्थक हो, ऐसा नही है। कहानीकार टूटी दीवारो के बदरग से बिलकुल नये हो जाने का कथन करता हुआ पति की मृत्यु से आहत, टूटी हुई नन्हो के फिर से तन-मन—दोनो ही से निखर उठने का सकेत कर बैठता है। ऐसे स्थलों मे वर्णन के प्रसार मे अर्थ अत्यन्त केन्द्रित हो उठा है।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ६७।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. वही, पृष्ठ २१।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में—"...घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गयी—माँ का क्या होगा?"[1] यहाँ फालतू सामान छिपाने के सन्दर्भ में माँ का उल्लेख होने से ही माँ के 'फालतू सामान' होने का अर्थ द्योतित हो उठता है। फालतू सामान कभी-कभी उपयोग और लाभ का भी हो पड़ता है। वैसे ही शामनाथ की माँ कथान्त में शामनाथ के लिए लाभ और उपयोग की सिद्ध हो जाती हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' की—"जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गयी थी"[2] —पंक्तियों से भी वस्तु के चित्रण के जरिये गजाधर बाबू की निजी स्थिति-सबन्धी अर्थोद्रिक्ति होती है। इस अर्थ को कहानी की आन्तिक अभिव्यक्ति और भी उजागर कर देती है—"अरे नरेन्द्र बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल ले। उसमें चलने तक की जगह नही है।"[3] पर उषा प्रियंवदा को इस प्रकार के साकेतिक अर्थ-नियोजन में, वस्तु से व्यक्ति तक उसके उछाल की प्रक्रिया में पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो पायी है। लेखिका ने स्वयं ही कहानी के मध्य मे उनकी अवसंगत स्थिति को 'चारपाई' से तुलित कर दिया है—"उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी।"[4] यदि स्पष्ट तौर पर उल्लेख वाला यह वाक्य न होता तो अर्थ-व्यंजन की दृष्टि से यह कहानी परिवार में गजाधर बाबू की उकड़ूं स्थिति को बड़ी सार्थकता से उभार पाती।

प्रतीक के माध्यम अर्थ-प्रयोग

'नयी कहानी' की अनेकानेक कहानियों में प्रतीक के माध्यम अर्थवत्ता उजागर की गई है। इस रूप में अर्थ अधिक तीव्र और विशेष हो जाता है। प्रतीक में गहरे केन्द्रित अर्थ की गहरी प्रभविष्णुता होती है।

उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ' की—"वाशिंगटन मे मैंने एक नाटक देखा

---

१. भीष्म साहनी : 'चीफ की दावत', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २२३।
२. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १४७।
३. वही, पृष्ठ १५४।
४. वही, पृष्ठ १५२।

दीनू के जाते समय की ये पंक्तियाँ—"बादल घने होते जा रहे थे, हवा बिलकुल बन्द थी...बड़ा उदास मौसम था, गलियाँ बिलकुल सुनसान थीं"[1] एक साथ बाह्य-आन्तर दोनों ही अर्थ उजागर कर देती हैं। इनका अर्थ-संकेत ऋतु के साथ-साथ दीनू की मानसिक स्थिति की ओर भी है। दीनू : गहराता दुःख, आश्वासन का अभाव, मायूस मन, दिल की उचाट गैल ! यहाँ अर्थ 'पिच' करता है।

शिवप्रसाद सिंह की दूसरी कहानी 'नन्हो' में थलगी के नीचे जौ के अँखुआने का वर्णन—"चबूतरे के पास थलसी के नीचे, पानी गिरने से जमीन नम हो गयी थी, जौ के बीज गिरे थे जाने कबके, इकट्ठे एक में सटे हुए उजले-हरे अँखुवे फूटे थे"[2]—केवल प्रकृति के पक्ष में अपना अर्थ नहीं देता, प्रत्युत नन्हो सहुआइन के मन के भीतर भी कहीं ऐसे प्रस्फुट हो रहे अंकुर को संकेतित कर देता है। यहाँ बाहरी अर्थ भीतरी अर्थ से एकाकार होता हुआ उसे स्पष्ट करने लगता है।

(ख) वस्तु-चित्रण से नूतन अर्थोद्रेक के प्रयोग

वस्तुगत चित्रण के माध्यम अर्थोद्रेक का प्रयोग शिवप्रसाद सिंह की 'नन्हो', भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' तथा उषा प्रियंवदा की 'वापसी' जैसी कहानियों में हुआ है।

'नन्हों' का गद्य-सन्दर्भ—"कई महीने बीत गये, बरसात आयी और गयी। पानी सूख गया, बादलों का घिरना बन्द हो गया। बौछारों से टूटी-जर्जर दीवारों के घाव भर गये, नयी मिट्टी से सज-सँवर कर वे पहले जैसी ही प्रसन्न मालूम होतीं। ऐसा लगता, जैसे इन पर कभी बौछार की चोट पड़ी ही न हो, कभी इनके तन पर ठेस लगी ही न हो"[3]—केवल मकान की दीवार के सम्बन्ध में सार्थक हो, ऐसा नहीं है। कहानीकार टूटी दीवारों के बदरंग से बिलकुल नये हो जाने का कथन करता हुआ पति की मृत्यु से आहत, टूटी हुई नन्हो के फिर से तन-मन—दोनों ही से निखर उठने का संकेत कर बैठता है। ऐसे स्थलों में वर्णन के प्रसार में अर्थ अत्यन्त केन्द्रित हो उठा है।

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ ९७।
२. वही, पृष्ठ १२।
३. वही, पृष्ठ २१।

भीष्म साहनी की 'चीफ की दावत' में—"...घर का फालतू सामान आलमारियों के पीछे और पलंगों के नीचे छिपाया जाने लगा। तभी शामनाथ के सामने सहसा एक अड़चन खड़ी हो गयी—माँ का क्या होगा?"[1] यहाँ फालतू सामान छिपाने के सन्दर्भ में माँ का उल्लेख होने से ही माँ के 'फालतू सामान' होने का अर्थ द्योतित हो उठता है। फालतू सामान कभी-कभी उपयोग और लाभ का भी हो पड़ता है। वैसे ही शामनाथ की माँ कथान्त में शामनाथ के लिए लाभ और उपयोग की सिद्ध हो जाती हैं।

उषा प्रियंवदा की कहानी 'वापसी' की—"जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थायी प्रबन्ध कर दिया जाता है उसी प्रकार बैठक में कुर्सियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गयी थी"[2]—पंक्तियों से भी वस्तु के चित्रण के ज़रिये गजाधर बाबू की निजी स्थिति-सबन्धी अर्थाद्रिक्ति होती है। इस अर्थ को कहानी की आन्तिक अभिव्यक्ति और भी उजागर कर देती है—"अरे नरेन्द्र बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल ले। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।"[3] पर उषा प्रियंवदा को इस प्रकार के सांकेतिक अर्थ-नियोजन में, वस्तु से व्यक्ति तक उसके उछाल की प्रक्रिया में पूरी सफलता नहीं प्राप्त हो पायी है। लेखिका ने स्वयं ही कहानी के मध्य में उनकी अवसंगत स्थिति को 'चारपाई' से तुलित कर दिया है—"उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी।"[4] यदि स्पष्ट तौर पर उल्लेख वाला यह वाक्य न होता तो अर्थ-व्यंजन की दृष्टि से यह कहानी परिवार में गजाधर बाबू की उखड़ी स्थिति को बड़ी सार्थकता से उभार पाती।

प्रतीक के माध्यम अर्थ-प्रयोग

'नयी कहानी' की अनेकानेक कहानियों में प्रतीक के माध्यम अर्थवत्ता उजागर की गई है। इस रूप में अर्थ अधिक तीव्र और विशेष हो जाता है। प्रतीक में गहरे केन्द्रित अर्थ की गहरी प्रभविष्णुता होती है।

उषा प्रियंवदा की 'मछलियाँ' की—"वाशिंगटन में मैंने एक नाटक देखा

---

१. भीष्म साहनी : 'चीफ की दावत', 'एक दुनिया समानान्तर', पृष्ठ २२३।
२. उषा प्रियंवदा : 'जिन्दगी और गुलाब के फूल', पृष्ठ १४७।
३. वही, पृष्ठ १५४।
४. वही, पृष्ठ १५२।

है कि उसकी पत्नी इतने दिनों के अन्तराल (गैप) में किसी दूसरे के प्रति आसक्त तो नही हो चुकी होगी ! पर घर पहुँचने पर वह अपनी पत्नी को पूर्ववत् देखता है—"बालो में उसी प्रकार गठान बाँधने वाली, चुड़ले से कलाइयाँ भरे रहने वाली, बुहारा लगाने वाली, दूर से आये पति के पाँव छूने वाली और दीवार पर टँगी पति की तसवीर पर ताजा-ताजा पुष्प चढ़ाने वाली पत्नी। यह पत्नी अपने पुरुष का सामान खोलती है। सामानों में एक सामान 'थर्मस' है। यह इसे बोतल समझती है। उसका ढक्कन खोलकर उसमें उँगली डालकर चौंकती है—"इसमे तो कुनकुना पानी है।"[1] पुरुष बताता है कि गला खराब रहने के कारण डाक्टर ने कुनकुना पानी पीने को कहा था। अतः तीन दिनों पहले यात्रा के आरम्भिक दिन मैंने यह पानी थर्मस में भरा था। पत्नी थर्मस को हर तरफ से देख चुकने पर कहती है—"तो तीन दिन से पानी वैसा का वैसा ही है।"[2] और कहानी में 'थर्मस मे कैद कुनकुना पानी' प्रतीक बनने लगता है। फिर तो सारी कहानी इसी प्रतीकन से चमक कर सार्थकता प्राप्त कर लेती है—"मेरी आँखें फटी किनारी की साड़ी पहने, साँवले कपाल पर बिन्दी लगाये घर के गोरखधंधे मे बझी अपनी पत्नी और उसके हाथ में रखे थर्मस पर जाकर ठहर गयी। मुझे लगा जैसे वह स्वयं कुनकुना पानी है और मेरा घर थर्मस है। अन्दर का तापमान बाहर के तापमान से हाथ नही मिला सकता।"[3] कहानी में 'मैं' पात्र के मन में उत्पन्न शंका की धुंध छँट जाती है और दिल काँच-सा स्वच्छ हो जाता है।

गीति-पंक्तियों के माध्यम अर्थवत्ता के प्रयोग

'नयी कहानी' में अर्थवत्ता को पुष्ट-भास्वर करने के लिए गीति-पक्तियों के भी प्रयोग हुए हैं। कथा के अर्थ को, कहानी के अभीष्ट को ऐसी पक्तियाँ व्यापकता और घनता देती हैं। शिवप्रसाद सिंह ने अर्थ के ऐसे खूबसूरत प्रयोग किये है। उनकी 'नन्हो' कहानी की गीति-पंक्तियाँ—

"जो तुम गिरधर तउ हम मोरा
जो तुम चन्दा हम भये चकोरा

---

१. रमेश बक्षी : 'मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ', पृष्ठ ११७।
२. वही, पृष्ठ ११७।
३. वही, पृष्ठ ११७।

माधव तुम तोरहु तो हम नाहिं तोरहिं
तुम सो तोरि कवन सों जोरहिं ?"[१]

'चमटोली' में लगी 'गादी' में भजन-रूप मे गायी जाती हैं। इस 'गादी' में नन्हों श्रोता के बतौर उपस्थित है। पद की गायी गयी पक्तियों में जैसे कहानीकार ने नन्हों की मानसिक स्थिति ही स्पष्ट कर दी है। नन्हों के मन में 'रैदास' का यह गीत घर लौटने पर भी गूंजता रहता है—"जो तुम तोरहु तो हम नाहिं तोरहिं।" इस गीत से अर्थवान् हो चुके अपने मानस में वह इतनी शक्ति प्राप्त कर लेती है कि घर पहुँच कर वह रामसुभग की बातें नहीं सह पाती और उसे डाँट उठती है।

इस सन्दर्भ में उनकी दूसरी कहानी 'अरुन्धती' और ज्यादा उल्लेख करने योग्य है। इसमें चुरला की लोकगाथा के प्रसग में आने वाली गीति-पक्तियाँ—

"सबकी नगरिया चुरला बँसिया बजवले, बाबुरे
मोरी नगरी ..काहे न सुनवले मधुबैन, मोरी नगरी
सबकी नगरिया रनिया, बँसिया बजवली, बाबुरे
तोरी नगरी, पहरा परेला दिन रैन, तोरी नगरी।"[२]

अपने सन्दर्भ के अतिरिक्त अर्थ उच्छलित करती अरुन्धती को वलय-बद्ध कर लेती है। रानी और चुरला की तरह ही अरुन्धती और हीरा की प्रणय-कथा है। गीत की सार्थकता तब कहीं अधिक स्पष्ट हो जाती है जब हीरा बड़ी बहू से एक रुपया माँगने आता है और उनके द्वारा प्रयोजन पूछने पर कहता है—"एक बाँसुरी खरीदूंगा।"[३] यह शक्ति ऊपर की गीति-पक्तियो में ही है, जिससे रानी और चुरला की कहानी की सारी आवेगिक गति अरुन्धती और हीरा को मिल जाती है।

'जंजीर, फायरब्रिगेड और इन्सान' कहानी में भी नगमे के स्वर पूरे परिवेश को और अर्थ-सम्पन्न कर बैठते हैं—

"गजल का साज उठाओ बडी उदास है रात।
सुखन का शमअ जलाओ बड़ी उदास है रात॥
सुना है, पहले भी ऐसे में बुझ गये हैं चिराग।
दिलों की खैर मनाओ बड़ी उदास है रात॥"[४] नगमे की

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'इन्हें भी इन्तजार है', पृष्ठ २१।
२. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ २६।
३. वही, पृष्ठ २८।
४. वही, पृष्ठ ९९ और १०४।

ये पंक्तियाँ कहानी में व्यापक रूप में उभरने वाले सन्दर्भेतर अर्थ को बलवत्ता देती हैं।

संश्लेष के माध्यम अर्थ-प्रयोग

'नयी कहानी' में संश्लेष के सहारे अर्थ को तुलनात्मक रूप में तीव्रता मिली है। गिरिराज किशोर की 'फ्राक वाला घोड़ा और निकर वाला साईस' तथा शिवप्रसाद सिंह की 'अरुन्धती' में संश्लेष के माध्यम ही वांछित अर्थ के फूल खिले हैं।

'फ्राक वाला घोड़ा और निकर वाला साईस' के 'मैं' पात्र का दाम्पत्य केवल सुखमय नहीं है, ऐसी बात नहीं है। यहाँ दाम्पत्य दोनों के लिए एक प्रकार का बोझ बन गया है। 'मैं' अपनी रेलिङ् से एक लड़के और एक लड़की की आपसी घुड़सवारी का खेल देखता है। फ्राक वाला घोड़ा है और निकर वाला साईस। साईस उसकी चाल तेज करना चाहकर रास फटकारता है। पर "घोड़ा दोनों हाथ ऊपर उठा कर अलिफ होने की मुद्रा में खड़ा हो जाता है। घोड़ा बने बच्चे की यह मुद्रा असली घोड़े की उसी असहिष्णुता का प्रतीक है।"[1] इससे 'मैं' की पत्नी रीता के असहयोग करने और अनुशासन-रहित रूप में रहने का तीखा अर्थ-बोध होता है। कहानी के अन्त में कहानीकार लिखता है—"घोड़ा गली से निकल रहा है। शायद घोड़े और साईस ने स्थान परिवर्तन कर लिये। इस बार फ्राक वाला साईस है। घोड़ा छूटने के लिए बड़ा जोर लगा रहा है।"[2] इधर मूल कहानी में भी पति-पत्नी के संबन्ध में स्थान-परिवर्तन हो जाता है, जिसको उपर्युक्त दृश्य प्रत्यक्ष कराता है। रीता निकर वाले साईस की तरह और 'मैं' फ्राक वाले घोड़े की तरह हो जाते हैं।

शिवप्रसाद सिंह की 'अरुन्धती' में भी अर्थ संश्लेष से शाणित हो उठा है। इस कहानी में दीघा के बबुआन वंश की बड़ी बहू अरुन्धती और एक हट्ठे-कट्ठे, भोले प्राणी हीरा का पारस्परिक आकर्षण वर्णित हुआ है। हीरा और अरुन्धती के राग-भरे खिंचाव की पोखरा नहाने वाली घटना है इसमें ! इस मुख्य कथा को कथाकार ने चुरुला और रानी की लोक-कथा के संश्लेष से अर्थ दिया है—"और...बाँसुरी की मोहिनी से बेसुध रानी ने एक दिन चुरुला से पूछा, क्या मैं तुम्हारे पास आ जाऊँ ? नहीं, नहीं, रानी, ऐसा मत करना।

---

१. गिरिराज किशोर : 'पेपरवेट', पृष्ठ ६६।

२. वही, पृष्ठ १०३।

राजा मेरी बाँसुरी तुड़वा देंगे। मेरी खाल खिंचवा लेंगे। रानी ने सोचा, मेरे और चुरुला के बीच राजा बाधक है और उसने राजा को जहर देकर मार डाला।"[१] यह कहानी लोचन नाम युवक गाकर सुनाता है—"रानी चुरुला के साथ चली गयी। बहुत दिनों बाद एक पथिक ने एक सुन्दर युवती को सूअर चराते देखकर पूछा, रानी, तुम्हारा यह क्या हाल है? क्या इसी दिन के लिए तुमने राजा को मारा था? राजपाट छोड़ा था? रानी एक क्षण उसे देखती रही, फिर बोली, बहुत दुःख है भैया, बहुत दुःख है, पर सब खुशी से सहती हूँ, क्योंकि यह सब कुछ करने के बाद जब झोंपड़ी में लौटती हूँ तो उसकी बाँसुरी सुनकर लगता है कि खुशियों के समुद्र में नहा रही हूँ।"[२] अरुन्धती और हीरा की मूल कथा को चुरुला की कथा वैषम्य से अर्थवान् बनाती है। चुरुला की कहानी मे प्रेम की सफलता प्रत्यक्ष है, पर अरुन्धती की कहानी में हीरा का बाँसुरी खरीदना सोचना भी सभव नही हो पाता और वह अपने प्राण से हाथ धो बैठता है। कहानी मे दो युगो की भिन्न सवेदना के आधार पर यह अर्थ उत्पन्न हुआ है।

कमलेश्वर की 'राजा निरबसिया', 'बदनाम बस्ती', शिवप्रसाद सिंह की 'बरगद का पेड़' आदि कहानियों को संश्लेप के सहारे ही अभीष्ट अर्थवत्ता प्रदान की गई है।

वस्तुतः साहित्य की भाषा केवल संप्रेषण का माध्यम नही है। वह तो सप्रेषण की सारगर्भिता, सोद्देश्यता को विस्तार देती चलती है। कहानी की भाषा का भी यही उल्लेखनीय वैशिष्ट्य है। आज के पाठक की माँग है कि "कहानी में जीवन का दश, गहरा अर्थ या उसकी हैसियत रेखांकित करने वाला कोई बेलाग सवाल हो—"[३] इसलिए जरूरी है कि "नुकतों में न सोच कर कहानी की 'पाठ-प्रकृति' की सही पहचान को परखा जाए और उसके माध्यम कहानी के केन्द्रीय अर्थ से जुड़ा जाए।"[४] 'नयी कहानी' के अर्थगत प्रयोग इसी पृष्ठभूमि में हुए हैं, जहाँ 'तमाम प्रसग कहानियो मे नितान्त आकस्मिक ढंग से और सतह से देखने पर मूल कथा से विच्छिन्न और महत्त्वहीन होकर आये

---

१. डॉ० शिवप्रसाद सिंह : 'मुरदासराय', पृष्ठ २६।
२. वही, पृष्ठ २६।
३. सुरेन्द्र : 'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ', पृष्ठ ५३।
४. वही, पृष्ठ ७२।

हुए लगते हैं'[1], लेकिन ये 'एकदम नये सन्दर्भ में अर्थ खोलने लगते हैं।'[2]

'नयी कहानी' के सारे-के-सारे भाषाई प्रयोग एक ओर इस मान्यता का खंडन करते हैं कि इस भाषा में 'अनावश्यक ब्योरे की भरमार'[3] है तो दूसरी ओर इससे भी असहमति प्रकट करते हैं कि "हिन्दी भाषा की व्यंजनाशक्ति की जटिलता और उसकी गहनता के विकास का सर्वाधिक आभास नयी कविता में मिलता है;"[4] क्योंकि 'नयी कहानी' ने हिन्दी भाषा को जड़ता-निष्प्राणता की परिधि से बाहर निकाला है, उसने उसको पंगुता, मूकता, विवशता, स्थूलता और अस्पष्टता से पूरी तरह विलग किया है, परिवर्तित संवेदना के अनुकूल जीवन से भाषा उठायी है, उलझे-से-उलझे कथ्य को भी व्यक्त करने की क्षमता दी है, एक भाव के अभिव्यंजन के लिए अनेकानेक पर्यायों में सबसे अधिक युक्तियुक्त और सटीक शब्द का प्रयोग किया है, ध्वनि, शब्द, पद, वाक्य, शैली और अर्थ के अनेकानेक प्रयोगों से नवीनता हासिल की है, कथ्य से गहरे रूप में अन्वित होकर अपनी अमिट छाप छोड़ी है एवं अपने विविध सार्थ प्रयोगों के सहारे कथा-भाषागत और हिन्दीभाषागत—दोनों ही प्रकार की उपलब्धियों से इसे समृद्ध-सम्पन्न किया है।

१. सुरेन्द्र : 'नयी कहानी : प्रकृति और पाठ', पृष्ठ ७१।
२. वही, पृष्ठ ७१।
३. अशोक वाजपेयी : फिलहाल (राजकमल प्रकाशन, १९७०), पृष्ठ ४८।
४. डॉ० शंकरदेव अवतरे : 'हिन्दी साहित्य के काव्यरूपों के प्रयोग', पृष्ठ ६०।

अध्याय ७

समापिका

निष्कर्षतः हम पाते हैं कि प्रयोग परम्परा की प्रतिक्रिया में परिवर्त्तन से चालित होता है। परिवर्त्तन की ही तरह प्रयोग विकास का नाम है। यह नव्य रचना का मूल मंत्र है। साहित्य में प्रयोग एक अनिवार्य आवश्यकता है। यह साहित्य का प्राणद तत्त्व है!

'नयी कहानी' के प्रयोग वास्तविकता की अनुभूति के गर्भ से उपजे हैं। सारा-का-सारा नवलेखन ही प्रयोग से घनिष्ठतः जुड़ा है, पर 'नयी कहानी' में प्रयोग उसकी अस्मिता और सार्थकता बन गया है। यहाँ अभिधान, प्रकृति, विशेषता, विकास सबके मूल में प्रयोग ही है, जो जीवन्तता दे रहा है। 'नयी कहानी' के प्रयोग एक ओर अपनी समकालीन विभिन्न परिस्थितियों का सही दस्तावेज़ प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर मार्ग और गन्तव्य—दोनों ही के प्रयोग होने के कारण कविता के प्रयोग से अपनी भिन्नता और विशिष्टता प्रदर्शित करते हैं। आलोचक अब तक इस प्रयोग को अस्पष्ट और उलझाव-भरे रूप में ही प्रस्तुत करते रहे थे। 'नयी कहानी' को 'अकथा, एक स्थिति, एक इरादा, एक पूर्ण दीप्ति, एक विचार, एक मनःस्थिति, एक प्रक्रिया, एक भाव-बोध, एक निःसंगता, एक यात्रा और एक विसगति का प्रयोग' (ज्ञानोदय, जुलाई १९६५) बताया जाता था। फलस्वरूप 'प्रयोग' अधिक-से-अधिक उल्लिखित होने के बाद भी आभासवत् रह जाता था और उसकी प्रामाणिक स्थापना-विवेचना नहीं हो पाती थी। इस प्रबन्ध में 'नयी कहानी के प्रयोग' को स्थापित करते हुए वैज्ञानिक दृष्टि से उसका अन्वेषण, परीक्षण, अध्ययन और विश्लेषण किया गया है।

'नयी कहानी' में प्रयोग की चार दिशाएँ हैं—विचार, विषय, शिल्प और भाषा। विचारगत के अन्तर्गत चार प्रयोगों, विषयगत के अंतर्गत दस प्रयोगों, शिल्पगत के अन्तर्गत सोलह प्रयोगों तथा भाषागत के छह भिन्न

प्रयोगों के अन्तर्गत उभरने वाले अनेकानेक उप-प्रयोगों का स्वरूप स्पष्ट होता है। व्यक्ति और युग के तल में छिपे इनके उत्स और सतह पर स्थिर हो रहे इनके नये सैद्धान्तिक रूप भी दृष्टिगत होते हैं। इनकी उपलब्धि-सीमा में उपलब्धि का प्रदेय महत्त्वपूर्ण है।

नयी कहानी : विविध प्रयोग
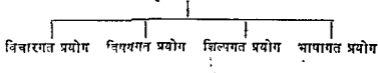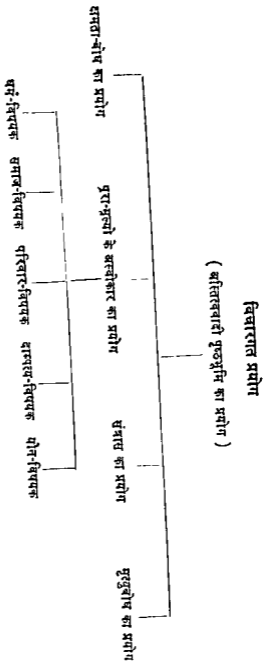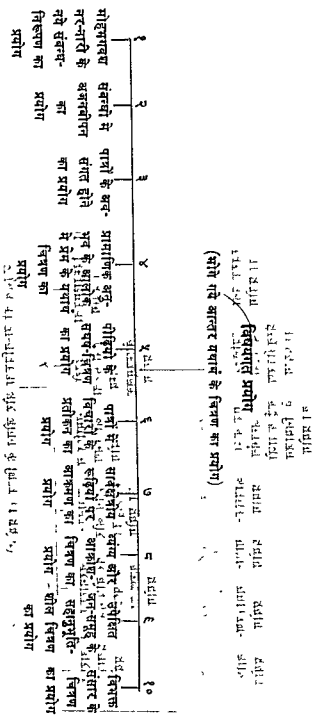
- विचारगत प्रयोग
- विषयगत प्रयोग
- शिल्पगत प्रयोग
- भाषागत प्रयोग

विचारगत प्रयोग
(अस्तित्ववादी पृष्ठभूमि का प्रयोग)
क्षमता-बोध का प्रयोग
पुरा-मूल्यों के अस्वीकार का प्रयोग
संत्रास का प्रयोग
मृत्युबोध का प्रयोग
धर्म-विषयक
समाज-विषयक
परिवार-विषयक
दाम्पत्य-विषयक
यौन-विषयक

विषयगत प्रयोग

(भोगे गये आन्तर यथार्थ के चित्रण का प्रयोग)

१. मोहमगवश नर-नारी के नये संबन्ध-निरूपण का प्रयोग
२. संबन्धो मे अजनबीपन का प्रयोग
३. पात्रों के अव-संगत होने का प्रयोग
४. प्रामाणिक अनुभव के आलोक मे प्रेम के यथार्थ चित्रण का प्रयोग
५. पीढ़ियो के संघर्ष-चित्रण का प्रयोग
६. पात्रों मे विचारों के प्रतीकन का प्रयोग
७. सार्वक्षेत्रीय रूढ़ियों पर आक्रमण का प्रयोग
८. व्यंग्य और आक्रोश-चित्रण का प्रयोग
९. उपेक्षित जन-समूह के सहानुभूति-शील चित्रण का प्रयोग
१०. विभक्त संसार के चित्रण का प्रयोग

शिल्पगत प्रयोग
(वस्तु के अनुभव की वास्तविकता और जीवन के शिल्प का प्रयोग)
१
आंचलिकता का प्रयोग
२
विविध स्तरों वाली सूक्ष्म सांकेतिकता का प्रयोग
३
प्रतीकात्मकता का प्रयोग
४
बिम्बात्मकता का प्रयोग
५
दुहरी कथात्मकता का साम्य-वैषम्यमूलक प्रयोग
६
समाप्ति से आरम्भण का प्रयोग
७
कथानक-ह्रास और विशृङ्खलता का प्रयोग
८
चरमोत्कर्ष पर बोध-सूत्र के स्पष्टीकरण का प्रयोग
९
विचारोत्तेजक प्रलाप का प्रयोग
१०
स्वैरकल्पना का प्रयोग
११
व्यक्तित्व के द्विधा प्रस्तुतीकरण का प्रयोग
१२
एक कथा के अन्तर्गत कई कथाओं के नियोजन का प्रयोग
१३
आवर्तक-प्रयोग
१४
गाथा-प्रयोग
१५
समीकरण-प्रयोग
१६
तांत्रिक प्रयोग

भाषागत प्रयोग
(बदली हुई संवेदना के प्रयोग)
१
ध्वनिगत प्रयोग
२
शब्दगत प्रयोग
३
पदगत प्रयोग
४
वाक्यगत प्रयोग
५
शैलीगत प्रयोग
६
अर्थगत प्रयोग
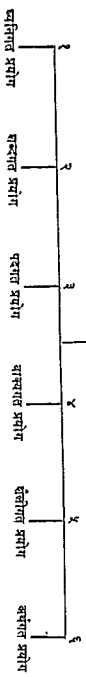
'नयी कहानी' के इन विविध प्रयोगों के बीच कहीं कोई दरार नहीं, बल्कि सभी प्रयोगों में अनुस्यूति है। विचारगत प्रयोग मूलतः विचार-स्तर अपन-स्तर तक अस्तित्ववाद की किसी-न-किसी रूप में उभर रही विचा-रसणि के प्रयोग हैं। विषयगत प्रयोगों के मूल में भोगे गये आन्तर यथार्थ अनुभव है। शिल्पगत प्रयोग शिल्प के चमत्कार की चमत्कृति न होकर वस्तु अनुभव की वास्तविकता और जीवन के शिल्प के प्रयोग हैं तथा भाषाग प्रयोग मूलतः बदली हुई संवेदना से उभरने वाले प्रचलन और सम्प्रयोग हैं पर इन प्रयोगों में कोई एकांगिता या असंबद्धता नहीं है। इनके परस्पराश्रि होने के कारण ही एक-एक 'नयी कहानी' में कई-कई प्रयोग तक प्राप्त होते और 'नयी कहानी' अपने पूरे स्वरूप में ही प्रयोगधर्मी सिद्ध होती है। हिन्द कहानी के विकास में इस 'नयी कहानी' ने पुराने मानों के दायरे से आ क्रान्तिमूलक परिवर्तन किये हैं, अपनी तात्कालिकता से जुड़कर मूल्यों के स्तर उसकी आपाधापी और उसके नये उभरते शिखर को प्रत्यक्ष कराया है तथ स्वयं अपनी आत्मा और कलेवर दोनों ही में नयापन लेकर आयी है। 'नयी कहानी' ने अपनी संवेदना, संरचना और विरचना में नये आयाम उद्घाटि किये हैं और यह सब-कुछ प्रयोगों के कारण हुआ है। प्रयोगों ने ही 'नयी कहानी' में प्रेमचन्द अथवा प्रसाद, जैनेन्द्र अथवा अज्ञेय—इनमें से किसी जैस कोई निकाय (स्कूल) नहीं बनने दिया है, जिससे अनुकरण की शुरुआत होती है और अन्ततोगत्वा जड़ता आती है।

'नयी कहानी' के प्रयोग संवेदना की समृद्धि, दृष्टि की नवीनता, अनुभूति का विस्तार, जीवन का वैविध्य, नये सँवरते इतिहास का पुष्ट परिप्रेक्ष्य, सूक्ष्मतर समस्याओं का विश्लेषण, प्रस्तुति का नया कोण, बनावट-बुनावट की ताजगी और भाषा का जिन्दा तेवर उपस्थित करने वाले हैं। इन प्रयोगों में गूढ़ अर्थ-संकेत वाली उस अभिव्यंजना के दर्शन होते हैं, जो अपनी निर्मिति में सीधे कथ्य से ही सही की गयी हो। 'नयी कहानी' के प्रयोग उत्तर-शती के देश-काल को छाया-चित्रात्मकता देने में बजनी ढंग से समर्थ, अन्य विधाओं के मामले कहानी को कहीं अधिक लोच और गति प्रदान करने में समृद्ध, साहित्य से प्रत्याशित अमित संभावनाओं को उजागर करने वाले तथा अपनी उपलब्धि का प्रामाणिक कीर्ति-स्तम्भ स्थिर करने वाले हैं। बड़ी बात यह कि हिन्दी-कहानी में पहली बार ये प्रयोग रचना-प्रक्रिया के बहुतेरे स्तरों का रहस्य खोलते हैं, जो अपने-आपमें अनुसन्धान का एक अलग ही विषय है।

———

सन्दर्भिका

कोशग्रन्थ

१. अमरकोश : अमरसिंह, (सं० १९६४), सम्पादक पं० हरगोविन्द शास्त्री।
२. इनसायक्लोपीडिया अमेरिकाना, वाल्यूम-१७ (१९६४ ई०)।
३. इनसायक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वाल्यूम-२७ (१९४६)।
४. ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी (१९५१) : सर मोनियर मोनियर विलियम्स।
५. डिक्शनरी ऑव वर्ल्ड लिटरेचर (१९४३) : जोसेफ टी० शिप्ले।
६. द ऑक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी, वाल्यूम-३ और ११ (१९३३)।
७. द डिक्शनरी ऑव फिलॉसफी (मई १९५७) : सं० डेगोबर्ट डी० रून्स।
८. द प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी (१९५८) : आर्थर एंथोनी मैकडोनल।
९. प्रिंसिपल वामन शिवराम आप्टेज द प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी (१९५७) : पी० के० गोडे, सी० जी० कारवे।
१०. फाउलर्स मॉडर्न इंगलिश यूसेज (द्वितीय संस्करण) : पुनरीक्षक सर अर्नेस्ट गोवर्स।
११. मानक हिन्दी कोश, भाग-३ (प्रथम संस्करण) : सं० रामचन्द्र वर्मा
१२. मानविकी पारिभाषिक कोश, साहित्य खंड (१९६५) : सं० डॉ० नगेन्द्र
१३. वाचस्पत्यम् वृहत् संस्कृताभिधानम्, षष्ठो भागः (१९६२)
१४. शब्दकल्पद्रुमः, तृतीय भाग : (१९६१)
१५. हलायुधकोशः (शकाब्द १८७९) : उमाशंकर जोशी
१६. हिन्दी शब्द-सागर, चौथा खंड (प्रथम संस्करण)
१७. हिन्दी साहित्यकोश, प्रथम खंड (सं० २०१५) : प्र० सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा

अङ्ग्रेजी ग्रन्थ

१. ऑन द आर्ट ऑव राइटिंग — आर्थर क्विलर कोच
२. इंगलिश प्रोज स्टाइल — हर्बर्ट रीड
३. इंडियन विज़डम — सर मोनियर मोनियर विलियम्स
४. ए स्टडी ऑव लिटरेचर — डेविड डेचेज़

५. एग्जिस्टेंशियलिज्म ऍंड ह्यूमन एमोशंस — ज्याँ पाल सार्त्र
६. एक्ज़िस्टेंस ऍंड बीइंग — मार्टेन हाइडेगर
७. ऐन असेसमेंट ऑव ट्वेंटिएथ सेंचुरी लिटरेचर — जे० आइजक
८. ऐस्पेक्ट्स ऑव द नॉवेल — ई० एम० फॉर्स्टर
९. कनक्लूडिंग अनसाइनटिफिक पोस्टस्क्रिप्ट — सोरेन कीर्कगार्द
१०. कनवेंशन ऍंड रिवोल्ट इन पोयट्री — जॉन लिविंग्स्टन लोवेस
११. टेकनीक्स ऑव फिक्शन राइटिंग — लियोन सर्मेलियन
१२. टेकनीक्स इन द टेल्स ऑव हेनरी जेम्स — के० बी० वेंद
१३. द एनेटॉमी ऑव प्रोज — मारजोरी बुल्टन
१४. द क्लासिकल ट्रेडिशन इन पोयट्री — गिल्बर्ट मरे
१५. द चीफ करेंट्स ऑव कंटेम्पोरेरी फिलॉसफी — धीरेन्द्र मोहन दत्त
१६. द ट्रू फार्म ऑव फ़ीलिंग — सर हर्बर्ट रीड
१७. द प्रोबलेम ऑव स्टाइल — मिडिल्टन मर्री
१८. द मेकिंग ऑव लिटरेचर — एम० ए० स्कॉट जेम्स
१९. द राइटर ऍंड हिज़ वर्ल्ड — चार्ल्स मोरगेन
२०. पोइंट्स ऑव विउ — टी० एस० इलियट
२१. बीइंग ऍंड नथिंगनेस — ज्याँ पाल सार्त्र
२२. मैन इन मॉडर्न एज — कार्ल या स्पर्स
२३. रीडर ऍंड राइटर — सं० हेफोर्ड ऍंड विमसेट
२४. लिटरेरी एसेज — डेविड डैचेज
२५. लैंगुएज ऐज जेस्चर — आर० पी० ब्लैकमूर
२६. सम प्रिंसिपुल्स ऑव फिक्शन — रॉबर्ट लिड्डेल
२७. स्टाइल — एफ़० आर० लूक्स
२८. स्टाइल — वाल्टर रेले
२९. स्टाइल ऍंड रेटोरिक — थॉमस डी क्वेंसी

संस्कृत-प्राकृत-ग्रन्थ

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् — कालिदास

२. अष्टाध्यायी	पाणिनि
३. ऋग्वेदभाष्यभूमिका	सायणाचार्य (व्या० जगन्नाथ पाठक)
४. कालिदास ग्रन्थावली	सं० पंडित सीताराम चतुर्वेदी
५. किरातार्जुनीयम्	भारवि
६. कौटिल्य अर्थशास्त्र	चाणक्य
७. न्याय दर्शन	वात्स्यायन-भाष्य
८. न्यायमंजरी	जयन्त
९. पंचदशी	
१०. महाभाष्य	पतंजलि
११. मनुस्मृति	मनु
१२. मालविकाग्निमित्र	कालिदास
१३. मृच्छकटिकम्	शूद्रक
१४. रघुवंशम्	कालिदास
१५. रत्नावली	श्रीहर्ष
१६. राजतरंगिणी	कल्हण
१७. वाक्यपदीय	भर्तृहरि
१८. बृहत् संहिता	वाराहमिहिर
१९. शतपथ ब्राह्मण	
२०. शिक्षा	पाणिनि
२१. शिक्षा	याज्ञवल्क्य
२२. शिशुपालवधम्	माघ
२३. श्रौतसूत्र	
२४. सावयधम्म दोहा	सं० डॉ० हीरालाल जैन
२५. सिद्धान्त कौमुदी	भट्टोजिदीक्षित
२६. हरिवंश पुराण	

हिन्दी-ग्रन्थ

१. अकविता और कला-सन्दर्भ	डॉ० श्याम परमार
२. अकेली आकृतियाँ	प्रयाग शुक्ल
३. अभिमन्यु की आत्महत्या	राजेन्द्र यादव
४. अत्याधुनिक हिन्दी-साहित्य	डॉ० कुमार विमल
५. अर्थ-विज्ञान और व्याकरण-दर्शन	डॉ० कपिलदेव द्विवेदी आचार्य

६. आत्मनेपद	स० ही० वात्स्यायन
७. आदिम रात्रि की महक	फणीश्वर नाथ 'रेणु'
८. आधुनिक कहानी का परिपार्श्व	डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
९. आधुनिक साहित्य	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
१०. आधुनिक हिन्दी-कहानी	डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल
११. आधुनिक हिन्दी काव्य में परम्परा तथा प्रयोग	डॉ० गोपाल दत्त सारस्वत
१२. आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण	डॉ० रमेश कुन्तल मेघ
१३. आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना	डॉ० वासुदेव नन्दन प्रसाद
१४. आरपार की माला	शिवप्रसाद सिंह
१५. इन्हें भी इन्तजार है	शिवप्रसाद सिंह
१६. एक और जिन्दगी	मोहन राकेश
१७. एक कोई दूसरा	उषा प्रियंवदा
१८. एक दुनिया समानान्तर	सं० राजेन्द्र यादव
१९. एक प्लेट सैलाब	मन्नू भंडारी
२०. एक पति के नोट्स	महेन्द्र भल्ला
२१. एक समर्पित महिला	नरेश मेहता
२२. एक साहित्यिक की डायरी	ग० मा० मुक्तिबोध
२३. कमलेश्वर की श्रेष्ठ कहानियाँ	स० राजेन्द्र यादव
२४. कहानी : अनुभव और शिल्प	जैनेन्द्र कुमार
२५. कहानी : नयी कहानी	डॉ० नामवर सिंह
२६. कहानी : स्वरूप और संवेदना	राजेन्द्र यादव
२७. कर्मनाशा की हार	शिवप्रसाद सिंह
२८. काठ का सपना	ग० मा० मुक्तिबोध
२९. कालसुन्दरी	ओंकारनाथ श्रीवास्तव
३०. काव्य के रूप	बाबू गुलाब राय
३१. किनारे से किनारे तक	राजेन्द्र यादव
३२. खोयी हुई दिशाएँ	कमलेश्वर
३३. घिराव	महीप सिंह
३४. चिन्तन के क्षण	विजयेन्द्र स्नातक

३५. चिन्तामणि	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
३६. छोटे-छोटे ताजमहल	राजेन्द्र यादव
३७. जलती झाड़ी	निर्मल वर्मा
३८. जिन्दगी और गुलाब के फूल	उषा प्रियंवदा
३९. जिन्दगी और जोंक	अमरकान्त
४०. झाड़ी	श्रीकान्त वर्मा
४१. टूटना और अन्य कहानियाँ	राजेन्द्र यादव
४२. ठुमरी	फणीश्वर नाथ 'रेणु'
४३. तथापि	नरेश मेहता
४४. दर्शन के सौ वर्ष	जान पैसमोर, अनु० शर्मा, शास्त्री
४५. दुहरी जिन्दगी (पाकिट बुक)	रमेश बक्षी
४६. नयी कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकान्त वर्मा
४७. नयी कहानी की भूमिका	कमलेश्वर
४८. नयी कहानी : दशा, दिशा, संभावना	सं० सुरेन्द्र
४९. नयी कहानी : प्रकृति और पाठ	सं० सुरेन्द्र
५०. नयी कहानी की मूल संवेदना	डॉ० सुरेश सिन्हा
५१. नयी कहानी : सन्दर्भ और प्रकृति	सं० डॉ० देवीशंकर अवस्थी
५२. नये बादल	मोहन राकेश
५३. निबंधिनी	गंगा प्रसाद पाण्डेय
५४. निबन्ध भारती	सं० डॉ० शारदा देवी वेदालंकार
५५. निराला का परवर्ती काव्य	रमेशचन्द्र मेहरा
५६. परिन्दे	निर्मल वर्मा
५७. पागल कुत्तों का मसीहा	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना
५८. पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परम्परा	डॉ० नगेन्द्र
५९. पिछली गर्मियों में	निर्मल वर्मा
६०. पूर्वा	अज्ञेय
६१. पेपरवेट	गिरिराज किशोर
६२. प्रयोगवाद और नयी कविता	डॉ० शम्भूनाथ सिंह
६३. फिलहाल	अशोक वाजपेयी

६४. फेंस के इधर-उधर — ज्ञानरंजन
६५. फौलाद का आकाश — मोहन राकेश
६६. बगैर तराशे हुए — सुधा अरोड़ा
६७. बबूल की छाँव — शानी
६८. बोध और व्याख्या — डॉ० कमलेश्वर शर्मा
६९. भटकती राख — भीष्म साहनी
७०. भाषा और संवेदना — डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी
७१. भाषा-विज्ञान की भूमिका — आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा
७२. मन्नू भंडारी की श्रेष्ठ कहानियाँ — सं० राजेन्द्र यादव
७३. मांस का दरिया — कमलेश्वर
७४. मुरदासराय — शिवप्रसाद सिंह
७५. मेज पर टिकी हुई कुहनियाँ — रमेश बक्षी
७६. मेरा दुश्मन — कृष्ण बलदेव वैद
७७. राजा निरबसिया — कमलेश्वर
७८. शैली — पंडित करुणापति त्रिपाठी
७९. श्रेष्ठ कहानियाँ १९६६ की (पाकिट बुक) — सं० महेन्द्र कुलश्रेष्ठ
८०. संजीवन कहाँ — राजेन्द्र प्रसाद सिंह
८१. सदाचार का तावीज — हरिशंकर परसाई
८२. सपाट चेहरे वाला आदमी — दूधनाथ सिंह
८३. समकालीन कहानी का रचना-विधान — डॉ० गंगा प्रसाद विमल
८४. समुद्र — रामकुमार
८५. सरकारी मठी और कुजात गाँधीवादी — डॉ० राममनोहर लोहिया
८६. साहित्यरूप — डॉ० रामअवध द्विवेदी
८७. सिद्धान्त और अध्ययन — बाबू गुलाब राय
८८. सिद्धान्त, अध्ययन और समस्याएँ — डॉ० सियाराम तिवारी
८९. सुरंग से लौटते हुए — दूधनाथ सिंह
९०. सुहागिनें (पाकिट बुक) — मोहन राकेश

९१.	सूने अँगन रस बरसै	लक्ष्मीनारायण लाल
९२.	सौन्दर्य शास्त्र के तत्त्व	डॉ० कुमार विमल
९३.	हंसा जाई अकेला	मार्कण्डेय
९४.	हरी घास पर क्षण भर	अज्ञेय
९५.	हल्दी के दाग	सुदर्शन चोपड़ा
९६.	हिन्दी कहानी : अपनी जवानी	डॉ० इन्द्रनाथ मदान
९७.	हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास	डॉ० सुरेश सिन्हा
९८.	हिन्दी कहानी : एक अन्तरंग परिचय	उपेन्द्रनाथ अश्क
९९.	हिन्दी कहानियाँ और फैशन	उपेन्द्रनाथ अश्क
१००.	हिन्दी कहानी की रचना-प्रक्रिया	डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
१०१.	हिन्दी व्याकरण की रूपरेखा	डॉ० अ० म० दीमशित्स
१०२.	हिन्दी शब्दानुशासन	आचार्य किशोरी दास वाजपेयी
१०३.	हिन्दी शब्द-रचना	भाईदयाल जैन
१०४.	हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य	स० ही० वात्स्यायन अज्ञेय
१०५.	हिन्दी-साहित्य में काव्यरूपों के प्रयोग	डॉ० शंकरदेव अवतरे

पत्र-पत्रिकायें

१. अणिमा (मासिक)—सातवें दशक का कहानी विशेषांक, १९६६।
२. आधार (मासिक)—सचेतन कहानी विशेषाक, नवम्बर, १९६४।
३. आलोचना (त्रैमासिक)—जुलाई—सित० '५६, अक्तूबर '६३, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य विशेषांक, भाग—१,२,३, अप्रैल-जून '६७, जुलाई-सित० '६७, जन०-मार्च '६८, अप्रैल-जून '६८, जुलाई-सित० '६८, अक्तू०-दिस० '६८, अप्रैल-जून '६९।
४. कल्पना (मासिक)—अप्रैल '६६, अगस्त-सित० '६९, अक्तू०-नव०-दिस० '६९।
५. कहानी (मासिक)—मई '५८, फर०, जून, अक्तू० '६८, फर० '६९, मार्च '६९, जून '६९।

६. कृति (मासिक)—अगस्त १६६१।
७. ज्ञानोदय (मासिक)—जन० '५६, नव०, दिस० '६४, मार्च, अप्रैल '६५, फर०, अप्रैल, मई '६६, अप्रैल, सित० '६७, फर०, जून, जुलाई, दिस० '६८, फर०, अप्रैल, मई, अग० '६६।
८. दिनमान (साप्ताहिक)—६ जून १६६८, १२ अगस्त १६६६।
६. धर्मयुग (साप्ताहिक)—४ नव० '६२, १६ फर० '६४, ३ जन०'६५, ३० जन०, १३ मार्च, १८ सित०, २३ अक्तू० '६६, *स्वाधीनता विशेषांक* (१७ अगस्त), ३१ अग०, १४ सित०, १६ अक्तू० '६६।
१०. नयी कहानियाँ (मासिक)—सित० '६०, जुलाई '६३, अग०, सित०, दिस० '६४, अप्रैल, जून, अक्तू '६५, अग०, अक्तू०, दिस० '६६, जन० '६७, फर०, मार्च, अप्रैल, जून, जुलाई, नव०, दिस० '६८, जून, मार्च '६६।
११. नयी धारा (मासिक)—फरवरी-मार्च १६६६।
१२. परिषद्-पत्रिका (त्रैमासिक)—वर्ष—१, अंक—१, अप्रैल १६६१।
१३. माध्यम (मासिक)—जुलाई १६६५, मार्च १६६६।
१४. राष्ट्रधर्म—जुलाई-अगस्त १६६७।
१५. लहर (मासिक)—नयी कहानी विशेषांक।
१६. लंदन मैगजिन, मई १६५६।
१७. विकल्प (अर्द्धवार्षिक)—कथा-साहित्य विशेषांक नवम्बर १६६८।
१८. सारिका (मासिक)—जन०, अप्रैल '६८, जून '६६।
१६. हिन्दी-अनुशीलन (त्रैमासिक)—अक्तूबर-दिसम्बर १६६१।

नयी कहानी के विविध प्रयोग

नामानुक्रमणिका—1

(कहानियाँ)

ड

ढ

त

थ

द

ध

न

प

ह

नयी कहानी के विविध प्रयोग

नामानुक्रमणिका—२

(कथाकार, आलोचक आदि)